भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी

[खड १ आर्यभाषा केन्द्र और हिन्दी जनपद]

रामविलास शर्मा

राजकमल प्रकाशन

नयी दिल्ली पटना

मूल्य रु० ५०.००

डॉ० रामविलास शर्मा

प्रथम सस्करण १९७९

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
८ नेताजी सुभाष माग, नयी दिल्ली-११०००२

मुद्रक सोहन प्रिंटिंग सर्विस
शाहदरा, दिल्ली ११००३२

बारहवीं सदी में अवधी का व्याकरण लिखकर आधुनिक आर्यभाषाओं का विवेचन आरम्भ करने वाले उक्तिव्यक्ति-प्रकरणकार दामोदर पंडित की स्मृति को 'भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी' पुस्तक समर्पित है।

३ भोजपुरी क्षेत्र	१८४
४ कोसल	१६५
५ व्रज	२३०
६ कुरु जनपद	२३७
७ पुरानी साहित्यिक हिन्दी और जनपदीय भाषाए	२४६
८ पजाब और हिन्दी	२५६
६ राजस्थान और हिन्दी	२६६
१० आयभाषा केन्द्र और हिन्दी	२७५
५ आयभाषा केन्द्र और सीमान्त भाषाएँ	२६१ ३३६
१ सिन्धी	२६१
(क) ध्वनितन्त्र	२६१
(ख) शब्दतन्त्र	३०१
(ग) रूपतन्त्र	३०६
२ कश्मीरी	३११
(क) ध्वनितन्त्र	३११
(ख) शब्दतन्त्र	३२०
(ग) रूपतन्त्र	३२६
(घ) कश्मीरी और शीना	३३५
६ आयभाषा केन्द्र और पुराण परम्पराए नवीन और प्राचीन	३४० ३६६
परिशिष्ट १ बलाघात और वर्णसयोजन पद्धति	३६७ ३७६
परिशिष्ट २ अतिरिक्त महाप्राणता की समस्या	३८०-३८६

भूमिका

यह पुस्तक आय, द्रविड आदि भारत के प्राचीन भाषा परिवारो के आपसी सब धा को ध्यान मे रखते हुए, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की लीक से अलग हटकर, हिन्दी का विवेचन प्रस्तुत करती है।

पिछले कुछ वर्षो मे भारत को एक भाषाई क्षेत्र मानकर आय द्रविड परिवारा के आपसी सब धा पर विचार किया गया है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के लिए यह दृष्टिकोण अपेक्षाकृत नया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार एक ही भाषाई क्षेत्र मे सैकडो साल तक एक साथ रहते रहते आय द्रविड परिवारो ने कुछ ऐसी सामान्य विशेषताओ का विकास किया है जो उनमे मूलत नही थी। ये विशेषताए आय द्रविड के अतिरिक्त कोल (या मुडा) और नाग (या तिब्बती बर्मी अथवा तिब्बती चीनी) भाषा परिवारा मे भी मिल सकती है।

यह दृष्टिकोण भाषाविज्ञानी को प्रेरित करता है कि वह किसी एक भाषा-परिवार पर ध्यान केन्द्रित न करके पूरे भाषाई क्षेत्र पर ध्यान दे। उसमे यह मान्यता निहित है कि भाषा परिवार स्थिर, जड इकाई नही है, वह गतिशील है, वह अन्य भाषा-परिवारा से अलग थलग शून्य मे अपना विकास नही करता, उसका विकास अन्य भाषा-परिवारा के सपर्क म होता है। भारत को भाषाई क्षेत्र मानकर, आय-द्रविड परिवारा के परस्पर सब धा का अध्ययन करते हुए, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विकास के लिए नये तथ्या का पता लगाया जा सकता है, भाषा परिवारा के विकास और उनके सब धा के बारे मे नयी जानकारी प्राप्त की जा सकती है, नई स्थापनाए प्रस्तुत की जा सकती है, न केवल भाषा परिवारो क बारे मे वरन इन परिवारो की भाषाए बोलनेवाले मानव समुदाया के बारे मे पुरानी मान्यताए बदली जा सकती हैं, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के सैद्धान्तिक आधार म मूलभूत परिवतन किया जा सकता है।

किन्तु भारत को भाषाई क्षेत्र मान लेने के बाद विद्वाना न जो खोजबीन की, उससे उन्नीसवी सदी की एतिहासिक भाषाविज्ञान सब धी मान्यताओ म कोई उल्लेखनीय परिवतन नही हुआ। एतिहासिक भाषाविज्ञान के सिद्धान्त अपनी जगह कायम हैं, इडोयूरोपियन परिवार के निर्माण और विकास की जो रूपरेखा बनाई गई थी, वह अपरिवर्तित है, द्रविड परिवार का अध्ययन करने के लिए जो पद्धति अपनाई गई है, वह

इडोयूरोपियन परिवार का ही विवेचन करते हुए विकसित की गई थी। एक नया दृष्टि कोण प्राप्त होने पर भी पुरानी मान्यताओं में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ, इसका मुख्य कारण यह है कि इस दृष्टिकोण को अपनानेवाले विद्वान यह मानकर चलते हैं कि भाषाई क्षेत्र में परस्पर संपर्क होने से पहले ही उस क्षेत्र के भाषा परिवार अपनी मूल विशेषताओं का विकास कर चुके है, किन्हीं निश्चित लक्षणोंवाले भाषा-समुदायों के रूप में उनका निर्माण हो चुका है, ये लक्षण उनके अपने है, कोई अन्य भाषा परिवार न तो उन पर अपना हक जता सकता है, न उनकी रचना में उसका योगदान हो सकता है। इस प्रकार भाषाई क्षेत्र के सिद्धांत में जो क्रांतिकारी संभावनाएं है वे इस पूर्वाग्रह से निरस्त हो जाती है। भाषा परिवार स्थिर और जड इकाई नहीं है उनका विकास दूसरे परिवारों के साथ रहकर होता है, इस मान्यता के आडे आती है अन्य धारणा कि दूसरों के संपर्क में आने से पहले ही भाषा परिवार का निर्माण हो चुका है। भाषाई क्षेत्र के सिद्धान्त में यह अन्तर्विरोध है, जब तक इसे दूर न किया जायगा, तब तक भाषाई विवेचन के लिए उसमें निहित संभावनाओं से लाभ न उठाया जा सकेगा।

आर्य और द्रविड भाषाएं बोलनेवाले जन समुदाय सहस्राब्दियों से भारत नाम के भाषाई क्षेत्र में रहते आये है उनका आपसी और पुराना संबंध वह मुख्य कारण है जिससे भारत को एक भाषाई क्षेत्र माना गया है। इन परिवारों के मूल तत्वों की छानबीन करते हुए यदि यह सिद्ध हो जाय कि ये परिवार अपने मूल तत्व रच लेने के बाद ही एक दूसरे से मिले, तो क्षेत्रीयता के सिद्धांत के बारे में प्रचलित धारणा को सत्य मान लेना चाहिए यह स्वीकार करना चाहिए कि भाषा परिवार नाम का प्रपंच एकांत शून्य में ही विकसित होता है। किन्तु यदि उस तरह की छानबीन से यह सिद्ध हो कि इन परिवारों के मूल तत्व परस्पर संपर्क से विकसित हुए है, विकास की प्राचीनतम मंजिलों में परस्पर संपर्क के प्रमाण मिलते है, तो उक्त पूर्वाग्रह छोड देना चाहिए तब यह मानना चाहिए कि जैसे निर्मित हो जाने पर भाषा परिवार एक दूसरे को प्रभावित करते है, वैसे ही निर्माणकाल में वे एक दूसरे को प्रभावित करते है। किसी भाषा-परिवार का निर्माण सुदीर्घ प्रक्रिया है। निर्माण क्रिया समाप्त होने का कोई दिन, मास या वर्ष निश्चित नहीं किया जा सकता। अतः यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि अपनी मूल विशेषताओं का विकास करते समय विभिन्न भाषा समुदाय एक दूसरे के संपर्क में आयें। यह बात तब और भी स्वाभाविक लगेगी जब हम यह जानने का प्रयत्न करेंगे कि भाषा परिवार के निर्माणकाल में उस परिवार की भाषाएं बोलनेवाले मानव समुदाय किस रूप में संगठित थे सामाजिक विकास की किस मंजिल से गुजर रहे थे।

भाषा परिवार के निर्माणकाल में उस परिवार की भाषाएं बोलनेवाले मानव समुदाय गणसमाजों में संगठित होते हैं। ये गण कबीले, ट्राइब' हजारों साल तक घुमन्तू जीवन बिताते है सामाजिक विकासक्रम में कृषि-सभ्यता की मंजिल काफी देर से आती है। कृषि-सभ्यता का आरंभ होने से पहले अपने घुमन्तू जीवन के कारण विभिन्न

गणसमाज एक दूसरे के सपक में आते है। भापा परिवारो के मूल तत्वो का निर्माण गणव्यवस्था की इस पहली मजिल म होता है जब कबीले अधिकतर घुमन्तू जीवन बिताते है। स्वभावत ये 'मूल' तत्व किसी एक कबीले के नही होते, अनक कबीलो के होते हैं, उन्हे ये कबीले अनक स्रोता से प्राप्त करते हैं। किन्तु भाषा विज्ञानी गणसमाजा के घुमन्तू जीवन, उनकी भाषाई विविधता, उनके आपसी सपक को भाषाई विवेचन से बाहर रखते हैं। इसके बदले वे मानते है कि एक आदिम मानवसमुदाय कोई स्वत विकसित भाषा बोलता था, वह मानवसमुदाय अनेक शाखाआ मे विभाजित हुआ, आदिम मानवसमुदाय की जननीभाषा से इन शाखा समुदाया की पुत्री भाषाओ की उत्पत्ति हुई। वे मानते हैं कि भाषा परिवार का निर्माण विभिन्न गणभाषाआ के मिलने से नही होता, उसका निर्माण होता है किसी आदिम जननीभाषा के शाखाओ म विभाजित हो जाने से। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के गतिरोध का यह प्रबल कारण है, किसी आदि जननी भाषा से पुत्री भाषाओं की उत्पत्ति का सिद्धान्त। आप भाषाई क्षेत्र की बात करते रहिए किन्तु जननीभाषा स्वयम् है, वह जिस क्षेत्र म अवतरित होती है, उसमे या उसके आसपास कोई दूसरी जननीभाषा नही होती। अपने निर्माण काल म भाषा परिवार एक दूसरे के सपक मे आय हाग इस बात की छानबीन की आवश्यकता ही नही रह जाती। उन गणसमाजो की भाषाआ म कैसी विविधता थी जिनके एकत्र होने से भाषा परिवार बना इसकी छानबीन अनावश्यक ठहरती है। गणसमाजो के सुदीघ भाषाई विकास की प्रक्रिया के स्थान पर जननीभाषा और उसकी पुत्री भाषाआ की उत्पत्ति का सिद्धान्त स्थापित कर दिया जाता है।

कृषि सभ्यता का विकास आरभ होने पर गणसमाजो का आपसी सपक समाप्त नही हो जाता वरन और बढ़ता है, सुदृढ होता है। मिले और चल दिये की स्थिति से निकलकर निश्चित आवास भूमि मे रहनेवाले गणसमाज आपस म अधिक टिकाऊ सबध कायम करते है। ये सबध चाहे मित्र-भाव से कायम किये गय हा, चाहे शत्रु-भाव से, वे गणसमाजा के सपक को टिकाऊ अवश्य बनाते है। भाषा परिवारा की रूप रेखाए इस काल मे और भी निखरती और पुष्ट होती हैं। कृषि सभ्यता का विकास काफी लबी प्रक्रिया है। उत्पादन कौशल मे सुधार होने से, विनिमय की बढती से गण-समाजो के जीवन म भारी परिवतन होता है, मानव समुदाया का सपक शिथिल होने के बदले और बढता है भाषाओ के विकास मे विशेष प्रगति होती है। कृषि सभ्यता के मुख्य केन्द्र सामाजिक विकास मे पिछडे हुए अन्य केन्द्रो को प्रभावित करते हैं।

किन्तु ऐतिहासिक भाषाविज्ञान मे गणसमाजा के घुमन्तू जीवन को तथा उनके उत्तरकालीन कृषि सभ्यतावाले जीवन को मिलाकर एक कर दिया जाता है। एक परिवार की भाषाआ मे जो कुछ सामान्य है, वह आदिभाषा की देन माना जाता है। यदि कृषि सभ्यता की शब्दावली सामान्य हो तो आदिभाषा बोलनेवाले समुदाय घुमन्तू कबीलो म विभाजित होने से पहले, कृषि सभ्यता मे दाखिल हो जाता है। यदि घुमन्तू जीवन की सामान्य शब्दावली मिले तो वह भी आदिभाषा की देन है। कृषि सभ्यता के

केन्द्र अन्य क्षेत्रो को प्रभावित कर सकते हैं, इस तरह कृषि-कौशल के साथ कृषि शब्दावली का प्रसार हो सकता है, यह धारणा अभी ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की परिधि के बाहर है।

क्षेत्रीयता के सिद्धात की परख के लिए भारत बहुत अच्छी प्रयोग भूमि है। यदि सभ्यता के प्राचीनतम केन्द्र जिन क्षेत्रों मे निर्मित हुए उनमे भारत का स्थान प्रमुख है। यहा चार भाषा परिवार ज्ञात इतिहास के आरभ से विद्यमान है आर्य, द्रविड कोल और नाग। इनका गहरा सब ध यूरप और एशिया की भाषाओ स है। आर्य भाषा परिवार का सब ध यूरप की भाषाओ से ऐसा घनिष्ठ है कि परिवार विशेष का नाम चाहे इडोजर्मैनिक रखा जाय चाहे इडोयूरोपियन, चाहे इडोहित्ताइत, उसम भारत सूचक 'इडो' अवश्य होगा। भारत की आर्य भाषाओ को इडोयूरोपियन आदिभाषा की एक शाखा के अन्तर्गत गिना जाता है। एशिया और यूरप की भाषाओ का एक समुदाय फिनोउग्रियन कहलाता है, इससे द्रविड भाषाओ का सब ध है। कुछ विद्वान द्रविड भाषा समुदाय को इसी फिनोउग्रियन परिवार की शाखा मानते है। कोल भाषाए आस्ट्रिक परिवार से सबद्ध है और नागभाषाए तिब्बती चीनी परिवार स। इडो यूरोपियन, फिनाउग्रियन, आस्ट्रिक और तिब्बती चीनी परिवारो की भाषाए बोलनेवाले जन-समुदाय विश्वमानवता का बहुसख्यक अ ग है, इन परिवारो का भाषाक्षेत्र भी ससार के कुल क्षेत्रफल का विशद भाग है। भारत से इन परिवारो का निकट सब ध है। इस कारण क्षेत्रीयता का सिद्धात परखने के लिए भारत बहुत अच्छी प्रयोगभूमि है। उक्त चार परिवारो के अतिरिक्त तुर्क मगोल और सामी भाषा परिवार हमारे पडोसी है। तुर्क मगोल और फिनोउग्रियन परिवारो मे इतनी समानता है कि कुछ लोग इन्हे एक परिवार मानकर यूराल-अल्ताई नाम देते हैं, काल्डवेल उसे शक परिवार कहते थ। प्राचीन मिस्र और सुमेर की भाषाए पश्चिमी एशिया की सामी और इडो यूरोपियन भाषाओ की पडोसी रही है सिन्धु नदी से लेकर नील नदी तक का भाषा क्षेत्र सिन्धु और गगा के भाषाक्षेत्र से सबद्ध रहा है। एशिया और यूरप के भाषाई विकास म किस भाषाक्षेत्र की देन प्रमुख है यह जानने के लिए भारत बहुत अच्छी अनुसधान भूमि है। यहा एक अन्य पूर्वाग्रह बाधक होता है। पूर्वाग्रह यह है कि भारत मे सदा बाहर स लोग आकर बसते रहे है, यहा के आदमी बाहर निकलकर कही बसने नही गये, भारत म जो भी आकर बस गया, वह नये आक्रमणकारियो से पराजित हुआ, भारत का इतिहास यहा के जनसमुदायो की अटूट पराजय शृखला का इतिहास है। भाषाविज्ञान के लिए इसस निष्कर्ष यह निकलता है कि भारत प्राचीन काल म अब तक भाषा-तत्वो का आयात-केन्द्र रहा है भाषा-तत्वो का नियात-केन्द्र कभी नहा रहा। भारत का अपना भाषाई रिक्थ कुछ भी नही है, केवल आर्य नहीं द्रविड कोल-नाग भी अपने भाषा-तत्व बाहर से लाये। ससार के सभी भाषा-परिवारो का निर्माण भारत से बाहर हुआ है, यहा किसी भाषा परिवार का निमाण नहीं हुआ। आर्य, द्रविड कोल, नाग, इन चार परिवारो की भाषाए बोलनेवाले जनसमुदायो म

कोई भी भारत का मूल निवासी नही है। आदिवासी, मूल निवासी, ये शब्द सापेक्ष अथ मे सही है, निरपेक्ष दष्टि से निरथक हैं । किसने किसको जीता, यह विवादास्पद है। जीते सब गये, यह निर्विवाद है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के लिए विजेता और विजित के सबधो के बिना भाषाओ का प्रसार नही होता। डारविन का वय नियम भाषाक्षेत्र पर लागू होता है, जो योग्य होगा, वह दूसरो को जीतकर अपनी भाषा का प्रसार करेगा। जिसकी लाठी उसकी भस, अर्थात् जिसकी लाठी चलेगी, उसी की भाषा चलेगी।

किसी ने यह पता लगान का प्रयत्न नही किया कि दक्षिण-पूर्वी एशिया मे जो सामाय आस्ट्रिक-कोल भाषा तत्व मिलते है, उन पर कही कोई आय-द्रविड सपक का चिह्न तो नही है। यदि ऐसा चिह्न मिले तो उक्त पूर्वाग्रह पर पुर्नविचार आवश्यक होगा। यदि भारतीय भाषातत्व प्रशान्त महासागर के द्वीपो मे पहुँचे होगे तो कोल-चिह्नो के अलावा उन पर आय द्रविड-नाग चिह्न भी अकित होगे। इसी प्रकार जहा भारतीय नाग भाषाओ तथा तिब्बती-चीनी परिवार की भाषाओ म सामाय तत्व मिलते है, वहा ध्यान से देखना चाहिए कि इन पर कोल द्रविड-आय भाषाओ के चिन्ह तो अकित नही है। यदि इडोयूरोपियन परिवार म आर्येतर भारतीय भाषा तत्व हो, यदि आस्ट्रो एशियाटिक परिवार म कोलेतर भारतीय भाषा-तत्व हो, यदि तिब्बती चीनी परिवार मे नागेतर भारतीय भाषा-तत्व हो, यदि शक परिवार मे द्रविडेतर भारतीय भाषा तत्व हो, तो यह स्थापना स्वीकार करनी होगी कि भारत के चार भाषा परिवार अत्यत प्राचीन है, इनका परस्पर सपक बहुत पुराना है, भारत भाषा तत्वो का नियात केद्र भी है, और जहा भी मुख्यत एक भारतीय परिवार के भाषा-तत्व बाहर जाते है, वहा कुछ न कुछ अय परिवारो के भाषा-तत्व भी उनके साथ होते है।

जब हम भारत को भाषाई क्षेत्र कहते हैं, तब आशय वतमान भौगोलिक सीमाओ वाले भारत से नही होता। आशय होता है बृहत्तर भारत से जिसमे पाकिस्तान का भूभाग शामिल है, बँगला देश और बमा शामिल है। जिसे किसी समय उत्तराखड कहते थे, उसम पश्तो भाषा का क्षेत्र आता है। दक्षिण-पूर्वी एशिया के जिस भाग म आस्ट्रिक भाषाए बोली जाती है, उसे अनक भाषा विज्ञानियो ने बृहत्तर भारत के अतगत माना है। एशिया और यूरप का कोई भाषा परिवार नही है जिसका विवेचन इस बृहत्तर भारत को ध्यान मे रखे बिना किया जा सके।

यद्यपि ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की स्थापनाए भारत मे प्रचलित रूढिबद्ध धारणाओ से भिन मानी जाती है किन्तु यह भिन्नता दिखाऊ है। वास्तव म दोनो की एक ही सामाय भूमि है कि समस्त आधुनिक आय भाषाओ का उद्भव और विकास उस आदि आय भाषा स हुआ है जो वैदिक भाषा के रूप म उपलब्ध है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञानी मानते है कि यह वैदिक भाषा भारत ईरानी शाखा की एक टहनी थी, भारतीय रूढिवादी पडित ऐसा नही मानते। इतना ही अन्तर है। जहा तक आधुनिक आय भाषाओ के विकास या सबध है, भारत के पुरानपथी पडित और यूरप के आधु-

निकता वोधवाले विद्वान् दोना मानते है कि इनका स्रोत वदिक भाषा है, यही नही, वैदिक भाषा के बाद सस्कृत पालि प्राकृत-अपभ्रशवाली परपरा भी दोनो कोटि के विद्वाना को स्वीकार है। वैदिक भाषा से भिन्न यहा एक या अनेक आय भाषाए थी, यह उनके लिए कल्पनातीत है, वैदिक भाषा से पहले भी यहा कोई प्राचीनतर आय भाषा थी, ऐसा सोचने का पाप न तो प्राचीनता प्रेमी भारतीय पडितो न किया है, न आधुनिकता प्रेमी पाश्चात्य विद्वाना ने। एसी स्थिति म एतिहासिक भाषाविज्ञान के विकास के लिए आचाय किशोरीदास वाजपयी की स्थापनाआ का महत्व स्वत स्पष्ट हा जाता है।

वदिक भाषा एक सुदीघ विकास का परिणाम है। 'जब वदा की रचना हुई, उससे पहले ही भाषा का वैसा पूण विकास हो चुका होगा।" (**भारतीय भाषाविज्ञान**, वाराणसी, पृ० ११३)। वैदिक भाषा का आधार एक जन भाषा थी। उसमे बहुत सा साहित्य रचा गया जो नष्ट हा गया। वेदा की रचना मे पहले "छोटा मोटा और हलका भारी न जान कितना साहित्य बना होगा, तब वेदा का नवर आया होगा। वह सब काल-कवलित हो गया।' (उप०)। उस जनभाषा के अनक प्रादशिक भेद थे, "उन प्रादशिक भेदा म स जो कुछ साहित्यिक रूप प्राप्त कर चुका होगा, उसी मे वेदो की रचना हुई होगी, परन्तु अन्य प्रादशिक रूपा क भी शब्द प्रयोग गहीत हुए होगे।' (उप० पृ० ११४)। हिंदी का विकास समझने के लिए प्राचीन आय जनभाषा के उन रूपा पर ध्यान दना होगा जो न वदिक भाषा म हैं, न सस्कृत म। उदाहरण "पालि म 'इध है और सस्कृत म इह' है। एसा जान पडता है कि मूल भाषा' मे इध' ही था हिंदी का 'इधर पालि के 'इध म जा पडता है।' (उप० पृ० १२६)

इन स्थापनाआ से निष्कष यह निकलता है कि वदिक भाषा स पहले जो जन भाषा परपरा रही है, उस पहचानना जरूरी है, उसके प्रदशगत भेदा को ध्यान म रखना जरूरी है। य प्रदेशगत भेद ऋग्वेद की रचना क समय विद्यमान थे, उमस पहले भी थे। **इह** का पूवरूप **इध** था इसकी पुष्टि पालिरूप के अतिरिक्त हिंदी **इधर** से होती है। सस्कृत के ज्ञान स तो हिंदी का विकास समझ मे आना ही है, इसके विपरीत हिंदी का ज्ञान भी सस्कृत का विकास समझने म सहायक होता है। हिंदी प्रदेश की जनपदीय भाषाआ का विवेचन किया जाय तो पुरानी जनभाषा के प्रदेशगत भेदा को समझने मे सहायता मिलेगी। वाजपयी जी ने जिन्हें प्रादशिक भेद कहा है, उन्हे इस पुस्तक म प्राचीन गणभाषाए कहा गया है। एक बार प्राचीन भारत की भाषाई स्थिति समझ मे आ जाय तो इडायूरोपियन परिवार के विवेचन म सहायता मिलगी।

एतिहासिक भाषाविज्ञान की सबसे बडी उपलब्धि यह मानी जाती है कि उसने ध्वनि परिवतन के अटल नियम निश्चित किये है। इन नियमा के अनुसार एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा म अपना ध्वनि रूप बदलते है इन्ही नियमा के सहारे हम उस अप्राप्त आदि भाषा की ध्वनि व्यवस्था पहचानते है जिससे प्राप्त भाषाआ की शाखाए फूटी हैं। वास्तव म एतिहासिक भाषाविज्ञान प्राप्त भाषाआ क सामान्य तत्वा स अप्राप्त भाषा की जो ध्वनि-व्यवस्था रचना है वह निराधार और काल्पनिक है।

जो ध्वनिया एक विकास-प्रनिया के अन्त मे किसी भाषा के तंत्र म व्यवस्थित हुई है, उन्हे यह विज्ञान प्रक्रिया के आरभ मे ही विकसित, और किमी भाषातत्र मे व्यवस्थित, मान लेता है। आज भी यूरप मे ऐसी भाषाए ह और इडोयूरोपियन परिवार की भाषाए हैं जिनमे क, त, प जैसी तीना सामान्य ध्वनिया नही है, तीन मे दो है, एक का अभाव है। जब सघोषता और महाप्राणता के लक्षणा पर विचार करते है, तब ध्वनियो का प्रसार और वितरण और भी विषम हो जाता है। जहा ये दोना लक्षण मिल जाते हैं, वहा ध्वनिया और भी विरल हो जाती है। घ, ध, भ, ये सघोष महाप्राण स्पश ध्वनिया है। इनका व्यवहार भारत के बाहर न तो किसी प्राचीन भाषा मे मिलता है, न आधुनिक भाषा म। ईरान की प्राचीन और नवीन भाषाआ की भी यही स्थिति है। इसका कारण यह है कि विशिष्ट ध्वनिया के विकास-केन्द्र अलग-अलग रहे है, उनके परस्पर सम्पक से प्राचीन भाषाआ की ध्वनि व्यवस्था निर्मित हुई थी। वैदिक भाषा गण समाजो क सुदीघ सपक के फलस्वरूप बहुत कुछ मानक रूप प्राप्त कर चुकी थी और विभिन्न गणक्षत्रा की सामान्य व्यवहार-भाषा बन चुकी थी। फिर भी उसमे विभिन्न आयभाषा क्द्रा का अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त सामग्री है। प्रसिद्ध जमन वैयाकरण ब्रुगमन न स्कभ और स्तभ दो समानार्थी सस्कृत रूप देखकर मान लिया था कि इनमे कौन पूवरूप है, यह कहना असभव है। किसी ध्वनि नियम से इनमे एक को दूसरे का परिवर्तित रूप सिद्ध नही किया जा सकता। यूनान मे भारत की अपेक्षा उत्पादन और विनिमय का विकास विलब स हुआ, फलत वहा सामान्य अखिल यूनानी भाषा का चलन देर से हुआ। यूनान की पुरानी गणभाषाआ का अस्तित्व बहुत दिन तक बना रहा, उनका व्यवहार होता रहा। एक यूनानी गणभाषा के शब्द मे क् है तो दूसरी गणभाषा क प्रतिरूप म त और तीसरी के प्रतिरूप मे प है। किसी ने अभी तक यह प्रयत्न नही किया कि अकेले यूनान की गणभाषाओ म जो ध्वनि परिवतन होते है, उनके नियमो को पहचाने। तब ग्रीक सस्कत मे ध्वनि-परिवतन के कौन से नियम है, उनका पता लगाना ता और भी कठिन काय है। वास्तव मे ध्वनि परिवतन जैसी कोई प्रक्रिया घटित नही होती। एक भाषा म क है, दूसरी म त्। पहली भाषा बोलनेवाला जब कहेगा स्कभ, तब दूसरी भाषा बोलनवाला दोहरायेगा—स्तभ। वह क ध्वनि को त रूप मे ही ग्रहण करता है। व्यजनो की अपक्षा स्वरा की विविधता नियमो की अवहेलना और भी करती है। स्वरा की ह्रस्वता और दीघता से शब्द के अथ मे भेद हो, यह व्यवस्था कायम होते-होते होती है। जिन भाषाआ मे शब्द के किसी विशेष वण पर बल देना साथक होता है, उनम स्वर की ह्रस्वता और दीघता आज भी महत्वपूण नही है।

प्राचीन लिखित भाषाओ की ध्वनि-व्यवस्था म अनेक स्रोता से भिन्न ध्वनि प्रवत्तिया आकर शामिल हुई है। अत भाषा की ध्वनि-व्यवस्था मे परस्पर विरोधी ध्वनि प्रवृत्तिया मिलती है। बोलचाल के स्तर पर जहा भाषाओ का विवरण प्राप्त किया जाता है, वहा ध्वनि प्रवृत्तिया की विविधता और भी विकट होती है। प्रत्येक

भाषा बोलियों का समुदाय दिखाई देती है और प्रत्येक बोली के पचीसों भेद हैं। बारह कोस पर बोली बदलती जो है। अत भाषाओं म 'ध्वनि-परिवर्तन' के अटल नियम स्थापित करने के बदले ध्वनि प्रवृत्तियों की पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए, जहां उनम सामजस्य है, उसे देखना चाहिए, जहा वैषम्य है, उस पर भी ध्यान देना चाहिए।

सामजस्य और वैषम्य भाषा के हर स्तर पर देखा जाता है। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान म रूपतत्र के लिए दावा नहीं किया गया कि यहा भी कोई निश्चित नियम लागू होते हैं। आवश्यक तथ्यों के प्राप्त न होने की शिकायत बार बार की जाती है और अटकल से काम लेना पड रहा है, यह स्वीकार किया जाता है। इडोयूरोपियन भाषा परिवार के रूपतत्र पर तो काम भी हुआ है अन्य परिवारों के रूपतत्र अपेक्षाकृत अछूते हैं। द्रविड भाषाओं के अनेक विशेषज्ञ इस स्थिति पर क्षोभ व्यक्त कर चुके हैं कि ऐतिहासिक दृष्टि से इन भाषाओं के रूपतत्र का विवेचन नहीं हुआ। कोल और नाग भाषाओं के रूपतत्र के ऐतिहासिक विकास की बात भी करना बेकार है। ससार के प्रमुख भाषा परिवारों को लें तो ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान अभी ध्वनितत्र के दायरे म बाहर नहीं निकला।

जहा तक वाक्यतत्र का सबध है, ऐतिहासिक भाषा विज्ञान म वह उपेक्षित है। कुछ विद्वान् यह भी मानते हैं कि वाक्यतत्र का विवेचन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के लिए विशेष लाभदायक नहीं होता। यह भ्रान्त धारणा है। वाक्य म उद्देश्य पहले आता है या विधेय वाक्य क्रिया स आरभ होता है या कर्ता से, क्रियापद रचना कृदन्त प्रधान है (यानी उसम सज्ञा तत्व भी है) या तिडन्त प्रधान (यानी उसम सज्ञा तत्व का अभाव है), कारक और क्रियापद परस्पर कितना सबद्ध है कितना असबद्ध, आदि आदि बातें भाषा समुदायों के विकास और उनके परस्पर सबधों को पहचानने म सहायक होती हैं। अग्रेजी वाक्यतत्र म उद्देश्य का स्थान पहले है, विधेय का स्थान बाद को है। उसी की पड़ोसी स्काटलैंड की गैलिक भाषा म विधेय का स्थान पहले है, उद्देश्य का स्थान बाद को है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के लिए यह तथ्य असाधारण महत्व का है। कारक रचना क्रियापद रचना, समास रचना आदि को वाक्यतत्र प्रभावित करता है अत रूपतत्र को वाक्यतत्र का अश मानकर उस पर विचार करना चाहिए। जो भाषा विज्ञानी किसी भाषा विशेष का ऐतिहासिक व्याकरण लिखते हुए उसके रूपतत्र का विवरण प्रस्तुत करने के बाद उसके वाक्यतत्र का विवेचन करते है, वे रूपतत्र के बारे म कही हुई अधिकाश बातें दोहराते है। ऐसा होना अनिवार्य है क्योंकि उनकी धारणा के रूपतत्र का अधिकाश वाक्यतत्र स अभिन्न है। रूपतत्र स शब्दतत्र को अलग कर लेना लाभदायी होगा। शब्दतत्र म शब्द निर्माण प्रक्रिया के विश्लेषण पर बल देना आवश्यक है। इस प्रक्रिया म शब्दों का रूपात्मक गठन, उपसर्ग प्रत्यय आदि का व्यवहार महत्वपूर्ण है, इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है अर्थ ससर्ग की प्रवृत्तियां जिनसे एक ही शब्द मूल अपने चारों ओर अर्थ का विशद परिधि बना लेता है। यदि कोई शब्द मूल का अर्थ चलना है तो पवन पद, पथ आदि शब्द अर्थप्रसार की एक ही परिधि में

सिमट आते है। शब्द निर्माण-प्रक्रिया के अन्तर्गत अर्थप्रसार के इस व्यापार म कृषि सभ्यता के विकास से कितना बडा परिवतन हुआ, इसका विवेचन भी होना चाहिए।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान म भाषा के रूप-तत्व पर अधिक जोर दिया गया, अथ-तत्व की उपेक्षा की गई। भाषा के माध्यम से लोग दूसरो की बात सुनते समझते है। उन्हे अपनी बात सुनाते समझाते है। अत ध्वनितत्र, शब्दतत्र, वियासतत्र (रूपतत्र +वाक्यतत्र), इनमे किसी भी स्तर पर भाषा का विवेचन अथतत्व को ध्यान मे रखे बिना सभव नही है। किन्तु अथतत्व अरूप नही होता, वह रूप स सवद्ध होता है। **गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न**, अथ और रूप का ऐसा ही सबध है। रूपात्मक भाषा चिन्तन से क्षुब्ध होकर जो भाषाविज्ञानी अरूप अथतत्व का अनुसधान कर रहे है, व भाषा की निसगसिद्ध द्वन्द्वात्मक प्रकृति की अवहेलना करते है।

इस पुस्तक के प्रथम खड—**प्रायभाषा केन्द्र और हिन्दी जनपद**—म हिन्दी के ध्वनितत्र, शब्दतत्र और रूपतत्र का विवेचन है। मानक हिन्दी के साथ हिन्दी प्रदश की जनपदीय भाषाओ को ध्यान म रखा गया है मगही, मैथिली, अवधी आदि पर एक स्वतत्र अध्याय मे अलग से भी विचार किया गया है। हिन्दी के साथ आवश्यकतानुसार अन्य आधुनिक आयभाषाओ की विशेषताओ का उल्लेख है।

वैदिक भाषा से पहले की आय-भाषा विकास परपरा पहचानने के लिए मध्य-देश को विवेचन की केन्द्र भूमि बनाना होगा। इस मध्यदेश मे एक कोसल गणभाषा समुदाय था, दूसरा वह भाषा समुदाय था जो शूरसेन नाम से प्रसिद्ध होनेवाले जनपद म व्यवहृत था। पूव म मगध गणभाषा समुदाय और उत्तर म कुरु गणभाषा समुदाय थे। इनके ध्वनितत्र और वाक्यतत्र म यथेष्ट भेद था। यह भेद वतमान जनपदीय भाषाओ म ही अशत विद्यमान नही है, वह यूरप की भाषाओ मे भी पाया जाता है। वैदिक भाषा का विकास मध्यदेशीय भाषा या भाषाओ के आधार पर हुआ है। वैदिक भाषा का ध्वनितत्र प्राचीन मध्यदेशीय भाषा के ध्वनितत्र स बहुत भिन्न है, बागरू को छोडकर ब्रज से लेकर मैथिली तक हिन्दी जनपदीय भाषाओ का ध्वनितत्र वदिक भाषा—और सस्कृत—के ध्वनितत्र की अपेक्षा प्राचीन मध्यदेशीय भाषा के ध्वनितत्र से अधिक मिलता जुलता है। शब्दतत्र की अनेक प्रक्रियाए सस्कृत के अनुरूप ह, अनेक भिन्न है और अत्यन्त प्राचीन है। इसकी पुष्टि इडोयूरोपियन और द्रविड परिवारो मे प्राप्त उदाहरणो से हो जाती है। रूपतत्र की अनेक विशेषताए वदिक काल म पुरानी पडने लगी हैं, वहुधा वे अवधी, मगही मैथिली आदि मे अब भी मिलती है।

आयभाषा परिवार के निर्माण म उक्त चार गणभाषा-समुदायो की भूमिका निर्णायक है। य समुदाय अन्य आयभाषा समुदायो से प्रभावित भी हुए, विशेषत ध्वनितत्र के स्तर पर, किन्तु कुल मिलाकर भारतीय आय भाषाओ के ताने-बाने के केन्द्र म है मध्यदेश। वह कुरु और मगध दोनो ओर के क्षेत्रो को प्रभावित करता है, पुन कुरु समुदाय उत्तरी भाषाओ को शूरसेन समुदाय पश्चिमी आय भाषाओ को और मगध समुदाय पूर्वी भाषाओ को प्रभावित करते है। ये भाषा-समुदाय स्वय भी गहराई

से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, परस्पर सपर्क से अपना भाषाई विकास निर्धारित करते हैं। यह क्रम प्राग्वैदिक काल से चला आ रहा है। मानक हिन्दी के निर्माण मे एक ओर तो ब्रज अवधी जसी जनपदीय भाषाओ का योगदान है, दूसरी ओर आधुनिक आयभाषाओ के विकास मे इन जनपदीय भाषाओ का योग है। पूर्वी आय भाषाओ के विकास म केवल पूर्वी हिन्दी बोलियो का योगदान नहीं है पश्चिमी हिन्दी बोलियो का योगदान भी है। सिन्धी और कश्मीरी दो भाषाए एसी है जो मध्यदेश म सर्वाधिक दूर है ग्रियसन आदि विद्वान इन्हे दरद भाषा समुदाय से प्रभावित मानते है। मैंने इन पर अलग एक अध्याय लिखा है जिसम आयभाषापरिवार के निर्माण म मध्यदेश की भूमिका स्पष्ट हो सके।

बारहवी सदी म अवधी जाननेवालो का सस्कृत सिखाने के लिए जब दामोदर पडित **उक्ति व्यक्ति प्रकरण** लिख रहे थे तब तक मध्यदेश एक भाषिक इकाई के रूप म अपनी प्राचीन ख्याति बनाये हुए था। द्रविड भाषा क्षेत्र से यह मध्यदेश अलग है यह जताते हुए उन्होने मध्यदेशवासी द्रविडो का लक्ष्य करके लिखा था **दश्यते ही द्रविड देशजातस्य मध्यदेशे वसतस्तद्भाषाज्ञान सकेतग्रहणे।** जिन लोगो को मध्यदेश की चर्चा अटपटी लगे, वे इस प्राचीन ख्याति का स्मरण करें।

आर्यों दासो, दस्युओ राक्षसो दैत्यो आदि को लेकर विद्वानो ने जो नयी पुराण कथाएँ रची है व भारत म उपलब्ध पुराण कथाओ म कुछ भिन्न है। इन नयी कथाओ की तुलना मे पुरानी कथाए अधिक सारगर्भित है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान बार बार ऐसी कथाओ का सहारा लेता है, नयी कथाए रचता है और उनके चौखटे मे पुरान कथातत्वो को जड देता है, अत एक अध्याय इन पुराण कथाओ के विवेचन पर भी है।

पुस्तक क दूसरे खड—**इडोयूरोपियन परिवार की भारतीय पष्ठभूमि**—मे इडोयूरोपियन परिवार के ध्वनितत्र, शब्दतत्र तथा रूपतत्र पर भारतीय भाषाई परिवेश को ध्यान म रखते हुए विचार किया गया है। यहा भारतीय भाषाई परिवेश मे आय भाषाए तो है ही नाग द्रविड आदि परिवारो को भी इस परिवेश का अभिन्न अग माना गया है। सस्कृत और यूरप की भाषाओ के सामान्य शब्दो म जो ध्वनि भिन्नता दिखाई दती है, वह अकारण नही है। ध्वनि परिवतन अकारण नही होता, **भ्रातर्** को कुछ भाषाओ ने **फ्रातेर** अन्य ने **ब्रदर** रूप म ग्रहण किया, तो यह इन भाषाओ के बोलनेवालो की सनक के कारण नही था। भारतीय भाषाई परिवेश पर ध्यान दन से विदित होगा, एस ध्वनि परिवतन आर्येतर भारतीय भाषाओ म होते रह है, कभी-कभी इन आर्येतर प्रभाव स सस्कृत म भी हुए ह। ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं का ध्वनितत्र इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है कि विभिन्न केन्द्रो म विकसित होनवाली ध्वनियो के मेल स भाषा विशेष की ध्वनि व्यवस्था निर्मित होती है। भारत म बाहर इडो यूरोपियन परिवार की भाषाओ पर भारतीय आयभाषाओ का गहरा प्रभाव है किन्तु इन भाषाओ के निमाण म आर्येतर भाषाओ का योगदान भी है। इसके सिवा उक्त

एक अध्याय मैंने ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के परिवर्तित परिप्रेक्ष्य और हिन्दी लिखा है।

इरानी भाषा क्षेत्र से भारत का सबंध सर्वविदित है। कहा जाता है कि भारत पर आक्रमण करनेवाले आर्य ईरान से ही आये थे। अत एक अध्याय मैंने **ईरानी भाषा क्षेत्र और भारत** लिखा है। यह इरानी भाषा क्षेत्र वर्तमान ईरान की सीमाओं से बहुत बड़ा है। इस समूचे क्षेत्र को ध्यान में रखने से भारत ईरान के भाषाई संबंधों का सम्यक् विवेचन हो सकेगा। सिंधुघाटी की सभ्यता को पुरातत्वज्ञ और भाषाविज्ञानी दोनों ही भारत ईरान के भाषाई संबंधों से जोड़ देते हैं। संक्षेप में इस विषय पर कुछ विद्वानों के मतों की आलोचना उक्त अध्याय में है। ईरानी क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण भाषा पश्तो है। पश्तोभाषियों और उनकी निवास भूमि से भारतीय जनों का बहुत पुराना संबंध है अतः इस भाषा पर किंचित विस्तार से विचार किया गया है।

इंडायूरोपियन परिवार की भाषाओं से भारतीय भाषा-परिवारों का संबंध एक ही मंजिल में समाप्त नहीं हो जाता, वह अनेक मंजिलों में बँटा हुआ है। इंडोयूरोपियन परिवार के सभी भाषा समुदायों से हमारी—आर्य और आर्येतर—भाषाओं का संबंध एक सा नहीं है। हमारी ओर से यह संबंध कहीं मध्यदेशीय आर्य भाषाओं की ओर संकेत करता है तो कहीं कौरवी या मागधी आर्य भाषाओं की ओर, कहीं कन्नड़ भाषा समुदाय में संपर्क के चिह्न हैं तो कहीं तमिल-समुदाय में संपर्क के, कहीं ऐसे स्रोतों से संपर्क के जिनका प्रभाव आर्य द्रविड दोनों भाषा परिवारों पर पड़ा है। यूरप की ओर *ग्रीक भाषा-समुदाय से संपर्क एक प्रकार का है, बाल्तिक स्लाव समुदाय से दूसरी प्रकार* का, केल्त समुदाय से तीसरी प्रकार का।

इंडोयूरोपियन परिवार के विवेचन में जर्मन समुदाय पर ज्यादा ध्यान दिया गया है। इसका एक कारण यह है कि ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का विकास मुख्य रूप से जर्मनी में हुआ है। बाल्तिक स्लाव भाषाओं पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है, केल्त भाषा समुदाय अभी तक उपेक्षित है। किसी समय इटली से लेकर आयरलैंड तक केल्त भाषाओं का प्रसार था। इनकी अधिकांश भूमि पर लैटिन जर्मन समुदायों की भाषाएं बोलनेवालों ने अधिकार कर लिया। केल्त भाषाओं की चर्चा से इंडायूरोपियन परिवार के निर्माण का रूमानी सपना चकनाचूर हो जाता है। एक अध्याय में केल्त भाषा-समुदाय पर विशेष बल देते हुए मैंने इंडोयूरोपियन भाषाओं से भारतीय भाषा समुदायों के विविध और विशिष्ट संबंधों पर संक्षेप में विचार किया है। यूरप की भाषाओं के लिए भारत के अतिरिक्त एशिया की अन्य प्राचीन-अर्वाचीन भाषाएं स्रोत भाषाएं रही हैं इसका उल्लेख भी किया है। इस समस्त विवेचन में पाठक विभिन्न भाषा समुदायों को किसी न किसी रूप में हिंदी प्रदेश से संबद्ध पायेंगे।

पुस्तक के तीसरे खंड—**नाग द्रविड कोल और हिंदी प्रदेश**—में भारत के आर्येतर परिवारों का विवेचन है, इनसे आर्य भाषाओं के संबंधों का विश्लेषण है। यह विश्लेषण ध्वनितंत्र, रूपतंत्र और रूपतंत्र के स्तरों पर किया गया है। आर्य भाषाओं

ब्लूमफील्ड और द्रविड भाषाओं के विशेषज्ञ एमेनो, दोनों ही उक्त व्याकरण परंपरा से—विशेषत पाणिनि से—प्रभावित हैं। अत इस पुस्तक में एक अध्याय **भारतीय व्याकरण परंपरा और ऐतिहासिक भाषाविज्ञान** पर है। समाजी भाषाविज्ञान, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान और विवरणात्मक भाषाविज्ञान परस्पर संबद्ध हैं, इन तीनों के मेल से बृहत्तर भाषाशास्त्र की इकाई निर्मित होती है, ध्वनितंत्र, विन्यासतंत्र (रूपतंत्र + वाक्यतंत्र) परस्पर संबद्ध है, इन तीनों के मेल से भाषातंत्र की बृहत्तर इकाई निर्मित होती है इस इकाई में अर्थतत्व प्राण की तरह प्रतिष्ठित है, इस दृष्टिकोण का उल्लेख भी उक्त अध्याय में है। इस अध्याय में समस्त भारतीय व्याकरण परंपरा के मूल्यांकन का प्रयत्न नहीं किया गया मैंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि पाणिनि ने जो नियम बनाये हैं उनके आधारभूत कारणों का ज्ञान उस ऐतिहासिक भाषाई परिस्थिति से होता है जिसका विवेचन इस पुस्तक में है।

अंत में एक शब्द सूची है। इसके एक अंश म 'ध्वनि परिवर्तन के ऐसे उदाहरण है जो एक से अधिक भाषा परिवारों मे प्राप्त होते है। इन पर दृष्टिपात करने से ध्वनि परिवर्तन संबंधी नियमों के बदले प्रवृत्तियों का बोध होगा, बृहत्तर भारत के भाषाई परिवेश को ध्यान में रखते हुए विभिन्न भाषा परिवारों का विवेचन करना उचित है यह सत्य उजागर होगा। शब्द सूची के दूसरे अंश में वे शब्द है जो पहले भारतीय भाषाओं में व्यवहृत थे किंतु जो लुप्त हो गए थे, या जिनका ध्वनि रूप बदल गया था या जिनका मूल अर्थ परिवर्तित हो गया था इनके साथ वे शब्द है जो इंडायूरोपियन परिवार की अभारतीय भाषाओं तथा आर्येतर भारतीय भाषाओं—विशेषत द्रविड भाषाओं—म सामान्य हैं। इनके साथ कुछ अन्य वर्गों के शब्द है जो हिंदी प्रदेश का भाषाई विकास समझने म सहायक होते हैं।

भाषाई विवेचन एक कौशल है यह कौशल यंत्रवत निश्चित किया जा सकता है। जैसे उद्योग धंधों की एक टेक्नौलोजी है वैसे ही भाषावैज्ञानिक धंधे की एक टेक्नौलोजी है। टेक्नौलोजी स्वयं विज्ञान नहीं है, वैसे ही भाषाई विवेचन का कौशल भाषाविज्ञान नहीं है। जब भाषाई टक्नौलोजी म टेक्नीकल शब्दावली की भरमार हो तो उसे विज्ञान समझने के भ्रम से बचना और भी जरूरी है। प्रत्येक विज्ञान म अनुसंधान कर्ता का संवेदनशील होना उस विज्ञान के विकास की पहली शर्त है। भाषाविज्ञान के विकास के लिए यह संवेदनशीलता और भी आवश्यक है। कारण यह कि भाषा निसर्गत संवेदनाओं के निखार और उन्हें दूसरों तक पहुंचाने का माध्यम है। साहित्यिक बोध यहां सहायक होता है। कौशल की उपयोगिता असंदिग्ध है। भाषाओं के विवेचन के लिए जितना कौशल आवश्यक और उपयोगी है, उतना अवश्य स्वीकार करना चाहिए। किंतु बहुत-सी भाषाई टक्नौलोजी ऐसी है जिसकी उपयोगिता प्रमाणित नहीं हुई। कला के लिए कला—जैसे यह सिद्धांत अमान्य है, वैसे ही कौशल के लिए कौशल—यह सिद्धान्त भी अमान्य है।

भारत में ऐतिहासिक भाषा विज्ञान की समस्याएं इतिहास की पुरानी पड़

चुकी, वतमान युग से असवद्ध, समस्याए नही हैं। वतमान भारत की अनेक राजनीतिक सामाजिक, सास्कृतिक समस्याओ की जड में एसी मायताए है जिनका सबध यहा की भाषाओं के विकास म है यहा क भापा समुदाया के आपसी सबधा स है। य मायताए मुख्यत उनीसवी सदी के ऐतिहासिक भापाविज्ञान द्वारा, अशत रूढिवादी भारतीय पुरोहित वग द्वारा स्थिर की गई है। दोना की मायताओ में जो समानता है, उसका उल्लेख पहले हो चुका है। इसीलिए भारत के भापाई विकास पर नये आलोचनात्मक दृष्टिकोण स विचार की गुजाइश है और उसकी आवश्यकता है। जो लोग भारत की वतमान स्थिति मे असन्तुष्ट है, उस स्थिति म मौलिक परिवतन करना चाहते है, उनके लिए अनिवाय है कि वे इस स्थिति को अच्छी तरह पहचानें। भारत के बारे म बहुत-सी ऐसी बातें है जिनका ज्ञान भापा समुदायो के तुलनात्मक और ऐतिहासिक विवेचन से ही हो सकता है। जो लोग मानते है कि सामाजिक विकास का वैज्ञानिक दशन ऐतिहासिक भौतिकवाद है उन्हे यह भी मानना चाहिए कि ऐतिहासिक भापा विज्ञान के बिना मानव समाज के इतिहास का ज्ञान अधूरा है ऐतिहासिक भौतिकवाद का ज्ञान अधूरा है।

इस पुस्तक म अनेक त्रुटिया हो यह सभव है। मैंने भरसक प्रयास किया है कि वे न हो। इस पुस्तक की स्थापनाओ म विद्वान असहमत हो तो यह स्वाभाविक बात होगी। विशेपरूप से शब्दों के प्रतिरूप निश्चित करने म उनकी व्युत्पत्ति और अथ प्रसार दिखाने में मतभेद की बहुत गुजाइश है। पाठको से निवेदन है कि वे इधर-उधर शब्दो की व्युत्पत्ति, व्याख्या आदि म न उलझकर विवेचन के मूल ढाचे पर निगाह जमाये रहे। यदि वे सहमत हो कि ऐतिहासिक भापाविज्ञान का पुराना पथ छोडना आवश्यक है तो मैं समझूगा, मुझे आशिक सफलता मिल गई। यदि उन्हे यह बात तकसगत लगे कि इडोयूरोपियन आदिभापा जैसी कोई आदिभापा नही थी, यूरप की भापाओ के निमाण में भारतीय आय भापाओ के अलावा आर्येतर भापाओ की भूमिका भी महत्वपूण थी तो मैं समझूगा मुझे पूण सफलता मिल गई। अय स्थापनाओ के बारे म चाहे जितना मतभेद हो आपके लिए तब यह अनिवाय हो जायगा कि आप किसी-न किसी रूप में विवेचन की वह पद्धति अपनायें जिसका निदशन इस पुस्तक म है।

मैं भापाओ की समानता उनका व्यवहार करनेवाले मानव समुदायो की समानता के सिद्धान्त में विश्वास करता हू। साथ ही मैं मानता हू कि यह समानता कभी पूण और निरपेक्ष नही होती। विश्व के पूजीवादी विकास में इंग्लैंड की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूण है इस ऐतिहासिक तथ्य के प्रतिपादन से राष्ट्रो की समानता का सिद्धान्त खडित नही हो जाता। विश्व के समाजवादी विकास में सोवियत सघ की भूमिका प्रमुख है और सोवियत सघ में रूसी जाति की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूण है इस ऐतिहासिक तथ्य की घोषणा से जातीय समानता के सिद्धान्त का उल्लघन नही होता। इसी प्रकार एशिया और यूरप के भापाई विकास में भारत की भूमिका प्रमुख

है और स्वय भारत के भाषाई विकास मे हिन्दी प्रदेश की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, यह कहने मे भाषाओ की समानता के सिद्धात का खण्डन नही हो जाता।

मेरी पुस्तक **भाषा और समाज** म जिन सिद्धातो का प्रतिपादन है, उनका यहा सवधन और विस्तार है, उनमें कही मौलिक परिवतन करना आवश्यक प्रतीत नही हुआ। कुछ शब्दो की व्युत्पत्ति मे फेर बदल सभव है। जहा उस पुरानी पुस्तक को देखते किसी शब्द की व्युत्पत्ति के बारे मे यहा भिन्न मत प्रकट किया गया हो, वहा इस पुस्तक मे व्यक्त मत को मेरी वतमान धारणा का सूचक मानना चाहिए। जिस विवेचन मे अटल नियमो की अस्वीकृति हो, उसमे किसी भी स्थापना के लिए पूण सत्य का दावा करना हास्यास्पद होगा। जो लोग अटल नियमो का प्रतिपादन करते ह, उनके ग्रथो म भी 'सभव है' 'ऐसा हुआ होगा' 'शायद ऐसा हो' 'हो सकता है कि' इत्यादि की खपत काफी होती है। इस पुस्तक म कोई भी स्थापना चाहे जितने आत्मविश्वास से प्रस्तुत की गई हो, आप अपनी ओर से उसके आगे पीछे 'सभव' और 'शायद' जोड लें। मेरा प्रयत्न यह है कि प्रत्येक स्थापना के विरोध मे जो तक दिया जा सके उस पर विचार करने के बाद अपनी स्थापना प्रस्तुत करू।

अग्रेजी म भाषाविज्ञान की जो पुस्तकें प्रकाशित होती है, उन सभी म सामान्य ध्वनिचिह्नो का व्यवहार नही होता। हिन्दी म सामान्य ध्वनिचिह्नो के व्यवहार पर अभी गहराई से विचार विमश आरभ नही हुआ। ऐसी स्थिति म इस पुस्तक के लिए मैंने कुछ कामचलाऊ ध्वनिचिह्नो का सहारा लिया है। इनम सुधार और परिष्कार की बहुत गुजाइश है। हिन्दी समेत विभिन्न भाषाओ के शब्दो को ठीक ठीक जैसे वे बोले जाते हैं वैसे ही लिखू यह कोशिश मैंने नही की। विवेचन के विशेष सदभ मे उनका भाषा तात्विक महत्व स्पष्ट हो जाय, शब्दो के लेखन म यह ध्येय मुख्य है। कुछ भाषाओ के शब्द लिखते समय स्वरो के ह्रस्व दीघ होने की ओर मैंने विशेष ध्यान नही दिया कुछ भाषाओ म स्वर ह्रस्व है या दीघ, यह निणय करना सरल नही है। जहा स्वर की लघुता गुरुता विवेचन के सदभ म महत्वपूण है वहा मैंने उस पर अवश्य ध्यान दिया है। कुछ भाषाओ की लिपि म **र, न, स** आदि ध्वनियो के लिए एक से अधिक चिह्न हैं यद्यपि बोलने म कोई भेद नही है। ऐसी स्थिति म मने एक ही ध्वनिचिह्न से काम लिया है। शब्दो पर बलाघात के चिह्न मैंने नही लगाये क्योकि सामान्यत विवेचन के लिए यह आवश्यक न था।

ऐ और **औ** ये सयुक्त स्वर सस्कृत शब्दो म **अइ** और **अउ** वत् बोले जायेंगे, अयत्र जहा ऐसे सयुक्त स्वरो का व्यवहार दिखाना अभीष्ट है, वहा **अइ** और **अउ** से काम लिया गया है। सस्कृत शब्दो को छोडकर **ऐ औ** का ध्वनिमूल्य वही है जो मानक हिन्दी के **पसा** तथा **और** शब्दो मे इन सयुक्त स्वरो का है। ह्रस्व एकार-ओकार के लिए **ऍ ऑ** चिह्नो का उपयोग किया गया है ह्रस्व ऐकार-औकार लिखना हो तो **ऐं**, **औ** लिखे गए। हिन्दी शब्दो के दीघ स्वर जहा अनुनासिक हैं, वहा पूण बिन्दु का व्यवहार हुआ है। जहा ह्रस्व स्वर अनुनासिक हैं वहा चद्रबिन्दु का व्यवहार किया

गया है। संस्कृत शब्दों में दीर्घ स्वर के साथ पूर्ण बिन्दु का मूल्य नासिक्य व्यंजन के बराबर है यथा मांसिक में। हिन्दी आँसू में पूर्ण बिन्दु दीर्घ स्वर का अनुनासिक होना सूचित करती है। संघर्षी व्यंजनों के लिए नीचे बिन्दी लगाई गई है यथा काग़ज़ में। एक अन्य संघर्षी ध्वनि—फारसी के मिझगां, अंग्रेज़ी के प्लेझर की संघर्षी ध्वनि—झ़ चिन्ह द्वारा व्यक्त है। इस संघर्षी झ़ से सघोष महाप्राण स्पर्श झ का कोई संबंध नहीं है। तमिल, मराठी आदि के मूर्धन्य पार्श्विक ल के लिये ळ चिन्ह है, इसी के पश्चमूर्धन्य रूप—तमिळ के ळ के लिए ऴ चिन्ह का व्यवहार किया है। कुछ अन्य ध्वनि चिन्ह है जिनका सीमित उपयोग पुस्तक के विशेष स्थानों पर हुआ है, उनकी व्याख्या वहीं कर दी गई है।

अंग्रेज़ी के फोनीम शब्द के लिए मैंने अक्षर ध्वनि और सिलेबल के लिए वर्ण शब्दों का प्रयोग किया है। जो शब्द संज्ञा, क्रिया किसी भी वर्ग के शब्द की विशेषता बताये, उसे मैंने विशेषक कहा है, जो शब्द संबंध-सूचक है—चाहे वह अंग्रेज़ी का प्रिपोज़ीशन हो, चाहे पोस्टपोज़ीशन—उसे मैंने सम्बन्धक कहा है। कृदन्त, तिङन्त शब्दों का व्यवहार व्यापक अर्थ में हुआ है जो संदर्भ से स्पष्ट हो जायगा।

इस पुस्तक में जहां-जहां आधुनिक अवधी के उदाहरण दिये गये है वहां आशय अवधी की उस बोली से है जो बैसवाड़ी नाम से विख्यात है। कुछ उदाहरण अवधी की अन्य बोलियों से भी लिये गये हैं।

यह पुस्तक मैंने उन सभी हिन्दी-अहिन्दी भाषी पाठकों को ध्यान में रखकर लिखी है जिन्हें इस देश की भाषाओं से प्रेम है और जो उनका आपसी संबंध तथा ऐतिहासिक विकास समझना चाहते हैं। वे विशेषज्ञ है कि नहीं, यह प्रश्न मेरे लिए गौण है। मुख्य प्रश्न यह है कि ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का विवेचन, अपनी समस्त उलझी हुई समस्याओं सहित सामान्य शिक्षित जनों के मन में पैठ सकता है या नहीं। यदि विशेषज्ञ भी मेरी पुस्तक पढ़ें तो मैं अपना भाग्य सराहूँगा। मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि शिक्षा केन्द्रों में भाषाविज्ञान की वर्तमान उपेक्षा का अन्त हो। दुर्भाग्य से इस उपेक्षा के लिए अंशतः 'विशेषज्ञ' ही उत्तरदायी है।

मुझे कुछ समय तक कन्हैयालाल माणकलाल मुंशी हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ में काम करने का अवसर मिला था। पुस्तक के लिए अधिकांश सामग्री मैंने विद्यापीठ के ग्रंथालय से संग्रह की है। कुछ पत्रिकाएं और पुस्तकें जुटाने में विद्यापीठ के मेरे सहयोगियों—डा० जगन्नाथ पार्थसारथी, डा० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल, डा० मुरारिलाल उप्रेति, डा० कैलाशचन्द्र अग्रवाल, डा० विश्वजीत तथा श्री उदयशंकर शास्त्री—ने मेरी सहायता की है। कुछ पुस्तकें दक्कन कालेज, पूना के अधिकारियों ने मेरे उपयोग के लिये विद्यापीठ-ग्रंथालय को भेज दी थीं। मैंने केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा के ग्रंथालय से भी लाभ उठाया है और इस कार्य में संस्थान के श्री मदनलाल वर्मा ने मेरी सहायता की है। कुछ मूल्यवान सामग्री जीवविज्ञान के क्षेत्र में शोध करने वाले डा० विद्यासागर शर्मा ने मेरे लिए आस्ट्रेलिया से भेजी थी। इन सबके प्रति मैं

आभार व्यक्त करता हू। केल्त भाषाओ के विशेषज्ञो से आवश्यक जानकारी प्राप्त करके इन भाषाओ से सबधित सामग्री इग्लैंड से मेरे पुत्र विजय मोहन लाये थे। पुस्तक लिखने की तैयारी करते और उसे लिखते समय मुझे अनेक तमिल भाषी और हिंदी भाषी विद्वानो से अपनी धारणाओं को लेकर चर्चा का सुयोग मिला है और उससे मुझे लाभ हुआ है। इसके लिए मैं इन बधुओ को धन्यवाद देता हू।

रामविलास शर्मा

३०, नई राजामडी,
आगरा २,
८ जनवरी, १९७९

१

आर्य भाषा केन्द्र और हिन्दी ध्वनितत्र

१ प्रस्तावना

सस्कत और हिन्दी के कुछ वाक्य मिलाकर एक साथ पढे जायें तो यह तथ्य तुरत स्पष्ट हो जाएगा कि सस्कृत मे कुछ ध्वनिया ऐसी है जैसी बोलचाल की हिन्दी मे नही हैं या बहुत कम सुनने को मिलती है। सस्कत का मूधन्य ष, ऋ, क्ष ऐसी ध्वनिया है जो किसी भी आधुनिक आय भाषा के बोलचालवाले रूप मे प्रयुक्त नही होती। नये शब्दो के निर्माण मे—पुन बोलचाल के स्तर पर—इनकी भूमिका शून्य है। इनका व्यवहार केवल तत्सम रूपो मे होता है या उन रूपो के आधार पर गढे हुए नए विशिष्ट शब्दो मे होता है। ये सभी ध्वनियाँ मूधन्य है। इस वग की ध्वनिया म एक महत्वपूण नासिक्य ध्वनि है—ण। उत्तर-पश्चिमी आय भाषाओ मे इसका व्यवहार प्रचुर रूप से होता है किन्तु ब्रज प्रदेश से लेकर असम तक बोलचाल के स्तर पर आय भाषाओ मे यह ध्वनि बहिष्कृत है। मध्य भारत मे जहा अवधी समुदाय की उपभाषाओ का चलन है, वहा भी इस ध्वनि का व्यवहार नही होता। कह सकते है कि हिन्दी और सस्कत के ध्वनितत्रो मे एक प्रमुख भेद मूधन्य ध्वनियो को लेकर है। जहा तक ष, ऋ और क्ष का सम्बन्ध है, यह भेद व्यापक है, सस्कृत तथा सभी आधुनिक आय भाषाओ मे है। जहा तक मूधन्य नासिक्य का सम्बन्ध है, यह भेद आंशिक है। कश्मीरी को छोडकर उत्तर पश्चिमी भाषा-समुदाय म इसका चलन है और मध्य तथा पूर्वी भाषा-समुदाय मे इसका व्यवहार प्राय नही होता।

विचारणीय समस्या यह है कि ष, ऋ, क्ष ध्वनिया सस्कत की मूल ध्वनियाँ है या विकास की किसी अवस्था मे उनका व्यवहार होने लगा था। आधुनिक आय भाषाओ में इनका व्यवहार नही होता तो क्या इसका कारण यह है कि इन्हे बोलने वालो की ध्वनि-पद्धति अथवा उच्चारण क्षमता में परिवतन हो गया है या प्राचीन आय भाषाओ के एक समुदाय में कभी इनका चलन ही न था। जो लोग यह मानते हैं कि प्राचीन काल में केवल एक आय भाषा सस्कृत का व्यवहार होता था, उनके लिए इस समस्या का निदान सरल है। जैसे प्राचीन सस्कति के अनेक तत्व नष्ट हो गए, वैसे ही इन ध्वनियो का व्यवहार भी क्षीण होता गया। पर आश्चय की बात यह है कि मूधन्य

ध्वनिया में नासिक्य विद्यमान है, और इस तरह विद्यमान ह—यथा बागरू म—कि जहा सस्कृत में भी उसका व्यवहार न होता था, वहाँ 'तत्सम' और तदभव रूपा मे उसका व्यवहार होना है। तत्सम **वन** हो गया **वण**, तदभव **नहान** हुआ **न्हाण**। और इसका कारण क्या है कि उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र मे णकार सकुल भाषाएँ बोली जाती है और मध्य तथा पूर्वी क्षेत्र म उडिया को छोडकर, मूधन्य नासिक्य का व्यवहार नही होता। प्राकृतो मे इस ध्वनि की बहुलता है। जिन प्राकृतो को शूरसेन आदि जनपदा से जोडा जाता है उन प्राकृता की प्रिय नासिक्य ध्वनि उन्ही जनपदो की आधुनिक भाषाओ से गायब है। अपभ्रशो से आधुनिक भाषाओ का सम्बन्ध और भी गहरा है, ऐसा माना जाता है। इनमें शूरसेनी अपभ्रश का चलन सबस ज्यादा था और इसी के क्षेत्र, शूरसेन जनपद के वतमान सस्करण, व्रज प्रदेश मे इसका चलन नही है। जिसे पूर्वी अपभ्रश कहा जाता है उसमें भी णकार की बहुलता है। विद्वाना न कल्पना की है कि मध्य और पूर्वी क्षेत्रो में पहले इस ध्वनि का व्यवहार होता था, फिर उसका लोप हो गया। एक विशाल प्रदेश मे एक साथ एक ही समय म किसी ध्वनि विशेष का लोप हो जाय, यह आश्चयजनक घटना है। पडोस के एक विशाल क्षेत्र म उसी ध्वनि का व्यवहार होना रहे, यह चमत्कार है। पजाबी या बागरू का वह सम्बन्ध शूरसेन जनपद की अपभ्रश स नही हो सकता जो व्रजभाषा का होगा। तब इस अपभ्रश की मूधन्य नासिक्य ध्वनि बागरू और पजाबी में कैसे बच गई और व्रज प्रदेश से उसका लोप कम हो गया?

सस्कृत और हिन्दी के ध्वनितत्रा मे एक भेद तालव्य श को लेकर है। बागरू समेत हिन्दी प्रदेश की सभी बोलिया में दन्त्य सकार का व्यवहार होता है। पूर्वी समुदाय की आय भाषाआ म केवल बँगला, अपने परिनिष्ठित रूप म, तालव्य श का व्यवहार करती है और इतना करती है कि तत्सम रूपा के दन्त्य सकार का भी वह तालव्य बना दती है। क्या अधिकाश आय भाषा क्षेत्र मे ध्वनि प्रकृति सम्बन्धी एसा मौलिक परिवतन हुआ कि तालव्य श् का लोप हो गया? या इस सभावना को स्वीकार करें कि आय भाषाआ के एक समुदाय मे तालव्य श का व्यवहार होता ही न था? क्ष और ण् के समान श सुसस्कृत उच्चारण की विशेषता माना जाता है। यदि लोग श नहा बोल पाते ता यह उनके अशिक्षित और असस्कृत होन का प्रमाण है। परिनिष्ठित बँगला में तत्सम शब्दा के दन्त्य स का उच्चारण नही होता, तो इस कोई *बगाली भद्रजना के असस्कृत होने का प्रमाण नहीं मानता।*

सस्कृत और हिन्दी के कुछ वाक्या पर दृष्टिपात करते हुए एक अन्य तथ्य जो उजागर होता है वह यह कि सस्कृत म सयुक्त ध्वनिया की भरमार है। दो व्यजन ही नहीं, तीन-तीन व्यजन भी सयुक्त हो सकते हैं। एक ही व्यजन की आवत्ति तो आधुनिक आय भाषाआ म सामान्य है जसे **चक्कर, सच्चर, धम्मक** शब्दा में। समवर्गीय ध्वनियाँ भी सयुक्त होती हैं जैसे **पत्थर, लिट्ठड बग्घी**। किन्तु विषम वर्गीय ध्वनिया का जसा सयोग सस्कृत में होता है, वैसा हिन्दी या अन्य आय भाषाआ

मे नही होता। ऋ को स्वर मानें चाहे व्यजन, यह ध्वनि जिस तरह संस्कृत म व्यजना से सयुक्त होती है, उस तरह आधुनिक आयभाषाओ मे नही होती। और यह स्वाभाविक है क्योकि ऋ ध्वनि जब स्वतन्त्र रूप से आधुनिक आय भाषाआ मे नही है, तब अन्य व्यजना के साथ वह सयुक्त कैसे होगी ? कृतित्व, व्यक्तित्व, परिपक्व, लावण्य, गृद्ध, स्पर्द्धा आदि आदि शब्दा में जिस तरह का ध्वनि सयोग है, वह आधुनिक आय भाषाओ की ध्वनि प्रकृति के विपरीत है। प्रश्न यह है संस्कृत की कितनी धातुओ मे, उनके शब्द मूलो मे व्यजना का सयोग दिखाई देता है ? यह सयोग किस प्रकार के व्यजना का है, समवर्गीय व्यजना का, पूण स्पश व्यजनो का, एक पूण स्पश व्यजन से अन्तस्थ अथवा नासिक्य व्यजन का ?

आधुनिक आय भाषाआ के ध्वनितत्र पर विचार करते हुए यह बात निरंतर ध्यान मे रखनी चाहिए कि वैदिक भाषा एक सुदीघ विकास परम्परा का परिणाम है। वह उस परम्परा का कारण नही है। जिस समय इस भाषा का व्यापक व्यवहार होता है, उस समय विभिन्न आय गणभाषाआ के बीच यथेष्ट सम्पक कायम हो चुका है। इन आय गणभाषाओ के अनेक तत्व वैदिक भाषा म समाहित है। लौकिक संस्कृत के समान यह भाषा परिनिष्ठित नही है वह अभी 'भाषा' है, 'संस्कृत' नही बनी। इसके अतिरिक्त वैदिक भाषा के विश्लेषण से ही उसके विकास की अनेक मजिलो का पता लगाया जा सकता है। यहा एक उदाहरण पयाप्त होगा। वैदिक भाषा मे मूधन्य नासिक्य ध्वनि का व्यवहार प्रचुर मात्रा म होता है किन्तु इस भाषा की धातुओ म उसका उपयोग अति अल्प है। इससे यह प्रमाणित होता है कि वैदिक भाषा के शब्द-मूलो की रचना मे ण् की भूमिका नगण्य है। इस भाषा की एक अवस्था मे इस ध्वनि का व्यवहार होता ही न था, अन्य अवस्था मे उसका प्रचुर व्यवहार होने लगा।

संस्कृत के विकास की अनेक मजिलें है, संस्कृत के समानान्तर अनेक आय गणभाषाएँ बोली जाती थी। इन गणभाषाआ की सामग्री जहाँ तहा पालि प्राकृत-अपभ्रंश म मिलती है। आधुनिक आय भाषाआ का विकास समझने के लिए संस्कृत का विवेचन आवश्यक है, साथ ही संस्कृत का विवेचन करने के लिए, उसका ऐतिहासिक विकास समझने के लिए, आधुनिक आय भाषाओ स सहायता ली जा सकती है। इस समस्त विवेचन को अखिल भारतीय भाषाई सदभ म प्रस्तुत करना चाहिए।

इस दृष्टि से आधुनिक आय भाषा—विशेषत हिन्दी—की कुछ विशेषताआ पर आगे विचार किया जाएगा।

२ मूर्धन्य ध्वनियो के केन्द्र

इडोयूरोपियन भाषा परिवार का ऐतिहासिक विवचन करनेवाले विद्वान् यह मानते है कि आदि इडोयूरोपियन भाषा मे मूधन्य ध्वनिया नही थी। इस आदि भाषा की भारत ईरानी शाखा म भी य ध्वनियाँ नही थी। इनका विकास भारत म आर्यों के आने के बाद द्रविड जना के सम्पक मे हुआ अथवा स्वत स्फूत ढग मे हुआ। मेरी

मान्यता भी है कि संस्कृत के मूल रूप में ये ध्वनियां नहीं थीं। ऊपर से देखने में इस मान्यता तथा ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की परम्परागत स्थापना में कोई अंतर नहीं है। वास्तव में दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है और यहां उसे स्पष्ट कर देना उचित है।

अंग्रेजी और जर्मन आदि उत्तरी यूरप की जिन भाषाओं में भारतीय ट, ड जैसी ध्वनियाँ सुनाई देती हैं, उन्हें अनेक भाषाशास्त्री मूर्धन्य से भिन्न वर्त्स्य मानते हैं। इस प्रकार वे यूरप की भाषाओं को मूर्धन्य वृत्ति से मुक्त रखते हैं। किन्तु अनेक ध्वनिशास्त्री हिन्दी की टवर्गीय ध्वनियों को वर्त्स्य मानते हैं, तब अंग्रेजी और हिन्दी की एक जैसी लगने वाली ध्वनियों में मौलिक अंतर नहीं रह जाता। कुछ विद्वानों के अनुसार ऐसी ध्वनियों की पहचान जीभ की नोक को ऊपर की ओर उलटने से होती है। इसलिए मूर्धन्य के बदले वे ऐसी ध्वनियों को प्रतिवेष्टित कहना पसन्द करते हैं। उनकी यह बात मान लेने पर भी इस धारणा की पुष्टि नहीं होती कि प्रतिवेष्टित ध्वनियाँ केवल भारत में हैं, यूरप में नहीं हैं। इंग्लैंड के उत्तर में नौर्थम्बरलैंड, और यूरप के उत्तर में नौर्वे तथा स्वीडन, की भाषाओं में ट्, ण् का प्रतिवेष्टित उच्चारण होता है। यदि भारत में मूर्धन्य ध्वनियां स्वतः स्फूर्त ढंग से विकसित हुईं तो ऐसी ही क्रिया यूरप के एक भाग में भी सम्पन्न हुई। इस बात के प्रमाण हैं कि यूरप की प्राचीन भाषाओं में अनेक शब्द ऐसे हैं जो मूर्धन्य ध्वनियों वाले भारतीय शब्दों के प्रतिरूप हैं, प्रतिरूप ही नहीं वे भारतीय शब्दों के तद्भव रूप हैं। ग्रीक भाषा में एक शब्द तेख्ने है जो तक्षन का सम्बन्धी है। ग्रीक शब्द का अर्थ है कौशल। यहां क्ष का रूपान्तर ख् वैसे ही हुआ है जैसे, मागधी वृत्ति के अनुरूप, क्षेत्र का रूपान्तर खेत है। इसलिए मेरी मान्यता यह है कि प्राचीन ग्रीक जैसी भाषाओं का शब्द भंडार उस समय निर्मित हो रहा था जिस समय भारत में मूर्धन्य ध्वनियों का विकास हो चुका था।

मेरी मान्यता यह भी है कि मूर्धन्य ध्वनियों के विकास केन्द्र भारत में ही थे। भारत के आसपास कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां दन्त्य त् का उच्चारण ट् (वर्त्स्य, मूर्धन्य या प्रतिवेष्टित) होता हो यानी ऐसा कोई भाषा क्षेत्र मध्य या पश्चिमी एशिया में नहीं है जिसमें त द का नितान्त अभाव हो। न ऐसा क्षेत्र दक्षिण भारत में है। किन्तु भारत के पश्चिम में सौराष्ट्र और पूर्व में असम ऐसे प्रदेश हैं जिनमें त द का अभाव है। इसलिए यह मानना युक्तिसंगत है कि किसी अज्ञातनाम भाषा-परिवार ने आर्य और द्रविड़, दोनों परिवारों को प्रभावित किया है। तमिल में उसका कोई भी अपना शब्द ट से आरम्भ नहीं होता। संस्कृत में थोड़े से शब्द ट ठ ड ढ से आरम्भ होते हैं। तमिल और संस्कृत से भिन्न हिन्दी में ट् ठ् ड ढ से आरम्भ होने वाले शब्द पचीसों हैं। असम और सौराष्ट्र दोनों क्षेत्र हिन्दी प्रदेश के दो छोरों पर हैं। इसलिए यह अनुमान तर्कसंगत है कि इन क्षेत्रों की अपभ्रंशों के प्रभाव में संस्कृत और तमिल की तुलना में हिन्दी तथा अन्य आर्य भाषाएँ शब्द के आदि स्थान में ट ठ ड ढ का व्यवहार अधिक करती हैं। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि ईरानी क्षेत्र में ये ध्वनियाँ नहीं हैं किन्तु पश्तो में ट के अलावा उत्क्षिप्त मूर्धन्य ड़ की ध्वनि भी है। कश्मीरी, सिन्धी, पश्चिमी पंजाबी भाषाएं

दरद-समुदाय म गिनी जाती है। इस समुदाय का विशेष लक्षण ईरानी प्रभाव माना गया है किन्तु इस तथाकथित दरद समुदाय मे मूधन्य ध्वनियो का व्यवहार होता है और फारसी मे नही होता। कश्मीरी मे ढ और ण् की ध्वनियाँ नही है पर ट् और ठ् का व्यवहार खूब होता है। पजाबी मे ण की भरमार है, ट् और ड का प्रयोग भी खूब होता है। सिंधी मे जैसे दो तरह के ब् है, वैसे ही दो तरह के ड है। एक मे वायु का विस्फोट बाहर को होता है और दूसर मे वायु भीतर को खीची जाती है। सौराष्ट्र म ण् की बहुलता है, असम मे इसका अभाव है। आय भाषा-क्षेत्र मे मूध'य ध्वनियो का विकास विषम रूप म हुआ है, सस्कृत की अपेक्षा अधिक हुआ है, आदि स्थानीय व्यवहार को देखते हुए द्रविड भाषाओ की अपेक्षा आधुनिक आय भाषाओ म ऐसी ध्वनिया का प्रयोग अधिक हुआ है। ढ और ड़ का व्यवहार सस्कृत से हि'दी की अलग ध्वनितत्रीय विशेषता सूचित करता है। किन्तु वैदिक भाषा मे सभवत इनका व्यवहार होता था। ऋग्वेद के पहले ही मत्र मे **ईडे** और उसका प्रतिरूप **ईळे** दोनो प्रयुक्त होते है। सायण ने इस मत्र के भाष्य म यह प्रचलित स्थापना उद्धृत की है **अज्मध्यस्य डकारस्य ळकार बह्वृचा जगु। अज्मध्यस्य ढकारस्य ळहकार वै यथा क्रमम्॥** दो स्वरो के बीच ड् और ढ का उच्चारण उत्क्षिप्त होता है।

सस्कृत के मूल रूप मे मूध'य ध्वनिया नही थी। सस्कृत के विकास की एक अवस्था मे जब इन ध्वनियो का व्यवहार होने लगा, तब यूरुप की अनेक भाषाओ ने ऐसे भारतीय भाषा-तत्व ग्रहण किये जो मूधन्यीकरण वृत्ति के साक्षी हैं। आय और द्रविड दोनो भाषा परिवारो को किसी टवग प्रेमी भाषा परिवार ने प्रभावित किया। यह असभव नही कि यह टवग प्रेमी परिवार भी भारतीय आय परिवार के अन्तगत हो, उसकी एक शाखा हो। शाखा कहने स यह आशय नही है कि उसका उद्भव किसी आदि आय भाषा से हुआ। आशय यह है कि यहा भिन्न प्रकार की ध्वनियो के अनेक विकास-के'द्र रहे हैं। उनके परस्पर सम्पक और भाषा-तत्वा के परस्पर आदान-प्रदान से आय भाषा-परिवार के ध्वनितत्र का निर्माण हुआ। किसी भाषा परिवार का ध्वनितत्र स्थिर इकाई नही होता। आधुनिक आय भाषाओ का ध्वनितत्र एकसा नही है, यह सहज अनुमेय है कि प्राचीन काल मे विभि'न आय गण-भाषाओ का ध्वनितत्र भी एक सा नही था। सस्कृत मे मूधन्यीकरण की कुछ प्रवत्तिया व्यापक है कि'तु आधुनिक आय भाषाओ मे उनका अभाव है। दूसरी ओर आधुनिक आय भाषाओ मे मूध'य ध्वनियो के व्यवहार की कुछ प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो सस्कृत मे अपेक्षाकृत विरल हैं या वहाँ उनका अभाव है। यह बिल्कुल सभव है कि मध्य देश की आय भाषा मे पहले टवर्गीय ध्वनियो का व्यवहार बिल्कुल न होता हो, उसके पूव और पश्चिम की कुछ आय गण-भाषाओ मे इनका व्यवहार यथेष्ट रूप मे होता हो। आय गण भाषाओ म जो भाषा सस्कृत नाम से विख्यात हुई, वह मूलत मध्यदेश की भाषा थी। अपने मूल रूप मे वह मूध'य ध्वनियो का व्यवहार न करती थी। 'सस्कृत' रूप मे इन ध्वनियो का व्यवहार वह पर्याप्त रूप मे करने लगी। इसका कारण अ'य आय गण भाषाओ का प्रभाव हो सकता है।

भारत म और भारत के बाहर इडोयूरोपियन परिवार की कोई ऐसी भाषा नही है जिसमे मूधन्य ष् का व्यवहार अब बोलचाल के स्तर पर होता हो। सस्कृत से चले आते हुए शब्दा म ही इस ध्वनि का प्रयोग होता है, वह भी लिखित रूपो मे अधिक, उच्चारण म बहुत कम। द्रविड भाषा-परिवार मे एक भाषा अब भी ऐसी है जिसम *तीनो सकार बोले जाते हैं और वे अथ विच्छेदक भी है। यह नीलगिरि पवतमाला* म रहन वाली तोद नाम की अल्पसख्यक द्रविड जाति ह। इसका अध्ययन और विवेचन सस्कृत तथा द्रविड भाषाओ के विशेषज्ञ एमेनो न किया है। उनका कथन प्रामाणिक माना जाएगा।

द्रविड भाषा परिवार के ध्वनितत्र का ऐतिहासिक विवेचन करन वाले विद्वान मूल द्रविड भाषा मे किसी सकार का अस्तित्व नही मानत। तोद तथा अय द्रविड भाषाआ क ध्वनितत्रा मे अनेक विलक्षणताएँ है जिनकी व्याख्या किसी आदि द्रविड भाषा क आधार पर नही की जा सकती। जहा तक तोद भाषा का सम्बध है, उसका ध्वनितत्र अनक बाता म पडोसी द्रविड भाषाओ क ध्वनितत्र स भिन ह। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विशेषज्ञ मानत है कि द्रविडो न भारत म उत्तर पश्चिम से प्रवेश किया। ऐतिहासिक भाषा विज्ञानी यह भी मानत है कि उत्तर पश्चिम भारत क बहुत से द्रविड, आर्यो स सम्पक होन पर दो भाषाएँ बोलने लग थ। आर्यो ने द्रविडो को पराजित किया, इसलिए कल्पना यह की जाती है कि द्रविडो न ही आय भाषा सीखी होगी। पर जैस आज भी विभिन्न द्रविड भाषाएँ बोलन वाले समाज विकास की विभिन अवस्थाआ म है, वैस ही प्राचीन आय गणसमाज भी विकास की विभिन अवस्थाआ म थ। सभव है कि इनमे स अनक न द्रविड भाषाएँ बोलना शुरू किया हो। जैस भारत म कुछ काल-समुदाय अपनी भाषा छोडकर अब कोई द्रविड भाषा ही बोलत हैं, वैस ही यह सभव ह कि कुछ आय गण, अपनी भाषा छोडकर, द्रविड भाषा बोलन लग हो। मेरा अनुमान ह कि तोद समुदाय ऐसा ही एक प्राचीन आय गण था। इस सदभ मे उनक शारीरिक गठन की विशेषताएँ उल्लेखनीय ह।

भाषाशास्त्र म नस्ल क सिद्धात का विवचन स दूर रखना चाहिए यह बात सही ह। आय भाषाएँ बोलन वाले गोरे थ या काले, इस विवाद म दूर रहना उचित है। किन्तु एक प्राकृतिक परिवश म रहत रहत लोगो का रग रूप एक दूसरे स मिलने जुलन लगता ह भले ही व अलग नस्लो क हो। अमरीका म अनक देशो के लोग जाकर *बस गए है। यूरप क गोरे लोगो स इन्ह अलग पहचाना जा सकता है। अफ्रीका के काले* आदमियो स अमरीका के काले आदमियो को भी अलग पहचाना जा सकता है। बगाल म यदि तिब्बत और मगोलिया के निवासियो की सामान्य आकृति स मिलत जुलत रूप रग वाले लोग मिलें तो यह कल्पना की जा सकती है कि लोग (चीनी तिब्बती) भाषाएँ बोलन वालो न बँगला नाम की आय भाषा स्वीकार कर ली है। तोद लोगो का रूप रग उन्ह देखन वालो क लिए आश्चय का विषय रहा है। आसपास क द्रविडो स उनकी आकृति भिन है। उनकी नाक लम्बी और रग गोरा होता है। इस तरह के

लोग भारत के उत्तर पश्चिमी भागो मे अधिक दिखाई देत है। इस तोद जन-समुदाय ने द्रविड भाषा स्वीकार की, साथ ही उसने अपनी मूल आय भाषा के ध्वनितत्र की एक ऐसी विशेषता कायम रखी जो अब किसी आधुनिक आय भाषा मे नही है, अय द्रविड भाषाओ मे तो उसका अभाव है ही। यह विशेषता मूध य ष का व्यवहार है। यह ध्वनि कि ही सस्कत शब्दा तक मीमित नही है, वह अथ विच्छेदक ध्वनि है और उसका व्यवहार उन शब्दो मे होता है जो सस्कत म नही है। नीलगिरि पवतमाला म अलग-थलग शताब्दिया तक एका त जीवन बितान के कारण तोद समाज इस ध्वनि की रक्षा कर सका। यदि भारत के उत्तर-पश्चिम मे काफिर कहलाने व ले इस्लाम धर्मानुयायी जना की भाषा का अध्ययन करें तो यह देखकर आश्चय होगा कि उनमे सस्कत के ऐस शब्दो का व्यवहार अपढ लोग करत है जैसे शब्दा का व्यवहार शिक्षित हि दी भाषी अपनी बालचाल मे नही करत। इसी प्रदश का कोई पुराना कबीला अब द्रविड भाषा बोलता हो, फिर भी कुछ प्राचीन आय ध्वनिया की रक्षा किये हो, तो इसमे आश्चय की बात नही है। एस अनेक आय गण समाजा न मध्यदेश की भाषा को प्रभावित किया होगा, यह अनुमान तकसगत है।

तोद भाषा म मूध य ष की महिमा केवल आधुनिक आय भाषाआ को देखते अधिक है, सस्कत मे उसका व्यवहार तोद की अपेक्षा अधिक है। फिर भी सस्कृत के शब्द-निर्माण मे उसकी भूमिका गौण है और यह धारणा पुष्ट होती है कि अनेक स्थितिया मे वह ध्वनि तालव्य आर द त्य सकारा का स्थान लेती ह। सस्कत मे बहुत थोडे शब्द है जिनके आदि स्थान म ष का प्रयोग होता है। इनमे सामा य शब्दावली का बहुत महत्वपूण शब्द षष है। जिस समय दशमलव पद्धति की गणना का निर्माण हुआ, उस समय ष् ध्वनि का विशेष प्रयोग करने वाला यह गण काफी प्रभावशाली रहा होगा। रूसी मे षष् का प्रतिरूप शेस्त है। मूध य के स्थान पर तालव्य श् का व्यवहार कुछ लोगो के लिए सहज है कि तु अग्रेजी मे सिक्स के आदि स्थान मे द त्य स ह और यही स्थिति लैटिन रूप सेक्स की है। ग्रीक प्रतिरूप हेक्स मूध य ष वाले रूप के आधार पर नही बना, वह द त्य स वाले रूप के आधार पर बना है। ह वहा स का रूपान्तर है। इसलिए इस बात की पूण सभावना है कि इस शब्द के आदि स्थान म मूलत द त्य स था। मान लीजिए, हि दी छठे के लिए प्राचीन सस्थ जैसा काई रूप प्रचलित था। जैस स्था क्रिया का एक रूप तिस्थति के बदले तिष्ठति होता है, वैसे ही सस्थ परिवर्तित होकर सष्ठ बन सकता है, पुन अन्तिम वण क मूध य व्यजना के ससग स आदि स्थानीय स् भी ष् हो गया। फिर षष्ठ का शब्द मूल षष कल्पित किया गया।

सस्कृत मे ऐस शब्द बहुत नही है जिनमे ष, अ य सकारो से भि न, अथविच्छेदक भूमिका पूरी करता हो। भाषते, भासते जैस रूपा मे इसकी अथ-विच्छेदक भूमिका है पर मुख्य अ तर तालव्य और द त्य सकारा मे है। बिस, बिश, बिष तीन भि न शब्द हैं। पहला शब्द कमलनाल का अथ देता है, दूसरा जन समुदाय का सूचक है। यह सभव है कि ऐसे शब्द पहल और भी रहे हो, व दिक काल तक इनकी सख्या कम हो गई हो।

ऐसे अनेक शब्द है जिनमे स और ष् का वैकल्पिक प्रयोग होता है। वस और वेष दोनो का अर्थ प्रयास करना है। जैसे वैदिक भाषा मे र और ल ध्वनियो वाले शब्दो के वैकल्पिक रूप मिलते है, वैसे ही उक्त दोनो रूप है, और ये दो गण भाषाओ के सम्पर्क की ओर संकेत करते है। इसी प्रकार कसेरु, कशेरु, कषेरु—तीनो रूपो का चलन था और तीनो का ही अर्थ मेरुदड था। एक ही अर्थ देने वाले ऐसे वैकल्पिक रूप भिन्न ध्वनि प्रकृति वाली भाषाओ के संगम का प्रमाण हैं। वैदिक भाषा और उत्तरकालीन संस्कृत मे उषा शब्द खूब प्रचलित हुआ। ऊष्मा, उष्ण आदि शब्द उष् क्रिया से निष्पन्न हुए। किन्तु इसके मूल रूप मे दन्त्य स् का व्यवहार होता था। वस (प्रकाशित होना) का विकास उष है उष का विकास वस नही है। वस क्रिया से वासर वसन्त आदि शब्द बनते है। मूर्धन्य ष ने दन्त्य सकार का स्थान कैसे लिया है इसका बहुत अच्छा उदाहरण उषा शब्द है। यदि अब कोई उसा कहे तो लोग अशुद्ध कहकर उस पर हँसेंगे पर वस ही नही, वस के प्रतिरूप उस मे भी दन्त्य सकार है। उस्र शुद्ध संस्कृत शब्द है और इसका अर्थ भी प्रभात है।

उकार के संसर्ग से वस के दन्त्य सकार का मूर्धन्यीकरण हुआ हो, ऐसा नही कहा जा सकता। ऐसा होता तो उस्र जैसा रूप संभव न होता किन्तु संस्कृत मे अनेक रूप ऐसे हैं जिनमे किसी ध्वनि विशेष के संसर्ग से मूल दन्त्य स अथवा तालव्य श का मूर्धन्यीकरण हुआ है। क्रिया है नश, इससे कृदन्त रूप बनता है नष्ट। क्रिया है भ्रश (अथवा भ्रश्), इससे कृदन्त रूप बना भ्रष्ट। (कोश मे इसका वैकल्पिक रूप भ्रस भी दिया हुआ है।) क्रिया है दश इससे संज्ञा रूप बना दष्ट्र। ऐसे रूपो मे तालव्य श का स्थान मूर्धन्य ष लेता स्पष्ट दिखाई देता है। संस्कृत मे फारसी के गश्त, पुश्त जैसे रूप है ही नही। इसका अर्थ यह हुआ कि अनेक शब्दो मे श और ष का प्रयोग सदसंगत है, अर्थ गत नही। किन्तु तालव्य श के साथ दन्त्य त का संयोग होता क्या नही है? स्त जैसे रूप तो संस्कृत मे बहुत है पर श्त जैसे रूप नही है, इसका कारण यह हो सकता है कि तालव्य श का उच्चारण भी मूर्धन्य जैसा होता था, उसके संसर्ग से त दन्त्य न होकर मूर्धन्य या वर्त्स्य होता था।

संस्कृत मे अनेक ऐसे शब्द है जिनमे न के संसर्ग से स मूर्धन्य रूप ग्रहण करता दिखाई देता है। सिध क्रिया से सिद्ध रूप बना पर जहाँ नि उपसर्ग लगा, वही स निषिद्ध हो गया। उपनिषद मे सद् (बैठना) क्रिया है। नि के संसर्ग से ष का व्यवहार हुआ। इसी प्रकार स्था क्रिया से निष्ठा रूप बना। सेव (सेवा करना रहना) का नि उपसर्ग युक्त प्रतिरूप निषेव बना सूद से इसी प्रकार निषूद (मारना) रूप बना। इस परिवर्तन का कारण क्या है? या तो यह न् मूर्धन्य था, भले ही उसके लिए उपयुक्त लिखित चिह्न का व्यवहार न किया गया हो, या वह मूर्धन्य नासिक्य के बहुत निकट उच्चरित होता था। संस्कृत मे एक भी शब्द ण से आरम्भ नही होता प्राकृत मे ऐसे शब्दो की भरमार है। ऐसे प्राकृत शब्दो का उचित ही अप्राकृतिक माना गया है। किन्तु निषिद्ध, निष्ठा जैसे रूप इस संभावना की ओर प्रबल संकेत करते हैं कि वैदिक भाषा मे एक

समय मूर्वन्य नासिक्य का आदि स्थानीय व्यवहार होता था। जिस समय सारा वैदिक वाङ्मय लिपिबद्ध किया गया, उस समय आदि स्थानीय ण् का व्यवहार नित्य प्रयोग से लुप्त हो चुका था। इसके सिवा लौकिक संस्कृत का विकास करने वाले और वैदिक वाङ्मय का संपादन करने वाले लोग मुख्यत मध्यदेश के थे जिनके यहाँ आदि स्थानीय ण का व्यवहार होता न था। आधुनिक आर्य भाषाएँ बोलने वाले ण् का उच्चारण उत्क्षिप्त ध्वनि जैसा करते है इसलिए वह ड़ जैसा सुनाई देता है। इस कारण प्राकृतो मे आदि स्थानीय ण आवश्यकता से अधिक अप्राकृतिक लगता है। एक बात असंदिग्ध है कि नि जैसे उपसर्ग का साथ होने पर किसी भी आधुनिक आर्य भाषा मे दन्त्य सकार का मूर्धन्यीकरण नही होता। संस्कृत और इन भाषाओ के ध्वनितंत्र मे यह मौलिक भेद है।

संस्कृत मे क और स दोनो ध्वनियां है किन्तु क्स जैसी संयुक्त ध्वनियां वाला रूप एक भी न मिलेगा। अरबी के अक्स, अक्सर शब्दो जैसा कोई रूप संस्कृत मे नही है। दक्ष, तक्षन्, शिक्षा, पक्षी, चक्षु आदि मे जो संयुक्त ध्वनि क्ष दिखाई देती है, उसमे पहला तत्व क है और दूसरा ष। यह दूसरा तत्व दन्त्य सकार का रूपान्तरण है। हिन्दी की ध्वनि प्रकृति के लिए क और स का संयोग सहज ग्राह्य है। अक्सर, बक्सर, बक्सा, सक्सेना जैसे रूप खूब प्रचलित है, चाहे घर के हों चाहे बाहर के। अंग्रेजी डेस्क छात्रो के सामान्य उच्चारण मे डेक्स हो जाता है। रिक्शा को रिक्सा कहना आम बात है। आधुनिक आर्य भाषाओ मे उनके ऐसे अपने शब्द बहुत ढूढने पर मिलेंगे जिनमे क्स संयुक्त ध्वनि का प्रयोग हुआ हो पर ऐसा प्रयोग किसी समय होता था, यह प्रमाणित किया जा सकता है।

लैटिन मे एक शब्द है देक्सतेर् जिसका अर्थ है दाहिना हाथ की ओर। इसी श्रेणी मे देक्सतेरे (दक्षतापूर्वक), देक्सतेरितस (दक्षता) आदि शब्द है। इन शब्दो का सम्बन्ध ग्रीक तेखने (कौशल) से है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। संस्कृत के क्ष् वाले रूप से ग्रीक शब्द बना, इसलिए उसमे ख ध्वनि है, लैटिन रूप का विकास मूल मध्यदेशीय क्स् ध्वनि वाले रूप से हुआ, इसलिए यह मूल ध्वनि, मूर्धन्यीकरण से पूर्व ध्वनि-संबंधी स्थिति की सूचना देती हुई वहां प्रतिष्ठित है। पर यह लैटिन शब्द मूल देक्स भारतीय स्रोत का है, इसका प्रमाण क्या है?

दक्ष, तक्षन् देक्सतेर, तेखने आदि रूप बहुत दिलचस्प है और इस गोत्र की पूरी नामावली पर ध्यान देने से अर्थ-विकास की प्रक्रिया ही स्पष्ट नही हो जाती, वरन ध्वनि-परिवर्तन की मंजिलें भी बहुत साफ दिखाई देने लगती है। प्राचीन आर्यजनो के लिए करना क्रिया का बड़ा महत्व था और इस क्रिया का सम्बन्ध मनुष्य को पशुओ से भिन्न करने वाले उसके अंग हाथ मे था। हाथ से काम लेने के कारण मनुष्य कौशल का विकास कर सका पशुओ से भिन्न सामाजिक प्राणी का जीवन बिता सका। कर शब्द सना हाथ और क्रिया करना के अभिन्न सम्बन्ध का प्रमाण है। हाथ का पूर्वरूप हस्त था, फारसी प्रतिरूप दस्त है। इन दोनो का जनक धस्त रूप था जिसका अवशेष केवल

ऐसे अनेक शब्द हैं जिनमें **स** और **य** का वैकल्पिक प्रयोग होता है। **यस** और **येष** दोनों का अर्थ प्रयास करना है। जैसे वैदिक भाषा में **र** और **ल** ध्वनियों वाले शब्दों के वैकल्पिक रूप मिलते हैं, वैसे ही उक्त दोनों रूप हैं, और वे दो गण भाषाओं के सम्पर्क की ओर संकेत करते हैं। इसी प्रकार **कसेरु, कशेरु, कषेरु**—तीनों रूपों का चलन था और तीनों का ही अर्थ मेरुदंड था। एक ही अर्थ देने वाले ऐसे वैकल्पिक रूप भिन्न ध्वनि प्रकृति वाली भाषाओं के संगम का प्रमाण हैं। वैदिक भाषा और उत्तरकालीन संस्कृत में **उषा** शब्द खूब प्रचलित हुआ। ऊष्मा, उष्ण आदि शब्द **उष्** क्रिया में निष्पन्न हुए। किंतु इसके मूल रूप में दन्त्य **स** का व्यवहार होता था। **वस** (प्रकाशित होना) का विकास **उष** है, **उष** का विकास **वस** नहीं है। **वस** क्रिया से **वासर, वसन्त** आदि शब्द बनते हैं। मूर्धन्य **ष** ने दन्त्य सकार का स्थान कैसे लिया है इसका बहुत अच्छा उदाहरण **उषा** शब्द है। यदि अब कोई **उसा** कहे तो लोग अशुद्ध कहकर उस पर हँसेंगे पर **वस्** ही नहीं, **वस** के प्रतिरूप **उस्** में भी दन्त्य सकार है। **उस** शुद्ध 'संस्कृत' शब्द है और इसका अर्थ भी प्रभात है।

उकार के संसर्ग में **वस** के दन्त्य सकार का मूर्धन्यीकरण हुआ हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। ऐसा होता तो **उस्र** जैसा रूप संभव न होता किंतु संस्कृत में अनेक रूप ऐसे हैं जिनमें किसी ध्वनि विशेष के संसर्ग से मूल दन्त्य **स्** अथवा तालव्य **श** का मूर्धन्यीकरण हुआ है। क्रिया है **नश**, इससे कृदन्त रूप बनता है **नष्ट**। क्रिया है **भ्रश** (अथवा **भ्रंश**), इससे कृदन्त रूप बना **भ्रष्ट**। (कोश में इसका वैकल्पिक रूप **भ्रस्** भी दिया हुआ है।) क्रिया है **दश्**, इससे संज्ञा रूप बना **दष्ट**। ऐसे रूपों में तालव्य **श** का स्थान मूर्धन्य **ष** लेता स्पष्ट दिखाई देता है। संस्कृत में फारसी के **गश्त** **पुश्त** जैसे रूप हैं ही नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि अनेक शब्दों में **श** और **ष** का प्रयोग सदसंगत है, अर्थगत नहीं। किंतु तालव्य **श** के साथ दन्त्य **त** का संयोग होता क्यों नहीं है? **स्त** जैसे रूप तो संस्कृत में बहुत हैं पर **श्त** जैसे रूप नहीं हैं, इसका कारण यह हो सकता है कि तालव्य **श** का उच्चारण भी मूर्धन्य जैसा होता था, उसके संसर्ग से **त** दन्त्य न होकर मूर्धन्य या वर्त्स्य होता था।

संस्कृत में अनेक ऐसे शब्द हैं जिनमें **न** के संसर्ग से **स** मूर्धन्य रूप ग्रहण करता दिखाई देता है। **सिध** क्रिया से **सिद्ध** रूप बना पर जहाँ **नि** उपसर्ग लगा, वहीं **स निषिद्ध** हो गया। **उपनिषद** में **सद** (बैठना) क्रिया है। **नि** के संसर्ग से **ष** का व्यवहार हुआ। इसी प्रकार **स्था** क्रिया से **निष्ठा** रूप बना। **सेव्** (सेवा करता रहना) का **नि** उपसर्ग युक्त प्रतिरूप **निषेव** बना, **सूद** से इसी प्रकार **निषूद्** (मारना) रूप बना। इस परिवर्तन का कारण क्या है? या तो यह **न** मूर्धन्य था, भले ही उसके लिए उपयुक्त लिखित चिह्न का व्यवहार न किया गया हो, या वह मूर्धन्य नासिक्य के बहुत निकट उच्चरित होता था। संस्कृत में एक भी शब्द **ण** से आरम्भ नहीं होता प्राकृतों में ऐसे शब्दों की भरमार है। ऐसे प्राकृत शब्दों को उचित ही अप्राकृतिक माना गया है। किन्तु **निषिद्ध, निष्ठा** जैसे रूप इस संभावना की ओर प्रबल संकेत करते हैं कि वैदिक भाषा में एक

समय मूर्धन्य नासिक्य का आदि स्थानीय व्यवहार होता था। जिस समय सारा वैदिक वाङ्मय लिपिबद्ध किया गया, उस समय आदि स्थानीय ण् का व्यवहार नित्य प्रयोग से लुप्त हो चुका था। इसके सिवा लौकिक संस्कृत का विकास करने वाले और वैदिक वाङ्मय का संपादन करने वाले लोग मुख्यत मध्यदेश के थे जिनके यहाँ आदि स्थानीय ण् का व्यवहार होता न था। आधुनिक आर्य भाषाएँ बोलने वाले ण का उच्चारण उत्क्षिप्त ध्वनि जैसा करते है, इसलिए वह ड़ जैसा सुनाई देता है। इस कारण प्राकृतो मे आदि स्थानीय ण आवश्यकता से अधिक अप्राकृतिक लगता है। एक बात असंदिग्ध है कि नि जैसे उपसर्ग का साथ होने पर किसी भी आधुनिक आर्य भाषा मे दन्त्य सकार का मूर्धन्यीकरण नही होता। संस्कृत और इन भाषाओ के ध्वनितंत्र म यह मौलिक भेद है।

संस्कृत मे क और स दोनो ध्वनियाँ है किन्तु क्स जैसी संयुक्त ध्वनियो वाला रूप एक भी न मिलेगा। अरबी के मक्स, अक्सर शब्दो जैसा कोई रूप संस्कृत म नही है। दक्ष, तक्षन, भिक्षा, पक्षी, चक्षु आदि म जो संयुक्त ध्वनि क्ष् दिखाई देती है, उसमे पहला तत्व क है और दूसरा ष। यह दूसरा तत्व दन्त्य सकार का रूपान्तरण है। हिन्दी की ध्वनि प्रकृति के लिए क और स् का संयोग सहज ग्राह्य है। अक्सर, बक्सर, बक्सा, सक्सेना जसे रूप खूब प्रचलित हैं, चाहे घर के हो चाहे बाहर के। अंग्रेजी डेस्क छात्रो के सामान्य उच्चारण मे डेक्स हो जाता है। रिक्शा को रिक्सा कहना आम बात है। आधुनिक आर्य भाषाओ मे उनके ऐसे अपने शब्द बहुत ढूंढने पर मिलेंगे जिनमे क्स संयुक्त ध्वनि का प्रयोग हुआ हो पर ऐसा प्रयोग किसी समय होता था, यह प्रमाणित किया जा सकता है।

लैटिन म एक शब्द है देक्सतेर् जिसका अर्थ है दाहने हाथ की ओर। इसी श्रेणी मे देक्सतेरे (दक्षतापूर्वक), देक्सतेरितस (दक्षता) आदि शब्द है। इन शब्दो का सम्बन्ध ग्रीक तेखने (कौशल) से है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। संस्कृत के क्ष वाले रूप से ग्रीक शब्द बना, इसलिए उसमे ख ध्वनि है, *लैटिन रूप का विकास मूल मध्यदेशीय* क्स ध्वनि वाले रूप से हुआ, इसलिए यह मूल ध्वनि, मूर्धन्यीकरण से पूर्व ध्वनि-संबंधी स्थिति की सूचना देती हुई वहाँ प्रतिष्ठित है। पर यह लैटिन शब्द-मूल देक्स भारतीय स्रोत का है इसका प्रमाण क्या है?

दक्ष, तक्षन् देक्सतेर, तेखने आदि रूप बहुत दिलचस्प है और इस गोत्र की पूरी नामावली पर ध्यान देने से अर्थ-विकास की प्रक्रिया ही स्पष्ट नही हो जाती, वरन ध्वनि-परिवर्तन की मंजिलें भी बहुत साफ दिखाई देने लगती हैं। प्राचीन आर्यजनो के लिए करना क्रिया का बड़ा महत्व था और इस क्रिया का सम्बन्ध मनुष्य को पशुओ से भिन्न करने वाले उसके अंग हाथ से था। हाथ से काम लेने के कारण मनुष्य कौशल का विकास कर सका पशुओ से भिन्न सामाजिक प्राणी का जीवन बिता सका। कर शब्द संज्ञा हाथ और क्रिया करना के अभिन्न सम्बन्ध का प्रमाण है। हाथ का पूर्वरूप हस्त या फारसी प्रतिरूप दस्त है। इन दोनो का जनक घस्त रूप था जिसका अवशेष केवल

हिन्दी **धंधा** मे देखा जा सकता है। **ध धा म न** वैसे ही है जैसे **हस्त** के अंग्रेजी प्रतिरूप **हैंड** मे है। पहली मजिल वह है जिसमे **धस्त** का प्रयोग होता था। दूसरी मजिल वह जब **धस्त हस्त** बना। **धस** क्रिया कही भी करने के लिए प्रयुक्त नही होती किन्तु **दस** क्रिया होती थी। **दास** का मूल अथ है काम करने वाला। अंग्रेजी **डू**, रूसी **देलात** (करना) उसी **दस** के वशज हैं। **हस्त** के समानान्तर **दस्त** विकास की तीसरी मजिल है। **दस** का अथ हाथ भी रहा होगा, इसी स संख्या सूचक **दस** की कल्पना की गई। इस **दस** के सकार का तालव्यीकरण हुआ और सस्कृत **दश** शब्द बना। रूसी मे **देस्यत** शब्द दन्त्य सकार बचाय हुए ह। संख्या सूचक **दश** का सम्ब ध हाथ का अथ देने वाले **दस्त** या **दस** से है इसका प्रमाण पश्तो भाषा का **लस** शब्द है। इसका एक अथ है हाथ, दूसरा अथ है दस। सस्कृत **दश** मध्य देशीय मूल रूप **दस** का विकास है।

जस **दिश** का एक प्रतिरूप **दिक** ह वैसे ही **दश** का एक विकास और हुआ **दक**। यह विकास उन नाग लोगो ने किया जो भारत के एक भाग म अब भी शुक्रवार को **कुश्वार** कहत है। **दक** मे स प्रत्यय लगन पर **दक्स** रूप बना। यही रूप लैटिन म पहुँचा। फिर विकास की एक और नई मजिल आई। इसे लान वाले सभवत एस लोग थे जिनकी भाषा म मूधन्य छोडकर अन्य सकार या ही नही। **क्** का उच्चारण भी य लोग मूधन्य जैसा करत थ। यदि दन्त्य **स क** से पहले आय तो वह सुरक्षित रहता था यथा **तस्कर, भास्कर** आदि रूपा मे। किन्तु यदि **क** पहले आया, तो अनुगामी दन्त्य सकार की खैर नही, उसका मूध न्यीकरण हो के रहगा। इस क्रम म **क** की भूमिका निया मक है, वह अनुगामी ध्वनि को अपने अनुकूल परिवर्तित कर लता है। भाषाशास्त्रिया न एक तालव्य **क** की कल्पना की ह, आदि इडोयूरोपियन भाषा का तालव्य **क्** जो **शतम** शाखा मे तालव्य **श** बना। उन्हान मूधन्य **क्** की कल्पना नही की। वैदिक भाषा के निमाण काल म एक जाय गण भाषा अवश्य एसी थी जिसम मूधन्य ध्वनियो की प्रबलता थी। एसी ध्वनिया के प्रसग म सामान्यत लोग टवर्गीय ध्वनिया का स्मरण करत है। प्रस्तुत सदभ म जिस गण भाषा के अस्तित्व की कल्पना की गई है, उसमे **ण्** को छोडकर अन्य टवर्गीय ध्वनिया का अपक्षाकृत अभाव था। उसकी विशेषता थी **क** जैसी ध्वनि का मूधन्य उच्चारण, आदि स्थानीय **न** का मूधन्य उच्चारण, और ह्रस्व दीघ **अ आ** को छोडकर सभवत सभी स्वरा का मूध न्य उच्चारण। स्वरा की चर्चा आगे होगी। यहा **दक्ष** वाला प्रसग है। मूधन्य **क** के प्रभाव मे दन्त्य सकार मूधन्य हुआ, सयुक्त ध्वनि **क्ष**—सस्कृत की खास पहचान—का उद्भव हुआ **दक्स** रूपान्तरित होकर **दक्ष** बना। हाथ स हर तरह क काम करन म यह **दक्ष** कौशल का सूचक हुआ। और य आय गण सार काम अधिकतर दाहन हाथ स करत थे, इसलिए जो हाथ अधिक कुशल था, वह **दक्षिण** कहलाया। **दक्षिणा** लेन देन का काम भी इसी स सम्पन्न हुआ, इसलिए इस कौशल का सूचक शब्द भी **दक्ष** गोत्र म आ मिला। सूर्योपासक आयगण उदय होत हुए सूय की ओर मुह करक खडे हुए तो उन्होन सामन की दिशा को **पूव** कहा, जो दिशा पीठ पीछे थी उस **पश्चिम** कहा और जो दाहन हाथ की ओर थी, उस **दक्षिण** कहा। जिन मैदाना मे

खडे होकर वे सूर्योपासना करते थे, उनसे हिमालय की पर्वत माला दाईं ओर थी, काफी दूर थी, मैदानों को देखते बहुत ऊँची थी इसलिए वह दिशा उत्तर कहलाई।

भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों में द्रविड़ों से घनिष्ठ सम्पर्क होने पर आदि स्थानीय द् अघोष हो गया और दक्ष ने तक्ष रूप धारण किया। इसी तक्ष के प्रभाव से गंधार प्रदेश की तक्षशिला नगरी विश्वप्रसिद्ध हुई। रथ बनाना कौशल का एक महत्त्वपूर्ण काम था। ऐसे कारीगर तक्षक कहलाए, तमिल में तक्षन का प्रतिरूप तटचन अब भी बढई के लिए प्रयुक्त होता है। इसी तक्ष या तक्षन् से ग्रीक रूप तेखने बना जिसकी सन्तान तकनीक, टेक्नीकल आदि सारी दुनिया में छाए हुए हैं।

धस्त, हस्त, दस्त, दस, दश दक्स दक्ष, तक्ष आदि रूप भाषा के विकास की अनेक मंजिलें प्रमाणित करते हैं। इनमें एक मंजिल वह है जिसमें दन्त्य सकार का मूर्धन्यीकरण होता है। वह भाषा के विकास क्रम की आदिम मंजिल नहीं है।

तालव्य श के अतिरिक्त अन्य ध्वनियाँ भी क में परिवर्तित होती हैं और स् स संयुक्त होने पर क्ष रूप में व्यक्त होती हैं। शिक्षा—यहाँ शिष्य व शिष का षकार क् में परिवर्तित हुआ है। यह मूर्धन्य ष् पहले तालव्य रहा हो तो आश्चर्य नहीं। पक्षी में मूल क्रिया पक नहीं है। पक्ष और पक्षी की व्याख्या के लिए पक्ष जैसी एक क्रिया कल्पित हुई है। पक्ष और पक्षी का सीधा सम्बन्ध उड़ने का अर्थ देने वाली पत क्रिया से है। इस रूप का अन्तिम व्यंजन त ष में बदलता है और ष पुनः क में। इस प्रकार पक् शब्दमूल में स प्रत्यय लगने पर पक्ष शब्द बना। पत से पक्ष के निर्माण की तरह सज से सष्टि की रचना भी यथेष्ट रोचक है। मूल क्रिया की ज ध्वनि (नाग प्रभाव में) ज बनी अर्थात् ज व्यंजन-तत्व के स्थान पर सघोष सकार का व्यवहार हुआ जैसे संस्कृत ग्रस के समानान्तर अंग्रेजी की इज क्रिया है। पुनः सघोष सकार में रूपान्तरण हुआ और उसने अघोष सकार का रूप लिया। त अथवा ति प्रत्यय से संयुक्त होने पर दो मूर्धन्य ध्वनियों का प्रादुर्भाव हुआ, ष और ट का। इस प्रकार सृष्टि रूप की रचना हुई। ऐसी रचना मध्य देशीय भाषा के विकास की बहुत बाद की ही मंजिल में संभव हुई, यह मानना होगा। निष्कर्ष यह कि ष, क्ष आदि ध्वनियों के अनेक अमूर्धन्य स्रोत हैं।

क्ष का एक स्रोत कंठ्य घ है। इसका सघोष ग तत्व जब अघोष हुआ तब रह गया क, घ की महाप्राणता का रूपान्तर हुआ ह फिर महाप्राण ह स में परिवर्तित हुआ, पुनः क के संसर्ग से ष बना। इस प्रकार घ क्ष में रूपान्तरित होगा। मोनियर विलियम्स ने क्षम (पृथ्वी) के अंतर्गत उसके संबंध कारक एक वचन के ये रूप दिये हैं, ग्मस, ज्मस क्ष्मस। तीन वैकल्पिक रूप तीन तरह के ध्वनि परिवर्तनों को वैदिक भाषा में सुरक्षित किये हैं। ग्म से क्ष्म कैसे बनेगा या क्ष्म से ग्म कैसे बनेगा किसी ऐतिहासिक भाषा विज्ञानी ने इसकी व्याख्या नहीं की। पर ये तीनों रूप घ्म के आधार पर आसानी से समझ में आ जाते हैं। एक प्रवृत्ति सघोष महाप्राण ध्वनि को अल्पप्राण रूप में ग्रहण करने की, इससे ग्म रूप मिला। दूसरी प्रवृत्ति कंठ्य ध्वनि को तालव्य करने की (इसकी चर्चा थोड़ी ही देर में आगे होगी), इससे ज्म रूप मिला। तीसरी प्रवृत्ति मूर्धन्यीकरण की

जिसमेसघोप महाप्राण ध्वनि को अल्पप्राण ही नही, अघोप करने की प्रवृत्ति भी शामिल है, इसमे **क्ष** रूप मिला। ये सारे परिवतन, भिन्न गणभापाओ के प्रभाव से, एक ही भापा मे हो रहे है। ध्वनि परिवतन के 'अटल' नियम इन गणभापाओ की विरोधी प्रवत्तिया के कारण काफी लचीले साबित होते है।

सस्कृत **नक्त** (रात्रि) ग्रीक भापा मे **नुक्स**, लैटिन मे **नोक्स** है। सयुक्त ध्वनि **क्त्** बदल कर **क्स** हुई। **नक्त** का भारतीय प्रतिरूप **नक्स** भी यहा प्रचलित था, इसका पता **नक्षत्र** के **नक्ष** से चलता है। **नक्ष**—रात्रि, **तर**—जो चमके (तारा, वणसकोच से **त्र**), इस प्रकार **नक्षत्र** रूप बना। यहा सयुक्त मूधन्य ध्वनि **क्ष्** का स्रोत है **क्त**। जसे **घ्** से **ज** और **क्ष** वाले (**घ्म** से **ज्म** और **क्ष्म**) दो रूप मिलते है, वैसे ही यदि **भर्** और **क्षर** का एक ही अथ हो तो मूल रूप **घर** मान लेना चाहिए।

सस्कृत मे **इस, ईस, कीस, उस, ऊस, कूस, एस, केस, ओस कोस** जसे रूप कठिनाई से मिलते है। ह्रस्व और दीघ अकार के पडोस म दन्त्य **स्** अधिकतर सुरक्षित रहता है। अन्यत्र या ता उसका तालव्यीकरण होना है या मूधन्यीकरण। **केसर, केसरी, कोसल** जैसे शब्द सस्कृत म बहुत थोडे हैं। इससे यह अनुमान होता है कि अकार को छोडकर शेप स्वरा का उच्चारण तालव्य अथवा मूधन्य होता था। वैदिक भापा या सस्कृत का व्यवहार करने वाले सभी आयजनो का उच्चारण ऐसा था यह स्थापना नही है। कुछ गण समाज अधिकाश स्वरा का मूधन्य किंवा तालव्य उच्चारण करते थे, वे मध्यदेश की मूल भापा पर अपनी ध्वनि प्रकति की अमिट छाप छोड गए है। इनम तालव्यीकरण की वत्ति का सम्बन्ध मगधगण से हो सकता है मूधन्यीकरण किसी उत्तर पश्चिमी गणसमाज की वत्ति थी। इसी ने **अ इ उ** आदि के अतिरिक्त एक नए स्वर **ऋ** को जन्म दिया।

ऋ स्वर मूधन्य है इसम किसी को सन्देह नही। इडोयूरोपियन परिवार की भापाओ मे इसका प्रचुर व्यवहार केवल सस्कृत म है। इसे आदि इडोयूरोपियन भापा की मूल ध्वनि भी माना गया है। फिर भी ऐतिहासिक भापा विज्ञान की मान्यता है कि मूधन्य ध्वनियो का विकास आर्यो के भारत मे प्रवेश करने के बाद ही हुआ। व्यजन ही नही, स्वर भी मूधन्य हो सकते है। ऐसे मूधन्य स्वरो म **ऋ** है। भारत का कोई आर्येतर भापा परिवार **ऋ** स्वर का व्यवहार नही करता पहले करता था इसका प्रमाण नही है। स्वर और व्यजन दिन और रात की तरह एक दूसरे से पूणत भिन्न प्रतीत होते हैं, पर दिन और रात के बीच सध्या की सक्रमण बेला भी होती है, वैसे ही इस **ऋ** स्वर मे **र** व्यजन तत्व विद्यमान है। यह **र** स्वय अन्तस्थ है उसकी स्थिति स्वरो और व्यजना के बीच की है। अत उसे स्वर का अग बनने म कठिनाई नही होगी। **ऋ** का अन्तस्थ **र** तत्व मूधन्य है, मध्यदेशीय दन्त्य **र** स यह भिन्न है। पाणिनि के समय मे इसका आप मूधन्य उच्चारण लुप्त हो गया था और मूल दन्त्य **र** का व्यापक चलन था। पर वैदिक भापा के निर्माण-काल मे यह स्थिति नही थी। सस्कृत म **वस हस** उत्कष जस रूप असभव है। **वष** शब्द **वर** क्रिया मे बना है उसी म **वारि** व्युत्पन्न है। जसे सस्कृत मे **क** व्यजन क

साथ दन्त्य स् संयुक्त दिखाई नहीं देता, वैसे ही र् के साथ इस प्रकार का संयोग दुर्लभ है। स् को ही नहीं, आसपास दन्त्य न् हुआ तो यह उसे भी मूर्धन्य रूप दे देता है। नमस्कार और प्रणाम दोनों रूप नम् क्रिया से बने हैं। पहले रूप में र और न के बीच काफी फासला है, दूसरे रूप में दोनों पड़ोसी हैं। इसलिए दूसरे रूप में र् के बाद ण् का व्यवहार हुआ है। ऋ स्वर में इसी मूर्धन्य अन्तस्थ र् का तत्व है।

ऋ का उच्चारण इकार-उकारवत्, दोनों प्रकार होता है। उत्तर-पश्चिम और दक्षिण भारत के शिक्षित जन उकारवत् उच्चारण करते हैं। मेरा अनुमान है कि यह उकार पश्च स्वर था और गोलाकार नहीं था। तमिल में इस स्वर का उच्चारण अब भी सुनने को मिलता है, हिन्दी ध्वनियों के अभ्यस्त कानों को वह कभी इकारवत् लगता है और कभी उकारवत्। ऋ के अलावा ऐसे मूर्धन्य उकार का व्यवहार पहले आर्य भाषा क्षेत्र में होता रहा होगा। अवधी में आज्ञार्थी क्रिया रूप सुनु होगा, सुनि रूप पूर्व कालिक माना जाएगा किन्तु ब्रजभाषा में सुनि आज्ञार्थी रूप भी होता है। दोनों का विकास मूर्धन्य उकार वाले रूप से संभव है।

ऋ स्वर का व्यवहार स्वतंत्र रूप में हो चाहे किसी व्यंजन के साथ, जिन शब्दों में इसका व्यवहार होता है, उनमें वर्ण संकोच की प्रक्रिया सम्पन्न होती दिखाई देती है। संस्कृत में कर्—करोति रूप का कर्—आज्ञार्थी कुरु रूप प्रदर्शित करता है। सुनु के समान यह कुरु कोसली रूप है। संस्कृत में बहुत कम क्रियाओं के मध्यम पुरुष एकवचन आज्ञार्थी रूप उकारान्त होते हैं। इनमें एक विरल बहुमूल्य रूप कुरु है। अब मान लीजिए, प्रथम वर्ण के बदले दूसरे वर्ण पर बलाघात होता है इससे प्रथम वर्ण का स्वर क्षीण होगा। तब कुरु से क्रु जैसा रूप बनेगा। अब यदि इस क के साथ जुड़ने वाला र् मूर्धन्य है तो कृ रूप से मूर्धन्य र और मूर्धन्य उ दोनों का बोध होगा। इसलिए जो लोग कृ का उच्चारण उकारवादी ढंग से करते हैं, वे प्राचीन मूर्धन्य उच्चारण का अनुसरण करते हैं (यद्यपि उनके उच्चारण में उकार काफी स्पष्ट रूप में गोलाकार होता है)। संस्कृत में कृ, घृ ह्, मृ आदि के बाद दन्त्य स और न का प्रयोग कभी नहीं होता। कृणोति रूप होगा, कनोति नहीं, जैसे ऋ के साथ ऋण रूप ही बनेगा ऋन नहीं।

क्रिया-रूपों के अलावा पितॄन, मातॄन, भ्रातॄन आदि रूपों में दीर्घ ॠ स्वर वर्ण संकोच का परिणाम है। भ्रातर मातर, पितर आदि का अन्तस्थ व्यंजन र ऋ स्वर में बदलता है, तथा भ्राता, पिता, माता जैसे रूप बनते हैं।

जब इसका संयोग दीर्घ आ में होता है, तब वह इस आ को प्रभावित करता है, अपनी मूर्धन्यवृत्ति से आ को ऊ बनाता है, र व्यंजन के संयोग से ऊ दीर्घ ॠ का रूप लेता है। पित्+अर्+आन से पितॄन् रूप बना, एक पूरा वर्ण अर् संकुचित हुआ, ॠन में समाहित हुआ।

उकार, आकार के अतिरिक्त र अपने संसर्ग से इ को भी ऋ रूप देता है। उत्तराधिकारियों के लिए सम्पत्ति छोड़ने का अर्थ देने वाली एक क्रिया है रिच्। इससे संज्ञा शब्द बनता है ऋक्थ। क्रिया के रूप में मूल ध्वनि बनी हुई है, उसका मूर्धन्य रूप

सना म है। रि, री क्रिया का अथ है दौडना, प्रभावित होना। ऋ क्रिया का अथ है चलना। स्पष्ट ही सामान्य रि का मूधन्यीकरण हुआ और मूल रूप के साथ नया वैकल्पिक रूप ऋ भी चालू हुआ। रित्, ऋति दोनो शब्दो का अथ है गतिशीलता। रीति और ऋतु दोना शब्दा का मूल अथ एक ही है। सस्कृत के जितने शब्दो के आदि वण म व्यजन के साथ ऋ स्वर का सयोग है, उन सब मे मूल ध्वनि दन्त्य र हो सकती है जो वण सकोच की प्रवत्ति क कारण अन्तस्थ र् को समेट कर मूधन्य ऋ स्वर रह गइ है। एक शब्द है कर्म दूसरा शब्द है कृति। स्पष्ट ही कर् मे वण-सकोच की प्रक्रिया घटित हुई है और इसलिए कृ रूप बना। यहा यह भी दशनीय है कि कर मे क व्यजन के साथ इ या उ स्वर नही है वरन अ स्वर है। अर सकुचित होकर ऋ स्वर बना। यह स्वाभाविक है कि ऋषि से जब आर्य विशेषण बनता है तब वण सकोच से उदभूत स्वर पुन अन्तस्थ र् के साथ मूल अकार रूप मे प्रकट हो जाता है। अर, इर, उर् तीनो ही वण सकुचित होन पर ऋ स्वरूप धारण कर लेत हैं। इससे सिद्ध होता है कि मध्यदेशीय आय भाषा मे—सस्कृत के आदिम रूप मे—ऋ जसा स्वर नही था। यह वण सकोच वत्ति का परिणाम है जो मूधन्यीकरण की समानान्तर प्रवत्ति के साथ क्रियाशील होती है। सस्कृत धातुआ और मूल शब्द भडार की रचना मे इसकी भूमिका अति साधारण है।

र की जोडीदार अन्य अन्तस्थ ध्वनि ल है। जिन असुरा के लिए कहा गया है कि र के स्थान पर ल ही बोलत थे, उनके प्रभाव से ऋ के समानान्तर ऌ स्वर की कल्पना की गई। इसकी भूमिका वदिक भाषा मे भी नगण्य है। यह मूधन्य ऋ का मागधीकरण ह, राजा के लाजा रूप की तरह। सस्कृत उस क्षेत्र की मूल भाषा है जिसम र की प्रधानता थी। इसका एक प्रमाण यह है कि सस्कृत धातुआ मे अन्य व्यजनो के साथ जितना र का सयोग होता है, उतना ल का नही। जहा र् के स्थान पर ऋ का व्यवहार होता है वहाँ वण सकोच की वृत्ति काम करती है। अचना की अर्च धातु का वैकल्पिक रूप ऋच है। यहा वण सकोच की प्रक्रिया स्पष्ट देखी जा सकती है। पर यह प्रक्रिया र के सदभ मे ही घटित होती है ल के सन्दभ म नही क्योकि मध्यदश मे र ध्वनि की प्रधानता थी और यह स्थिति बहुत कुछ अब भी बनी हुई है।

र के मूधन्य उच्चारण क कारण अनेक सस्कृत शब्दो म त परिवर्तित होकर ट बनता ह, यह स्थापना सुपरिचित ह। नत और नट का सम्बन्ध इसी प्रवृत्ति को ध्यान म रखने स पहचाना जाता है। यहा इतना कहना यथेष्ट है कि ष और ण की तुलना म ट ठ ड ढ की भूमिका सस्कृत के ध्वनितत्र म अति अल्प है। यह भी उल्लेखनीय है कि कर्ता, भर्ता हर्ता जैस बीसियो शब्दो म र का सयोग होने पर भी त ध्वनि परिवर्तित नही होती। र का मूधन्य उच्चारण जितनी आसानी स दन्त्य न् को प्रभावित कर लेता है, उतनी आसानी स दन्त्य त् को नही। त थ द ध ध्वनिया बडी दढता स मध्यदश मे जमी हुई हैं। ट ठ ड ढ ध्वनिया का समानान्तर प्रयोग होता है पर य मूधन्य या वत्स्य ध्वनियाँ अन्त हो मूल दन्त्य ध्वनिया को विस्थापित कर सकी है। हिंदी मे थाना,

थानेदार जैसे रूपो का चलन है। **ठाणें** और **ठाणेदार** रूप मराठी की विशेषताएँ हैं।

३ तालव्य ध्वनियो के केन्द्र

मूर्धन्यीकरण के साथ तालव्यीकरण प्रक्रिया का अध्ययन करना चाहिए। तालव्य ध्वनियो मे सबसे पहले तालव्य **श** पर विचार करना चाहिए। इस ध्वनि के कारण ही इंडोयूरोपियन परिवार की **शतम** शाखा की कल्पना की गई। इस **शतम्** को हिन्दी वाले **सौ** कहते है। **शतम्** शाखा की एक महत्वपूर्ण उपशाखा स्लाव है। रूसी मे **श, श्च**, जैसी ध्वनियो की भरमार है पर उनके यहा भी सौ के लिए **सोत** शब्द है। भारत ईरानी शाखा की महत्वपूर्ण फारसी भाषा मे **सद** शब्द है जिससे बीसवी सदी का **सदी** शब्द बनता है। उर्दू मे **फीसद** कहने का चलन है। यह माना जा सकता है कि हिन्दी भाषियो को **श** के उच्चारण मे कठिनाई होती है, इसलिए वे अपभ्रंश रूप **सौ** बोलते है, किन्तु रूसी और फारसी मे **श्** के अभाव का कारण क्या है? आधुनिक आर्य भाषाओ मे **सौ** रूप ही अधिक प्रचलित है, अवधी मे **सै** (**सकडा** वाला **स**) रूप भी प्रचलित है। जैसे **धस्त** की **धस** क्रिया रूपान्तरित होनी हुई **दश्** बनी वैसे ही **शत** का पूर्व रूप **सत** था। **विंश** का हिन्दी रूप **बीस** है। सभव है, मूल शब्द मे दन्त्य **स** रहा हो। **दश** का **श** अकेले ही **दस** की सख्या का बोध कराने लगा था। **विंश** का मूल अर्थ हुआ दो दस। यदि **दश** पहले **दस** रूप मे प्रचलित था तो **विंश** का **श** भी **स** रहा होगा।

हिन्दी क्रिया **सोना** से मिलती जुलती सस्कृत क्रिया **स्वप्** है। एक दूसरी क्रिया, **शयन** और **शैया** वाली, **शी** भी है। ये दोनो क्रियाए एक ही उदभव की हो सकती हैं। ओकार के साथ दन्त्य **स्** अधिक सुरक्षित रहता है, इकार एकार के साथ उसमे परिवर्तन जल्दी होता है। **सो** का एक प्रतिरूप **से** रहा होगा। यहा एकार के तालव्य उच्चारण के प्रभाव मे दन्त्य **स** भी तालव्य हो गया।

सस्कृत मे सोने के लिए **शे** या **शी** क्रिया है। इसका प्रतिरूप **शो** भी रहा होगा जिससे **शव** बना है। द्रविड भाषाओ मे **शव** रूप नही है किन्तु मरने का अर्थ देने वाली तमिल **चा**, मलतो **केये** क्रिया का पूर्वरूप स्पष्ट ही **शे, शा** जैसा था। **सो, से** जैसी एक क्रिया और थी जिसका अर्थ था बोना बीज डालना, जन्म देना। अग्रेजी मे **सो** रूप अब भी प्रचलित है। **सीड** (बीज) मे इसी का प्रतिरूप **सो** क्रिया है। **सो** क्रिया से **सीता** शब्द बनता है। **सीता** का अर्थ है हल जोतने से बनी हुई नाली। मोनियर विलियम्स के अनुसार **सीता** को अशुद्ध रूप मे **शीता** भी लिखा जाता था। यह **शीता** रूप मराठी **शेत** (खेत) से ज्यादा दूर नही है। **से** क्रिया मराठी मे **शे** हुई। जो भूमि जोती बोई जाय, वह **शेत**। इस **शेत** का प्रतिरूप है **क्षेत्र**।

तालव्यीकरण का घनिष्ठ सम्बन्ध लकार के प्रसार से है। सस्कृत मे दन्त्य **स** के साथ **ल** का प्रयोग दुष्प्राप्य है। **स्लाव** जैसा शब्द सस्कृत मे सभव नही है। **ल** के पहले जिस सकार का प्रयोग होगा, वह अनिवार्यत तालव्य होगा। मागधी प्राकृत मे सकार

और लकार दोनों के बाहुल्य की परम्परा बनी हुई थी। संस्कृत में अनेक नामों के अन्त में **श्राव** शब्द आता है। हो सकता है कि **श्राव** नाम का कोई गण रहा हो जिसने **श्रावस्ती** नगरी बसाई हो। यह नगरी कोसल प्रदेश में थी, इसलिए बहुत संभव है कि **श्राव** गण का नाम **स्राव** रहा हो। इस **स्राव** का प्रतिरूप **स्लाव** हुआ। (रूसी भाषा में **स्लावा** शब्द का अर्थ है कीर्ति।)

जिसे बहुत से लोग सुनें, वह कीर्ति है। प्राचीन कोसली शब्द **स्राव** *का सम्बन्ध* **स्रु** क्रिया से होगा रूसी **स्लाव** का सम्बन्ध **स्लु** से। संस्कृत **श्रु** (सुनना) के रूसी प्रतिरूप **स्लूशात**, **स्लीशात** हैं (एक रूप **स्लीशात** भी है।) इन सभी रूपों में दन्त्य **स** का व्यवहार इस धारणा की पुष्टि करता है कि मूल रूप में दन्त्य **स** ही था। जो सुना जाय वह **शब्द**। शब्द के लिए रूसी **स्लोवो** का सम्बन्ध उसी **स्लू** क्रिया मूल से है। कान सुनता है, वह रूसी में **स्लुख** है। इन सभी सम्बद्ध शब्दों में दन्त्य **स** का व्यवहार हुआ है। स्लाव भाषाओं और भारतीय आर्य भाषाओं का सम्बन्ध बहुत पुराना है। इस सम्बन्ध के विकास और प्रसार की अनेक मंजिलें हैं। इनमें एक मंजिल वह है जब मध्यदेशीय आर्य भाषाओं पर मागधी प्रभाव पड़ने से पहले, दन्त्य **स** वाले शब्द स्लाव समुदाय में पहुंचे थे। संस्कृत और रूसी भाषा की शब्दावली की तुलना करने पर, यदि हिन्दी और रूसी में दन्त्य **स** हो, और संस्कृत में तालव्य **श** हो, तो इसी की संभावना अधिक है कि मूल शब्द में दन्त्य **स** ही था।

संस्कृत में तालव्य **श** की अपेक्षा दन्त्य **स** ही ऊष्म ध्वनि **ह** में अधिक रूपान्तरित होता है। यदि **हृदय** शब्द के मूल रूप में सकार था, तो वह दन्त्य ही रहा होगा। रूसी भाषा में हृदय के लिए **सेर्द त्से** शब्द है। संस्कृत **श्रद्धा** में **श्रद** रूप सिद्ध करता है कि दन्त्य ध्वनि का तालव्यीकरण हुआ है। संस्कृत **विश्व** का प्रतिरूप रूसी **वेस** (सब) है। **शकरा** (परिनिष्ठित हिन्दी का **शक्कर** अवधी की **सक्कर**) रूसी में **सख़र** है। संस्कृत **श्वेत** का मूल अर्थ प्रकाश अथवा प्रकाशमय था। रूसी **स्वेत** का अर्थ प्रकाश, संसार (लोक के समान) है। अंग्रेजी **ह्वाइट** (सफेद) दन्त्य **स्** वाले रूप से बना है वही ध्वनि **सफेद** में है। नीले रंग के लिए रूसी में **सिनेव** शब्द है। **शनि** का मूल अर्थ संभवतः नीलवर्ण ही था। **शनि** को **नीलवास** कहा भी गया है। **शनि** का आदि स्थानीय सकार भी संभवतः दन्त्य था। रूसी भाषा में बहुत से शब्द आदि वर्ण में दन्त्य **स** के साथ **च** का संयोग करते हैं यथा **स्चास्ते** (सुख) **स्चिताते** (गिनना)। संस्कृत में ऐसे रूप असंभव हैं।

तालव्यीकरण का एक उदाहरण **शक** शब्द का विकास है। यह शब्द मध्य एशिया के लड़ाकू कबीलों के लिए प्रयुक्त हुआ है। **शक्** क्रिया का अर्थ है शक्तिशाली होना। **शक्ति** शब्द का आधार यही **शक** क्रिया है। बहुत्व सूचक **र** जोड़कर **शक्र** रूप बनता है जो विभिन्न देवों के लिए, विशेषतः इन्द्र के लिए, प्रयुक्त होता था। जो शब्द किसी गण-समाज के लिए प्रयुक्त होते हैं वे बहुधा वीरता और बहुलता, दोनों भाव व्यंजित करते हैं जैसे **पुरु** शब्द वीरता का सूचक है साथ ही बहुलता का भी। यह एक गण का नाम भी था। उसी प्रकार **शक** शब्द भी बहुलता का सूचक था, पर इसकी यह

परिनिष्ठित मराठी दन्त्य स का व्यवहार भी करती है, इसलिए यहा तालव्यीकरण की प्रवृत्ति अध्ययन के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। हिन्दी **सींग** का मराठी प्रतिरूप **शिंग** है, कहा जा सकता है कि यहा संस्कृत के **शृंग** की मूल ध्वनि सुरक्षित है किन्तु संस्कृत **सिन्दूर** का मराठी तद्भव रूप **शेंदूर** है जो स्पष्ट ही **सिंदूर** से नही, हिन्दी **सेंदुर** से सम्पर्कित है। हिन्दी **सोखना** के मराठी प्रतिरूप **शोकणें** को **शुष्क** से जोडा जा सकता है पर हिन्दी **सेंकना** का मराठी प्रतिरूप **शेंकणें** है। **सीढ़ी, सिंघाडा, सीटी, सीसा, सिरका** समान **शिडी शिंगाडा, शिटी, शिसें शिरका** हैं। **सख्त, स्याही सिपाही, सिफारिश** आदि नवागन्तुकों का तालव्यीकरण मे वेग परिवर्तन किया जाता है। हिन्दी से भिन्न मराठी म इनका रूप है **शक्त, शाइ शिपाई, शिफारस**। आधुनिक आर्य भाषाओ की ये ध्वनि प्रवृत्तिया अत्यन्त प्राचीन है। दन्त्य और तालव्य सकारो के दो भिन्न केन्द्र रहे है। **मृच्छकटिक** के लेखक ने शकारवादियो को अमर कर दिया, मागधी प्राकृत की विशेषता इस तालव्य ध्वनि का व्यवहार है। **मृच्छकटिक** मे, और मागधी प्राकृत क नमूनो मे तो यह साफ दिखाई देता है कि सकार का तालव्यीकरण हो रहा है किन्तु यह प्रक्रिया कभी प्राचीन काल मे, संस्कृत के विकासकाल म भी घटित हुई होगी यह बहुतो के लिए कल्पनातीत है। भाषाशास्त्री एव कल्पित तालव्य **क** को **श** रूप धारण करते हुए देखते है किन्तु दन्त्य **स** के तालव्यीकरण की ओर उनका ध्यान कम जाता है। संस्कृत म **वशिष्ठ** तालव्यीकरण का माना हुआ उदाहरण है। यह शब्द **वसु** म बना है और इसका सही रूप **वसिष्ठ** है। वास्तव मे यह रूप भी मूर्धन्यीकरण द्वारा बदला गया है **वसिस्थ** का नया रूप **वसिष्ठ** हुआ। जब **वसिष्ठ** की जगह **वशिष्ठ** लिखा जाने लगा तब तालव्यीकरण की प्रक्रिया और जुड गई। इसलिए संस्कृत म जहा **पासयति** और **पाशयति** (बाधता है) दो वैकल्पिक रूप मिलें, वहा दन्त्य **स** वाले रूप को ही मूल रूप मानना चाहिए। जो बाधा जाय वह **पशु** है। **पशु** का मूल मध्यदेशीय रूप **पसु** था।

जैसे संस्कृत म **ण्** की भरमार है किन्तु धातुओ मे उसकी संख्या नगण्य है, वैसे ही संस्कृत के सर्वनामो म स-मूल के शब्दो की बहुलता है और **श** का नितान्त अभाव है। इसी प्रकार संस्कृत के उपसर्गों म तालव्य **श** का अभाव है दन्त्य **स** की बहुलता है। इससे ज्ञात होता है कि संस्कृत के मूल मध्यदेशीय रूप मे तालव्य **श** का अभाव था। संस्कृत की बहुत सी धातुओ के अन्त मे **श** का व्यवहार होता है **अश** (खाना), **दंश** (काटना) **नश** (नष्ट होना) **पश** (देखना) इत्यादि। यह कहना कठिन है कि इनम से कितनी धातुओ मे पहले दन्त्य **स** था जो तालव्य रूप म लिखा और बोला जाने लगा। यह भी स्वाभाविक है कि जिन्होने मध्यदेशीय भाषा को शकार वृत्ति से प्रभावित किया, उन्होने उसे अपने शब्द भी दिए, जिनम मूलत **श** ध्वनि थी। पर यह एक रोचक तथ्य है कि धातुओ के आरम्भ म किसी व्यंजन के साथ दन्त्य **स** ही अधिक जुडता है। **श्लाघ** (प्रशंसा करना), **श्वच** (फलाना फैलना) **श्चुत** (टपकना), **श्वित** (चमकना), **श्नथ** (प्रविष्ट करना) **श्लथ** (शिथिल होना) आदि रूप ढूढने मे मिल जाते है। इनकी

तुलना म स्फुट् (फूटना), स्कन्द (कूदना), स्पन्द् (कम्पित होना), स्यन्द् (गतिशील होना), स्वाद (मधुर करना), स्विद (पसीना आना), स्वध् (स्वधा करना), स्तन् (गरजना), स्वन (ध्वनि करना), स्वप् (सोना), स्तभ् और स्कभ् (सहारा दना), स्तुभ (प्रशंसा करना), स्वर् (चमकना), स्खल (स्खलित होना), स्पृश (छूना), स्रस (गिरना), स्निह (स्नेह युक्त होना) इत्यादि उदाहरणो म किसी व्यजन क साथ आदि स्थानीय दन्त्य स का सयोग दर्शनीय ह। जिन धातुओ म इसी प्रकार तालव्य श का सयोग है, उनकी सख्या कम है, स् वाली धातुओ की तुलना म उनका व्यवहार भी कम हुआ ह। सभवत शब्द के अन्त म दन्त्य स का तालव्यीकरण सरल था किन्तु जहा वह आदि स्थान म पहले म किसी व्यजन क साथ सयुक्त चला आ रहा था, वहाँ उसकी स्थिति को बदलना कठिन था ।

पालि भाषा अपन शब्द भडार और व्याकरण रूपो म अधिकतर सस्कृत का अनुसरण करती है। प्राकृतो के समान सस्कृत स उसका मौलिक भेद ध्वनितत्र का लकर है। पालि ध्वनितत्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसम केवल दन्त्य स का व्यवहार होता है। मध्यदेश की आर्य भाषा को वदिक रूप धारण किय, और उस रूप के आधार पर सस्कृत बन, जब हजार साल स ऊपर हो गए, तब उसी मध्यदेश के निवासियो न अपनी भाषाओ क आदिम ध्वनितत्र क अनुरूप सस्कृत को नया रूप दिया जो वास्तव म बहुत कुछ पुराना था। यह पालिभाषा मगध की भाषा नही हो सकती क्योकि इसम शकार की बहुलता नही है, बहुलता की जगह उसका अभाव है। इसका सम्बन्ध कोसल, शूरसेन आदि जनपदो म होना चाहिए। सास्कृतिक कार्यों के लिए इसका व्यवहार होता था, उसका सारा ध्वनितत्र तत्कालीन बोलचाल की भाषा का नही है। किन्तु जिस समय उसका यह सीमित व्यवहार होता था, उस समय मध्यदश की भाषा म दन्त्य स की ही प्रधानता थी। यह प्रवृत्ति उसम बहुत स्पष्ट रूप स प्रतिबिम्बित हुई ह। अशोक क शिलालखो की भाषा पालि नहा है, यह तथ्य उल्लेखनीय है। अशोक मगध के थे। उन्होन जिस सास्कृतिक भाषा का व्यवहार किया, उसकी विशेषताए पालि के लक्षणो स भिन्न हैं। गौतम बुद्ध पालि बोलत थ, इसका कोई प्रमाण नहीं ह, पर वह कोसल के थ इसलिए उनकी भाषा म दन्त्य स् की प्रधानता अवश्य रही होगी। यह विशेषता पालि को गौतम बुद्ध स अवश्य जोडती ह ।

प्राकृत भाषाओ म दन्त्य स् की प्रधानता है। पिशल के अनुसार ढक्की और मागधी म सस्कृत का श् कायम रहा। ढक्की का एक उदाहरण शलणम है, इसका मूल रूप शरणम् ह। उदाहरण मच्छकटिक स दिया गया है। ढक्की म यह प्रवृत्ति रही हो चाहे न रही हो, मागधी म अवश्य थी। शलणम म श ही सुरक्षित नहीं है, उसके साथ र भी परिवर्तित होकर ल हो गया ह। मागधी और गर मागधी प्राकृतो म सकार-सम्बन्धी मुख्य भद तालव्य और दन्त्य उच्चारण का है। यह स्थिति वतमान आर्य भाषाओ क ध्वनितत्र की स्थिति से मिलती जुलती ह। ऐसी ही स्थिति सस्कृत के विकास की किसी अवस्था म रही होगी, यह कल्पना करना विद्वानो के लिए इस कारण कठिन

परिनिष्ठित मराठी दन्त्य स का व्यवहार भी करती है, इसलिए यहां तालव्यीकरण की प्रवृत्ति अध्ययन के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। हिन्दी **सींग** का मराठी प्रतिरूप **शिंग** है, कहा जा सकता है कि यहां संस्कृत के **शृंग** की मूल ध्वनि सुरक्षित है किन्तु संस्कृत **सिंदूर** का मराठी तद्भव रूप **शेंदूर** है जो स्पष्ट ही **सिंदूर** से नहीं, हिन्दी **सेंदुर** से सम्बन्धित है। हिन्दी **सोखना** के मराठी प्रतिरूप **शोकणे** को **शुष्क** से जोड़ा जा सकता है पर हिन्दी **सेंकना** का मराठी प्रतिरूप **शेंकणें** है। **सीढ़ी, सिंघाड़ा, सीटी, सीसा, सिरका** क्रमशः **शिडी शिंगाडा, शिटी, शिसें, शिरका** हैं। **सख्त स्याही सिपाही सिफारिश** आदि आगन्तुकों का तालव्यीकरण से वेश-परिवर्तन किया जाता है। हिन्दी से भिन्न मराठी में इनका रूप है **शक्त, शाइ शिपाई शिफारस**। आधुनिक आर्य भाषाओं की ये ध्वनि प्रवृत्तियां अत्यन्त प्राचीन हैं। दन्त्य और तालव्य सकारों के दो भिन्न केन्द्र रहे हैं। **मच्छकटिक** के लेखक ने शकारवादियों को अमर कर दिया, मागधी प्राकृत की विशेषता इस तालव्य ध्वनि का व्यवहार है। **मच्छकटिक** में, और मागधी प्राकृत के नमूनों में तो यह साफ दिखाई देता है कि सकार का तालव्यीकरण हो रहा है किन्तु यह प्रक्रिया कभी प्राचीन काल में, संस्कृत के विकासकाल में भी घटित हुई होगी यह बहुतों के लिए कल्पनातीत है। भाषाशास्त्री एक कल्पित तालव्य **क** को **श** रूप धारण करते हुए देखते हैं किन्तु दन्त्य **स** के तालव्यीकरण की ओर उनका ध्यान कम जाता है। संस्कृत में **वशिष्ठ** तालव्यीकरण का माना हुआ उदाहरण है। यह शब्द **वसु** से बना है और इसका सही रूप **वसिष्ठ** है। वास्तव में यह रूप भी मूर्धन्यीकरण द्वारा बदला गया है **वसिस्थ** का नया रूप **वसिष्ठ** हुआ। जब **वसिष्ठ** की जगह **वशिष्ठ** लिखा जाने लगा तब तालव्यीकरण की प्रक्रिया और जुड़ गई। इसलिए संस्कृत में जहां **पासयति** और **पाशयति** (बांधता है) दो वैकल्पिक रूप मिलें, वहां दन्त्य **स** वाले रूप को ही मूल रूप मानना चाहिए। जो बांधा जाय वह **पशु** है। **पशु** का मूल मध्यदेशीय रूप **पसु** था।

जैसे संस्कृत में **ण** की भरमार है किन्तु धातुओं में उसकी संख्या नगण्य है वैसे ही संस्कृत के सर्वनामों में स मूल के शब्दों की बहुलता है और **श** का नितान्त अभाव है। इसी प्रकार संस्कृत के उपसर्गों में तालव्य **श** का अभाव है दन्त्य **स** की बहुलता है। इससे ज्ञात होता है कि संस्कृत के मूल मध्यदेशीय रूप में तालव्य **श** का अभाव था। संस्कृत की बहुत सी धातुओं के अन्त में **श** का व्यवहार होता है **अश** (खाना), **दश** (काटना), **नश** (नष्ट होना), **पश** (देखना) इत्यादि। यह कहना कठिन है कि इनमें से कितनी धातुओं में पहले दन्त्य **स** था जो तालव्य रूप में लिखा और बोला जाने लगा। यह भी स्वाभाविक है कि जिन्होंने मध्यदेशीय भाषा को शकार वृत्ति से प्रभावित किया उन्होंने उसे अपने शब्द भी दिए, जिनमें मूलतः **श** ध्वनि थी। पर यह एक गौरव तथ्य है कि धातुओं के आरम्भ में किसी व्यंजन के साथ दन्त्य **स** ही अधिक जुड़ता है। **श्लाघ** (प्रशंसा करना) **श्वच** (फलना फूलना) **श्चुत** (टपकना), **श्वित** (चमकना), **स्नथ** (प्रविष्ट करना) **श्लथ्** (शिथिल होना) आदि रूप ढूंढ़ने से मिल जाते हैं। इनकी

तुलना म स्फुट् (कूटना), स्कन्द (कूदना), स्पन्द् (कम्पित होना), स्य द् (गतिशील होना), स्वाद (मधुर करना), स्विद (पसीना आना), स्पध (स्पर्धा करना), स्तन् (गरजना), स्वन (ध्वनि करना), स्वप् (सोना), स्तभ् और स्कभ् (सहारा देना), स्तुभ (प्रशसा करना), स्वर् (चमकना), स्खल (स्खलित होना), स्पृश् (छूना), स्रस् (गिरना), स्निह (स्नेह युक्त होना) इत्यादि उदाहरणो मे किसी व्यजन के साथ आदि स्थानीय दन्त्य स् का सयोग दर्शनीय है। जिन धातुओ मे इसी प्रकार तालव्य श् का सयोग है, उनकी सख्या कम है, स् वाली धातुओ की तुलना मे उनका व्यवहार भी कम हुआ है। सभवत शब्द के अन्त मे दन्त्य स का तालव्यीकरण सरल था किन्तु जहा वह आदि स्थान मे पहले से किसी व्यजन के साथ सयुक्त चला आ रहा था, वहा उसकी स्थिति को बदलना कठिन था।

पालि भाषा अपने शब्द भडार और व्याकरण रूपो म अधिकतर सस्कृत का अनुसरण करती है। प्राकृतो के समान सस्कृत स उसका मौलिक भेद ध्वनितत्र को लेकर है। पालि ध्वनितत्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसम केवल दन्त्य स् का व्यवहार होता है। मध्यदेश की आय भाषा को वदिक रूप धारण किये, और उस रूप के आधार पर 'सस्कृत' बने, जब हजार साल से ऊपर हो गए, तब उसी मध्यदेश के निवासियो ने अपनी भाषाओ के आदिम ध्वनितत्र के अनुरूप सस्कृत को नया रूप दिया जो वास्तव मे बहुत कुछ पुराना था। यह पालिभाषा मगध की भाषा नही हो सकती क्योकि इसम शकार की बहुलता नही है, बहुलता की जगह उसका अभाव है। इसका सम्बन्ध कोसल, शूरसेन आदि जनपदो से होना चाहिए। सास्कृतिक कार्यो के लिए इसका व्यवहार होता था, उसका सारा ध्वनितत्र तत्कालीन बोलचाल की भाषा का नही है। किन्तु जिस समय उसका यह सीमित व्यवहार होता था, उस समय मध्यदेश की भाषा म दन्त्य स की ही प्रधानता थी। यह प्रवृत्ति उसम बहुत स्पष्ट रूप स प्रतिबिम्बित हुई है। अशोक के शिलालेखो की भाषा पालि नही है, यह तथ्य उल्लेखनीय है। अशोक मगध के थे। उन्होने जिस सास्कृतिक भाषा का व्यवहार किया, उसकी विशेषताए पालि के लक्षणो से भिन्न है। गौतम बुद्ध पालि बोलते थ, इसका कोइ प्रमाण नही है, पर वह कोसल के थ, इसलिए उनकी भाषा म दन्त्य स् की प्रधानता अवश्य रही होगी। यह विशेषता पालि को गौतम बुद्ध स अवश्य जोडती है।

प्राकृत भाषाओ मे दन्त्य स की प्रधानता है। पिशल के अनुसार ढक्की और मागधी म सस्कृत का श कायम रहा। ढक्की का एक उदाहरण शलणम है, जिसका मूल रूप शरणम् है। उदाहरण मच्छकटिक स दिया गया है। ढक्की म यह प्रवृत्ति रही हो चाहे न रही हो, मागधी म अवश्य थी। शलणम् मे श ही सुरक्षित नहीं है, उसके साथ र भी परिवर्तित होकर ल हो गया है। मागधी और गैर-मागधी प्राकृतो म सकार-सम्बन्धी मुख्य भेद तालव्य और दन्त्य उच्चारण का है। यह स्थिति वतमान आय भाषाओ के ध्वनितत्र की स्थिति स मिलती जुलती है। ऐसी ही स्थिति सस्कृत के विकास की किसी अवस्था म रही होगी, यह कल्पना करना विद्वानो के लिए इस कारण कठिन

है कि वे मागधी और गैर मागधी प्राकृता के सकार भेद को अकारण उत्पन्न मानते हैं। एक क्षेत्र म सस्कृत का तालव्य **श** बना रहा, दूसरे क्षेत्र मे वह परिवर्तित होकर **स** बन गया। ध्वनि परिवतन माना प्रकृति की लीला है, कोई उसका कारण क्या बताये? पर मागधी प्राकृत मे दन्त्य **स्** को तालव्य रूप देने की प्रवृत्ति थी, और यह प्रवृत्ति परिनिष्ठित बँगला म पूरी तरह विद्यमान है, अत उक्त भेद प्रकृति की लीला नही है वह **स** और **श** ध्वनिया के दो भिन्न प्राचीन क्षेत्रो की सूचना देता है।

प्राकृता के बाद अपभ्रशा का युग आया। उनमे भी दन्त्य **स्** की प्रधानता है। विद्वाना ने इ ह दक्षिणी पश्चिमी और पूर्वी अपभ्रश कहा है। गजानन वासुदव तागरे ने अपभ्रश व्याकरण पर अपने ग्रथ मे दक्षिणी अपभ्रश के जो उदाहरण दिए हैं, उनम **सख सिरि सुक्किल, सुण्ण, सेणी, सोस** रूप हैं। इनके सस्कृत रूप क्रमश **शख श्री, शुक्ल शू य श्रेणी शोष** हैं। यदि **सिपाही** के रूपान्तर **शिपाई** को याद करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि इस तथाकथित दक्षिणी अपभ्रश स मराठी के ध्वनितत्र का—कम स कम सकार के मामल मे—कोई सम्बन्ध नही है।

पूर्वी अपभ्रश के लिए कहा गया है कि इसमे तालव्य **श** सुरक्षित रहा है। आदि स्थानीय **श** के व्यवहार के कुल आठ उदाहरण बताये गए है। किन्तु **सिरि, सुण्ण, सोस** रूप पूर्वी अपभ्रश क भी है। वास्तव म प्राकृता के समान अपभ्रश म भी दन्त्य **स** की प्रधानता है और अपभ्रश के ध्वनितत्र की रूढिप्रियता और कृत्रिमता के बावजूद यह तथ्य मध्यदेशीय भाषाओ की वास्तविक विशेषता का प्रतिबिम्ब ह, अन्तर केवल इतना है कि मागधी प्राकृत प्राचीन मगध की भाषाई स्थिति की झलक ज्यादा अच्छी तरह दिखाती ह किन्तु तथाकथित पूर्वी अपभ्रश अवधी की ध्वनि प्रकृति के अनुरूप अधिक है। उसे मगही की प्रकृति के अनुरूप भी कह सकत ह क्योकि मगध क्षेत्र की भाषा अब तक मध्यदेशीय दन्त्य **स** से इतना प्रभावित हो चुकी ह कि बोलचाल के स्तर पर तालव्य **श** का लोप ही हो गया है। मागधी की प्राचीन प्रवृत्ति ठेलकर गौड क्षेत्र म पहुँचा दी गई। प्राचीन काल मे मध्यदेशीय भाषा का जो तालव्यीकरण घटित होता है, उसका कारण मगधजनो का प्रभाव है। अशोक और च द्रगुप्त के समय मे इ होंने भारत म विशाल साम्राज्य स्थापित किय। इन साम्राज्या का अस्तित्व इतिहास म प्रमाणित है। आर्यो ने उत्तर पश्चिम से आकर पूव तक समस्त उत्तर भारत पर अधिकार किया, इस धारणा का इतना प्रचार किया गया ह कि शिक्षित जनो के लिए यह कल्पना करना कठिन है कि किसी समय पूव की ओर स आय अभियान न मध्यदेश तथा उत्तर पश्चिम की भाषाओ को प्रभावित किया होगा। यदि अशोक के शिलालेख न होत केवल पुराणा म उनके राज्य विस्तार की चचा होती तो कुछ विद्वान मान लेते कि अशोक का जन्म मध्य एशिया म हुआ था, उनकी राजधानी तक्षशिला थी, वहाँ स चलकर उन्होने क्रमश पजाब, कोसल और मगध पर आधिपत्य जमाया। पर भारत के बाहर और भारत म भी मगध को छोडकर कोई ऐसा केन्द्र नही है जहा तालव्य **श** का ऐसा प्रचुर व्यवहार होता हो। मध्यदेश की भाषा म अनेक शब्दा के दन्त्य

सकार का तालव्यीकरण हुआ यह मानना होगा। इसका कारण मागध प्रभाव ही हो सकता है। किन्तु मध्यदेश की आर्य भाषाओं का मूल ध्वनितंत्र, बोलचाल के स्तर पर, अपनी विशेषताओं के साथ सुरक्षित रहा। यह बात आकस्मिक नहीं है कि तेरहवीं सदी के बाद जब ब्रज और अवधी में नया साहित्य रचा जाने लगा, तब इन भाषाओं में केवल दन्त्य स् का व्यवहार हुआ श का प्रयोग वर्जित माना गया। लोक साहित्य के आधार पर विकसित होने वाली ब्रज और अवधी का उच्चस्तरीय काव्य जनभाषा की ध्वनि प्रकृति प्रतिबिम्बित करता है। अधिकांश हिन्दी प्रदेश में केवल दन्त्य स के व्यवहार की प्राचीन प्रवृत्ति आज भी विद्यमान है। निष्कर्ष यह है कि संस्कृत का विकास समझने पर मध्यदेश की प्राचीन आर्य भाषाओं के स्वरूप की जो झलक हमें मिलती है उसी से आधुनिक हिन्दी का ध्वनितंत्र अधिक मिलता जुलता है।

४ सघोष महाप्राण ध्वनियों के केन्द्र

प्राचीन आर्य गण भाषाओं के ध्वनितंत्र में विविधता और भिन्नता थी, इसे ध्यान में रखने से आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास की मंजिलें, उनके ध्वनितंत्र की विशेषताएँ ज्यादा अच्छी तरह समझ में आती हैं। संस्कृत में दो शब्द हैं **स्कभ** और **स्तभ**। एक में क्रियामूल स्क है दूसरे में स्त। हिन्दी में **खभ** और **थभ** दोनों रूपों का व्यवहार हुआ है। परिनिष्ठित हिन्दी के क्रिया पद **खडे होना** का सम्बन्ध **स्क** वाले क्रिया मूल से है। इसके समानान्तर **ठाढ ठडे** आदि रूपों का सम्बन्ध **स्त** वाले क्रिया मूल से है। **खडा** रूप उत्तर पश्चिमी है, खडी बोली का है। ब्रज, बुन्देलखंडी, अवधी आदि जनपदीय भाषाओं में कहीं भी **खडे** रूप का व्यवहार नहीं होता। क्या इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि **स्क** वाला रूप उत्तर पश्चिम में प्रचलित था और **स्त** (संस्कृत का **स्था**) वाला रूप मध्यदेश में प्रचलित था? फारसी में **स्थान** का प्रतिरूप **खाना** है जैसे **कारखाना**। बँगला में जो अनेक उत्तर पश्चिमी भाषा-तत्त्व हैं, उनमें एक **खाना** का प्रयोग भी है यथा **एइखाने**—इस जगह। हिन्दुस्तान से लेकर अफगानिस्तान, उजबेकिस्तान, तुर्किस्तान, सीस्तान तक **स्तान** है खान नहीं। खान की जगह **स्तान** मध्यदेशीय प्रभाव का सूचक है। संस्कृत में भी व्यापक व्यवहार **स्था** क्रिया का ही होता था। **स्क** रूप **स्कभ** जैसे कुछ संज्ञा शब्दों में बना हुआ है। क्रिया रूप में कुछ गणभाषाओं में इसका व्यवहार अवश्य होता होगा, वर्ना आगे चलकर **खडे** रूप का ऐसा प्रसार न होता। यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि स्क मूल रूप है, किसी ध्वनि नियम से स्त बन गया। दो समानार्थी रूपों के चलन का एक ही कारण हो सकता है कि **क** और **त** से अक्षरध्वनियों का विकास दो भिन्न केन्द्रों में हुआ। इन केन्द्रों में परस्पर इतना सम्पर्क था कि इनकी शब्द निर्माण प्रक्रिया भी एक सी थी। एक ने मूल क्रिया में **भ** प्रत्यय जोडा तो दूसरे ने भी वही काम किया। दोनों केन्द्रों के भाषातत्त्व संस्कृत में समाहित हुए, अत **स्कभ** और **स्तभ** दोनों रूपों को संस्कृत में स्थान मिला।

शब्द निर्माण की प्रक्रिया में केवल **भ** प्रत्यय न जोडा जाता था, **ध** का भी उसी

प्रचार व्यवहार होता था। स्कंभ के अर्थ से मिलता-जुलता अर्थ स्कध का है। इसका एक प्रतिरूप स्तध भी था, इसका पता हम अंग्रेजी स्टैंड से लग जाता है। भ और ध का विकास दो पडोसी केन्द्रों में हुआ, ऐसा मानना चाहिए। उत्तम पुरुष सर्वनाम के एकवचन रूप अघम और अधम् थे। इनमें अघम वाले रूप से लैटिन का एगो रूप बना है। पुरानी फारसी में अदम रूप है जो अधम् से बना है। यहां भी यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि घ और ध वाले रूप दो पडोसी बोलियों के हैं और उनकी निर्माण प्रक्रिया एक ही है। लैटिन में घ वाले रूप का विकास हुआ है, इससे माना जा सकता है कि वह रूप पश्चिमी है। संस्कृत में अभि और अधि निकटता का अर्थ देने वाले दो उपसर्ग हैं। एक ही अर्थ, एक ही रचना-विधि, पर एक रूप में भ दूसरे में ध। कारण—भ् और ध ध्वनियों का दो पडोसी केन्द्रों में विकास। संस्कृत यदा, तदा के आधार पर जद, तद रूप पछाहीं बोलियों में अब भी प्रयुक्त होते हैं, पुरानी हिन्दी (खडी वाली) के लिखित रूप में इनका काफी व्यवहार होता था। जब, तब इन शब्दों के पर्याय हैं, वे अब परिनिष्ठित हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं। जब और तब के लिए मान लिया जाता है कि द किसी प्रकार ब में बदल गया होगा। पर स्कभ और स्तभ के लिए क्या कहा जाय? क ध्वनि त में बदल गई या त ध्वनि क में बदल गई?

घ ध भ—आर्य भाषाओं की शब्द निर्माण-प्रक्रिया में इन ध्वनियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। देश काल के निर्देश के लिए इन ध्वनियों से काम लिया जाता है। यथा बागरू में इड घ (यहां), हिन्दी में इधर, उधर, एक जगह घ, दूसरी जगह ध। यहां छानबीन इस बात की करनी है कि आर्य भाषाओं के, घ् ध भ् वाले, अलग केन्द्र थे या नहीं। इतना तो स्पष्ट है कि अनेक शब्दों में घ ध् भ का स्वच्छन्द संचरण दिखाई देता है। चाहे स्कभ कहो और चाहे स्तभ, चाहे अभि कहो चाहे अधि, चाहे अघम कहो, चाहे अधम्, मतलब समझ लिया जाएगा। स्वच्छन्द संचरण की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब दो मिलती जुलती ध्वनियां, व्यवहार में, अर्थ विच्छेदक नहीं होतीं। संस्कृत में क् त प और घ ध् भ अर्थ विच्छेदक हैं। घन और धन शब्दों का एक ही अर्थ नहीं है, पुत्र और कुत्र दो भिन्न शब्द हैं। पर यह स्थिति बाद की है तब की जब भाषा के ध्वनितंत्र में समान लक्षणों वाली ध्वनियां अर्थ विच्छेदक रूप में पूरी तरह प्रतिष्ठित हो गई थीं। उससे पहले ये ध्वनियां अर्थ विच्छेदक नहीं थीं, वे स्वच्छंद संचरण की अवस्था में थीं, उनका विकास भिन्न किंतु पडोसी केन्द्रों में हुआ था।

बागरू में इड घ और तमिल में इट्टंग रूपों से यह अनुमान दृढ होता है कि क और घ उत्तर पश्चिमी केन्द्रों में विकसित होने वाली ध्वनियां हैं। खडे और ठाढे के प्रसार क्षेत्र देखकर इस अनुमान की पुष्टि होती है। अघम और लैटिन एगो के सम्बन्ध से इसी धारणा को और समर्थन प्राप्त होता है। संस्कृत की उन धातुओं पर ध्यान दिया जाय जो हकारान्त हैं तो कुछ रोचक परिणाम निकलेंगे। इनमें अधिकांश धातुएँ ऐसी हैं जिनके अन्त में पहले घ् ध्वनि थी यथा दुह क्रिया में दुग्ध रूप बनता है और ऐसा रूप तभी बन सकता है जब मूल क्रिया दुघ हो। दो महाप्राण ध्वनियां एक साथ न आयेंगी,

इस कारण ध के पूर्व घ् ध्वनि अल्पप्राण हो गई ह। इसी प्रकार ग्ह क्रिया क आधार पर बनने वाले दग्ध रूप स दग्ध के अस्तित्व का ज्ञान होता है। जिन क्रियाओ के अन्त मे घ् है, उनमे घ् की तरह यह ध प्राय ह म परिवर्तित नही होता। दुग्ध, दग्ध, मुग्ध रूपो की दुह दह मुह क्रियाओ से बुद्ध सिद्ध, क्रुद्ध आदि रूपो की बुध, सिध, क्रुध धातुओ की तुलना करें तो विदित होगा कि ध के समान मूल रूप का ध परिवर्तित नही हुआ। लब्ध, क्षुब्ध, स्तब्ध आदि रूपा की लभ् क्षुभ, स्तभ धातुआ का अन्तिम व्यजन भ भी ह का रूप नही लेता। सस्कृत मे घ जिन धातुआ के अन्त मे आता है, उनकी सख्या बहुत ही कम ह। ज्घ (खाना), लघ (लाघना), श्लाघ (प्रशसा करना) आदि थोडी सी क्रियाएँ ह जिनम यह अन्तिम व्यजन सुरक्षित है। इसका यह अथ नही कि ध और भ् की तुलना मे घ वाली धातुओ की सख्या सदा हा कम थी। सख्या की कमी का कारण यह ह कि जिन उत्तर-पश्चिमी गण भाषाआ म घ् का व्यवहार अधिक होता था, उन पर वह प्रभाव पहले पडा और अधिक पडा जिसम घ का सघर्षीकरण हुआ और सर्वाधिक प्रचलित क्रिया रूपा म घ् क बदले ह् का व्यवहार होने लगा।

घ की तुलना म ऐसी धातुआ की सख्या बहुत अधिक है जिनके अन्त मे ध् व्यजन का प्रयोग होता है क्रुध्, गृध् ब ध् बुध युध, बध, बध, शुध, सिध् आदि। य क्रियाएँ इतना प्रचलित थी कि इनका व्यवहार किसी न किसी रूप मे आधुनिक आय भाषाआ मे अब भी होता ह। घ के समानान्तर अन्त्य व्यजन ग् और क वाली क्रियाआ की सख्या भी सीमित ह, इसके विपरीत त और द् अन्त्य व्यजना वाली धातुआ की सख्या बहुत अधिक ह। जिन धातुआ क अन्त म भ् या प् ह, उनकी सख्या काफी है, यद्यपि ध् और त् अन्त्य व्यजना वाली धातुआ स कम ह। जिन धातुआ क अन्त म ब् ह, उनकी सख्या और भी कम ह। मेरा अनुमान ह कि ध्, द्, त् ध्वनिया का मूल केन्द्र मध्यदेश था, भ् ब् प् का केन्द्र काशी, मगध और पडोसी पूर्वी क्षेत्र थे। जाग्गा पछाही रूप है, जाइब पूर्वी रूप ह—यह बात आकस्मिक नहीं ह, भाषाशास्त्री इन रूपा के ग् और ब का स्रोत जहा भी ढूढें।

कही कही धातु का अन्त्य घ् तो परिवर्तित होता ही है, शब्द का आदि स्थानीय घ् भी उसी प्रकार बदलता ह। घन् क्रिया क एकवचन रूप म ह है हन्ति। बहुवचन रूप म घ विद्यमान ह घ्नन्ति। हत्या और घात जैसे शब्दा म मूल और परिवर्तित ध्वनिया दोना विद्यमान ह। सस्कृत म ऐसी बहुत सी क्रियाएँ ह जिनके आदि स्थान म ह हे किन्तु जिनके किसी न किसी रूप मे ज् ध्वनि का व्यवहार होता है। मूल ध्वनि घ की आवत्ति हाने पर ज का व्यवहार हाता है। हन् धातु का मूल रूप घन ह। एक क्रिया रूप बनता है जघान। यहा घ की आवत्ति हुई, प्रथम घ् के अल्प प्राण होन पर गघान रूप बनता। तालव्यीकरण की प्रवत्ति स गघान के बदल जघान रूप बना जस गगाम क बदल जगाम, ककार के बदले चकार। सस्कृत की जिन धातुआ मे आदि स्थानीय ह् ह किन्तु आवत्ति मूलक क्रिया रूप म ज ह वहा धातुआ क मूल रूप म घ् का अस्तित्व मानना चाहिए। जहाति (हा—छोडना), जिहीते (हा—जाना), जिघाय (हि—प्रेरित करना) जुहोमि

(हु—यज्ञ करना), जहार (हु—लेना), इस तरह की क्रियाओं की संख्या काफी है। इनके मूल घ वाले रूपों पर ध्यान देने से विदित होगा कि अन्त्य घ के समान आदि घ वाली धातुओं की संख्या भी काफी थी। प्राचीन आर्य भाषाओं में घ वाले मूल रूप आगे चलकर परिवर्तित हो गए।

अनेक शब्द ऐसे हैं जिनके संस्कृत रूपों में ह है किन्तु यूरोप की किन्हीं भाषाओं के प्रतिरूपों में कवर्गीय ध्वनि है। हंस का जर्मन प्रतिरूप गंस है। ग के अस्तित्व से मूल घ का बोध होता है। संस्कृत हनु का ग्रीक प्रतिरूप गेनुस (दाढ़ें, ठोढ़ी), हेमन्त का ग्रीक प्रतिरूप खेइम, हिम का ग्रीक प्रतिरूप खिओन ऐसे बहुत रूप हैं जिनसे आदि स्थानीय घ का बोध होता है। ये शब्द उन उत्तर पश्चिमी भारतीय आर्य गणसमाजों की संपदा हैं जिनमें इस घ ध्वनि का विकास हुआ था जिनमें ध और भ की अपेक्षा घ की प्रधानता थी।

दो स्वरों के मध्य में आने वाला घ भी इसी तरह बदलता है। संस्कृत बाहु ग्रीक प्रतिरूप पखुस, मूल रूप बाघु। संस्कृत बहु, ग्रीक प्रतिरूप पखुस (विशद), मूल रूप बघु, संस्कृत जिह्वा लटिन लिंगुआ अंग्रेजी टंग, मूलरूप दिघुआ अथवा दिघवा। आदि स्थानीय द जब ल में परिवर्तित हुआ तब लिह् (चाटना) रूप बना। संस्कृत में ही इस लिह् का लिघ प्रतिरूप विद्यमान है। इसी लिघ का अंग्रेजी प्रतिरूप लिक (चाटना) है। टंग में द अघोष हुआ, फिर वर्त्स्य या मूर्धन्य। कहीं-कहीं संस्कृत में आदि स्थानीय घ बना हुआ है और यूरोप की भाषाओं में उसका लोप हो गया है यथा घुष या घोष क्रिया का लैटिन रूप वोकारे (बुलाना) है (इसी का तमिल रूप ओचइ है)। संस्कृत में आदि स्थानीय क अधिकतर सुरक्षित रहता है किन्तु अस्थि के मूल रूप में क था यह रूसी कोस्त से ज्ञात होता है। लटिन कोस्त (पसली) इसी से सम्बद्ध हो सकता है। हड्डी के लिए लटिन का प्रचलित शब्द ओस है। इसका ग्रीक प्रतिरूप है ओस्तेओन। संभव है ढूँढ़ने से एक आध उदाहरण संस्कृत में मध्यवर्ती क् या द के लोप का भी मिल जाय। तमिल भाषा में मध्यवर्ती क का उच्चारण या तो संघर्षी ग् के समान होता है या ह् के समान। प्राकृतों में मध्यवर्ती क और ग का य में परिवर्तन सुपरिचित है।

ऐसा परिवर्तन कवर्गीय ध्वनियों में क्या होता है? क्या ये ध्वनियाँ तवर्गीय पवर्गीय ध्वनियों की अपेक्षा संघर्षी रूप अधिक सरलता से स्वीकार करती हैं? कन्नड़ शब्दों के प की स्थिति देखें। सामान्य उच्चारण में यह निरन्तर ह में बदलता है और फिर बहुधा ह का भी लोप हो जाता है। संस्कृत में आदि मध्य और अन्त्य प की स्थिति बहुत सुरक्षित है। वधू के बहू रूप पर विचार करें तो ज्ञात होगा, जैसा परिवर्तन घ में होता है वैसा ध में भी होता है। पुरानी अवधी में लाहु (लाभ), लहहि (लभहि) में भ की स्थिति सुरक्षित नहीं रही। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कवर्गीय ध्वनियों का संघर्षीकरण उनका हकार में रूपान्तरण, अधिक स्वाभाविक है। बहू लाहु जैसे रूप संस्कृत में नहीं हैं। बाहु आदि रूपों में मूल ध्वनि घ परिवर्तित हुई है। घ ध्वनि का

केन्द्र उत्तर पश्चिमी क्षेत्र था। नाग भाषाओं का प्रभाव उत्तर पश्चिमी सीमान्त पर अधिक था, अत कवर्गीय ध्वनियों के क्षेत्र मे उनका प्रभाव पहले पडा और **ध** वाले मध्य देशीय क्षेत्र म बाद को पडा। मघर्षीकरण की प्रवृत्ति नाग भाषाओ की विशेषता है, इसका विवेचन दूसरे खड म ह।

सस्कृत की शब्द निर्माण प्रक्रिया म **ध** की भूमिका उल्लेखनीय है। क्रिया मूलो से कृदन्त गढने म **घ** और **भ** की अपेक्षा **घ** से अधिक काम लिया जाता है। **स्तभ, स्कभ, शलभ, वृषभ, रासभ, गदभ** आदि थोडे से शब्दो मे **भ** का व्यवहार होता है। इनमे कृदन्त रूप **स्कभ, स्तभ** ही है। मनुष्येतर प्राणियो के नामो के साथ **भ** प्रत्यय जोडकर शब्द रचना-प्रक्रिया म उसे निम्न स्थान दिया गया है। **स्कध** शब्द मनुष्य के अगो के लिए प्रयुक्त होता है और उसम **ध** है, **भ** नही। यदि यह माना जाय कि **ध्** मूलत मध्यदेशीय ध्वनि है तो अग्रेजी **स्ट ड** का पूर्व रूप **स्त ध** मध्यदेशीय सिद्ध होगा। अग्रेजी के **स्टोप, स्टब, स्टम्प** आदि शब्द पूर्वी क्षेत्र से आये हुए माने जायेगे। **मगध, अवध** जैसे शब्दो मे **ध** स्थानवाचक प्रत्यय का काम करता है, अत पृथ्वी के लिए **धरा, धरती** शब्दो का प्रयोग स्वाभाविक है। **ध** शब्द मूल स्थिरता का सूचक है। खडे होने के लिए **स्थ स्त,** क्रियाएँ **ध** से उत्पन्न हुई है। इस न्याय से **स्कभ** की आधार क्रिया **स्क** पहले **घ** रही होगी। इस तर्क-शृखला स यह निष्कर्ष भी निकलता है कि अन्य भाषा क्षेत्रो म सघोष महाप्राण ध्वनियो का व्यवहार अधिक होता था। अन्य प्रभावो स **घम्म, धम्भ,** के बदले **स्कम्भ, स्तम्भ** रूपो का चलन हुआ। **धरा, आधार, धारणा** आदि स्थिरता सूचक शब्दो मे मूल ध्वनि **ध** बनी रही। पृथ्वी के ऊपर धरा से भिन्न तत्व **अधर** कहलाया।

सस्कृत म **ध** के समान जहा **त** प्रत्यय का व्यवहार होता ह, वहा इस **त** को पूर्व रूप **ध** का विकास मानना चाहिए। **त्यक्त, शक्त, भक्त** आदि रूप **दग्ध, बद्ध, लब्ध** वाली प्रक्रिया से बने हैं। जैसे **शक** क्रिया पहले **सघ** थी, वैसे ही **त** प्रत्यय पहले **ध** था। **त** के अतिरिक्त **ध** भी **द** म रूपान्तरित होता है। **बहुधा** शब्द से **सवदा** की तुलना करें। दोनो मे **धा** और **दा** का कार्य एक ही कोटि का है। **सवत** और **सवत्र** मे वही मूल ध्वनि अल्पप्राण और अघोष हो गई है।

घ प्रत्यय से बनने वाले शब्द कम दिखाई देते है। सम्भव ह **दीघ** शब्द का क्रिया मूल **दीर** रहा हो जो **दूर** स मिलता जुलता है। मोनियर विलियम्स के कोश मे **द्राघ** धातु का उल्लेख ह। **शुष्क** रूप मे **शुष** धातु के बाद **क** प्रत्यय **घ** का रूपान्तर है। **माग** म मूल क्रिया **मर** अथवा **मार** है। सस्कृत म यह क्रिया अप्रयुक्त ह। इसलिए **माग** अथवा **मृग** को क्रिया मूल माना गया है। अग्रेजी **मार्च** म वही **मार** धातु है। **मरुत** शब्द वायु का अर्थ देता ह। जैसे **वायु** मे **वा** क्रिया गति सूचक है, वैसे ही **मरुत** म **मर** क्रिया गति सूचक ह। जैसे **पवन** की मूल क्रिया **पो** या **पव** का सम्बन्ध **पथ** म ह, वैसे ही **मर** या **मार** से **माग** शब्द का सम्बन्ध है। सस्कृत म **घ** प्रत्यय स बनने वाले शब्द बहुत कम है। इस सन्दभ म हिन्दी का **करघा** शब्द उल्लेखनीय ह जो हाथ स चलाया

जाय, वह **करघा** । **करघा** और **चरखा** दोनों एक दूसरे के साथी हैं। **चरखा** भी पहले **करघा** था। क का तालव्यीकरण हुआ और घ की सघोषता का लोप हुआ।

करघा के समान अवधी का **बगउधा** शब्द उल्लेखनीय है। यह **बग** क्रिया से बना है जिसका अर्थ चलना, घूमना है। ब्रज भाषा में इसका व्यवहार अब भी होता है। अवधी में क्रिया का व्यवहार नहीं होता किन्तु उसके आधार पर रचा हुआ शब्द प्रचलित है। जो लडकिया घर के बाहर बहुत घूमती फिरती है, बैसवाड़े में उन्हें **बग उधा** कहा जाता है। इसका एक प्रतिरूप **बजिन्दा** भी प्रचलित है जिसमें **ध** प्रत्यय अल्प प्राण रूप में है और ग इ स्वर के संसर्ग से, तालव्य बन गया है। **बगउधा** की तरह **चमरउधा** (चमड़े से बना हुआ यानी जूता) शब्द है। अवधी के ये शब्द उन प्राचीन मध्य देशीय आर्य गण भाषा ध्वनितन्त्रों के अनुरूप है जिनमें मूल सघोष महाप्राण ध्वनियां अभी अल्पप्राण और अघोष न बनी थी। इन प्राचीन ध्वनितन्त्रों की विशेषताएँ जानकर ही संस्कृत का विकास पहचाना जा सकता है। **बहुधा** और **सर्वदा** में **दा** या **धा** कौन सा प्रत्यय अधिक प्राचीन है, यह जाना जा सकता है, आधुनिक आर्य भाषाओं में प्राचीन ध्वनितन्त्रों की विशेषताएं कहां बनी हुई है, इसका विवेचन किया जा सकता है। **घ ध भ** का विकास तीन आर्य भाषा केन्द्रों में हुआ, इनमें **ध्** मध्यदेशीय केन्द्र की देन है।

घ का विकास केन्द्र उत्तर पश्चिम में था, **भ** का पूर्व में, और **ध्** का इनके बीच में, इस अनुमान को सिद्ध करने के लिए अभी और छानबीन आवश्यक है। फिर भी जो विवेचन ऊपर प्रस्तुत किया गया है, उसमें इतना अवश्य प्रमाणित होता है कि इन ध्वनियों के विकास केन्द्र अलग अलग थे और उनके परस्पर सपर्क से ये तीनों ध्वनियां एक ही सामान्य ध्वनितन्त्र का अंग बनी। इसी तरह **क्**, **त**, **प्** के भी अलग केन्द्र थे और उनके आपसी सपर्क से ये ध्वनियां, तथा सघोष रूप **ग्** **द्**, **ब्** सामान्य ध्वनितन्त्र में सम्मिलित हुई। यह भी स्पष्ट है कि संस्कृत में इन ध्वनियों की मूल स्थिति काफी बदली हुई है। शब्द निर्माण प्रक्रिया में **क ग घ्** और **प-ब भ्** केन्द्रों की तुलना में **त द ध** केन्द्र की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण रही है। इंडोयूरोपियन परिवार में भारतीय आर्य भाषाओं की भूमिका पहचानने के लिये, **घ्**, **ध**, **भ्**—इन सघोष महाप्राण ध्वनियों पर ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक होगा। इंडोयूरोपियन परिवार के सन्दर्भ में इन ध्वनियों का विवेचन करते हुए इनके विकास केन्द्रों पर फिर विचार करेंगे। **घ**, **ध**, **भ** ध्वनियों की भूमि पर उत्तरपश्चिमी और पूर्वी छोरों में किस प्रकार के दबाव पड़ते रहे हैं जिनसे इन ध्वनियों में परिवर्तन हुआ, इसका विवेचन भी द्रविड़ भाषाओं के सन्दर्भ में आवश्यक होगा, उससे आर्य द्रविड़ भाषा-समुदायों के सपर्क को समझने में सहायता मिलेगी। यहां इतना कहना काफी है कि संस्कृत में जहां दो महाप्राण ध्वनियों का एकसाथ होना अपवाद मात्र है वहां हिन्दी में ऐसी स्थिति साधारण है यथा संस्कृत में **भभूव** तो **बभूव** हो जायगा पर हिन्दी में **भभकना** **धधकना** जैसे रूप सहज ग्राह्य हैं।

५ विशिष्ट ध्वनिकेन्द्र और हिन्दी जनपद

संस्कृत और आधुनिक आयभाषाओ के ध्वनितत्रो की तुलना की जाय तो एक तथ्य यह सामने आता है कि **च** और **ज** की तुलना मे **झ** का व्यवहार संस्कृत मे बहुत कम होता है जबकि आधुनिक आय भाषाओ मे **च** और **ज** के साथ **झ** का व्यवहार भी खब होता है, विशेषत हिन्दी और मराठी म। इसका कारण यह हो सकता है कि **च् ज् झ्** के केन्द्र मूलत मध्यदेश म नही थे वरन पश्चिम मे या उत्तर पश्चिम मे थे। जिस समय इन केन्द्रो न संस्कृत के विकास को प्रभावित करना शुरू किया, उस समय संस्कृत पर अल्पप्राण ध्वनि प्रकृति वाली भाषाओ का प्रभाव भी बढ़ रहा था। इसलिए संस्कृत म **च ज** का व्यवहार अधिक हुआ, **झ** का कम। आधुनिक आयभाषाओ पर जहा यह अल्पप्राणता वाला प्रभाव कम था वहा संस्कृत की अपेक्षा, **झ** का व्यवहार अधिक हुआ।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान म संस्कृत की **च, ज** ध्वनियो को कल्पित तालव्य **क ग** ध्वनियो का विकास माना गया है। यह कल्पना इसलिए की गई है कि संस्कृत **पञ्च** और लिथुआनियन पेंकि (पाच) जैसे शब्दो का एक ही स्रोत सिद्ध किया जा सके। मूल ध्वनि तालव्य **क**, वह यूरप की भाषाओ मे कठय **क** म घुलमिल गई भारत मे **च** बनी। इस कल्पना स इस तथ्य की व्याख्या नही होती कि संस्कृत मे **च** और **ज** क। व्यवहार अधिक क्या है, आधुनिक आय भाषाओ म **झ** का व्यवहार संस्कृत मे अधिक क्यो है। बरो ने संस्कृत पर अपने ग्रथ म यूरप की भाषाओ से **क** और **ग** वाले ऐसे रूप दिये है जिनके संस्कृत प्रतिरूपो मे **च** और **ज** है पर उन्होने **घ** ध्वनि वाला एक रूप भी नही दिया जिसके संस्कृत प्रतिरूप मे **झ** हो। यूरप की भाषाओ मे **घ** जैसी सघोष महाप्राण ध्वनि है ही नही उदाहरण कहा से देते ? पर कोई आदि इडोयूरोपियन शब्द रूप कल्पित करके उसका **झ** वाला संस्कृत प्रतिरूप दे सकते थे। ऐसा **झ** वाला उदाहरण इस सदभ म उन्हें मिला नही। उन्होने यह मान्यता प्रस्तुत की है कि तालव्य **घ** पहले **झ** मे बदलता है फिर यह **झ** संस्कृत म ह बन जाता है। मान लीजिए यह धारणा सही है। पर इसका कारण क्या है कि **हन्ति** मे तो **झ** ह बन गया पर **जघान** मे वह **झ** फिर **घ** बन गया। **अहति** म तो ह है पर **अघ** मे **झ** के बदले फिर **घ** है। इन रूपो मे या तो **घ** है या ह है **झ** का पता नही है। इससे बरो की उक्त मान्यता निराधार सिद्ध होती है। **घ** ही सघर्षी बन कर ह मे परिणत होता है जैसे मध्यवर्ती **क** तमिल म अब भी अनेक व्यक्तियो द्वारा ह बोला जाता है, **झ** बदलकर ह नही बनता।

क, ग, घ् के समान भारत मे भी **च ज् झ** के स्वतन्त्र केन्द्र थ। इन केन्द्रो न संस्कृत के ध्वनि केन्द्रो को प्रभावित किया। कल्पित तालव्य **क ग** नही, वास्तविक कठय **क ग** संस्कृत मे—कुछ ध्वनि परिवेशो मे—**च, ज,** रूप धारण करते ह यथा क्रिया की आवृत्ति मे **ककार** के बदले **चकार, गगाम** क बदले **जगाम** रूपो का व्यवहार होता था। ¹कठ्य **क्** ही नही दन्त्य **त्** ध्वनि भी **च** मे बदलती है। **तुद** और **चुद** क्रियाओ का एक

ही अथ है प्रेरित करना। **चतुथ** के समानान्तर संस्कृत **तुरीय** शब्द पुन त च के समीकरण की ओर सकेत करता है। हिंदी के **तेंतालिस, पैंतालिस** रूपो मे **चालिस** की जगह **तालिस** है। यहा चाहे **चालिस** का पूव रूप माने चाहे **तालिस** को, एक बात सिद्ध हो जाती है कि **च** और **त** के समानान्तर **ध** के भी अपने केन्द्र थे।

हिंदी के **मुझे तुझे** रूपो का व्यवहार ब्रजभाषा से लेकर बँगला तक कही नही होता, ये पछाही रूप केवल परिनिष्ठित हिंदी म प्रयुक्त होते है। मराठी के **माझा** (मेरा), **झाला** (हुआ) जसे रूप किसी अन्य आधुनिक आय भाषा मे नही है। इससे यह अनुमान दृढ होता है कि **च ज झ** के केन्द्र पश्चिमी भारत म थे।

मध्य स **माझ** और **सध्या** से **साझ** जैसे अनेक रूप **झ** के पूव रूप **ध** की ओर सकेत करते है। **ध** ध्वनि **झ** म वही बदलेगी जहा सघोष महाप्राण ध्वनिया ग्राह्य होगी। एसा परिवतन आर्येतर भाषाओ म—या उनके प्रभाव से—सभव नही है, क्योकि सघोष महाप्राण ध्वनियो का व्यवहार उनकी प्रकृति के अनुकूल नही है। **घ ध, भ** के समान **झ** का केन्द्र भी आयभाषाओ के प्राचीन केन्द्रो म एक है क्योकि एसी सघोष महाप्राण ध्वनियो का व्यवहार केवल भारतीय आय भाषाओ की विशेषता है। निस्सदेह ये **झ** ध्वनि वाले केन्द्र बहुत समय से **ध** ध्वनि को बदलकर **झ** रूप देते रहे है।

किसी समय यहा जलने जलाने के अथ मे **ध्वर** क्रिया प्रयुक्त होती थी। संस्कृत मे इसके प्रतिरूप **ज्वल** का चलन हुआ, संस्कृत के **अध्वर**(यज्ञ), **अध्वयु** (पुरोहित) शब्दो म वही प्राचीन **ध्वर** क्रिया है। अरबी की **झुर** धातु—**झूर** (सूखा), **झुरान** (उप०)—उसी **ध्वर** का प्रतिरूप है किन्तु जैसे **क** और **ग** च और **ज** म बदलते है, वैसे ही **घ** भी **झ** म बदलता है। **धम** की **घर** क्रिया—वकल्पिक रूप **धा**—से पालि मे **झान** (आग लगना), **झाम** (प्रज्वलित), **झायति** (जलाता है), **झायन** (दाह) आदि रूप बने है। इसी प्रकार प्राकृत **झाय** (भस्म हो चुकी वस्तु), **झाम** (प्रज्वलित), **झापेति**(जलाता है), **झापण** (दाह) आदि रूप है। टनर ने अपने आधुनिक आय भाषाओ के कोश मे ये शब्द दिये है। इनके साथ पजाबी का **झाणी** (मसान) बँगला, उडिया आदि के **झामा** (जली हुई इट) **झाल**(गर्मी) रूप दिये है। हिंदी मे **झावा, झार** जैसे रूप प्रचलित है। इन सबका स्रोत **धर** अथवा **धा** क्रिया थी। संस्कृत के समानान्तर अन्य आय भाषाओ म **झ** वाले क्रिया रूप का व्यापक व्यवहार होता था यह पालि प्राकृत से लेकर आधुनिक आय भाषाओ तक के ऊपर दिये हुए उदाहरणो से सिद्ध है।

यदि संस्कृत के समानान्तर एसी आय भाषाओ का व्यवहार होता था जिनम **झ** एक स्वतन्त्र अक्षर ध्वनि थी—किसी अन्य ध्वनि का रूपान्तर मात्र नही—तो इन भाषाओ के कुछ शब्द अपनी **झ** ध्वनि के साथ संस्कृत म अवश्य आये होग। एसे शब्दो म एक है **झष** जिसका व्यापक व्यवहार **झख मारने** के मुहावरे से प्रमाणित है। **झूडा जूडा, चूडा** ये तीन शब्द एक साथ रखे जायँ तो यह पता लगाने देर न लगेगी कि **झ** वाला रूप ही अधिक प्राचीन है। टनर ने अपने कोश म हिन्दी **झोंटा** के साथ सिंधी **झूडो**, पजाबी **झूडा**, गुजराती **झूडो** दिये है। संस्कृत **चूडा** हिंदी **जूडा** का रूपान्तर है और **जूडा** पजाबी

झूडा का। झोंटा के साथ अवधी भवाधर स्मरणीय है। झूडा, झूडो आदि का पूर्व रूप झौथ प्रतीत होता है, थ→त्→ट्→ड→ड—ऐसा विकास हुआ होगा। झबरा, झँडूले, झाट आदि शब्दों में, झोटा के समान, बाला वाला अर्थ विद्यमान है। टर्नर ने इस संदर्भ में संस्कृत चूल शब्द भी दिया है जो बालों के लिए बँगला में अभी प्रयुक्त होता है। चूडा के समान चूल के मूलरूप में झ् ध्वनि थी। हिंदी जंगल संस्कृत में भी है, पंजाबी झंग, सिंधी झंगु, हिंदी झाँखर झ ध्वनि वाले मूल रूप की ओर संकेत करते हैं। हिंदी झाड झखाड में दो समानार्थी शब्दों को एक साथ रखा गया है। किसी पर झक सवार होती है, यानी उस पर हवा का असर होता है, तब वह झक्की कहलाता है। हिंदी झक्कड—सिंधी झक (तूफानी हवा) आपस में संबद्ध है। संभव है, झंझावात में झंझा और वात समानार्थी हों।

झाकना, झरोखा, झँगा, झडा, झउवा झगडा, झप (झपताल का झप), झाऊ, झाग, झाडना झिल्ली, झींगुर, झील, झुंड, झुकना, झूठ, झेलना, झोंकना ऐसे बहुत से शब्द हैं जो संस्कृत की तुलना में हिंदी तथा अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं में झ् ध्वनि का बहुल प्रयोग सिद्ध करते हैं। स्थानवाचक शब्दों में झूसी और झासी से लेकर नदी वाचक झेलम तक झ् का व्यवहारक्षेत्र दर्शनीय है। ये सारे शब्द वहा बोले जाते हैं जहां ध् का व्यवहार भी काफी होता है। इसलिए घ् ध, भ के समान झ के स्वतंत्र केंद्र की कल्पना तर्कसंगत है।

संस्कृत में च् का प्रयोग काफी होता है किंतु झ का व्यवहार बहुत कम होता है, इसी तरह ट् का व्यवहार तो काफी होता है किंतु ढ का व्यवहार बहुत कम होता है। आदि स्थान में ट विरल है किन्तु शब्दों के अंतिम वर्ण में उसका व्यवहार काफी होता है। जो बातें झ के विरल व्यवहार के बारे में कही गई हैं वे संस्कृत में ढ के व्यवहार के बारे में भी कही जा सकती हैं। मूर्धन्य और तालव्य क्षेत्र मध्य देश के आस परिवृत्त में हैं। मध्य देश की मूल भाषा जिस समय संस्कृत रूप ग्रहण करती है, उस समय उसका ध्वनितंत्र इन दोनों क्षेत्रों से प्रभावित हो रहा है। जिस क्षेत्र में वह संस्कृत रूप धारण कर रही है, वह उत्तर पश्चिम में है और अल्पप्राण अघोष ध्वनियों वाले क्षेत्रों से प्रभावित है। इस कारण तालव्य और मूर्धन्य प्रवृत्तियां अल्पप्राण और अघोष रूपों में अधिक दिखाई देती हैं महाप्राण सघोष रूपों में कम दिखाई देती हैं। संस्कृत में ट् बहुत जगह विशेष ध्वनि-परिवेश में त् का विकास है किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि संस्कृत में उसका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। यदि स्वतंत्र अस्तित्व न होता तो जो भाषाविज्ञानी मूर्धन्य ध्वनियों को पहले द्रविड प्रभाव का परिणाम मानते थे, वे अब उन्हें संस्कृत में स्वतःस्फूर्त विकास का परिणाम न मानने लगते। प्राचीन भारत में आर्य भाषाओं के एक से अधिक केंद्र मानने से यह समस्या दूसरे रूप में दिखाई देती है।

भारत के पूर्वी उत्तरी और पश्चिमी सीमान्तों पर कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां मूर्धन्य ध्वनियों का ही व्यवहार होता हो। यदि बाहर से आने वाले अपने साथ ये ध्वनियां लाते तो अपने मूल निवास में या उसके आस पास इनका कोई चिह्न अवश्य

छोड आते। काल्डवेल ने शक परिवार से द्रविड समुदाय का सम्बन्ध जोडा था पर इस शक परिवार म न ध्वनिया का अभाव है, वे न फिनोउग्रियन समुदाय म हैं, न तुक मगोल समुदाय म। यूरप मे जहा ऐसी ध्वनिया प्रयुक्त होती हैं, वहा शक परिवार की भाषाएँ नही बोली जाती, इडो यूरोपियन परिवार की भाषाएँ बोली जाती है। इन भाषाओ म मूधन्य ध्वनियो का व्यवहार भारतीय भाषाओ की तुलना म अल्प ह, वह भारतीय पद्धति का अवशेष मात्र है। यह तथ्य महत्वपूण है कि इन ध्वनिया का विशेष व्यवहार आय और द्रविड दो ही परिवारो मे विशेष होता ह। यदि आधुनिक आय भाषाओ को देखें ता उनमे द्रविड भाषाओ की तुलना म ऐसी ध्वनिया की भूमिका शब्द निमाण म कही अधिक महत्वपूण है। तमिल म जहा आदि स्थानीय ट का अभाव है, वहा हिन्दी आदि भाषाओ म ऐस बहुत से शब्द है जो ट से आरम्भ होत है और जिनमे यह ध्वनि त का रूपातर प्रतीत नही होती। **टका, टाँग, टागना, टाट, टाडा, टापू टोका, टिकुली, टिकिया टीस, टेंट टेंव टेसू टोकरी टोह टोली टालना, टरकाना, टिकाना, टीपना टेरना टोकना** आदि शब्द सस्कृत से भिन्न उदभव के प्रतीत होत है। सस्कृत के बहुत म शब्दो के प्रतिरूप द्रविड भाषाओ म मिल जात है किन्तु जिन आय शब्दो के आदि स्थान म ट ठ ड ढ ध्वनिया हो उनके द्रविड प्रतिरूप ढूढन मे भी नही मिलत। यदि टवर्गीय ध्वनिया का व्यवहार सस्कृत की अपेक्षा हिन्दी म द्रविड प्रभाव के कारण, अधिक होता तो टकार से आरम्भ होने वाले हिन्दी शब्दो के प्रतिरूप द्रविड भाषाओ मे अवश्य मिलते। वैसे शब्द कोल और नाग भाषाओ म भी उनके मूल शब्द भडार का अश नही है। इसस यह स्थापना तकसगत है कि कवग और चवग के समान टवग का भी एक स्वतन्त्र आय भाषा केन्द्र था। ये सारे केन्द्र एक दूसरे को प्रभावित कर रहे थे। सस्कृत म **टिटटिभ टिप्पण** जैसे शब्दो मे आदि स्थानीय ट का प्रवेश हो चुका ह। जनपदीय आय भाषाओ के विकासकाल म विभिन्न केन्द्रो का परस्पर आदान प्रदान और अधिक होगा।

यह कहना पुन आवश्यक है कि टवग की सभी ध्वनिया का विकास एक ही केन्द्र म हुआ हो, यह आवश्यक नही है। सस्कृत म मूधन्य नासिक्य का जितना व्यवहार होता है, उसकी तुलना म शेष सभी टवर्गीय ध्वनियो का व्यवहार अल्प है। **ठक्कुर, डाकिनी** आदि कुछ शब्दो म आदि स्थानीय ठ और ड दिखाई दत है। हिन्दी तथा अन्य आय भाषाओ मे **ठग, ठढ, ठर्रा ठसक, ठुमरी ठिगना, ठूठ, ठगा, ठेठ ठोकर ठोकना,** और **डग डगर डफला डर डलिया डाँग**(जगल, अवधी म लाठी), **डाँगर, डाल डोल डौल, डेरा, डोकरा** आदि म मूधन्य ध्वनियो की भूमिका देखी जा सकती है। जहा तक इस वग की सघोष महाप्राण ध्वनि का सम्बन्ध है सस्कृत म यह **आषाढ** जैसे कुछ शब्दो को छोडकर अधिकतर दूसरे रूपो म दिखाई देती है जैसे **गुह् से गूढ मुह् स मूढ,** वह् से **ऊढ**। हिन्दी म **ढकना ढापना ढरकना ढूढना ढोर ढेर ढोल, ढिग, ढाक ढर्रा** जसे रूपो की भरमार है। प्रस्तुत नगर सस्कृत स्थ् की सयुक्त ध्वनि हिन्दी मे ठ् हो जाती ह जसे स्थान म **ठाँव**। इसी प्रकार दाह का सम्बन्ध **दाह** म ह, **ढीला** का **शिथिल** म। सस्कृत मे **गूढ,**

मूढ आदि शब्दा म ढ मूल ध्वनि नही है, वह किसी अन्य ध्वनि का रूपान्तरण है। इसके विपरीत आधुनिक आय भापाआ की शब्द निर्माण-प्रक्रिया मे इसकी स्वतन्त्र भूमिका ह। परतन्त्र भूमिका, सस्कृत और हिन्दी दोना म, मूध य नासिक्य की है। सस्कृत मे वह अधिकतर, विशेष ध्वनि-परिवेश म, दन्त्य न का स्थान लेता है। हिन्दी के जिन क्षेत्रो म उसका व्यवहार होता ह, वहाँ वह मुख्य नासिक्य ध्वनि है। यही स्थिति अन्य उत्तर पश्चिमी भापाओं की है।

सस्कृत म प और भ का यथष्ट व्यवहार होता है। फ का व्यवहार वैस ही होता है जैस अन्य वर्गों की अघोप महाप्राण ध्वनियाका। किन्तु सस्कृत मे जहाँ ग ज द की प्रचुरता है, शब्द निर्माण प्रक्रिया म इनकी निर्णायक भूमिका है, वहा पवर्गीय सघोप अल्पप्राण ध्वनि ब् का व्यवहार अत्यन्त विरल है। यूरप की भापाआ मे इस ध्वनि का यथष्ट व्यवहार होना है किन्तु वैसे शब्दा के प्रतिरूप सस्कृत मे बहुत ही कम ह। इस कारण अनेक भापाविज्ञानिया ने सन्देह प्रकट किया है कि शायद आदि इण्डोयूरोपियन भाषा मे यह ध्वनि थी ही नही। भारतीय आय भापा क्षेत्र म, ब्रज मे लेकर बगाल तक, ब की प्रधानता ह। परिनिष्ठित बँगला म इसन अन्तस्थ व को अपदस्थ कर दिया है। ब्रज की तुलना म ब् का व्यवहार अवधी म अधिक होता है। रोचक तथ्य है कि बँगला म तालव्य श के साथ ष का व्यवहार नही होता जब कि सस्कृत म इन दोना की स्थिति सुदृढ है, उनका शुद्ध उच्चारण सुसम्कृत होने का चिह्न है।

ब् ध्वनि मध्यदेशीय आय भापाआ मे थी या नही ? प्राचीन कोसल गण भापा म थी या नहीं ? मेरा मत है कि यह ध्वनि इन भापाआ मे थी। मध्यदेश के पूव म मगध ऐसा क्षेत्र था जिसमे अन्तस्थ व की जगह ब का व्यवहार ही अधिक होता था। मध्यदेश क उत्तर पश्चिमी छोर पर ऐसी भापाएँ हैं जिनम व की प्रधानता है और जो प और ब् का भी अन्तस्थ व का रूप देती है। तमिल मे यह प्रवृत्ति काफी शक्तिशाली ह, वह अनेक शब्दा मे प को व मे बदल देती है। तमिल म जहा ऐसी प्रवृत्ति दिखाई देती है, वहाँ उसका सम्बन्ध उत्तर पश्चिमी आय भापाआ से प्रमाणित हाता है। सस्कृत का भडि जब तमिल म वडि (गाडी) हो जाता है, तब सघाप महाप्राण ध्वनि भ अघोप अल्पप्राण ब मे रूपान्तरित न होकर अद्ध स्वर व बनती ह। सस्कृत वक इसी प्रकार भग का विकास है। वणिज का वणि पूव रूप मे पणि है जिससे पण्य आदि रूप बनत है। आर्यों पर चाह द्रविड प्रभाव के कारण हो, चाह आय भापाआ के केन्द्र-विशेष की शक्ति के कारण हा, व ध्वनि शिष्ट उच्चारण का चिह्न मानी गई।

सस्कृत मे यह स्थिति रोचक है कि अनेक शब्दा के दो वैकल्पिक रूप है, एक मे ब है दूसरे मे व्। बक, वक, बकुल, वकुल, बटु वटु, बत, वत (आश्चयसूचक शब्द), बध, वध, बह, वह (मोर आदि पक्षियो की पूछ), बाण, वाण, बीज, वीज, बहुत, वहुत, इत्यादि। सस्कृत के ब्रह्म और सामन्ती समाज के पवित्र वण ब्राह्मण मे इतनी दृढतापूवक प्रतिष्ठित था कि उसे व अपदस्थ न कर सका। वैकल्पिक

रूपो मे **ब** का व्यवहार उत्तरकालीन संस्कृत मे अधिक दिखाई देता है। जैसे **वसिष्ठ** के दन्त्य **स** को तालव्य **श** करके कुछ लोगो ने **वशिष्ठ** को अधिक श्रेष्ठ कर दिया, वैसे ही अनेक शब्दों में **ब** को अपदस्थ करके **व** के वैकल्पिक रूप द्वारा, कुछ लोगो ने संस्कृत को और सुसंस्कृत बनाया। कोई आश्चर्य नही कि **बिदा** शब्द को **विदा** लिखकर विद्वज्जन उसे संस्कृत बनाते हैं। संस्कृत मे **बुद्धि, बुध, बन्धु, बल, बलि, बाहु, बहु, ब्रू** बध आदि शब्द भंडार का महत्वपूर्ण अंग है। टवर्गीय ध्वनियो की अपेक्षा शब्द निर्माण मे **ब** की भूमिका अवश्य ही अधिक महत्वपूर्ण थी। हिन्दी के कुछ शब्द जो **ब** से आरम्भ होते है संस्कृत मे नही है पर इससे यह सिद्ध नही होता कि प्राचीन काल मे उनका अस्तित्व नही था। बंगाल मे लेकर हरियाणा तक **बोल्** क्रिया का व्यवहार होता है। बहुत ज्यादा बोलने के लिए रूसी मे क्रिया है **बोलतात**। इसका कोई प्रतिरूप संस्कृत मे नही है। अशोक के समय मे उत्तर भारत का शृंखलाबद्ध इतिहास मिलता है। इस बीच स्लावजनो मे ऐसे सम्पर्क का कोई प्रमाण नही है जिससे **बोलना** जैसी क्रिया हिन्दी से रूसी मे जाती या रूसी से हिन्दी मे जाती। यह शब्द भारतीय आर्य भाषाओ मे कम से कम ३०० ई० पू० से प्रयुक्त होता रहा है। **बनाना, बरहा बनरा, बटटा बरोठा, बाना, बिहान, बटोरना, बुझना** आदि शब्द इस संदर्भ मे विचारणीय है। हो सकता है, ये शब्द काफी पुराने हो और इनके साथी दूसरे ऐसे शब्द लुप्त हो गए हो।

हिन्दी मे ऐसे बहुत कम शब्द होगे जिनमे **ब** के स्थान पर **व** कर देने से अर्थ भेद उत्पन्न हो। अवधी मे **वार नहिन** का अर्थ होगा समय नहा है और **बार नहिन** का अर्थ होगा बाल नही हैं। हिन्दी मे **यह वही है** इस वाक्य मे **वही** किसी वस्तु या पुरुष की ओर संकेत करता है **यह बही है** का अर्थ बही-खाते वाली **बही** है। अवधी मे **वारत है** का अर्थ हुआ निछावर करता है **बारत** है का अर्थ होगा जलाता है। कुल मिलाकर हिन्दी और उसकी जनपदीय उपभाषाओ मे **व** से आरम्भ होने वाले शब्द बहुत कम है, जो है वे अधिकतर तत्सम है। संस्कृत मे जो अनुपात **ब** के व्यवहार का है, लगभग वही अनुपात हिन्दी मे **व** के व्यवहार का है। संस्कृत मे भी ऐसे शब्द कठिनाई से मिलेंगे जिनमे **व** की जगह **ब** कहने मे अर्थ भेद पैदा हो। **कुबेर कूबर** (गाडी का जुआ), **कबन्ध** आदि थोडे शब्दो मे मध्यवर्ती **ब** दिखाई देता है। हिन्दी और संस्कृत के ध्वनितंत्र मे यह मौलिक भेद है कि संस्कृत मे **व** की प्रधानता है और हिन्दी मे **ब** की। इस स्थिति से यह निष्कर्ष बहुत जल्दी निकाला जा सकता है कि संस्कृत का **व** भ्रष्ट उच्चारण मे हिन्दी मे **ब** हो गया है। किंतु अखिल भारतीय परिवेश मे इस समस्या पर विचार करें तो एक तथ्य सामने यह आता है कि तमिल, संस्कृत के समान **व** प्रधान भाषा है और कन्नड हिन्दी के समान **ब** प्रधान। तमिल **वड वयल वीचु वॅटटु, वतिर** के कन्नड रूप क्रमश: **बड** (उत्तरी), **बयल** (मैदान) **बीसु** (फेंकना) **बॅटटु**(काटना), **बिदिर** (बांस) हैं। यह कहना अनुचित होगा कि शुद्ध तमिल रूपो को बोल न पाने मे कन्नड भाषियो ने **व** के स्थान पर **ब** को प्रतिष्ठित कर दिया है। कन्नड मे काफी

शब्द व से आरम्भ होते हैं और ये द्रविड समुदाय के शब्द है। अत सभावना इसी की अधिक है कि तमिल शब्दो के जिन प्रतिरूपो मे ब् का व्यवहार हुआ है, वे अधिक पुराने हैं, जैसे कि यह माना जाता है कि तमिल शब्दो म जहाँ प् ध्वनि है, वहा यदि कन्नड प्रतिरूपो मे क है, तो ये कन्नड रूप ही पुराने हैं। हिन्दी **बिरुद** तमिल म **विरुदु** और कन्नड म **बिरुदु** है। **बिरुद** रूप पुराना है। सस्कृत मे **विरुद** और **बिरुद** दोनो रूप स्वीकार किये गये हैं। यदि तमिलभाषी जन मध्यदेश म रहते होते तो उनके प्रभाव से हिन्दी मे **ब्** की अपेक्षा **व** का चलन अधिक होता। पर यह **व्** मूलत उत्तर पश्चिमी ध्वनि है और हिन्दी की अपेक्षा **ब** और **व** का अयविच्छेदक व्यवहार अग्रेजी म अधिक होता है। वॅड (विस्तर) बॅड (ब्याह करना), वॅस्ट (श्रेष्ठ), वॅस्ट (पश्चिम), बॅट (शर्त लगाना), वॅट (भीगा), ऐसे पचीसो जोडे आसानी से मिल जायेंगे। ऐसे जोडे हिन्दी मे नही हैं क्योकि हिन्दी **ब** क्षेत्र की भाषा है, ऐसे जोडे सस्कृत म इसलिए कम होंगे कि *दन्त्य **स** के तालव्यीकरण के समान बहुत से शब्दो के मूल **ब** को **व** म परिवर्तित कर* दिया गया था।

सस्कृत मे ऐसे अनेक शब्द है जिनके क्रिया रूपो म **च ज** का व्यवहार होता है और सज्ञा रूपो मे **क** और **ग** का **त्यज और त्याग, भज और भाग, भुज और भोग, युज और योग, रज और रग अर्च और अर्क, पच और पाक। वाक्य वाच्य भोग्य, भोज्य** जैसे जोडे भी मिलेंगे। यहाँ इस समस्या पर विचार करना है कि मूल ध्वनि कठय थी जिसका तालव्यीकरण हुआ या तालव्य थी जिसे कठय रूप दिया गया। इतना तो विशेष तर्क-वितर्क के बिना माना जा सकता है कि तालव्य और कठय स्पर्श ध्वनियो के केन्द्र आसपास है और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। आधुनिक आय भाषाओ के ध्वनितत्र पर विचार करें तो कभी कभी तालव्य और कठय ध्वनियो वाले ऐसे प्रतिरूप मिलेंगे जिनम एक किसी क्षेत्र विशेष म बोला जाता है और दूसरा अन्य क्षेत्र म। व्रज भाषा मे **भाजत** क्रिया रूप का व्यवहार होता है, अवधी मे इसका प्रतिरूप **भागत** और परिनिष्ठित हिन्दी म **भागता** का चलन है। **भीजत** क्रिया रूप व्रज तथा अवधी म प्रयुक्त होता है, *परिनिष्ठित हिन्दी म **भीगता** रूप ही स्वीकृत है। परिनिष्ठित हिन्दी* का **क्यों** व्रज भाषा म **चों** बोला जाता है, व्रज के प्रभाव से इसका चलन कनौजी मे भी है। व्रज भाषा के उक्त रूपो को देखने से ऐसा लगता है कि सस्कृत मे भी अनेक शब्दो की मूल ध्वनि कठय रही होगी और उसका तालव्यीकरण हुआ होगा। सस्कृत क्रिया **भुज** का प्रयोग हिन्दी मे न होगा पर **भोगना** क्रिया चलेगी। **रज्** क्रिया का व्यवहार नही होता, **रँगना** का चलन है। **लोच्** क्रिया **लोचन** मे तो है पर तुलसीदास न **बिलोक्त** रूप का व्यवहार किया है, **लोचत** या **बिलोचत** का नही। **पच** क्रिया का हिन्दी प्रतिरूप **पकाना** है, पचना पचाना क्रियाएँ भिन्न अर्थ मे प्रयुक्त होती है। ऐसा लगता है कि सस्कृत की अपेक्षा हिन्दी **च ज** और **क ग्** वाले वकल्पिक क्रिया रूप सामने होने पर कठय ध्वनियो वाले रूपो को ज्यादा पसन्द करती है। सस्कृत के निर्माण म विभिन्न जनपदीय भाषा तत्वो के सन्तुलन और समन्वय का प्रयत्न स्पष्ट है, यह काय चाहे

जानबूझकर किया गया हो, चाहे अपने आप हुआ हो।

यह आवश्यक नहीं है कि हर स्थिति में मूल ध्वनि कंठ्य ही हो। अनेक शब्दों में तालव्य ध्वनि को कंठ्य में बदला गया है। पत् क्रिया से पक्षी रूप त → च → क्ष विकासक्रम में संभव होता है। पर भारत के उत्तर पश्चिमी प्रदेश में ऐसा केन्द्र अवश्य था जो कंठ्य ध्वनियों को तालव्य रूप देता था। संस्कृत में क्रिया तालव्य ध्वनि वाली है तो संज्ञा रूप बहुधा कंठ्य ध्वनि वाला होता है। रूसी भाषा में इसके विपरीत कहीं कहीं क्रिया अथवा मूल शब्द में कंठ्य ध्वनि होती है और उसके आधार पर बने हुए शब्द में तालव्य ध्वनि होती है यथा **रुक** (हाथ), **रुच्का** (हत्था, हैंडिल), **रुचनोइ** (हाथ से सम्बन्धित) **दोल्ग** (ऋण), **दोल्झ्नेन** (आभारी), **वेक्** (युग), **वेचनुइ** (शाश्वत)। कभी कभी एक ही क्रिया के दो रूप होते हैं यथा **बेगात बेझात** (दौड़ना)। यहाँ लैटिन और इटालियन भाषाओं का भेद भी उल्लेखनीय है। लैटिन में च ज ध्वनियों का अभाव है। इटालियन भाषा तालव्य स्वरों के परिवेश में लैटिन शब्दों के क ग को च ज में बदलती है। लैटिन का प्रसिद्ध **केन्तुम** (सौ) इटालियन में **चेन्तो** है, लैटिन **गेनितोर** (जनक जननी) इटालियन में **जेनितोरे** है। यहाँ **क्यों** और **चों**, **भीजत** और **भीगत** को याद करें तो विदित होगा कि ब्रजभाषा से मिलती जुलती प्रवृत्ति इटालियन में है। इन दोनों भाषाओं में ओकारान्त शब्द भी काफी हैं, इसलिए तालव्यीकरण की प्रवृत्ति का एक सामान्य उद्गम हो सकता है। कुरुक्षेत्र और मध्य देश की प्राचीन भाषाओं की मुख्य प्रवृत्ति कंठ्य ध्वनियों का व्यवहार करने की थी। जब त द, क्रमश च ज में बदलते हैं तब क, ग, भी क्रमश च, ज में बदलते हैं। तालव्यीकरण का प्रभाव क ग तथा त द, दोनों ध्वनियों के केन्द्रों पर पड़ता है।

विभिन्न व्यंजनों का संयोग संस्कृत ध्वनितंत्र की विशेषता है जैसे **वक्ता**, **दग्ध** **क्षुद्र** आदि रूपों में भिन्न व्यंजन संयुक्त हैं। इन रूपों में कहीं तो दो व्यंजन भिन्न वर्गों के हैं जैसे **वक्ता** में क् और त, और कहीं एक ही वर्ग के हैं जैसे दग्ध में। संस्कृत में ऐसे शब्द काफी हैं जिनमें किसी स्पर्श व्यंजन के साथ अन्तस्थ ध्वनि का संयोग होता है जैसे **क्रम**। इन्हीं के साथ ऐसे रूप हैं जिनमें दो अन्तस्थ ध्वनियों का संयोग होता है यथा **श्री**। संस्कृत धातुओं पर दृष्टिपात किया जाय तो एक तथ्य यह स्पष्ट होता है कि इनमें दो स्पर्श व्यंजनों का संयोग बहुत कम होता है। जैसे एक क्रिया है **उब्ज** (बलपूर्वक कार्रवाई करना)। इसमें ब् और ज् दोनों स्पर्श ध्वनियाँ हैं। इसे अपवाद मानना चाहिए। अधिकतर क्रियाएँ ऐसी हैं जिनमें कोई व्यंजन किसी अन्तस्थ ध्वनि में संयुक्त होता है जैसे **भ्राज** (चमकना)। कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं जिनमें नासिक्य ध्वनि के साथ ऋ स्वर संयुक्त होता है जैसे **मृज** (पोछना)। यहाँ अन्तस्थ व्यंजन र की छाया मात्र है। **व्रज** (आगे बढ़ना) में दो अन्तस्थ व्यंजन संयुक्त हुए हैं। **कुट्ट** (कूटना) जैसा रूप अपवाद है जहाँ एक ही वर्ग के दो व्यंजन संयुक्त हैं। बहुधा एक स्वर और व्यंजन के बीच में अन्तस्थ ध्वनि का व्यवहार होता है यथा **गर्ज** (गरजना) **तर्ज** (धमकाना)। नासिक्य ध्वनियाँ पूर्ण स्पर्श व्यंजन नहीं होतीं वे अन्तस्थ ध्वनियों के समान हैं। इसलिए **क्रुञ्च**, **म्लुच** जैसे रूपों में दो एक

व्यजन सयुक्त हुए है जो पूर्ण स्पर्श नही है। सस्कृत का मूल ध्वनितत्र धातुओ म व्यजना के सयोग की उक्त विशेषनाओ का ध्यान म रखने म समझ म आता है। इन धातुओ क आधार पर बने हुए शब्दो मे दो स्पश व्यजनो का सयोग साधारण बात है किन्तु धातुओ म वसा सयोग अपवाद रूप म होता ह। धातुओ मे एक स्पश व्यजन के माथ या तो अन्तस्थ ध्वनि जुडेगी या नासिक्य, दो पूण स्पश ध्वनिया कम ही सयुक्त होती है। इमके अलावा सस्कृत की बहुत सी धातुएँ, हिन्दी धातुओ के समान, सयुक्त व्यजना के बिना रची गई हैं। **विद** (देखना), **लिख** (लिखना, खरोचना), **शक्** (योग्य होना), **पश** (देखना), **याच्** (मागना) **पूज** (पूजना), **यज्** (यज्ञ करना), **युज** (मिलाना), **भाष** (बोलना), **पत** (उडना), **भ्रद** (खाना), **गद्** (कहना), **दा** या **दद्** (देना), **वद्** (बोलना), **पठ्** (पढना) **बुध** (जानना) आदि सस्कृत के मूल शब्द भडार के **वन, नदी, धरा, नभ, जन, गण, धन नर पुरुष** आदि के समान सयुक्त व्यजना से मुक्त है। इनकी सरचना मे जिस ध्वनितत्र का परिचय मिलता ह वह हिन्दी तथा अन्य आधुनिक आय भाषाओ की ध्वनि प्रकृति स मिलता जुलता है।

सस्कृत क अनक शब्द रूपा म वण-सकोच के कारण सयुक्त व्यजन दिखाई देते है किन्तु उनका पूव रूप ऐमा नही था। सस्कृत म एक क्रिया है **पुर** जिसका अथ है आगे जाना। इससे सम्बद्ध शब्द **पुरस** का अथ है आगे। **पुरा** अर्थात पहले समय मे, इसी से **पुराण पुरातन** आदि शब्द बन है। **पुर** शब्द सज्ञा, क्रिया और क्रिया विशेषण, तीना तरह के अथ देता ह। इस **पुर** का लटिन रूप है **पोरों** (आग, पूवकाल मे)। लैटिन मे ही इसके प्रतिरूप है **प्रो, प्रए**। दोनो का अथ वही है—आग। वण-सकोच के परिणाम-स्वरूप सयुक्त व्यजनो वाले, और उससे पहले के अलग व्यजनो वाले, दोनो रूप लैटिन मे हैं। इसी प्रकार सस्कृत म **पुर** आदि क साथ **प्र** वाला रूप है। **प्रकृति** मे यह **प्र** पूव-काल का अथ देता ह। जिसकी रचना पहले हुई वह **प्रकृति** है। **प्र** से **पुर** का विकास मानन का कोई कारण नही है। **पुर** से **प्र** का विकास, वण-सकोच के कारण, स्वाभाविक है। **पुर** जैसे स्वतत्र शब्द, वण-सकोच की प्रक्रिया के बाद, उपसग मात्र रह गए। ध्वनि-तत्र के विचार से **प्र** का पूव रूप **पुर** हिन्दी की ध्वनि प्रकृति के अनुकूल है। एक दूसरा **प्र** पूणता का अथ देता है। इसका सम्बध **प** क्रिया से है जो स्वय **पूर** का रूपान्तर है।

सस्कृत और आधुनिक आयभाषाओ के ध्वनितत्रो को लेकर बहुत सी बातें कही जा सकती है। इन पर यथाप्रसग आगे विचार किया जायगा। यहा जो कुछ कहा गया है, उससे इतना स्पष्ट हो जाता है कि सस्कृत और हिन्दी के कुछ वाक्यो को मिला कर पढने से इनके ध्वनितत्रो मे जितना मौलिक भेद ऊपर स दिखाई देता है, एतिहासिक विकास की दृष्टि से वह उतना मौलिक है नही। सस्कृत की धातुओ और शब्द मूलो की सरचना पर विचार करन से विदित होता ह कि इस सरचना का आधारभूत ध्वनितत्र हिन्दी के ध्वनितत्र से—विशेषत ब्रज, अवधी आदि जनपदीय भाषाओ के ध्वनितत्र से—मिलता जुलता है। सस्कृत अपन मूल मध्यदेशीय रूप म स्-त् न्-र् ध्वनिया वाली भाषा है, इन ध्वनियो के तालव्यीकरण और मूर्धन्यीकरण की प्रक्रिया बाद म घटित हुई है इस

प्रक्रिया स सस्कृत के मूल ध्वनितत्र म भारी परिवतन हुआ किन्तु यह परिवर्तन धातुओ और मूल शब्द भडार का बहुत कम स्पश कर सका। वण-सकोच के कारण बहुत स शब्दा म जो दो व्यजना का सयोग दिखाई देता है, वह पहले नही था। समवर्गीय व्यजना का सयोग हिन्दी की ध्वनि प्रकृति के विपरीत नही है।

सघोष महाप्राण घ, ध, भ ध्वनिया के स्वतत्र केन्द्र थे, इसी प्रकार च ज आदि तालव्य ध्वनियो के, ट, ड, आदि मूधन्य ध्वनियो के स्वतन्त्र केन्द्र थे। इन केन्द्रो को आय भाषा केन्द्र कहना उचित ह। इन विभिन्न केन्द्रो के घनिष्ठ और सुदीघ सपक क फल स्वरूप सस्कृत के ध्वनितत्र का निमाण हुआ। मध्यदेशीय आय भाषा अपन मूल रूप म तालव्य और मूधन्य ध्वनिकेन्द्रो के प्रभाव स मुक्त थी। बागरू, ब्रज, अवधी आदि जनपदीय भाषाओ क ध्वनितत्रो क विवचन स जो तथ्य सामने आत हैं, उनकी पुष्टि स्वय सस्कृत क ध्वनितन्त्र क विकास विश्लेषण से होती है। इस विकास विश्लेषण की पद्धति यह है कि सस्कृत शब्द भडार क मूल तत्वो को हम एक ओर रखे, इन तत्वो के आधार पर बन हुए शब्द रूपो को दूसरी ओर रखें, फिर दोनो की तुलना करक मूल और गौण का भेद पहचानें, भाषा की मूल ध्वनि प्रकृति और बाद की अर्जित ध्वनिप्रकृति का भेद जानें। यह मल ध्वनिप्रकृति हिन्दी तथा जनपदीय भाषाओ की प्रकृति क अनुकूल है। यह निष्कष प्राकृत अपभ्रश के साथ हिन्दी का सबध जोडन से, हिन्दी को उनके विकास क्रम की एक कडी मानने म नही निकलता, यह निष्कष सस्कृत के मूल रूप को पहचानन से निकलता है।

बोलचाल के स्तर पर हिन्दी, तथा ब्रज से लेकर मैथिली तक की जनपदीय भाषाओ, का सबन्ध सस्कृत स उतना नही ह जितना उसके मध्यदेशीय प्राचीन रूप स है। इस प्राचीन रूप की विशेषताए पहचान कर ही हिन्दी तथा अन्य आधुनिक आय भाषाओ के 'उद्भव और विकास का वैज्ञानिक विवेचन किया जा सकता ह।
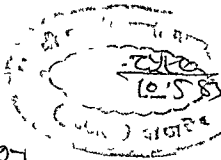
२

आर्य भाषा केन्द्र और हिन्दी शब्दतंत्र

१ प्रस्तावना

आधुनिक आर्यभाषाओं के शब्दतंत्र पर विचार करते हुए अनेक समस्याएँ हमारे सामने आती है। संस्कृत भाषा एक विकासमान प्रक्रिया का परिणाम है। इस परिणाम से पहले भाषा की जो स्थिति थी, क्या उसकी झलक आधुनिक आर्य भाषाओं के शब्दतंत्र में कहीं मिलती है? संस्कृत के जो शब्द अपना ध्वनिरूप बदलकर आधुनिक आर्य भाषाओं में प्रयुक्त होते है, उन्हें तदभव कहा जाता है। यदि संस्कृत के अनेक शब्द अपने पूर्वरूपों का विकास है, तो उन पूर्वरूपों को देखते हुए 'संस्कृत रूप भी तद्भव हुए। तब हिन्दी आदि भाषाओं के तदभवों को क्या कहा जाय तदभवों के तदभव? तद्भवीकरण की प्रक्रियाएँ क्या हैं, क्या इनका सम्बन्ध प्राचीन गणभाषाओं या जनपदीय भाषाओं की ध्वनि प्रकृति से जोडा जा सकता है? तदभवीकरण की इस प्रक्रिया में पालि, प्राकृत, अपभ्रंश की भूमिका क्या है? क्या जैसा तद्भवीकरण प्राकृतों में है, वैसा यूरप की नवीन और प्राचीन भाषाओं में भी है? ध्वनि-परिवर्तन से जो तदभव रूप बनते हैं, उनका सम्बन्ध क्या नाग द्रविड, कोल आदि आर्येतर भाषा परिवारों से भी है? शब्द निर्माण प्रक्रिया की विशेषताएँ कौन सी है? और ये देशज शब्द किस कोटि के है? ये न तदभव हैं न तत्सम, इन्हें आर्यभाषा परिवार की शब्द सम्पदा माना जाय या नहीं? इन समस्याओं के निराकरण पर यह निर्भर है कि हम इन भाषाओं का ऐतिहासिक विकास किस प्रकार प्रस्तुत करते है और उनकी भावी विकास की दिशा किस प्रकार निर्धारित करते हैं।

२ हिन्दी शब्द रूपों की प्राचीनता

पालि और प्राकृतों में कुछ शब्द ऐसे है जो उनका वह पूर्व रूप प्रस्तुत करते हैं जो संस्कृत में नहीं है, इस बात की ओर विद्वानों का ध्यान गया है। पालि में गरु शब्द है और जनपदीय भाषाओं में अब भी गरू बोला जाता है किन्तु संस्कृत में गुरु शब्द है। गाइगर ने पालि भाषा और साहित्य पर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है 'अनेक शब्दों में पालि की स्वर-संरचना संस्कृत से अधिक प्राचीन है।' (पालि लिटरेचर ऐंड लंग्वेज, अनुवादक, बटकृष्ण घोष, कलकत्ता, १९५६, पृष्ठ ८०)। इस

प्रकार गद शब्द गुरु से प्राचीनतर रूप माना गया है। पालि में और अशोक के शिलालेखों में स्थानवाचक इध शब्द मिलता है। संस्कृत में इसका तद्भव रूप इह है। इह से इध का विकास सम्भव नहीं है किन्तु इध से इत्थ, इत, इह आदि रूपों का विकास सहज है। हिन्दी का इधर सीधे प्राचीन इध से सम्बन्धित है, वह इह का तद्भव रूप नहीं है। पूर्वी क्षेत्र में इहर बोला जाता है जो इधर का तद्भव रूप है, अर्थात् तद्भव रूप केवल संस्कृत के आधार पर नहीं बनते, वे किसी एक आधुनिक आर्य भाषा के शब्द रूपों के आधार पर भी बनते हैं। अशोक के शिलालेखों में इध का प्रतिरूप हिद भी है। यह अंग्रेजी के हिदर (यहाँ) की याद दिलाता है। जैसे इध से इधर बना, वैसे ही हिद से हिदर रूप बना। हिद शब्द मूल रूप सिध की ओर संकेत करता है, सि निकटवर्ती वस्तु का सूचक सर्वनाम है, ध वस्तु या स्थान का बोध कराता है। इस प्रकार सिध मूल रूप के दो तद्भव हुए इध और हिद। इह रूप इध से बना यानी तद्भव का तद्भव है। अशोक के शिलालेखों में हदिश, हडिस शब्द हैं जो संस्कृत के ईदृश का प्रतिरूप हैं। हडिस, हदिश का मूलरूप होगा सेदृश। से सर्वनाम है, दृश का तद्भव रूप दिश डिस है। इस प्रकार प्राकृत रूप आधा तो संस्कृत के आधार पर बना और आधा संस्कृत से भी पहले के मूलरूप के आधार पर। अशोक के शिलालेखों में श्रत, श्रत्र के प्रतिरूप हता, हत से सर्वनाम जोड़कर बनाये गए हैं।

पालिभाषा में एक क्रिया घस् है जिसके समानान्तर संस्कृत रूप ग्रस है। भक्षण करने के अर्थ में इन क्रिया रूपों का व्यवहार होता था। पशु जिसे खाते हैं, वह घास है, घास शब्द घस क्रिया से बनेगा, ग्रस् से नहीं। संस्कृत ग्रस के आधार पर ग्रास (भोजन) शब्द बना। अंग्रेजी में यह घास के अर्थ में प्रचलित है। हिन्दी घास का सम्बन्ध घस से है। ग्रस् से घस का विकास अस्वाभाविक है। प्राकृतों में अघोष महाप्राण ध्वनियाँ तो सघोष महाप्राण हो जाती हैं किन्तु सघोष अल्पप्राण ध्वनियाँ सघोष महाप्राण नहीं बनतीं। प्राकृतों में प्रवृत्ति है मध्यवर्ती अघोष ध्वनि को सघोष करने की, सघोष ध्वनि में महाप्राणता जोड़ने की प्रवृत्ति उनमें नहीं है। इस प्रकार घस क्रिया से तो ग्रस रूप बन सकता है किन्तु ग्रस से घस जैसा रूप नहीं बन सकता। प्राकृत में एक शब्द णिघस था जो संस्कृत निकष का प्रतिरूप है। यहाँ भी क बदल कर घ हो जाय, इसकी सम्भावना नहीं है, महाप्राणता और सघोषता के लोप से निकष रूप अवश्य बन सकता है। अवधी में एक शब्द है नीघस। यह विशेषण उस आदमी के लिए प्रयुक्त होता है जिस पर बात का असर न होता हो यानी खूब घिसा हुआ हो। इसका सम्बन्ध निकष से नहीं निघस जैसे रूप से होगा।

हिन्दी का सुपरिचित शब्द घर बहुत पुराना है। घर का मूल अर्थ है अग्नि। जिस स्थान में अग्नि रखते थे, उसे भी घर कहने लगे। संस्कृत में हर्म्य शब्द घर्म्य का रूपान्तर है। इसका अर्थ है घर और इसकी व्याख्या उसी तरह की जा सकती है, घर्म्य घर्म स्थान है जहाँ घर् अथवा अग्नि रखी जाती थी। घर शब्द निवास स्थान के अर्थ में अग्नि-पूजक कुरुजनों का शब्द होना चाहिए। संस्कृत शब्द हय मूल रूप घय का

पीने वाले को कहते है। यहाँ घु क्रिया की महाप्राणता का लोप हुआ है। क्रिया के मूल रूप की सघोष महाप्राण ध्वनि हिन्दी मे है। हिन्दी शब्द **भूरा** पहले **भुर** या **भुरु** था। प्रथम वर्ण की आवृत्ति से **भभरु** रूप बनेगा। वर्ण सकोच से **भभ्रु**, फिर आदिस्थानीय भ को अल्पप्राण बनाकर सस्कृत का **बभ्रु** रूप निश्चित हुआ। सस्कृत **बभ्रु** के आधार पर हिंदी **भूरा** का विकास दिखाना सभव नही है। **बभ्रु** रूप मे प्रथम वर्ण की आवृत्ति हुई है यह अग्रेजी के **ब्राउन** रूप से भी ज्ञात होता है जिसमे आदि वर्ण की आवृत्ति नही है। इस प्रकार हिन्दी मे अनेक शब्द है जो प्राचीन मध्यदेशीय भाषा के मूल रूपो से सीधे जुडे हैं।

हिन्दी तथा आधुनिक आर्यभाषाओ मे अनेक ऐसे शब्द हैं जिनके प्रतिरूप यूरुप और मध्य एशिया की प्राचीन और नवीन भाषाओ मे मिलते हैं। प्राय देखा जाता है कि ऐसे शब्दो के प्रतिरूप सस्कृत मे नही है। तुलसीदास **अकनि** क्रिया का प्रयोग करते हैं। अन्य आधुनिक आर्यभाषाओ मे भी सुनने का अर्थ देने वाली इस क्रिया का व्यवहार होता है। ग्रीक भाषा मे एक क्रिया है **अकोउओ** जिसका अर्थ है सुनना। **अकनि** और **अकोउओ** परस्पर सम्बद्ध है यद्यपि सस्कृत मे **अक** जैसी क्रिया नही है। माना जाता है कि आर्यो के भारत मे आने से पहले ग्रीक शाखा आदि इन्डोयूरोपियन भाषा से अलग हो गई थी। **अकोउओ** प्राचीन ग्रीक शब्द है, आधुनिक ग्रीक नही। इस तरह के शब्दो के साम्य से सिद्ध होता है कि इन्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओ का विकास समझने के लिए उनका तुलनात्मक अध्ययन केवल सस्कृत से नही, आधुनिक आर्यभाषाओ से भी करना चाहिए। अनेक ग्रीक शब्द आर्यभाषाओ मे भी नही मिलते किन्तु आर्येतर भारतीय भाषाओ मे मिलते है, इसलिए ऐसे अध्ययन मे समस्त भारतीय भाषायी परिवेश को ध्यान मे रखना उचित है। ग्रीक भाषा मे एक शब्द है **नरोस** (प्रवहमान)। कन्नड मे स्नायु के लिए **नर, नरवु** शब्द है। अनुनासिक ध्वनि जोड कर तमिल मे **नरम्बु** रूप बना। पर्जि मे **नेरुव** अनुनासिक हीन रूप है और कोत भाषा का **नब** रूप अग्रेजी के **नव** से बिलकुल मिलता जुलता है। कुडुख **नरी** शब्द सस्कृत **नाडी** का प्रतिरूप है और मल्तो मे **नरु** शिराओ का अर्थ देता है। स्पष्ट ही ये सारे शब्द ग्रीक **नरोस्** से जुडे हुए है। हिन्दी **नाली** अवधी रूप मे **नारी** या **नरिया** पुल्लिग रूप **नरवा** व्रजभाषा का **नार** या **नारो** इसी शृखला मे आते हैं। स्नायुओ शिराओ मे रक्त प्रवाहित है, इसलिए उनका ऐसा नामकरण हुआ। जहा पानी बहता है, उसके लिए भी वैसे ही शब्द का प्रयोग हुआ। क्या **नदी** और **नरी** शब्द परस्पर सबद्ध है? **नद** से **नदी**। **नद** का अर्थ शब्द करना है जिससे **नाद** शब्द बनता है किन्तु एक अन्य क्रिया **नद** भी थी जिसका अर्थ था बहना। इसी के परिवर्तित रूप **नर्** से ग्रीक, द्रविड और हिन्दी जनपदीय भाषाओ के शब्द बने। **नारी, नरी नाडी**, आदि शब्द उस प्राचीन काल की ओर सकेत करते है जब भारतीय आर्य, ग्रीक और द्रविड परस्पर सम्पर्क मे भाषातत्वो का आदान प्रदान कर रहे थे। इस तुलनात्मक अध्ययन से **नदी** शब्द की व्युत्पत्ति का ज्ञान होता है **नदी** और **नाडी** के परस्पर सम्बन्ध का पता चलता है। अवधी मे एक शब्द है **नधाव**। **नधाव** उस स्थान को कहते हैं

जहाँ किसी तान से नाली खोदकर पानी इकट्ठा करते है, फिर वटी से उस खेत मे उली चते हैं। दो वहुत वडे सूपा को जोड दिया जाय तो उससे वडी जैसी चीज बनेगी। दोनो तरफ रस्सी वाध देत है, नधाव मे पानी भरकर दोना तरफ खडे हुए आदमी उसे खीचते है और खेत की नाली मे पानी वहा देत हैं। नधाव वह स्थान नही है जिसम पानी वहता है, उसमे पानी वहकर आता है और फिर उसमे वहाया जाता है। प्रवहमानता स उसका सम्वन्ध है यद्यपि नदी के समान सीधा सम्बन्ध नही ह। सम्भव ह मूल क्रिया नध् रही हो जिसका अथ था वहना। इसका एक रूपान्तर **नद** हुआ जिसमे **नद**, नदी शब्द बने, दूसरा रूपान्तर नह हुआ जिसमे अरवी का शब्द **नहर** बना। **नदी** और **नहर** आपस मे सम्वन्धित है इसका ज्ञान अवधी शब्द **नधाव** मे स्थित **नध** क्रिया से होना है।

पेंदा, **पेंदी** जैसे शब्द संस्कृत मे नही है किन्तु ग्रीक भाषा मे **पेज** शब्द का वही अर्थ है जो इन हिन्दी शब्दो का है। ग्रीक भाषा मे द→ज्→ज रूपान्तर हुआ है। लैटिन म गुदा के लिए **पोदेक्स** शब्द है जो हिन्दी **पोद** से मिलता जुलता है। लैटिन **पेदो** हिन्दी पादना क्रिया का प्रतिरूप है। ग्रीक भाषा म **पेर्दो**, **पोर्दो** रूप ह। अग्रेजी म इन्ही स **फार्ट** रूप बनता है। ग्रीक भाषा म कुएँ के लिए एक शब्द **पिगी** है और भरने के लिए **पिगाजो** शब्द है। य हिन्दी **भीग** या **भीगा** से सम्बद्ध जान पडत ह। **भीग** शब्द, संस्कृत म न मिलन पर, देशज कहा जायगा किन्तु ग्रीक प्रतिरूप उसे प्राचीन सिद्ध करता ह। **बाट** और **बटोही** का सम्बन्ध संस्कृत **वत्म** म नही, **वत** से है, जैसे **पो** म पथ, वसे **वर्** स **वत**। ग्रीक भाषा मे **बाट** स मिलता जुलता **बातोन** शब्द है। जिस स्थान से होकर मनुष्य आ जा सके, उसे **बातोस** कहते थे। **वत** और **बातोस** दोना का ही सम्बन्ध गति सूचक **वर** क्रिया म है। **वर** और **वा** दोना रूपा मे यह क्रिया द्रविड भाषाओ मे प्रयुक्त होती है। अत **वा** के रूपान्तर **बा** स भी **बाट** और **बातोस** की रचना हो सकती है।

जानवरो को जिस रस्सी से बाधत ह उसे **पगही** कहत ह। सिर पर जो बाधी जाए वह **पाग** या **पगडी** होती है। इन शब्दा का सम्बन्ध **पश** क्रिया से है जिससे संस्कृत शब्द **पाश** बनता है। जो वाधा जाय वह **पशु** है। यह **श** क मे परिवर्तित हुआ और फिर सघोष हुआ। तव **पग** क्रिया से **पाग पगही** शब्द बने। लटिन म एक क्रिया ह **पगो** जिसका अथ है बाधना, निश्चित करना। क्रिया मूल **पग** म नासिक्य ध्वनि जुडने पर **पगो** रूप बना। **पागुस्** शब्द का अथ हुआ देहात का निश्चित भाग गाव या जिला, फिर गाव के रहने वालो को **पागानुस** कहने लगे। ये **ग** वाले रूप या तो आधुनिक आय भाषाओ म है या लटिन और ग्रीक म ह। ग्रीक क्रिया **पेगनुमि** का अथ है गाडना वाधना, निश्चित करना। इसी से अग्रेजी का **पेग** शब्द बना ह **पेग** अथात खूटा जिससे कोई बाधा जाय या जिसे धरती म गाडा जाय। इन सारे शब्दो का मूलरूप **पश** (**पस**) है जो संस्कृत **पशु** और **पाश** म विद्यमान है। दिलचस्प बात यह है कि केन्तुम भाषाओ के समान आधुनिक आयभाषाओ म कण्ठय ध्वनि वाला रूप है और संस्कृत मे तालव्य **श** वाला। धान से दाने अलग करने पर जो सूखे पौधे बचते है, उन्ह अवधी मे **परा** कहत है। लैटिन मे भूसे के

लिए इससे ठीक मिलता जुलता शब्द **पलेश्न** है। इसका ग्रीक प्रतिरूप **पलूनो** है जिसका अर्थ छिटकना है। इससे अधिक मिलता जुलता ग्रीक शब्द **पुरोस्** है जिसका अर्थ है गेहूँ। लिथुआनियन भाषा में भी गेहूँ के लिए **पुरइ** शब्द है। संस्कृत में पल शब्द का एक अर्थ भूसा बताया गया है। ये सारे शब्द परस्पर सम्बद्ध जान पड़ते हैं। लैटिन और संस्कृत के लकार वाले रूप र वाले भारतीय रूपों के आधार पर बने हैं।

मोची जिस चीज से चमड़ा काटते हैं, उसे **रापी** कहते हैं। यह ग्रीक भाषा के **हफिस** शब्द से मिलता है। इसका अर्थ है सुई। डोरिक बोली में इसका रूप हफिस है। र के साथ ह का प्रयोग अतिरिक्त महाप्राणता के कारण है। **रपि, रापि** जैसा शब्द काटने या सीने के उपकरण के लिए प्रयुक्त होता था। ग्रीक भाषा में डंडे के लिए एक शब्द **हब्दोस** है। जब तक लबदा की व्युत्पत्ति जब तक संस्कृत से सिद्ध न हो तब तक उस ग्रीक शब्द का जोटीदार मान लेना चाहिए। ब्रजभाषा में इसे **लबेदा** कहते हैं। तुलसीदास ने सुअर नाम के जन्तु के लिए **कोल** शब्द का प्रयोग किया है। यह शब्द लिथुआनियन भाषा में भी है और उसका वही अर्थ है। रूसी में **कोल** नुकीले डंडे को कहते हैं। सम्भव है, सुअर की छाती में नुकीला डंडा गाड़ कर उसे मारने की पुरानी प्रथा के कारण सुअर और पैने डंडे के लिए एक ही शब्द का प्रयोग हुआ हो। रूसी भाषा में **चायात** क्रिया का अर्थ आशा करना है। **तुम क्या चाहते हो,** इस हिन्दी वाक्य में **चाह** क्रिया का मिलता जुलता अर्थ है। **चाह** का एक अर्थ देखना भी है। सम्भव है, यही मूल अर्थ हो। रूसी भाषा में एक क्रिया है **बोलताति** जिसका अर्थ है बहुत बोलना। इससे बातूनी के लिए शब्द **बोल्तून्** बना। इसका सम्बन्ध हिन्दी की **बोलना** क्रिया से है। रूसी क्रिया **झेवात** का अर्थ है चबाना जुगाली करना सना शब्द **झेवानिये** है। इसका सम्बन्ध मराठी **जेवणें,** हिन्दी **जीमना ज्योनार** आदि से है। टीन के लिए रूसी शब्द **झेस्त** हिन्दी **जस्ता** से सम्बन्धित है। **चेर्नेत, चेर्नोत** क्रियाओं का अर्थ है काला करना। हिन्दी **काला,** अवधी रूप **कार** तमिल **करु** (काला), इनके किसी प्रतिरूप **कैर** से, तालव्यीकरण वाली प्रवृत्ति के प्रभाव से रूसी रूप बना है। रस या शरबत के लिए रूसी **पतोका** अवधी **पतोई** की याद दिलाता है। गन्ने के रस को गर्म करते समय **पतोई** निकलती है। रूसी क्रिया **पलीत** का अर्थ जलाना है। इसका सम्बन्ध **पलीता** से है। **झर** शब्द ऊष्मा का सूचक है, गर्म करने या भूनने के लिए रूसी में **झरीत** क्रिया है। हिन्दी **झरसना झार,** रूसी **झर** का एक ही स्रोत है **घर**।

जर्मन भाषा के **जागेन** का अर्थ है कहना। इसी से अंग्रेजी क्रिया **से** (कहना) बनी है। मराठी में **सांगणें** क्रिया इसी गोत्र की है। अंग्रेजी शब्द **सागा** गाथा के अर्थ में, इसी वर्ग का है। भारत के उत्तर में किसी समय तुखारी भाषा का व्यवहार होता था। हित्ती के समान यह भी काफी प्राचीन भाषा मानी जाती है। इसमें एक शब्द है **तक** जो कान की बाली के लिए प्रयुक्त होता था। अवध के गाँवों की स्त्रियाँ कानों में एक सस्ता आभूषण पहनती हैं जिसे **तर्की** कहते हैं। इस शब्द का चलन ब्रज में भी है। सम्भव है **तर्की** शब्द तुखारी **तक** का स्त्रीलिंग रूप हो। पुरानी आयरिश भाषा में **बेल्** शब्द

कुल्हाडी के लिए प्रयुक्त होता था। **बेल्चा बेलू** जैसे शब्द से निर्मित हुआ है। निश्रुआ नियन में **तूलस** बड़ी संख्या की सूचना देता है। हिन्दी में किसी चीज को **तूल** देने का जो मुहावरा है, वह इस **तूलस्** से सम्बन्धित है।

हेमचन्द्र ने उन देशी शब्दों की सूची बनाई जिनके संस्कृत मूल रूप वह खोज न पाये थे। ऐसे शब्दों में एक है **उब्भम**। इसका अर्थ वही है जो संस्कृत **ऊध्वम** का है। **उब्भम** रूप **ऊम्भम** जैसे मूल शब्द से बना है। **ऊध्वम** का प्रतिरूप **ऊम्बम** उस समय रहा होगा जब **घ्** और **भ** सघोष महाप्राण ध्वनियाँ स्वच्छन्द संचरण की अवस्था में थीं। जिस केन्द्र में **भ** ध्वनि का विकास हुआ, उसकी भाषा में **ऊब्भम** रूप था और जिस केन्द्र में **घ** ध्वनि का विकास हुआ उसमें **ऊध्वम** बोलते थे। देशी नाममाला में नींद आने के लिए **उघ** शब्द है। हिन्दी **ऊघना** इसी **उघ** की सन्तान है। यह उन शब्दों में है जिनका व्यवहार संस्कृत में नहीं था और इसलिए जो देशज कहलाए। देशी नाममाला में कहने, बोलने के लिये **चव** क्रिया दी हुई है। उसमें **चवाव** शब्द बना। देशी नाममाला के शब्द तेरहवीं सदी में एकत्र किए गए थे। ये तो देशज थे, जो तद्भव कहलाते हैं वे भी काफी पुराने हैं। अशोक के शिलालेखों में **होति** होतु क्रिया रूप आए हैं। हिन्दी जनपदों की **हो** क्रिया सम्राट अशोक के समय में प्रयुक्त होती थी। इसी प्रकार अशोक के शिलालेखों के **देखति** रूप में हिन्दी की देख क्रिया विद्यमान है। संस्कृत **न्यग्रोध** का तद्भव रूप **निगोह** अशोक के शिलालेखों में है। इस शब्द का अब व्यवहार कम होता है किन्तु लखनऊ जिले में **निगोहा** नामक स्थान उस समय की याद दिलाता है जब अवध के गाँवों में तद्भव रूप **निगोह** का चलन था। **बभन, सेठ** जैसे तद्भव रूप अब भी प्रयुक्त होते हैं, और ये अशोक के शिलालेखों में हैं, अतः कम से कम दो हज़ार साल पुराने हैं।

पालि में उत्तम पुरुष सर्वनाम का कर्ता कारक बहुवचन रूप **मयम** है। जो लोग हिन्दी **मैं** को संस्कृत **मया** से उत्पन्न करते हैं, वे पालि रूप **मयम** पर विचार करें। यहाँ शब्द मूल **मय** है जो **मघ → मह** का रूपान्तर है। इस **मय** का कारण कारक में एकवचन रूप संस्कृत **मया** होगा। वही मूल **मय** पालि **मयम्** में है। **मया** से **मयम** रूप नहीं बना, **मय** से **मया** बना है। उसी प्राचीन **मय** का रूपान्तर हिन्दी **मैं** है।

पालि में बहुत से शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी तथा अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं में ज्यों के त्यों प्रयुक्त होते हैं। **मोर** शब्द पालि में है और भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में आया है। **तेरस, नहान** (स्नान), **साहु** डाह, **सत्तरि, भाम** (जला हुआ) ऐसे ही प्राचीन शब्द हैं। मानक भाषाओं में तत्सम या अर्धतत्सम रूपों का चलन अधिक होता है। जनपदीय भाषाओं में पालि के तइस (तैसा), पहिन (पहला) जैसे रूप अब भी प्रयुक्त होते हैं। **कित्तक एत्तक** जैसे पालि शब्द **कित्ता, इत्ता** आदि रूपों में अब भी बोले जाते हैं। पालि में बरसात के लिए **पावुस** शब्द मराठी में ऐसा ही प्रयुक्त होता है। समास-रचना में प्रथम शब्द का अन्तिम ह्रस्व स्वर दीर्घ कर दिया जाता है। इस तरह **सखि + भाव = सखीभाव** शब्द बना। इसी प्रवृत्ति के कारण **विश्व** और **मित्र** का समास रूप **विश्वामित्र**

हुआ। प्राकृत का अ धयार रूप अवधी अँध्यार, हिन्दी अँधेरा से सम्बद्ध है। तइस और पहिल जैसे रूप भी अवधी म बोले जाते हू। पालि और प्राकृत मे बोल चाल की भाषाओ के अनेक भाषातत्व समाहित है यद्यपि वे बोलचाल की भाषाएँ नही थी। पालि म शब्दो के ओकारान्त रूप ब्रज, राजस्थान आदि पश्चिमी क्षेत्र से उसके सम्बन्ध की ओर सकेत करते है। प्राकृतो मे इसस भिन्न प्रवृत्ति है। इसके सिवा, पालि से भिन्न, प्राकृतो मे णकार की भरमार है। ऐसा लगता है कि प्राकृतो मे पजाब और हरियाणा की बोलियो की नकल की गई है। यद्यपि पालि और प्राकृत बोलचाल की भाषाएँ नही थी, फिर भी उनम समकालीन भाषाओ के बहुत से तत्व आ गए है। इनमे वे अनेक तदभव रूप हैं जो आधुनिक भाषाओ म अब भी प्रयुक्त होते है। इनके सिवा अनेक शब्द ऐसे है जो सस्कृत म प्रयुक्त नही हुए किन्तु पालि और प्राकृतो मे है और आधुनिक भाषाओ मे भी हैं। इनसे ज्ञात होता है कि इन आधुनिक भाषाओ के शब्द रूप कितने पुराने हैं। इसका यह अर्थ नही है कि आधुनिक भाषाएँ अपने वतमान रूप म बहुत पहले गठित हो गई थी, इसस केवल इतना सिद्ध होता है कि आधुनिक आयभाषाओ का गठन जिन उपकरणो म हुआ है व काफी पुराने है।

तदभवीकरण की प्रक्रिया मे अधिकतर ध्वनिपरिवतन की ओर ध्यान दिया जाता है। यह उस प्रक्रिया का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष अथ से सम्बधित है। हिन्दी म ऐसे अनेक शब्द है जिनम ध्वनिपरिवतन के साथ अथपरिवतन भी हुआ है। अथपरिवतन की प्रक्रिया के उदाहरण सस्कृत मे भी है। स्तम्भित और स्तम्भ दोनो रूप स्तम्भ क्रिया स बने ह। स्तम्भ खम्भे के लिए प्रयुक्त होता है, वैसे जो चीज भी खडी हो, वह स्तम्भ ह। स्तम्भित म चकित रह जाने का भाव है खभे से उसका कोई सम्बन्ध नही है। स्तम्भ का नासिक्य ध्वनिहीन रूप स्तभ् है। इसमे स्तब्ध शब्द बना जिसमे चकित, निःशब्द होने का भाव ह। किसी समय स्तब्ध के समानान्तर स्तध शब्द का भी चलन था। स्तब्ध के समान स्तध का मूल अथ था खडा हुआ। अग्रजी स्टैण्ड म खडे होने वाला अथ बना हुआ है। किन्तु प्राचीन आय भाषाओ मे स्तध का अथ विकास हुआ, जस स्तब्ध मे निःशब्दता का भाव जुडा वैसे ही स्तध मे शीत का, जडता का भाव जुड गया। आदमी चकित हो जाए किसी भाव से अभिभूत हो जाय तो उसस बोला न जायगा, वह जहा का तहा खडा रह जायगा। ज्यादा सर्दी म ठिठुरने लगा तो भी जहा का तहा खडा रह जायगा। एक प्रकार की स्थिरता या जडता स इन तीनो भावो का सम्बन्ध है इसलिए एक ही अथ देने वाली एक ही मूल क्रिया स इन तीन रूपो का विकास हुआ। अब स्तब्ध स्तम्भ और स्तम्भित तो सस्कृत म हैं पर स्तध नही है और शीत का भाव व्यक्त करने वाला उसका कोई रूप इडोयूरोपियन भाषाओ म नही है। हिन्दी शब्द ठड इसी स्तध का तदभव रूप है। केवल ध्वनि परिवतन नही हुआ, स्तध शब्द का खडे होने वाला मूल अथ भी बदल गया। स्तध शब्द भारत म प्रचलित ही नही था वरन शीत का भाव अर्जित कर चुका था, इसका प्रमाण तमिल भाषा का तन्नीर शब्द है। तन्नीर अर्थात ठडा पानी, बोलचाल म हर तरह के पानी को तन्नी कहने लगे हैं बस

नीर शब्द स्वतत्र रूप म भी तमिल मे प्रचलित है। त नीर का तन स्त-ध का अवशेष है। मूधन्यीकरण प्रवृत्ति का प्रभाव पडन से पहले स्त ध और नीर ने मिलकर तमिल त नीर को ज-म दिया। मूध-य ध्वनिया वाला ठढ रूप बाद को बना और वैसे ही बना जैसे ठाढ।

३ तदभवीकरण की प्रक्रिया

तदभवीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन करते हुए भाषाविज्ञानी सस्कृत प्राकृत, अपभ्रश की मजिलें पार करते हुए आधुनिक भाषाओं तक आत हैं। जिस तरह के ध्वनि-परिवतन प्राकृता मे मिलते हैं वे तदभवा की विशेषता माने जात है। जिन ध्वनि-परिवतना मे प्राकृता के तदभव रूप बनत है उनका कारण द्रविड या कोई अस्पष्ट आर्येतर प्रभाव मान लिया जाता है। जो विशुद्ध इ-डोयूरोपियन भाषा थी, वह पहले ही आर्येतर प्रभाव से सस्कृत बनी अपनी पूव शुद्धता उसने खो दी, और जब अधिक आय-अनायरक्त सम्मिश्रण हुआ, तब प्राकृता का ज-म हुआ और भाषा म तदभव ही तद्भव रह गए। पुन प्राकृत के काफी तदभव-रूप गायब हो गए और आधुनिक आय भाषाओं म तत्समो को प्रतिष्ठा मिली। इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि प्राकृता म जिस तरह के ध्वनिपरिवतन दिखाई देत है वे प्राकृता के लिए अनोखे नही है वे केवल भारतीय भाषाओं मे नही होते, वैसे अधिकाश परिवतन इ-डोयूरोपियन परिवार की भाषाओ म अ-यत्र भी होते हैं। प्राकृतो की कृत्रिमता इस बात म नही है कि वसे ध्वनिपरिवतन भाषाओं म होत नही है या भारतीय भाषाओं म हुए नही है। कृत्रिमता इस बात म है कि इन परिवतना को रूढिबद्ध किया गया और फिर, साहित्यिक स्तर पर, अ य बहुत से शब्दो मे वैसे ही रूढिगत परिवतन किए गए। प्राकृतो मे जैसा ध्वनिपरिवतन दिखाई देता है, वैसा परिवतन यूरप की भाषाओं मे भी हुआ है, इस बात पर ध्यान देने से तदभवीकरण की प्रक्रिया समझने मे सहायता मिलेगी। पिशल ने प्राकृत भाषाओं का जो व्याकरण लिखा है, उसके आधार पर ध्वनिपरिवतन सम्ब-धी कुछ विशेषताओं का उल्लेख यहा किया जाता है।

सस्कृत म एक ऋ स्वर माना गया है। इ-डोयूरोपियन भाषाओं के विशेषज्ञ इस आदि इ-डोयूरोपियन भाषा का स्वर भी मानते है। ब्रुगमा ने अपन ग्रथ मे इस स्वर का व्यवहार केवल सस्कृत मे होत बताया है, अ-य भाषाओ मे या तो अर इर उर जसे रूपान्तर हैं या केवल र रह गया है। प्राकृतो की एक विशेषता यह बताई गई है कि इनमे ऋ स्वर का अभाव है, तो यह विशेषता सस्कृत छोडकर इ-डोयूरोपियन परिवार की अ-य सभी भाषाओ मे विद्यमान है। प्राकृतो मे सस्कृत का ऋ स्वर बदलकर कभी कभी उ हो जाता है ज से सस्कृत पृथ्वी प्राकृत पुहवि बना। सस्कृत शब्द वक पुरानी जमन मे वुल्फस् है पित शब्द का सम्प्रदान कारक म बहुवचन रूप फद्रुम था, ब्रोथ् लबो भी पुरानी जमन का शब्द है जिसका अथ है भ्रात प्रेम। इसमे ब्रोथ् तो भ्रात का प्रतिरूप है और लुबो का सम्बन्ध लुभ् किया स है। ऋ स्वर उ मे बदलता है केवल प्राकृता म

नही, पुरानी जमन मे भी। उस भाषा के उद्धत उदाहरण ब्रुगमन के ग्रन्थ से लिए गए है।

प्राकृत म ऋ स्वर कभी इ म बदलता है जैसे **शृगाल** से **सियाल**, **हृदय** स **हिअअ**। सस्कृत **मृत्यु** का लिथुआनियन प्रतिरूप **मिर्तिस्** है, **कृमि** का प्रतिरूप उसी भाषा म **किर्मिस** है। यहा प्राकृतो के समान ऋ स्वर इ म परिवर्तित हुआ है। प्राकृतो मे सस्कृत ऋ के स्थान पर अ स्वर का व्यवहार भी होता है यथा **कृत** से **कड**, **वृषभ** स **वसभ**, **वसह**। सस्कृत **हृदय** के ग्रीक प्रतिरूप **कर्दिअ, क्रदिअ** है, सस्कृत **तृप्यामि** का ग्रीक प्रतिरूप **तर्पोमैय** है। यहा ग्रीक भाषा म स्वर परिवतन प्राकृतो के समान हुआ है।

कहा गया है कि प्राकृतो मे **अइ, अउ** सयुक्त स्वरो के स्थान पर **ए, ओ** का चलन हुआ, इस प्रकार **ऐतिहासिक** का रूपान्तर **एदिहासिअ** **कौशिक** का रूपातर **कोसिक** हुआ। यूरप की प्राचीन भाषाओ मे ऐसे वैकल्पिक रूप एक ही भाषा मे मिलते हैं यथा लटिन म **कउपो—कोपो** (छोटा दूकानदार), **कउदा-कोदा** (पूछ), **कउदेक्स—कोदेक्स** (पड का तना) **अउरीकुला— ओरीकुला** (कान)। ग्रीक भाषा का **दइमोन** (देव) अग्रेजी मे **डेमन** (दैत्य) हो गया है। सयुक्त स्वरो का एक स्वर म बदलना केवल प्राकृतो की विशेषता नही है। सस्कृत **कुष्ठ** प्राकृत म **कोढ** हुआ, उ स्वर विवत होकर **ओ** म परिवर्तित हुआ। लटिन शब्द **कुरसुस** अग्रेजी म **कोस** (दौड, दौडने का माग) बना। लैटिन **कूर** (क्या) का पुराना रूप **क्वोर्** था। निनम्न के लिए लटिन **क्लूनिस** का ग्रीक प्रतिरूप **क्लोनिस** है। प्राकृतो मे शब्द का अन्तिम स्वर दीघ कर दिया जाता है सस्कृत के विसर्गों का लोप होने पर स्वर की दीघता से क्षतिपूर्ति होती है। **अग्नि** से **अग्गी** **विष्णु** से **विण्हू**, इसी प्रकार ग्रीक **पोएसिस** से अग्रेजी **पोएजी** बना। ग्रीक शब्द मे विसर्गो के स्थान पर सकार है अग्रेजी मे उसका लोप हुआ और अतिम स्वर दीघ हुआ। लैटिन **क्विस्** (कौन) अग्रेजी मे **हू** है, उसी प्रकार सकार-लोप के बाद स्वर दीघ हुआ है। अग्रेजी **शू** जमन **शुह** का प्रतिरूप है। जमन शब्द का अतिम व्यजन विसगवत् है। कहते है कि ह्रस्वस्वर के साथ अनुनासिक ध्वनि हो तो प्राकृत म इस ध्वनि का लोप हो जाएगा और क्षतिपूर्ति के लिए स्वर दीघ होगा। सस्कृत **विंश** प्राकृत म **वीस** बना, माना जा सकता है कि इसी प्रकार सस्कृत **पथ** का अग्रेजी प्रतिरूप **पाथ** बना। सस्कृत म जहा सयुक्त व्यजन होते है प्राकृत मे वहा उन्हे अलग कर लिया जाता है और एक अतिरिक्त स्वर जोड दिया जाता है। **अग्नि** मे प्राकृत **अगणि** तुलनीय है रूसी रूप **अगोन**। इसी प्रकार **श्रद्धा** के **श्रद** का रूसी प्रतिरूप **सेद**, **से** (हृदय) है।

प्राकृतो की एक महत्त्वपूण विशेषता यह है कि दो स्वरो के बीच जो स्पर्श व्यजन आता है उसका लोप हो जाता है, कभी लुप्त व्यजन के स्थान पर **य, व** श्रुति का आगम होता है और कभी केवल स्वर का व्यवहार होता है। कण्ठय ध्वनि के बदले कर **ब** हुए तब **शुक** न **सुव** रूप धारण किया। अग्रेजी शब्द **डेय्** अथवा **डे** (दिन) का जमन रूप **डाग** है जो भारतीय **दाघ** का रूपातर है। अग्रेजी की क्षमता सूचक क्रिया **मेय्** अथवा **मे** जमन **माग्** का रूपातर है और जमन शब्द भारतीय **मघ** म बना है। जमन **फोगेल**, अग्रेजी **फाउल** (पक्षी), जमन **आइगन** अग्रेजी **ओन** (अपना,

निजी), पुरानी अंग्रेजी का लगु, आधुनिक अंग्रेजी का लाव अथवा लौ (कानून)। दन्त्य ध्वनियों में ऐसा ही परिवर्तन होता है। संस्कृत मदन, प्राकृत मयण, फिर हिन्दी मयन, मन, संस्कृत हृदय, प्राकृत हिअअ, फिर हिन्दी हिया। पितृ, मातृ, भ्रातृ के फ्रांसीसी प्रतिरूप पेयर्, मेयर्, फ्रेयर हैं। यहाँ भी दन्त्य स्पर्श ध्वनि के लोप की वही प्रवृत्ति है। संस्कृत निपुण का प्राकृत रूप णिउण, संस्कृत रूप का प्राकृत रूपान्तर रुअ ओष्ठ्य ध्वनियों में वैसा ही परिवर्तन दिखलाता है। अंग्रेजी हैव (रखना) का जर्मन रूप हाबॅन् है, लव (प्रेम) का जर्मन रूप लीबन है, अंग्रेजी नेव (बदमाश छोकरा) का जर्मन मूल रूप क्नाबे है, लीव (छोड़ना) का पुरानी जर्मन में लाइबॅन रूप है। सर्वत्र मूल जर्मन की ओष्ठ्य ध्वनि अंग्रेजी में अन्तस्थ व्यंजन अथवा अर्ध स्वर का रूप लेती है।

घ ध् भ भारत की पुरानी सघोष महाप्राण ध्वनियाँ हैं। प्राकृतों में ये परिवर्तित होकर ह् बनती हैं। यह प्रवृत्ति संस्कृत में भी है। संस्कृत लघुक, प्राकृत में लहुअ बनता है। इससे पहले प्राचीन मध्यदेशीय घस शब्द संस्कृत में हस बना था। घस की सत्ता का ज्ञान जर्मन रूप गस से होता है। हस का ह उड़ जाता है तब लैटिन का अंसेर रूप बनता है। संस्कृत ह्लाद का पूर्व रूप घ्लाद था, इसका पता अंग्रेजी ग्लैड से लगता है। ग्रीक भाषा में ह्वदिओस इसका प्रतिरूप है। संस्कृत रभस प्राकृत रहस बना। यहाँ ओष्ठ्य ध्वनि में परिवर्तन हुआ। संस्कृत भूमि का लैटिन प्रतिरूप हुमुस है, अधिकरण कारक में इसका रूप हुमि होता है जो भूमि से मिलता जुलता है। संस्कृत अधर प्राकृत में अहर है। संस्कृत द्राक्षा का मूल रूप ध्राक्षा था इसका ज्ञान ग्रीक हगोस, हॅक्स रूपों से होता है। संस्कृत रूप में सघोषता बनी रही है, महाप्राणता का लोप हुआ है, ग्रीक रूप में महाप्राणता बनी है, सघोष स्पर्श तत्व का लोप हुआ है। द्राक्षा के लैटिन प्रति-रूप रकेमुस में महाप्राणता का लोप हो गया है।

प्राकृतों में एक चूलिकापैशाची है जो सघोष महाप्राण ध्वनियों की सघोषता का लोप करती है किन्तु महाप्राणता बनाए रहती है। इस प्रकार संस्कृत के मेघ, मधुर और भूत शब्द इस प्राकृत में मेख, मथुर और फूत हो जाते हैं। यह परिवर्तन बहुत दिलचस्प है क्योंकि संस्कृत की सघोष महाप्राण ध्वनियाँ अधिकतर इसी प्रवृत्ति के अनुरूप ग्रीक भाषा में बदलती हैं। मूल शब्द बाघु संस्कृत में बाहु किन्तु ग्रीक में पाखुस हुआ। मूल शब्द घय संस्कृत में हय बना, ग्रीक भाषा में प्रसन्न होने के लिए खइरो क्रिया है, जिसमें फारसी खॅर का सम्बन्ध है। हय के लिए ग्रीक भाषा में खर शब्द है। संस्कृत धष क्रिया साहस सूचित करती है, इसी से धष्ट शब्द बना है। ग्रीक थर्सेग्रो (साहसी होना), थरसेलेग्रोस (धृष्ट, संस्कृत के समान ही यहाँ अर्थ की दृष्टि से शब्द का अवमूल्यन हुआ है) उसी थर्स क्रिया से सम्बद्ध हैं। संस्कृत धाय धूम ग्रीक भाषा में थेमो थूमोस हैं। इसी प्रकार ओष्ठ्य ध्वनियों की सघोषता का लोप होता है और महाप्राणता बनी रहती है। भ्रात का ग्रीक प्रतिरूप फ्रातेर् इसका सुपरिचित उदाहरण है। संस्कृत भूति ग्रीक फूसिस रूप धारण करता है। फूसिस का अर्थ है जन्मजात गुण जो भूति के अर्थ से मिलता जुलता है। संस्कृत क्रिया भर् का अर्थ है भरण करना, इसका

ग्रीक प्रतिरूप है **फेरो**। एक अन्य संस्कृत क्रिया **भर्** का अर्थ है वहन करना। इसका ग्रीक प्रतिरूप है **फोरेग्रो**। दोनों रूपों में, चूलिकापैशाची के समान, सघोषता का लोप होता है। शीत के लिए लटिन शब्द **फ्रिगुस** का ग्रीक प्रतिरूप **ह्रिगोस** इस बात की ओर संकेत करता है कि इन शब्दों का मूल रूप **भृगुस्** था और सम्भवतः **भृगु** शब्द शीतवाचक था। यूनान में **फ्रुगिया** नाम का जनपद भी था जो डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के अनुसार भृगु का रूपान्तर है।

संस्कृत **देव** का ग्रीक प्रतिरूप **थेओस्** है। द् ध्वनि थ में बदल गई होगी, इसका कोई कारण नहीं जान पड़ता। मूल शब्द **धेव** होगा और **धे** क्रिया जलने, प्रकाश करने के लिए प्रयुक्त होती थी। **अध्वयु** और **अथर्वन्** में जैसा सम्बन्ध है, वैसा सम्बन्ध प्राचीन मध्यदेशीय **धवस** और ग्रीक **थेग्रोस** में है। इस विवेचन से यह निष्कर्ष न निकलना चाहिए कि ग्रीक भाषा की सारी विशेषताएँ चूलिकापैशाची की विशेषताओं में मिलती हैं। निष्कर्ष यह निकलता है कि चूलिकापैशाची और ग्रीक भाषा में एक सामान्य प्रवृत्ति है जिसमें सघोष महाप्राण ध्वनियों की सघोषता का लोप होता है। इस सामान्य प्रवृत्ति का कारण ऐसी गण भाषाओं का प्रभाव है जो संस्कृत के समानान्तर चली जाती थीं, उस प्रभाव में चूलिकापैशाची और ग्रीक, दोनों के रूप परिवर्तित हुए हैं। ग्रीक भाषा की अपेक्षा चूलिकापैशाची अधिक सुसंगत ढंग से सघोषता का लोप करती है। जहाँ महाप्राणता नहीं होती, वहाँ भी वह सघोष ध्वनि को अघोष बना देती है। पिशल ने उदाहरण दिए हैं, **गगन—ककन, जात—चात जीमूत—चीमूत, दामोदर—तामोतर बालक—पालक बिस—पिस, नगर—नकर राजन्—राच, तडाग—तटाक मदन—मतन भगवती—फकवती।** यदि कोई तमिल भाषी संस्कृत के प्राचीन रूप अपनाता तो शायद उन्हें यही रूप देता। आधुनिक तमिल में मध्यवर्ती अघोष ध्वनियों को भी सघोष बोलने की प्रवृत्ति है पर यह प्रवृत्ति बाद में विकसित हुई। ध्वनियों का त्याग तमिल पहले भी करती थी, अब भी करती है। चूलिकापैशाची महाप्राण की उक्त प्रवृत्ति केवल इस प्राकृत तक सीमित नहीं है। उसके अनुरूप ग्रीक भाषा में ध्वनि परिवर्तन होते हैं और उत्तर भारत में इस प्रवृत्ति का पुराना स्मारक मथुरा नगर है। मूल रूप **मधुरा** से **मथुरा** नाम चूलिकापैशाची की ध्वनि प्रकृति के अनुसार ही पड़ा। तमिल में सघोष ध्वनि युक्त **मदुरइ** नगर प्रसिद्ध है।

प्राकृतों में एक प्रबल प्रवृत्ति मध्यवर्ती अघोष स्पर्श ध्वनि को सघोष करने की है। यह प्रवृत्ति आधुनिक तमिल में प्रबल है। प्राकृत में **आगत —आगदो, मति—मदि, मदकल—मदगल नायक —णायगु** आदि उक्त ध्वनि परिवर्तन के उदाहरण हैं। हिन्दी में **लोक—लोग काक—काग** आदि इसी तरह के परिवर्तन के सूचक हैं। फारसी में **पितृ मातृ भ्रातृ पिदर मादर बिरादर** हैं। इनसे तुलनीय हैं अंग्रेजी के **फादर, मदर, ब्रदर।** मध्यवर्ती अघोष स्पर्श ध्वनि को सघोष करने की प्रवृत्ति प्राकृतों में ही नहीं है। इंडोयूरोपियन परिवार की फारसी और अंग्रेजी जैसी भाषाओं को छोड़कर वह द्रविड़ परिवार में भी है और सबसे सुसंगत रूप में तमिल में है। तमिल में सघोषता अघ

म स के साथ शब्द के आदि स्थान में श् का व्यवहार ही होता है। अंग्रेजी स्लीप (सोना) का जर्मन प्रतिरूप **श्लाफॅन्** है। इस प्रकार **स्** का परिवर्तन **श्** में और **श** का परिवर्तन **स्** में, ये दोनों प्रवृत्तियाँ प्राकृतों में ही नहीं, पुराने समय में इंडोयूरोपियन परिवार की भाषाओं में भी हैं।

स ष श, इन तीनों सकारों के भिन्न केन्द्र रहे हैं और इनकी स्थिति प्राकृतों तथा अन्य भाषाओं में विभिन्न प्रकार की है। मूर्धन्य **ष** से मुक्ति पाने में आधुनिक आर्य भाषाएँ, प्राकृतें, प्राचीन और नवीन संस्कृतेतर इंडोयूरोपियन भाषाएँ एक ही स्तर पर हैं। प्राकृतों में **श्** और **स्** **ह्** में भी बदलते हैं। इस प्रकार **दश** से **दह**, **दिवस** से **दिवह** प्राकृत रूप बनते हैं। संस्कृत **श्रद्धा** का **श्रद्** वाला भाग संस्कृत में ही **हृदय** और अंग्रेजी में **हार्ट** है, और संस्कृत **श्रु** का अंग्रेजी प्रतिरूप **हियर** (सुनना) है। संस्कृत **स्व**, लैटिन **सोल** का ग्रीक प्रतिरूप **हेलिओस** है। इस प्रकार जैसे प्राकृत में तत्सम शब्दों के **श स** के स्थान पर **ह** मिलता है, वैसे ही प्राकृत रूप यूरुप की भाषाओं में है। प्राकृतों में मूर्धन्य **ष** **ख** में बदलता है, इस कारण संयुक्त व्यंजन ध्वनि **क्ष** भी **ख** अथवा **क्ख** में बदलती है। इस प्रकार **क्षीर** का प्राकृत रूपान्तर **खीर** होगा, **क्षुण्ण** का प्राकृत रूप **खुण्ण** होगा। यह भी बहुत पुरानी प्रवृत्ति है। **तक्षन** की **तक्ष** क्रिया से ग्रीक **तेक्न** शब्द बना था। जैसे **वर्षा** का तद्भव रूप **बरखा** होता है, वैसे ही संस्कृत **तृषा** का **तृष** क्रिया जर्मन भाषा की कुछ बोलियों में **त्रिख्** रूप में प्रचलित है।

प्राकृतों में **क** ध्वनि कहीं कहीं **च** में बदलती है। **किरात** का प्राकृत रूप **चिलाअ** हुआ। यह प्रवृत्ति स्लावनी भाषा में भी है। लैटिन **केतुम्** यहाँ **चेतो** है। कुछ शब्दों में **ग** के स्थान पर **व** का व्यवहार होता है। **अवगाहते** से **ओगाहइ**, पुनः **ओवाहइ**, यदि फ्रांसीसी भाषा का **गेर** (युद्ध) मूल रूप माना जाए, तो अंग्रेजी **वार** उसका प्राकृत रूपान्तर हुआ। अंग्रेजी भाषा का **लाव** या **लौ** (कानून) शब्द **व** ध्वनि चिन्ह से लिखा जाता है। पुरानी अंग्रेजी में **लग्** रूप था। यहाँ निश्चय ही **ग** ध्वनि **व** में परिवर्तित हुई है। ऐसे ही अंग्रेजी **ओन** (अपना, निजी) शब्द **व्** ध्वनि से लिखा जाता है, पुरानी अंग्रेजी में इसका रूप **ऐगेन** था। यहाँ भी **ग्** ध्वनि **व** में परिवर्तित हुई है यानी आधुनिक अंग्रेजी ने पुरानी अंग्रेजी को प्राकृत रूप दिया है। झुकने का अर्थ देने वाली **बाव्** क्रिया के उच्चारण में **व** ध्वनि की झलक रहती है। संस्कृत **भज** के प्रतिरूप पुरानी अंग्रेजी के **बुगन** से आधुनिक अंग्रेजी का **बाव** बना है।

प्राकृतों में **य** ध्वनि बहुधा **ज** में बदलती है। **यदि** से **जदि**, **यथा** से **जधा** रूप बनते हैं। आधुनिक आर्यभाषाओं में इसी प्रवृत्ति के कारण **यमुना** को **जमुना** कहते हैं और बँगला में यह प्रवृत्ति सर्वाधिक प्रबल है। अंग्रेजी में **याकूब** नाम **जेकब** और **जक** हुआ, **यूसुफ जोजफ** हो गए **यरूशलम** नगर **जेरुसलम** बोला जाने लगा। लैटिन और ग्रीक में यह ध्वनि नहीं थी इसलिए **याकूब** को ग्रीक भाषा में **इआकोबोस** कहा गया। अंग्रेजी में लैटिन-ग्रीक के **इआ** को **या** मानकर **जा** में परिवर्तित किया गया। जनवरी का महीना लैटिन में **इआनुआरिउस** है अंग्रेजी में **जैनुऐरी** है। **जुबिली** शब्द मूलतः हीब्रू भाषा का है। लोग मेढ़े का सींग बजाते थे उसे **योबेल** कहते थे। लैटिन में उच्च स्वर से नाद करने

के लिए इउबिलुम शब्द था। लैटिन और हीब्रू के दोनो शब्दो की मिलावट म अंग्रेजी का जुबिली शब्द बना।

प्राकृता म त द् ध्वनिया ल् मे बदलती है, इस प्रकार अतसी से अलसी और द्वादश दुवालस रूप बन। यह प्रवृत्ति भी बहुत पुरानी है। सस्कृत देवर का लटिन प्रतिरूप लेविर है। दामिनो म चमकने का अथ दनेवाली दम् क्रिया से ग्रीक भाषा मे लम्पस (मशाल) शब्द बनता है जो अंग्रेजी का परिचित लम्प है। सस्कृत अश्रु का मूल रूप दश्रु रहा होगा जिसस आंसू का अथ दनेवाला ग्रीक शब्द दक्रु बना। लैटिन मे इसका प्रतिरूप लक्रिमा है। अंग्रेजी के कुछ शब्द ल् से आरम्भ होते है पर उनके सस्कृत प्रतिरूपा मे य अथवा ज् ध्वनि है। सस्कृत जीव अंग्रेजी लिव, सस्कृत यकृत, फारसी जिगर, अंग्रेजी लिवर है। यहा ज ध्वनि पहले द् म परिवर्तित हुई जैसा कि प्राकृता म कभी-कभी होता है, फिर द ल् मे परिवर्तित हुआ।

प्राकृता मे प ध्वनि व म बदलती है, दीप से दीव, कोप म कोव रूप बनत है। सस्कृत की पण्य शृखला म लैटिन वेन्दो (बचना), वेनेओ (बिकना), वेनुम (बिक्री) व् ध्वनि वाले रूप है। पीना क्रिया से सबद्ध रूसी प्यानुइ (पिये हुए, नशे मे) का लैटिन प्रतिरूप वीनोलुस ह। अंग्रेजी कवर (ढाकना) का फ्रासीसी कूवीर रूप को उपसग जोड कर लैटिन की ओपेरीरे क्रिया के आधार पर बना है। प्राकृतों म प् ध्वनि म म भी बदलती है, भिंडिपाल का रूपान्तर भिंडिमाल होता ह। सस्कृत स्वप्न अधमागधी मे सुमिण हुआ। इसी प्रकार सस्कृत स्वप्न के लटिन प्रतिरूप सोम्नुस (नीद) सोम्निओ (स्वप्न देखना) है। पुरानी मानक ग्रीक भाषा और उसकी उपभाषाओ मे भी ऐसा फेरबदल मिलता है। इओनिअन का ओप्प मानक भाषा मे ओम्म (आख) है, उसी बोली का पेदा मानक भाषा मे मेता (साथ) है।

तत्सम शब्दा मे जहा दो व्यजन एक साथ आए हो, वहा प्राकृता मे एक व्यजन हटा कर दूसरे की आवत्ति करने की पद्धति है। इस प्रकार रुद्र, शब्द, आवत आदि रुद्द, सद्द आवत्त हो जात है। सस्कृत रूप तुरुष्क प्राकृत मे तुरुक्क है। (विचारणीय है कि तुर्क शब्द प्राकृत तुरुक्क का ही विकास है अथवा नही)। शुष्क का लैटिन प्रतिरूप सिक्कुस है। जसे तुरुष्क में ष का लोप हुआ और क व्यजन की आवृत्ति हुई, वैसे ही शुष्क के ष् का लोप हुआ, क की आवत्ति हुई और लैटिन का तदभव रूप सिक्कुस बना। पालि म पुत्र से पुत्तो (मागधी मे पुत्ते) रूप बना। इतालवी भाषा मे भी एक शब्द पुत्तो है, अथ है बच्चा, लडका। लैटिन मे पुत्र शब्द नही है पुसिओ है जिसका अथ है बालक। पुसिओ का सम्बन्ध पुत्र से वैसे ही है जैसे फारसी पिसर का है। पुसिओ स पुत्तो रूप बन नही सकता। मान लेना चाहिए कि इतालवी पुत्तो सस्कृत पुत्र का प्राकृत रूप है। सस्कृत अष्ट लैटिन मे ओक्तो है, इतालवी मे ओत्तो, सस्कृत सप्तम लेटिन मे सेप्तेम् है, इतालवी मे सेत्ते। अंग्रेजी के बहुत से शब्दो मे, लटिन के आधार पर, दो भिन्न व्यजन एक साथ आते है किन्तु इतालवी म एक ही व्यजन की आवत्ति होती है। अंग्रेजी डिक्टेटर का इतालवी प्रतिरूप दित्तातोरे है, अंग्रेजी सेक्ट (सम्प्रदाय) का इतालवी

प्रतिरूप लेता है। अंग्रेजी ने लैटिन के तत्सम रूपों को अधिक अपनाया है, तदभव रूप इतालवी में अधिक है।

प्राकृतों की एक विशेषता अनेक स्वरों का एक साथ व्यवहार है। भारतीय आर्य भाषाओं और यूरप की भाषाओं में दो स्वरों को टकराने से बचाने के लिए बहुधा य व श्रुति का आगम होता है। प्राकृत में इस तरह के शब्द मिलते हैं **उअअ, आअअ, उऊ,** य क्रमशः इन शब्दों के रूपान्तर हैं, **उदक, आगत, ऋतव, अवपात।** प्राकृतों में ऐसे रूप किसी रूढ़ि के अन्तर्गत रचे गये हैं। मुख्य बात यह है कि प्राकृतों की और आधुनिक आर्य भाषाओं की तद्भवीकरण प्रक्रिया में अन्तर है। इनमें मुख्य है स्पर्श व्यंजनों का लोप। यूरप और भारत, दोनों की भाषाओं में यह प्रवृत्ति अज्ञात रही है, फिर उसका अन्त हो जाता है। इसका कारण यही हो सकता है कि इंडोयूरोपियन परिवार की भारतीय तथा यूरोपीय भाषाएं किसी समय ऐसी भाषाओं से प्रभावित हुई हैं जिनमें व्यंजन-लोप की यह प्रवृत्ति व्यापक थी। फिर इस तरह का प्रभाव समाप्त हो गया, भाषायी परिवेश बदल गया किन्तु तद्भवीकरण की अन्य प्रक्रियाएं चालू रहीं। ऐसी प्रक्रियाएं भारतीय आर्यभाषाओं और जनपदीय उपभाषाओं में अब भी देखने को मिलती हैं। प्राकृतों की ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी बहुत सी विशेषताएँ यूरप की भाषाओं में मिलती हैं, यह तथ्य इन विशेषताओं के प्राचीन होने का प्रमाण है। भारत में उनका घनीभूत रूप, रूढ़िबद्ध रूप भी देखने को मिलता है, इससे यह सूचित होता है कि तद्भवीकरण के इनमें मूल केन्द्र भारत में थे। यह कहा जा सकता है कि प्राकृतों में तो सभी विशेषताएँ एक ही भाषातन्त्र में हैं किन्तु यूरप की भाषाओं में ये सारी विशेषताएँ किसी एक भाषातन्त्र में एक साथ नहीं मिलतीं। वास्तव में सभी प्राकृतें एक भाषातन्त्र के अन्तर्गत नहीं हैं। ण् ध्वनि के व्यवहार का प्रमुख लक्षण पैशाची नाम की प्राकृत में नहीं है। अधिकांश प्राकृतों में मध्यवर्ती स्पर्श ध्वनि सघोष होती है, चूलिकापैशाची में मूल सघोष ध्वनि को भी अघोष कर देते हैं। यदि आधुनिक आर्य भाषाओं के तद्भवों का अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि यूरप की भाषाओं की तरह यहाँ भी प्राकृत रूपों की विशेषताएँ एक ही भाषातन्त्र में नहीं मिलतीं। यदि रूढ़ियों के कृत्रिम अनुसरण से उत्पन्न होने वाले रूप छोड़ दिए जायं, तो प्राकृतों में ध्वनि परिवर्तन की ऐसी विशेषताएँ मिलेंगी जो बोलचाल की भाषाओं की विविधता प्रदर्शित करती हैं। पालि और प्राकृत, दोनों में वास्तविक भाषाओं के ध्वनितन्त्र के भेद का कुछ कुछ अनुमान हो सकता है। तद्भवीकरण की प्रक्रिया किसी युग विशेष की घटना नहीं है वह भाषाओं की निरंतर परिवर्तनशीलता की प्रक्रिया है। पहले कोई शुद्ध रूप थे, फिर वे युग विशेष में तद्भव बन गए यह धारणा मिथ्या है। पुराने शब्द रूपों में परिवर्तन ग्रीक और लैटिन में हुआ है, संस्कृत में हुआ है, आधुनिक आर्यभाषाओं में हुआ है यूरप की भाषाओं में हुआ है। तदभवीकरण प्रक्रिया को इस व्यापक संदर्भ में देखना चाहिए।

इस पुस्तक में सघोष महाप्राण स्पर्श ध्वनियों के ऐतिहासिक महत्व पर यत्र

दिया गया है। इण्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओं के विवेचन म यह धारणा सही साबित होती है कि सस्कृत शब्दो म सघोष महाप्राण ध्वनि हो और बाहर की भाषाओ के प्रतिरूप म न हो तो सस्कृत रूप प्राचीन होगा। यह भी सामान्यत सही है कि आधुनिक आय भाषाओ म जहा सघोष महाप्राण ध्वनि हो और सस्कृत मे न हो, वहा आधुनिक रूप प्राचीन ध्वनि सुरक्षित किए होगा। सस्कृत इह के समानान्तर इधर का इध प्राचीन ध्वनि बनाए हुए ह। किन्तु यहा भारतीय सदभ मे बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता है। जिन प्राकृता म मध्यवर्ती स्पश व्यजन का सघोष करने की प्रवृत्ति रही है, व अल्पप्राण ही नही महाप्राण अघोष ध्वनिया को भी सघोष करती रही है। लोक स लोग रूप बना तो अल्पप्राण ध्वनि सघोष हुई किन्तु पठ म पढ रूप बना तो यहा महाप्राण ध्वनि सघोष हुई। इसके अतिरिक्त ह के आसपास जो व्यजन होता है वह कभी-कभी वणसकोच के कारण ह से मिलकर सघोष महाप्राण रूप धारण कर लेता है। महिषी से भस तदभव रूप बना जैसे बहन को कुछ लोग भैण कहते है। भस मूल रूप नही है यद्यपि उसम सघोष महाप्राण स्पश ध्वनि है। सस्कृत निर्वाह का तदभव रूप हुआ निबाह, इसस फिर एक नया तद्भव बना निभाव। इसमे सघोष महाप्राण भ है। इससे यह सिद्ध नही होता कि निर्वाह और निबाह का मूल रूप निभाव है। कभी-कभी विदेशी शब्द आय भाषाओ म आकर, इनकी ध्वनि प्रवृत्ति के अनुरूप, सघोष महाप्राण ध्वनि की सृष्टि कर लेत हैं। पुतगाली भाषा का चावी शब्द हिन्दी म चाभी बोला जाता है। मूल रूपमे भ नही है। यही स्थिति गोभी की है।

४ जनपदीय आदान प्रदान

तद्भवीकरण के अध्ययन मे लोगो क सामने अधिकतर सस्कृत रूप रहते है या फिर विदेशी शब्द जो रूप बदलत है, उनका विवेचन किया जाता है यद्यपि ऐसे विदेशी शब्दो को तद्भव नही कहा जाता। तद्भवीकरण का एक महत्वपूर्ण पक्ष एक आय भाषा स दूसरी आय भाषा तक पहुँचने वाले शब्दो का रूपान्तर है। किसी भी आय भाषा के तद्भवो का अध्ययन करते समय यह मान लिया जाता है कि य शब्द उसम सीधे सस्कृत प्राकृत अपभ्रश माग मे आए है। इस विवेचन पद्धति का एक परिणाम यह होता है कि जनपदीय आय भाषाओ और आधुनिक जातीय आय भाषाओ न एक दूसरे के विकास म जो योगदान किया है वह आखो स ओझल रहता है। इस पद्धति के अनुसार जो सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा गया और जिसने विद्वानो को सबसे अधिक प्रभावित किया है वह डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या का बँगला भाषा के उदभव और विकास पर ग्रन्थ है। इसका मूल ढाँचा वही है जो ब्लोख के मराठी पर प्रसिद्ध ग्रन्थ का ह। दोनो ही ग्रन्थो म सस्कृत प्राकृत-अपभ्रश माग का अनुसरण किया गया है, मराठी और बँगला दोनो से हिन्दी जनपदीय भाषाओ का जो सम्बन्ध रहा ह वह इन ग्रन्थो म अविवेचित है। डा० चाटुर्ज्या न कहा कही हिन्दी प्रभाव स्वीकार किया है, दो एक जगह तुलना के लिए उन्होने हिन्दी का उल्लेख किया है किन्तु इसम वस्तुस्थिति का ठीक ठीक बोध नही

होता। बँगला मे **पितेम** और **पुरत** रूप सीधे **पितामह** और **पुरोहित** से बने है किन्तु **घोम्टा घूघट** का प्रतिरूप है और उसी का तद्भव रूप है। **ओढनी** का बगला रूपान्तर **उडनि** है। उसका विकास सीधे किसी प्राकृत रूप से नहीं हुआ। डा० चाटुर्ज्या ने अपनी पुस्तक मे बहुत से ऐसे शब्द दिए है जो हिन्दी जनपदो की ओर सकेत करते हैं, उनमे कुछ का उल्लेख यहा किया जाता है। **पाकडी** बलाघात के कारण **पगडी** के आदि वर्ण को दीर्घ दिखलाता है। **ठाउरा** (ठहर कर सोचना) **ठहर** क्रिया का रूपान्तर है, महाप्राण ध्वनि का लोप हुआ और आदि वर्ण दीर्घ हुआ। **साभुडा, साँभडा** का **डा** उसके मूल राजस्थानी रूप होने का प्रमाण है। एक शब्द **सेजुति** सध्या के अर्थ मे अवधी **सँझवतिया** का रूपान्तर है। **सेंजारु, सोजारु** हिंदी **सेजरिया** के तद्भव हैं। वङ्गाल की दक्षिण पूर्वी बोलियो मे, स के ह् मे बदलन पर, इसका एक रूप **हँजा** भी है। **नेई** व्रजभाषा के **नेह** से बना है और **छोडा छोरा** का रूपान्तर है। **शालाज** हिन्दी **सलहज** का बँगला रूप है। **बेप्रोडा** का सम्बन्ध **व्यापार** से नहीं हिन्दी रूप **ब्यौरा** से है। **बोहारी** (पत्नी) का विकास **व्यवहारिका** की अपेक्षा व्रजभाषा के **बोहरेजो** से अधिक सभव है। **व्यवहारिका** शब्द मे हीन भाव है, उसका अर्थ दासी है, **बोहरेजी** प्रतिष्ठित व्यक्ति है और **बोहरे** का स्त्रीलिंग रूप होगा **बोहरी**। व्रज मे **बोहरी** शब्द का चलन नहीं है किन्तु स्त्री के लिए **बयरबानी** का प्रयोग होता है। **बैयर** और **बोहरे** का उद्गम एक है। वङ्गाल के एक भाग का नाम **राठ** है। यह **रट्ठ** का विकास है। मेरठ के **रठ** के अलावा हिन्दी प्रदेश मे **राठ** जैसे स्थान भी है। इस **राढ** मे दूसरे वर्ण के व्यंजन को सघोष करके बँगला का **राढ** रूप बना है। **रट्ठ, राढ** का मूल रूप है **राष्ट्र**।

हिन्दी प्रदेश के अनेक जनपदो से समय समय पर लोग जाकर वङ्गाल मे बसते रहे हैं। बँगला भाषा के शब्दो मे यह मूल जनपदीय विविधता दिखाई देती है। बगला के **काहाइ, कानाइ, कान्हाञि** व्रजभाषा के कन्हाई का रूपान्तर है। **नहर** शब्द हिन्दी के अनेक जनपदो मे बोला जाता है। बँगला के **नाइहर नाइयर, नायर, नायेर** रूप हिन्दी **नैहर** के आधार पर बने है। **जसन, तसन** रूप अवधी के है। डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है "पश्चिमी हिन्दी के **जैसा, तसा, जसन, तसन** आदि शब्द मध्यकालीन बँगला मे **छ** से लिखे जाते थे (और शायद वैसे बोले भी जाते थे)।" (पृष्ठ ४७३)। यहा हिन्दी रूपो के प्रवेश को स्पष्ट स्वीकार किया गया है। पुरानी बँगला के **जछे, जछन** आदि रूप अवधी के योगदान का स्पष्ट प्रमाण है। बँगला का **हेन** अथवा **हेनो** शब्द मध्यकालीन **एहेन** से बना बताया गया है। इस **एहेन** का पूर्व रूप **ऐसन** था। हिन्दी के **जसा, कसा, तसा** पुरानी मराठी मे भी प्रयुक्त होते थे। ब्लोख ने मराठी पर अपने ग्रन्थ मे इन शब्दो का उल्लेख किया है। सत ज्ञानदेव ने लिखा था **जैसा प्रापलाचि बोल किरोटी तसा समस्तो या भजना।** (अ० मो० कूट सम्पादित ज्ञानेश्वरी, पृष्ठ ८८)। सत नामदेव ने लिखा था **ऐसे भक्त जेवुनि घाले कसा पाडुरगा करावा विचार।** (ह० अ० जोशी सम्पादित **श्री सकल सत गाथा** मट पहला, पृष्ठ १६६ २४६)। एकनाथ महाराज ने भागवत मे लिखा था **गारुड्याचें वामर जैसे। स्त्रिया लागे नाचे तैसें।**

(रा० कृ० कामत, वदगडकर सम्पादित **श्री एकनाथी भागवत**, पष्ठ ३०३)।

ब्लाख ने अपनी पुस्तक म मराठी तद्भव रूपा की जो व्यारया की ह, उसम ओष्ठ्य स्पश ध्वनिया का वत्ताकार उच्चारण उल्लखनीय है। हिन्दी **भँवर** मराठी म **भोवर**, हिन्दी **पँवाडा** मराठी मे **पोंवाडा** है। प्रश्न यह ह कि **भ्रमर** से **भँवर** और **भोवर** रूप अलग अलग बने या **भँवर** स **भोवर** बना। **पँवाडा** का मूलरूप **प्रवाद** बताया गया ह। **प्रवाद** से **पँवाडा** और **पोवाडा** स्वतत्र रूप से बने या **पोवाडा** से **पँवाडा** बना अथवा **पँवाडा** से **पोवाडा** बना। मूल शब्द मे अकार है, हिन्दी रूपा म उस अकार की स्थिति ज्यो की त्यो है। यदि ओकार वाले रूप स हिन्दी शब्द का विकास होता ता **बोलना बुलाना** की तरह **पोवाडा पुवाडा** हाता, **पँवाडा** नही। इसलिए सम्भावना यही है कि हिन्दी तदभव के आधार पर मराठी रूप बना है। मराठी के पुरान शिला लेखो म ब्लोख न **दिहाला** रूप का उल्लख किया है। यह अवधी कृदन्त **दीह** के आधार पर बना ह अर्थात् कृदन्त का पुन कृदन्तीकरण हुआ है। **दिध** और **दिन्ध** मूल रूपो म **दिह, दी ह** का विकास हुआ है, इसका प्रमाण ब्लोख द्वारा उल्लिखित मराठी के **दिधला, दिन्नला, दी हलें** क्रिया रूप ह। अन्तिम रूप मे कृदन्त स क्रियार्थी सज्ञा बनाई गई है। मराठी के **पाहिजे, म्हणिजे** आदि रूप **पाहिय** (चाहिय), **भणिय** का विकास है। अवधी म अन्तिम वण दीघ नही ह यथा **कह लगि सहिय रहिय रिस मारे। सहिय, रहिय** रूप क्रियामूल मे **इय** प्रत्यय लगा कर बने है। ब्रजभाषा के **कीज, दीज** के समान मराठी मे **य** ध्वनि ज म परिवर्तित हुई, खडी बोली के **कीजिए, दीजिए, कहिए, चाहिए** के अनुरूप अन्तिम वण दीघ किया गया है। मराठी म अनेक तिडन्त रूप है जिनका आधार अवधी रूप है। ब्लोख न **ज्ञानेश्वरी** स दो पक्तिया उद्धृत की हैं जो स्वधम **आचरे**, ता मोक्षा **पावे**। यहा **आचरे** और **पावे** के पूव रूप आचरइ, पावइ है। बागरू और मराठी म एक सामान्य प्रवृत्ति है, दोना भाषाएँ तत्सम शब्दा के **न्** को भी बहुधा मूधन्य कर दती है। ब्लोख ने उदाहरण दिय है **हानि, विना, धन, जन** शब्द क्रमश **हाण, विणें, धण, जण** हो गये है। इस सदभ मे मराठी का **बहीण** रूप ध्यान देने योग्य है। **भगिनी** स **बहिणी** रूप बनगा, **बहीण** नही। **बहीण**, खडी वाली के **बहन** के समान, अन्तिम वण म इकार का लोप किए है। मराठी शब्द **बहिणी, बहिणि** जैस रूप के आधार पर बना है, सीधे **भगिनी** से नही।

५ शब्द निर्माण प्रक्रिया

हिन्दी म उपसर्गो का प्रयोग बहुत कम होता है। सस्कृत म, स्लाव भाषाओ म उपसर्गो का प्रयाग बहुत होता है। फिर भी कुछ उपसग अब भी प्रयुक्त होत ह और य काफी पुराने ह। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने **उक्तिव्यक्ति प्रकरण** की भूमिका मे लिखा है कि अ उपसग अथ को घनत्व प्रदान करता है। **अध्वयु** म क्रियामूल **ध्वर्** है, उसम **अ** उपसग लगा है। फारसी मे **अफ्रोज** का आधार **भ्राज** क्रिया ह। **अ** घनत्व सूचक उपसग है। पर फारसी म कभी कभी ओष्ठय ध्वनियो के पहले **अ** स्वर जोड देते हैं। **फिरगी** का फारसी रूप **अफरजी** है सस्कृत **भ्रू** का फारसी प्रतिरूप **अब्रू** है। ऐसा

लगता है कि निषेध भावना अथ घनत्व से सम्बंधित थी। **अ** के समान नि, वि उप सग निषेध के लिए प्रयुक्त होते थे। **निगलना** क्रिया में नि उपसग निषेधार्थी नहीं है। ऐसे ही **विगलित** में वि उपसग **गलित** को विशेष **गलित** बना देता है किन्तु **विफल** में फल हीनता का भाव है फल की समृद्धि का नहीं। गाव के लोग जब **निखालिस और बेफजल** शब्दों का व्यवहार करते हैं तब वे शेक्सपियर के जमाने की अंग्रेजी की तरह दोहरे निषेध से काम लेते हैं। निषेधार्थी **अ** उपसग तमिल में वाक्य या शब्द के अन्त में आता है। हिन्दी में कम से कम एक शब्द है जिसमें निषेधसूचक **अ** मूल शब्द के बाद आया है। यह शब्द है **काना**। यह **कन** क्रिया मूल से बना है जिसका अर्थ है चमकना। **कनक** शब्द इसी **कन** से बना है। चमकने, प्रकाशित होने वाली क्रियाओं का उपयोग देखने के अर्थ में हुआ है। इस प्रकार तमिल में **कण्** का अर्थ आंख हुआ। **काना** वह जिसमें आंख का अभाव हो। **काना** का अर्थ, उड़िया भाषा में, अन्धा भी है। दोनों आंखों का अभाव हो तो अर्थ होगा अन्धा, एक आंख का अभाव हो तो अर्थ होगा एक आंख वाला।

हिन्दी में कुछ उपसग पुराने रूप में बने रहे हैं और कुछ का तदभवीकरण हुआ है। अपढ़ में **अ** उपसग अपरिवर्तित है किन्तु **अनहित** का **अन** संस्कृत उपसग **अन्** का तदभव रूप कहा जा सकता है। मेरा अनुमान है कि उपसग का मूल रूप **अन** ही था, उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में आदि वर्ण पर बलाघात की प्रवृत्ति के कारण दूसरे वर्ण का स्वर लुप्त हो गया। **निडर** जैसे शब्द में जो **नि** उपसग है, वह मूलत **नि** था इसमें सन्देह है। **निदेश, निवेश** आदि में **नि** उपसग घनत्व सूचक भूमिका निबाहता है और **नि** से भिन्न नहीं है। हिन्दी में पुराने उपसग तत्सम, तदभव और उधार लिए शब्दों में स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयुक्त होते हैं। **बेमन** शब्द का **बे** वास्तव में **वि** का परिवर्तित रूप है, भले ही वह हिन्दी में फारसी से आया हो। हिन्दी में **बेमन** वैसा ही सहज रूप है जैसा **निखालिस**। अवधी में नि उपसग से, फिक्र को तदभव बनाकर, **निफिकिरि** शब्द रचा जाता है। नि तत्सम और फिकिरि फारसी से तदभव, **बेफिक्र** से अधिक अर्थ व्यंजक है, यानी निश्चिन्तता का भाव अवधी रूप में अधिक है। और **बेमन** में **बे** उपसग के साथ तत्सम **मन** जोड़ा गया है।

डा० चाटुर्ज्या ने **उक्तिव्यक्ति प्रकरण** की भूमिका में पूर्णता का अर्थ देने वाले वि उपसग का उल्लेख किया है और उसे निषेधसूचक भी बताया है। इससे उक्त धारणा की पुष्टि होती है कि निषेध भावना अर्थ घनत्व से संबंधित है। वि उपसग से अवधी का बि रूप बना जिसका व्यवहार *उक्तिव्यक्ति* में हुआ है। इस *बि* का एक परिवर्तित रूप **ब** भी है। **विदग्ध** का पुराना अवधी रूप बँदह बना। इससे फारसी **बे** संस्कृत **वि** का तद्भव रूप सिद्ध होता है। एक पुराना उपसग **प्र** था। डा० चाटुर्ज्या ने अवधी के **प** उपसग को इस **प्र** का विकास माना है। **प्रसवति** से **पसुव, प्रभगति** से पहुण रूप बने। **प्र** उपसग स्वयम् **पर** या **पुर** का विकास था। **पुरोगामी** में **पुर** अग्रता सूचक है। वर्ण संस्कार में **प्रु** या **प्र** रूप बनेगा। नि उपसग के लिए डा० चाटुर्ज्या ने निषेध और पूर्णता दोनों भावों का उल्लेख किया है।

उपसर्गों की अपेक्षा प्रत्ययों का व्यवहार आधुनिक आर्य भाषाओं में अधिक होता है। इनमें एक प्रत्यय **अ** माना जाता है। **पढ** क्रिया में **अ** प्रत्यय लगा तो **पढ** संज्ञा रूप बना। ब्रुगमन ने संस्कृत में **अ** प्रत्यय का व्यवहार भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए बताया है। **जन** क्रिया में **अ** प्रत्यय जोडकर **जन** शब्द बना। **जनम** रूप का अर्थ हुआ जन्म लेने का कार्य। हिन्दी में **बाढ, मार सोच** ऐसे ही संज्ञा रूप हैं। हिन्दी में, संस्कृत से भिन्न **आ** प्रत्यय का व्यवहार कृदन्त रूप बनाने के लिए होता है। यह कृदन्त भूत कालिक क्रिया का अर्थ देता है और क्रियार्थी संज्ञा का भी। वह **आया**, यहां **आया** रूप का अन्तिम **आ** भूतकाल की सूचना देता है। अवधी में **आवत** है और **आवा** के उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायगी। **आवत** में **आव** क्रियामूल स्पष्ट है, उसमें **आ** प्रत्यय जोडने से **आवा** रूप बना। इसी प्रकार **आया** में **आय** क्रिया मूल है जिसमें **आ** प्रत्यय जोडने से **आया** रूप बना। **आया** और **आवा** कृदन्त रूप भूतकालिक क्रिया की सूचना देते हैं किन्तु **वह आया चाहता है**, अवधी में—**वह आवा चहत है** इन वाक्यों में **आया** और **आवा** क्रियार्थी संज्ञा हैं। हिन्दी में **देखादेखी मारामारी** जैसे शब्द **देख** और **मार** क्रियाओं से संज्ञा रूपों के आधार पर बने हैं।

उक्तिव्यक्ति प्रकरण में **करण जेंवण** जैसे क्रियार्थी संज्ञा रूपों का व्यवहार हुआ है। **रामचरित मानस** में ऐसे क्रियार्थी संज्ञा रूप बहुत हैं। खडी बोली के **करना, चलना** आदि **करन चलन** के प्रतिरूप हैं। यह **न** अथवा **अन** वाला प्रत्यय काफी पुराना है। **यज** क्रिया में **अन** प्रत्यय जोडने से **यजन** रूप बना था। **गमन, चेतन, तपन हवन** आदि कृदन्त इसी प्रक्रिया से बने थे। **स्वप्न** में **न** प्रत्यय **स्वप** क्रिया में जोडा गया है। **स्वपन** रूप उतना ही पुराना हो सकता है जितना **स्वप्न** क्योंकि **यज्ञ** के समानान्तर **यजन** शब्द की प्राचीनता सिद्ध है। **यज्ञ** रूप में ज न ने **न** को सम्वर्गीय ञ बना लिया। **स्वप्न** और **यज्ञ** की निर्माण प्रक्रिया एक ही है।

हिन्दी का एक बहुप्रयुक्त प्रत्यय **आर** है। **सोनार, लोहार** आदि शब्दों में इसका व्यवहार हुआ है। इससे मिलता जुलता **हार** प्रत्यय है जैसे **सिरजनहार** में। डा० चाटुर्ज्या ने **आर** का सम्बन्ध **कार** से जोडा है। अन्य भाषाविज्ञानियों ने भी ऐसा ही मत प्रकट किया है। इन सबसे पहले दामोदर पण्डित ने अपने ग्रन्थ **उक्तिव्यक्ति प्रकरण** में **सोनार, कमार सुआर** शब्दों के मूल रूप **स्वर्णकार कर्मकार, सूपकार** दिये थे। **कार** से अवधी का **आर** प्रत्यय बना है, दामोदर पण्डित जानते थे। किन्तु डा० चाटुर्ज्या ने **गँवार** का मूल रूप भी **ग्रामकार** माना है। **गँवार** गाँव करने वाला नहीं होता उसका गाँव से संसर्ग मात्र होता है। दामोदर पण्डित ने अवधी का वाक्य लिखा है **धूतु गमारहि अकल**, इसका संस्कृत रूपान्तर दिया है **धूर्तो ग्राम्यम आकलयति**। उन्होंने **गमार** का मूल रूप **ग्रामकार** नहीं दिया वरन संस्कृत में उसका अर्थ **ग्राम्य** शब्द से सूचित कर दिया है। हिन्दी के कुछ शब्दों में **आर** से मिलता जुलता प्रत्यय **हार** प्रयुक्त होता है जैसे **सिरजनहार** में। डा० चाटुर्ज्या ने **हार** का अर्थ **करने वाला** बताया है किन्तु उसका मूल रूप **धार** माना है। जिन शब्दों में **हार** प्रत्यय लगता है और अर्थ

करने वाला होता है, उनमें **हार** से **धार** की संगति बिठाना कठिन है। **कहार** शब्द के लिए डा० चाटुर्ज्या ने सुझाव दिया है कि इसका मूल रूप **स्क धभार** हो सकता है। इस प्रकार **आर** प्रत्यय के तीन मूल रूप हुए **कार, धार** तथा **भार**। इन तीनों से ही पहले **हार** रूप बनेगा, ह् का लोप होने पर **आर** की प्राप्ति होगी। इस प्रकार **सिरजनहार** का **हार आर** से पुराना है। उक्तिव्यक्ति **प्रकरण** की भूमिका में तथा बँगला भाषा के उद्‌भव और विकास वाले ग्रन्थ में, दोनों जगह डा० चाटुर्ज्या ने वैदिक **कर्मार** शब्द का उल्लेख किया है और उसका मूल रूप **कमकार** बताया है। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं। पहली यह कि वैदिक काल में ही कुछ आर्य बोलियों में **कार** प्रत्यय के क् का लोप हो गया था, उसके रूपान्तर ह् का भी लोप हो गया था। **हार** प्रत्यय वैदिक **आर** की अपेक्षा पुराना है। दूसरी बात यह कि **कार, धार, भार** आदि स्वतन्त्र शब्द हैं, मानना होगा कि प्रत्ययों का विकास स्वतन्त्र शब्दों के आधार पर हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि **आर** प्रत्यय का उद्‌भव किसी रूप से हो, वह प्राचीन काल में ही अपने मूल रूपों से भिन्न, केवल संसर्ग-बोध व्यक्त करने लगा था। **हार** दो स्वरों की टक्कर से बचने के लिए अतिरिक्त ह् जोड़कर भी बन सकता है। **सिरजनआर** में दो अकार टकराते हैं इसलिए दोनों के बीच में अन्तस्थ ह् जोड़ दिया। अवधी शब्द **भिखियारि** में यही होता है। **भीखआर** में दो स्वरों की टक्कर से बचने के लिए **य** श्रुति का आगम हुआ है। जिन शब्दों में **आर यार**, **हार** के स्थान पर **वार** दिखाई देता है वहाँ भी यदि पाल से सम्बन्ध न हो तो व् श्रुति का आगम विचारणीय होगा।

उक्त विवेचन से एक बात यह सामने आती है कि जैसे **आर** का आधार **कार** है, वैसे ही **अर** का आधार **कर** हो सकता है। यह **अर** बहुत पुराना प्रत्यय है यद्यपि मैक्डनल ने लिखा है कि यह **उपर्, देवर्, ननान्दर्** जैसे थोड़े वैदिक शब्दों में मिलता है। इनमें **उपर** (उषा) और **ननान्दर्** (ननद) स्त्रीलिंग हैं, **देवर** पुल्लिंग है। शायद **अर** प्रत्यय लगाते समय लिंगभेद का ध्यान न रखा जाता था। इससे मिलती जुलती स्थिति कुछ अन्य वैदिक प्रत्ययों की भी है। **अर** प्रत्यय वैदिक भाषा में भले ही विरल हो, यूरप की भाषाओं में इसका बहुल प्रयोग होता है। अंग्रेजी में **वर्कर**—जो काम करे **ग्रामर**—जिसका सम्बन्ध लेखन विधान से हो। **आर** के समान **अर** के व्यवहार के लिए भी किसी क्रिया अथवा वस्तु से संसर्ग मात्र पर्याप्त है। जैसे **अर** और **आर** परस्पर सम्बन्धित हैं, वैसे ही अनेक वैदिक प्रत्यय ह्रस्व और दीर्घ स्वरों वाले दो रूप प्रस्तुत करते हैं। **अ** प्रत्यय वेद शब्द में देखा जाता है, **आ** प्रत्यय निन्दा, भिक्षा जैसे शब्दों में। निन्दा और भिक्षा स्त्रीलिंग है। सम्भव है, पहले **आ** प्रत्यय का व्यवहार, लिंगभेद के बिना होता हो। रुचि शब्द स्त्रीलिंग है **दधि** नपुंसक लिंग है, **पाणि** पुल्लिंग है। इनमें **इ** प्रत्यय लगा है। इसके साथ दूसरा प्रत्यय **ई** है। **नदी** में यही प्रत्यय है, **नदी** शब्द स्त्रीलिंग है। इसी प्रत्यय से बना **रयी** शब्द पुल्लिंग है। धनाभाव व्यक्त करने वाले **गृहु** (भिखारी), **रिपु** (धोखा देने वाला) वैदिक शब्दों में **उ** प्रत्यय लगा है किन्तु **वधू तनू** (शरीर) जैसे शब्दों में **ऊ** प्रत्यय है। **उ** प्रत्यय वाले शब्द स्त्रीलिंग है। पावक में **अक** प्रत्यय है **इक्ष्वाकु** में **आकु** है जो **आक**

का ही कोसली उकारान्त रूप है। **चार्वाक** जैसे शब्द मे **आक** प्रत्यय देखा जा सकता है। **कृपण** मे कर्त्ता भाव व्यक्त करने वाला **अन** प्रत्यय है, भगवान (प्रकाशमान), **वसवान** (धनवान) मे **आन** प्रत्यय लगाया गया है। **मृगवन** मे व् श्रुति का आगम हुआ है। हिन्दी शब्द **धनवान** की व्याख्या भी इसी प्रकार सम्भव है। एक शब्द **ऊध्वसान** (सीधे खडे हुए) है जिसमे मैक्डनल ने ऊध्व और **आन** के बीच अन्तस्थ **स** का आगम बताया है। यह भी सम्भव है कि **अन** और **आन** दोनो **मन** और **मान** का रूपान्तर हो जैसे **अर** और **आर** **कर** तथा **कार** के रूपान्तर हैं। **कर** और **कार** के प्रथम रूपान्तर **हर** और **हार** थे, वैसे ही **मन** और **मान** के प्रथम रूपान्तर **वन** और **वान** होंगे। इस प्रकार **धनवान** और **गाडीवान** दोनो शब्द क्रमश **धन** और **गाडी** का प्रसग बोध कराते हुए सीधे **वान** प्रत्यय से बन सकते है और **आन** प्रत्यय के पहले **व्** श्रुति के आगम से भी। **ब्रह मन** म **मन** प्रत्यय है *जिसका अथ है प्राथना करने वाला।* इसी प्रकार दाता *के अथ मे* **दामन्** *शब्द* है। किन्तु यह प्रत्यय केवल कर्ता भाव व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त नही होता। **ब्रह् मन** का एक अथ प्राथना, **दामन्** का एक अथ दान भी है। **जन्मन्** का अथ जन्म है और एक वैकल्पिक रूप **जनिमन** भी है जहा अतिरिक्त **इ** स्वर जोडा गया है। मन के साथ दूसरा प्रत्यय **मान** भी है। **मन्** का अन्तिम व्यजन स्वर के बिना प्रयुक्त है, **मान** का **न्** स्वर सहित है। सम्भवत **मन्** *भी पहले* **मन** *था। कृदन्त रूपो के निर्माण म* **मान** *प्रत्यय का व्यवहार होता था।*

मैक्डनल ने **पितर, भ्रातर्, मातर** म **तर** प्रत्यय माना है जो सदिग्ध है। **पित** क्रिया का अथ जन्म देना था, उसी म हिन्दी शब्द **पदा** बना है किन्तु **कतर** मे **तर्** असदिग्ध है, वह **कर्** क्रिया म जोडा गया है। मैक्डनल न तर के साथ **तार** प्रत्यय नहीं दिया किन्तु हिन्दी मे **कर्तार, दातार** जैसे रूपो का व्यवहार होता रहा है। इनम लगा *हुआ तार प्रत्यय उतना ही पुराना होगा जितना* **तर्**। **कतर** स हिन्दी म **कर्ता** रूप सहज ही बनेगा। र् के लोप से जो क्षति हुइ है, उसकी पूर्ति **अ** स्वर जोड कर कर दी गई। फिर **कर्तार** के लिए अतिरिक्त **र** की आवश्यकता क्या हो ? इसलिए **तर** के समानान्तर **तार** प्रत्यय मानना चाहिए और **तर्** का पूवरूप **तर** मानना चाहिए, जैसे **मन्** के समानान्तर **मान** प्रत्यय था और **मन** का पूवरूप **मन** था।

मैक्डनल ने **ईक** *प्रत्यय दिया है जिससे* **वधीक** (वद्धि करने वाला) शब्द *बनता* है। **वृश्चिक** मे उन्होंने **क** प्रत्यय माना है और **इ** को अतिरिक्त जोडे हुए स्वर के रूप मे देखा है। किन्तु **वृश्चिक** *की व्याख्या* **इक** *प्रत्यय के आधार पर भी हो सकती है।* **वधिक** शब्द भी इसी प्रकार बना होगा। **इक** और **ईक** दो साथी प्रत्यय थे। एक प्रत्यय **उक** है जिससे **घातुक** (घात करता हुआ), **विकसुक** (विकसित होता हुआ) रूप बन थे। इसके समानान्तर **जागरूक** का **ऊक** प्रत्यय है। **ऊक** के लिए मकडनल ने बिलकुल ठीक लिखा है कि **उक** के उकार को दीघ करके बनाया हुआ यह उसी का प्रतिरूप है। यह बात ह्रस्व दीघ स्वरो वाले अन्य प्रत्ययो के बारे म भी सही है। **शुष्** *क्रिया स* **शुष्क** *रूप बना,* **स्तु** क्रिया से **स्तुका** (ऊन या बालो की लच्छी) बना जिसमे **का** प्रत्यय है। **शुष्क** से तदभव रूप **सुख** बनेगा जो अवधी म प्रयुक्त होता है किन्तु खडी बोली म **सूखा** रूप बोला

जाएगा। यह सम्भव है कि अवधी में भिन्न जहाँ खड़ी बोली में आकारान्त रूप मिलते हैं, वहाँ वे क, अ, आदि के समानान्तर दीर्घ स्वरों वाले का, आ जैसे प्रत्यय लगने से बने हों। यानी सूखा का मूल रूप शुष्का रहा हो, यह सम्भव है। मैकडनल ने स्तुका में स्वतन्त्र का प्रत्यय नहीं माना, क प्रत्यय लगाकर, स्त्रीलिंग रूप के लिए, उसे आकारान्त किया गया, यह माना है। पर अवधी सूख और खड़ी बोली सूखा के भेद से विदित होता है कि आकारान्त रूप केवल स्त्रीलिंग की व्यंजना के लिए न रचे जाते थे। अवधी आवत, जात और खड़ी बोली आता, जाता में सूख और सूखा जैसा भेद है। मैकडनल ने जीवित, सूत (सारथी) में त प्रत्यय माना है, उसके साथी ता का उल्लेख नहीं किया। पर यह सम्भव है कि जीवित और सूत के साथ जीविता और सूता रूपों का व्यवहार भी होता रहा हो।

इस संदर्भ में कुछ वैदिक शब्दों पर ध्यान देना चाहिए जिनके अकारान्त और आकारान्त दोनों प्रकार के रूप प्रचलित थे। व्हिटनी ने संस्कृत व्याकरण पर अपनी पुस्तक में बताया है कि क्रिया रूप, कारक रूप, निपात, सभी में ऐसे वैकल्पिक रूप देखे जाते हैं। आज्ञार्थी मध्यम पुरुष एकवचन पिब के साथ पिबा, अतीत कालीन अन्य पुरुष, एकवचन वेद के साथ वेदा, करण कारक, एकवचन एन, तेन, येन के साथ एना, तेना, येना, अथ, एव, इव, अत्र, तत्र, कुत्र के साथ अथा एवा, इवा अत्रा, तत्रा कुत्रा रूप भी वैदिक भाषा में मिलते हैं। इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि वैदिक भाषा में ये दो तरह के रूप दो गण भाषाओं में जाते थे और उस तरह का भेद हिन्दी प्रदेश में अब भी विद्यमान है।

इस पुस्तक में उकारान्त रूपों को कोसल गण भाषा की विशेषता कहा गया है। इस स्थापना का आधार यह है कि खड़ी बोली में जहाँ शब्द का सामान्य कर्ता एकवचन रूप अकारान्त है वहाँ अवधी का प्रतिरूप उकारान्त है। इसकी पुष्टि वैदिक भाषा के प्रत्ययों से होती है। एक प्रत्यय अ है जैसे वेद, श्रम तर (स्तरण) आदि में, वैसे ही उ प्रत्यय है जायु (विजेता) दारु (विच्छिन्न करने वाला), शायु (लेटा हुआ) में। मैकडनल ने उरु (चौड़ा) ऋजु (सीधा) मृदु आदि में यही उ प्रत्यय माना है। इसी प्रकार प्रिय शुच (प्रकाशमान), कृश (दुबला पतला) आदि विशेषणों में अ प्रत्यय स्वीकार किया है। इससे विदित होता है कि उ और अ दोनों प्रत्यय एक सी प्रक्रिया द्वारा शब्दों की संरचना में प्रयुक्त होते थे और ये शब्द संज्ञा विशेषण आदि अनेक वर्गों के होते थे। अकारान्त रूप कौरव हो सकते हैं, कोसली भी। उकारान्त रूपों के कोसली होने में सन्देह नहीं है। इसी प्रकार व्रज प्रदेश के प्राचीन शब्द आकारान्त होते थे। पालि में ओकारान्त रूपों में इसी प्रवृत्ति की झलक है किन्तु पालि के इन रूपों में अवधी के उकारान्त रूपों का विकास मानना उचित नहीं है क्योंकि ऐसे उकारान्त रूप वैदिक काल में प्रचलित थे। दाव (जलाने वाला) नाय (आगे ले चलने वाला), प्राभ (पकड़ने या हड़पने वाला) के साथ जायु शायु गृहु रिपु जैसे रूपों का चलन था। स्तेन नग्न पर्ण (जो उड़ के पर गिर पड़ता) में न प्रत्यय माना गया है। धेनु (जो दूध दे) भानु (जो चमके), स्थाणु (जो स्थिर रहे) में नु प्रत्यय माना है। ये न और नु दोनों प्रत्यय मूलतः एक हैं। अकार उकार का भेद दो प्राचीन गणभाषाओं के ध्वनितन्त्र का भेद है।

डा० चाटुर्ज्या ने **उक्ति व्यक्ति प्रकरण** की भूमिका मे पुरानी अवधी के **आ** प्रत्यय का सम्बन्ध प्राचीन **आक** से जोडा है। **सुआ, कउआ** जैसे शब्दों के उदाहरण दिए है। उनके चिन्तन के अनुसार यह तभी सम्भव है जब **शुकाक, काकाक** जैसे रूप कभी प्रचलित रहे हो। **आक** प्रत्यय के लिए उन्होंने कहा है कि इसमे मूलत किंचित अनादर भाव था। यदि इस समस्या पर इस दृष्टि से विचार करें कि ह्रस्व और दीर्घ स्वरो वाले दो तरह के प्रत्ययो का चलन था, तो **सुआ कउआ** के अलावा और बहुत से शब्दो की व्याख्या भी हो जाती है। **भगिनी** मे **बहिनी** रूप बनेगा किन्तु **भगिनि** का चलन भी रहा हो तो उससे सीधे अवधी के **बहिनि** एकवचन रूप की व्युत्पत्ति समझ मे आ जाएगी। इसी प्रकार **भ्रात** शब्द का अन्तिम स्वर ह्रस्व और दीर्घ दो प्रकार से बोला जाता था, यह मान लेने पर **भाय, भाइ** तथा दूसरी ओर खडी बोली का **भाई**, दोनो तरह के रूपो की व्याख्या हो जाती है। **आक** से व्युत्पन्न **आ** प्रत्यय का विवेचन करते हुए डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि **सुआ कउआ** के विपरीत **घोड, बलद, भल** रूप पुरानी अवधी मे है, **घोडा, बलदा भला** रूप नहीं। इसमे **आक** वाली व्याख्या कमजोर पड जाती है। पुरानी अवधी मे **पाता, बाछा** आदि रूप ब्रज प्रभाव के द्योतक है। **तम डाल डाल हम पात पात** और सूर की पंक्ति **ता दिन तेरे तन तरुवर के सब पात झरि जहैं** मे अकारान्त **पात** का प्रयोग ही हुआ है। **पात** मे आ प्रत्यय लगने से तो **पाता** रूप बना किन्तु **गत** मे **आ** लगने से गा ही रह गया। वास्तव मे **गत** के दो प्रतिरूप थे **गय** और **गया**। **गय** से ही बघेलखंडी के **गयेंसि** जैसे रूप बने। खडी बोली मे **गया** रूप हुआ। इसी प्रकार **गवा, भवा** जैसे रूप जो पश्चिमी अवधी मे कही कही बोले जाते है पुरानी अवधी के रूप नहीं है, पश्चिमी प्रभाव के द्योतक है। **हाथी** जैसे शब्द की व्युत्पत्ति दिखाने मे कठिनाई हुई, इसलिए डा० चाटुर्ज्या ने **हस्ति** और **हस्तिन्** के बदले **हस्तिक** रूप की कल्पना की। यह कल्पना अनावश्यक है। **हस्ति**, और **हस्ती** दोनो रूपो का चलन था, **हस्ती** रूप से **हाथी** व्युत्पन्न हुआ। अवधी मे **सुखिया, दुखिया, बिटिया** जैसे रूप प्रचलित है। यहा डा० चाटुर्ज्या ने **इक** के साथ **आक** प्रत्यय जोडकर **इआ** प्रत्यय का विकास बताया है। यदि **सुखिकाक दुखिकाक** जैसे रूप कभी बोले जाते रहे हो, तो यह व्युत्पत्ति सही होगी। **सुखी दुखी** शब्दो मे **आ** (अथवा **या, वा**) प्रत्यय जोडने से **सुखिया दुखिया भइया, बॅंटवा** जैसे रूप बन जाते है। कुछ शब्दो मे **या और वा** लिंग भेद सूचित करते हैं जैसे **बिटिया** और **बॅंटवा**। **सुखिया दुखिया** लिंगभेद से मुक्त है क्योंकि मूल प्रत्यय भी लिंगभेद सूचित न करता था। अवधी **आगि** के लिए डा० चाटुर्ज्या ने **अग्निका** मूल रूप बताया है। **अग्नि** से **आगि** शब्द सहज व्युत्पन्न होता है। संस्कृत मे **अग्नि** स्त्रीलिंग नहीं है इसलिए **आगि** रूप को **अग्निका** से सिद्ध करना चाहिए, यह कल्पना अनावश्यक है। संस्कृत के अनेक शब्द, रूप बदले बिना ही, हिन्दी मे भिन्न लिंग मे प्रयुक्त होते हैं। **देवता** शब्द संस्कृत-पद्धति से स्त्रीलिंग है किन्तु हिन्दी मे पुल्लिंग है, वैसे ही **अग्नि** संस्कृत मे पुल्लिंग है **आगि** अवधी मे स्त्रीलिंग है। तत्सम रूप **अग्नि** का व्यवहार भी जब हिन्दी मे होता है तो हिन्दी व्याकरण के अनुसार स्त्रीलिंग मे होता है।

अवधी **दीन** का पूर्व रूप प्राकृत **दिण्ण** माना है और **दिण्ण** का पूर्व रूप **दत्त** है। इस व्युत्पत्ति के साथ डा० चाटुर्ज्या ने कल्पित मूल इंडोयूरोपियन **ददनो** भी लिखा है। **ददनो** जैसा अप्राप्य रूप प्रचलित भी रहा हो तो **दत्त** इससे बिलकुल भिन्न है और यह मानना होगा कि प्राकृत **दिण्ण** भी संस्कृत **दत्त** से बिलकुल अलग है। डा० चाटुर्ज्या ऐसा मानते भी हैं। वे **दत्त** को **दिण्ण** का मूल रूप नहीं कहते, इसलिए उसकी व्युत्पत्ति के लिए **दद्नो** की कल्पना करते हैं। किन्तु **दीन** का पूर्वरूप **दीन्ह** है जो **दीन्हेंसि** में अब भी दिखाई देता है। जायसी और तुलसीदास की रचनाओं में **दीन** और **दीन्ह** दोनों रूप मिलते हैं। **ध** और **न्ध** दो तरह के प्रत्यय क्रियामूल में लगाये जाते थे। क्रिया मूल **दि** में **ध** प्रत्यय लगने पर **दिध** शब्द बना। **ध** का परिवर्तन **ह** में हुआ, तब **दिह** रूप बना। **दिह** के दूसरे वर्ण में महाप्राणता का लोप होने पर **दिय** रूप का विकास हुआ। मानक हिंदी के **दिया** का आधार **दिय** है अवधी के **दिहेंसि** का आधार **दिह** है। इसी प्रकार **ग** क्रियामूल में **ध** प्रत्यय लगने से **गध**—**गह**—**गय**—**गव** रूपों का विकास हुआ। **गह** वाला रूप, **गय**, **गय** के प्रभाव से अवधी में अप्राप्य है। **गत** का विकास **गध** मूल रूप से हुआ है, **ध** की सघोषता और महाप्राणता का लोप होने पर। जैसे **इध** से **इह** और **इत** रूप बने, वैसे ही **गध** से **गह** और **गत** रूप बने थे। **इध** का एक विकास **इत्थ** भी है। उसी तरह **दिध** और **दध** का एक विकास **दित्थ** और **दत्थ** हुआ। संस्कृत में **दत्त** है, पंजाबी में **दित्त** अब भी बोला जाता है।

हिंदी के **प**, **पा** और **पन** प्रत्यय ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से रोचक हैं। **मिलना** क्रिया से **मिलाप** संज्ञा रूप **प** प्रत्यय की सहायता से बनता है। वैदिक भाषा में **पुष्प**, **स्तूप** शिल्प आदि शब्द इसी प्रत्यय की सहायता से बने हैं यद्यपि मैकडानल ने ऐसे शब्दों की व्युत्पत्ति को अस्पष्ट कहा है। संभव है, **दप**, **सप** जैसे रूप **दर**, **सर** क्रियाओं से बने हों। भाववाचक और वस्तुवाचक संज्ञा शब्दों, कृदंतों, विशेषणों आदि के निर्माण में इस प्रत्यय की बहुविध भूमिका थी। इस **प** के समानान्तर **व** प्रत्यय था जो, संभव है, **प** का रूपांतर हो। **ऊध्व** **ध्रुव** **पक्व** **विश्व** आदि में **व** प्रत्यय का योग है। **व** के साथ **वन** प्रत्यय भी था। **वग्वन** (वाचाल) **सत्वन** (योद्धा) आदि में उसकी सहायता से विशेषण रूप बनाये गये हैं। जैसे **व** के साथ **वन** था, वैसे ही संभव है **प** के साथ **पन** प्रत्यय रहा हो जो हिंदी के **बचपन**, **अपनापन** आदि में विद्यमान है। वैदिक भाषा में ऐसे अनेक समरूप प्रत्यय हैं जिनमें एक रूप का स्वर ह्रस्व है, दूसरे का दीर्घ। इसलिए यह अनुमान असंगत नहीं है कि **प** के साथ **पा** प्रत्यय का चलन भी था। **बुढ़ापा** **मुटापा**, **सलापा** आदि में **प** का जोड़ीदार **पा** प्रत्यय है। हिन्दी में **प** **पा** और **पन** का व्यवहार भाववाचक संज्ञारूप बनाने के लिए वैसे ही होता है जैसे संस्कृत में **त्व** और **त्वन** प्रत्ययों का। **पुरुषत्व**, **भ्रातृत्व** की तरह **पतित्वनम्** (पति होने की अवस्था), **मर्त्यत्वनम** (मर्त्य जनों की रीति) जैसे रूप भी वहाँ प्रचलित थे। ब्रुगमन ने लिखा है कि **त्वन** प्रत्यय का वही काम है जो **त्व** का है। ठीक यही बात **प** **पा** और **पन** के बारे में कही जा सकती है। संभव है **प** और **पन** **त्व** और **त्वन** से कभी संबद्ध रहे हों।

हिन्दी के प्रत्यय नये हों चाहे पुराने, वे संस्कृत से आए हों, चाहे 'देशज' हों, उनका व्यवहार व्यापक स्तर पर होता रहा है और वे केवल हिन्दी में नहीं, अन्य आर्य भाषाओं में भी प्रयुक्त होते रहे हैं। बँगला भाषा से हिन्दी के सम्बन्ध का उल्लेख पहले हो चुका है। हिन्दी और बँगला का बहुत गहरा सम्बन्ध प्रत्ययों में दिखाई देता है। बँगला भाषा के उदभव और विकास पर अपने ग्रंथ में डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने बँगला भाषा की शब्द-रचना का विवेचन करते हुए जो प्रत्यय बताये हैं वे हिन्दी और बँगला, विशेषत अवधी और बँगला के सम्बन्ध की पुष्टि करते हैं। हिन्दी शब्द घटती, बढ़ती बँगला में प्रथम वर्ण पर बलाघात होने से घाटति बाड़्ति बोले जाते हैं। यहाँ डा० चाटुर्ज्या के अनुसार संज्ञा रूप बनाने के लिए ति अथवा अती प्रत्यय का व्यवहार हुआ है। दीर्घ स्वरान्त प्रत्यय हिन्दी में है। कमति गुनति भरति हिन्दी के कमती, गिनती, भरती शब्द हैं। यहाँ बँगला रूपों में प्रथम वर्ण दीर्घ नहीं हुआ किन्तु बलाघात उसी पर है इसलिए अन्तिम वर्ण ह्रस्व हो गया है। डा० चाटुर्ज्या के मत से अत प्रत्यय में इ स्वर जोड़ा गया है और भक्ति युक्ति शब्दों के ह्रस्व वर्ण ति के प्रभाव से कमति भरति का अन्तिम वर्ण ह्रस्व हो गया है। यह व्याख्या युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती। घाटति, बाड़्ति में भी ह्रस्व ति वर्ण है। भक्ति के ति का प्रभाव भरति पर ही क्यों माना जाय? फिर हिन्दी रूप घटती बढ़ती के समान कमती गिनती, भरती विद्यमान हैं। जानत कृदन्त रूप में अत प्रत्यय है जिसका मूल रूप अन्त माना गया है। पथ और पन्थ के समान अत और अन्त वैकल्पिक रूप हैं। बँगला आमार जानत अर्थात मेरे जानते हुए अवधी में होगा— हमरे जानत। जानते उत्तर-पश्चिमी रूप है जानत मध्यदेशीय।

एक प्रत्यय अन है जो सीधे संस्कृत से आया है। भाइन बँगला का शब्द उतना ही है जितना हिन्दी का। कादन गायन, छाड़न (जो वस्तु छोड़ दी जाय, अवधी क्रिया छाड़ से बना हुआ रूप) ऐसे ही शब्द हैं। डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि बोलचाल की परिनिष्ठित बँगला में ऐसे रूप पुराने पड़ते जा रहे हैं किन्तु पूर्वी बंगाल में उनका व्यवहार खूब होता है। पुरानी अवधी और वर्तमान कनौजी तथा बाँगरू में भी अन प्रत्यय का व्यवहार क्रियार्थी संज्ञा बनाने के लिए होता है। हिन्दी के अनेक रूप परिनिष्ठित बँगला में समाप्त हो चले हैं, वे पूर्वी बंगाल में सुरक्षित हैं और हिन्दी बँगला के पुराने सम्बन्धों के प्रमाण हैं। अन प्रत्यय का दूसरा रूप होगा अना जैसे कि वैदिक प्रत्ययों में ह्रस्व-दीर्घ स्वरों वाले वैकल्पिक रूप मिलते हैं। डा० चाटुर्ज्या ने अना की व्याख्या की है कि अन प्रत्यय में आ जोड़ा गया है। ढाकना (हिन्दी ढकना, अवधी क्रिया ढाक ही है जिससे ढाक्ना रूप बना है), पाओना, राना (राधना), काना (कादना, क्रन्दन करना) आदि रूप खड़ी बोली कृदन्तों के समान बने हैं जो अवधी के ह्रस्व स्वरान्त प्रत्ययों से भिन्न हैं। छेनी, छाउनी शब्दों में डा० चाटुर्ज्या ने नी उनी प्रत्यय माने हैं। नी प्रत्यय ही काफी था क्योंकि छाउनी में अवधी क्रिया छाव है। छाव का बँगला रूपान्तर छाउ (अथवा छाओ) होगा। नी का विकास भी अन प्रत्यय में इ जोड़कर माना गया है। प्रत्ययों की कल्पित व्युत्पत्ति के बारे में अधिक कुछ कहना अनावश्यक है।

यहाँ केवल यह देखना चाहिए कि व्यवहार में बँगला के प्रत्ययों का सम्बन्ध हिंदी प्रत्ययों से किस प्रकार का है। **कूआ, गोरा, बाघा, खाँडा, बकरा, घुग्गा, लोना, सफेदा** आदि शब्द हिन्दी बँगला दोनों में प्रयुक्त होते हैं। इनमें **आ** प्रत्यय लगा है। डा० चाटुर्ज्या ने मध्यकालीन बँगला का नेहा रूप भी दिया है। हिन्दी लोकगीतों में नेह का **नेहा** रूप सुनने को मिलता है। **जावा, करा** आदि कृदन्त रूपों में **आ** प्रत्यय है। यहाँ डा० चाटुर्ज्या ने पुरानी हिन्दी के **चल्या**, आधुनिक हिन्दी के **चला, देखा** आदि का याद किया है। बागरू में राजस्थानी के समान **चल्या** (अथवा **चाल्या**) जैसे रूपों का व्यवहार अब भी होता है। **लडाई, खुदाई, ढलाई, मिठाई, भलाई, सचाई, बड़ाई, सफाई, चढ़ाई, उतराई, सिलाई, धुलाई** बँगला में क्रमशः **लडाइ, खोदाइ, ढालाइ, मिठाइ, भालाइ, साँचाइ, बडाइ, साफाइ, चडाइ, उतराइ, सेलाइ, धोलाइ** हैं। इनमें डा० चाटुर्ज्या ने **आइ** प्रत्यय माना है। उनके लिखने से ऐसा लगता है कि **आइ** तो मूल प्रत्यय है और हिन्दी का **आई** उसका रूपान्तर है। किन्तु **भालाइ, साचाइ, साफाइ** में आदि वर्ण पर बलाघात की आवश्यकता के कारण अन्तिम दीर्घ स्वर का ह्रस्व किया गया है। डा० चाटुर्ज्या ने उदारतापूर्वक लिखा है कि ऐसे कुछ शब्द हिन्दी से भी बँगला में उधार लिए गये हैं। इनमें **बामनाइ** भी है जो अवधी **बँभनई** का रूपान्तर है। ब्राह्मण की सी जिद को **बँभनई** कहते हैं।

कानाइ, रामाइ बँगला नाम अवधी के **कन्हई, रमई** का रूपान्तर हैं। डा० चाटुर्ज्या के अनुसार इनमें बँगला का **आइ** प्रत्यय लगा है, मूलरूप **कृष्णक्कि**, अथवा **कृष्णाक्कि**, इनसे उत्पन्न हुए **कन्हइअ, कन्हाइअ** तब व्युत्पन्न हुए **कानाइ**। डा० चाटुर्ज्या कहते हैं कि हिन्दुस्तानी और पूर्वी हिन्दी में भी ऐसे रूपों का व्यवहार होता है।

डकैत शब्द का सम्बन्ध शायद चिल्लाने से है जिसके लिए बँगला में **डाक** शब्द है। **डाकू** चाहे न चिल्लाता हो, चिटठीरसा जरूर चिल्लाकर चिटठी बाटता है इसलिए **डाकिया** कहलाया और चिटठियाँ ले जाने वाली गाडी डाक गाडी हो गई। **डकैत** का बँगला रूप **डाकात**, इसका पूर्वरूप **डकाइत**, प्रत्यय **आइत**। डा० चाटुर्ज्या ने हिन्दुस्तानी शब्द **ढलैत** (ढाल ले चलने वाला) दिया है। (हिन्दी के स्थान पर डा० चाटुर्ज्या ने अपने ग्रन्थ में सामान्यतः हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग किया है)। हिन्दी में **लठैत** जैसे शब्द सुपरिचित हैं।

बँगला में **घावडाओ, चडाओ, बनाओ** आदि संज्ञा रूप प्रचलित हैं। **फालाओ** के लिए डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि यह हिन्दुस्तानी **फइलाव** से बना है। हिन्दी **बनाव सिंगार** में **बनाव** संज्ञा रूप है। **चढ़ाव, फइलाव** जैसे संज्ञा रूप अवधी में सामान्य हैं। मानक हिन्दी के **बनाव सिंगार, चढाव-उतार** जैसे शब्द युग्मों में उनका व्यवहार अब भी होता है। **चालान, उडान** में **आन** प्रत्यय है। **पूजारी** (पुजारी), **चामार** (चमार), **बानिजार**, (बनिजारा वनजारा) में **आर** प्रत्यय है। हिन्दी **महरी** का बँगला प्रतिरूप **मेहारी** है जो संस्कृत **महागारिका** से व्युत्पन्न बताया गया है। **चाचाम, छिनाल**

आदि म **आल** प्रत्यय है जो **आर** का ही रूपान्तर है। **गोयाला** (ग्वाला), **बाडीवाला** (बाडी वाला) शब्दो का विवेचन करते हुए लिखा है कि पिछले दिनो ये रूप हिन्दी शब्दो से प्रभावित हुए हैं। वाला का बँगला मे **ओला** रूप मे बोला गया तब **कापड-ओला, गाडोओला** रूप बने। **ओला** रूप के अतिरिक्त वाला प्रत्यय बँगला मे **आरा** भी बोला जाता है। मतवाला शब्द का रूपान्तर **मातोआरा** है, व का लोप होने पर **माताल** रूप का भी चलन हुआ। दोनो रूपो मे बलाघात की आवश्यकता के कारण प्रथम वर्ण दीर्घ हुआ। आरा का पूर्वरूप **भायोरा** मानकर डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि "विहारी अथवा हिन्दी प्रभाव से" (पृष्ठ ६७०) यह **भायोरा** (वाला) रूप भी प्राप्त है। **ओला** का स्त्रीलिंग रूप **उली** बनता है। **बाडीओला** का स्त्रीलिंग रूप हुआ **बाडीउली**।

हिन्दी का एक शब्द **कडियल** है जो **कडा** म बना है। **कडियलपन** के अर्थ म **केडेलो** शब्द बँगला म प्रयुक्त होता है। डा० चाटुर्ज्या ने इसका पूर्वरूप **कांडियल** मान कर एक प्रश्नवाचक चिह्न के साथ इसका सम्बन्ध **काण्ड** (तीर) से सुझाया है। दीर्घ ई से ह्रस्व **इ** वाले प्रत्यय का विकास मानकर डा० चाटुर्ज्या ने बताया है कि इसका उपयोग सज्ञा और विशेषण बनाने के लिए होता है। यद्यपि बँगला लिंगभेद से मुक्त है किन्तु उसमे बहुत से शब्द लिंगभेद के सूचक हो गए हैं। **मालिन** और **माली** म भेद किया जाता है। **देशी** शब्द मे **ईय** प्रत्यय मानकर उसका पूर्व रूप **देशीय** बताते है। **गुनी, बेनारसी** (बनारसी) म ई प्रत्यय फारसी प्रभाव से मानते है। **गुणी** सीधा सस्कृत मे कर्ता रूप होगा। **स्वामिन्** की तरह इसका अविकारी रूप **गुणिन** कहा जाएगा। **बढई** का पूर्वरूप **वर्द्धकिन** मानते हैं किन्तु **बढ़ई** रूप की मजिल स्वीकार किए बिना **वर्द्धकिन** से सीधे बँगला **बाडइ, बाड्इ** की व्युत्पत्ति दिखाते है। **बूढ़ा** शब्द का स्त्रीलिंग रूप **बूढ़ी** है। बँगला **बुडी** का विकास कल्पित रूप **वृद्धिका** से दिखाया है। हिन्दी के ईकारान्त रूपो का प्रभाव इतना गहरा है कि मूल रूप स्त्रीलिंग होने पर भी उसे दुबारा स्त्रीलिंग बनाया गया है, जसे अप्सरा से **अप्सरी**। **बोली, रोटी, धोती, डकैती, रखवाली** आदि शब्द बँगला म क्रमश **बुली, रुटी, धुती, डाकाती, राखाली** है। बँगला मूलत लिंगभेद से मुक्त भाषा है, इसलिए इन रूपो का मूल स्त्रीलिंग वाला भाव क्षीण हो गया है। डा० चाटुर्ज्या मानते है कि निर्जीव वस्तुओ के नामो मे मूल स्त्रीलिंगभाव लुप्त हो गया है किन्तु पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, पजाबी आदि मे व्याकरणगत लिंगभेद बना हुआ है। पश्चिमी हिन्दी ही नही, अवधी मे भी ये सारे शब्द स्त्रीलिंग का लक्षण सूचित करते है। डा० चाटुर्ज्या ने हिन्दी के **लाली, हरियाली, रखवाली** जैसे शब्द तुलना के लिए ठीक ही उद्धृत किए है किन्तु प्रश्न केवल तुलना का नही है, प्रश्न है लिंगभेद मुक्त बँगला म लिंगभेद युक्त शब्दो के प्रवेश का। इनका स्रोत हिन्दी और हिन्दी जनपदो की बोलियाँ हैं। **रोटी, धोती, डकैती** का ई प्रत्यय फारसी से प्रभावित है कि नही, यह मूल प्रश्न नही है। मूल प्रश्न यह है कि ये सारे स्त्रीलिंग रूप बँगला में हिन्दी क्षेत्र से पहुँचे है या नही। इस प्रश्न को ध्यान म रखते हुए उन प्रत्ययो के स्रोत पर विचार

करना चाहिए जो हिन्दी और बँगला में सामान्य है।

हिन्दी में खा, गा, कह क्रियाओं से बनाये हुए संज्ञा रूप **खवइया, गवइया, कहइया** प्रचलित है, विशेषत अवधी में। बँगला में मध्यवर्ती वर्ण पर बलाघात स्वीकृत न हुआ, इसलिए **बोलिइया, कहइया** से **बालिये, काहिये** रूप बने। दोनों शब्दों का अर्थ है बोलने वाला। बँगला शब्दों में **इए** प्रत्यय मानकर डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि हिन्दी के **अइया, अवइया** प्रत्यय तथा आधुनिक बँगला का **इए** अथवा **इये** एक ही प्रतीत होते है। फिर कहा है कि बगला प्रत्यय अधिकतर बोलचाल में मिलता है, इसलिए असम्भव नहीं कि वह कुछ ही दिन पहले हिन्दी से उधार लिया गया हो और पश्चिमी बँगला की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार उसमें वर्ण-सकोचन हुआ हो, उडिया और असमिया में वैसा प्रत्यय नहीं है। कारण यह कि उडिया और असमिया की अपेक्षा बँगला पर हिन्दी प्रभाव अधिक है।

करत करत अभ्यास के, जडमति होत सुजान—यहाँ **करत** कृदन्त का बँगला रूप होगा **करिते**। खडी बोली में भी **अभ्यास करते करते**, इस तरह की शब्दावली होगी। यहा बँगला रूप अवधी और ब्रजभाषा की अपेक्षा खडी बोली के रूप से मिलता है। छुटपन या प्यार जताने के लिए बँगला में **पाँचू कानू** जैसे ऊ प्रत्यय वाले रूप होते हैं और **उ** प्रत्यय वाले **नीचु ऊँचु** रूप भी होते हैं। हिन्दी का **बहुत** अवधी में **बहुतु** भी बोला जाता है। **पाँच** और **कानू** हिन्दी के **बजू, नत्थू** आदि की तरह है। जिस खेत में धान बोया जाय, उसे अवधी में **धनहा** कहते हैं। प्रथम वर्ण के दीर्घ होने पर इसका पहला रूपान्तर होगा **धानुया** फिर **धेनो** रूप बनेगा। इस प्रकार बँगला में **कलुआ** से **केलो** और मछुआ से **मेछो** कठुवा से **केठो** रूप बने हैं। **क, अक इक, उक** प्रत्ययों के प्रसग में **सडक फाटक, झलक बैठक** शब्द दिए है। इस शृखला में हिन्दी **हुचकी** और **सिटकनी** बँगला में **हेंचकि, छिटकनी** हैं। जनपदीय बोलियों की तरह, **छोटी, बडी** इन विशेषणों के प्यार वाले रूप **बडकी, छोटकी** बँगला में प्रचलित है। ये शब्द स्त्रीलिंग सूचित करने वाले रूप है। बँगला शब्दों में **टा** और **टि** अथवा **टी** प्रत्यय शब्दों के साथ जोडे जाते हैं। डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि **टा** प्रत्यय मूलत पुल्लिंग भाव व्यक्त करता था और किसी वस्तु का बडा या अनगढ होना सूचित करता था। उसी प्रकार **टि** और **टी** मूलत स्त्रीलिंग भाव व्यक्त करते थे और किसी वस्तु की लघुता या कोमलता सूचित करने के लिए प्रयुक्त होते थे। बँगला में यह भेद नष्ट हो गया है और ये प्रत्यय वस्तु की निश्चयात्मक स्थिति सूचित करते है। राम के साथ **टा** और **टि** दोनों का व्यवहार हो सकता है। **रामटि** कहने में आत्मीयता का भाव है, **रामटा** कहने से राम के भारी भरकम होने का बोध होगा। इसी प्रकार **गाछटा** और **गाछटि** दोनों रूप निरपेक्ष में तटस्थ केवल एक निश्चित वृक्ष का बडा छोटा होना सूचित करेंगे। ये **टा, टी** राजस्थानी के **डा डी** मालूम होते हैं। डा० चाटुर्ज्या ने बताया है कि बगाल की जनपदीय बोलियों में **डा, डी** भी बोले जाते हैं। किसी वस्तु में गमग सूचित करने के लिए **ड** प्रत्यय का उपयोग होता है। उदाहरण दिया है **घेसेड़ा** जो हिन्दी **घसियारा** का रूपान्तर

है। बाँगरू के समान बँगला भाषा र् की अपेक्षा ड स अधिक नेह दरसाती है, इसीलिए बँगला म घसियारा घेसेडा, जुआरी जुयाडी, सपेरा साप्‌ड हुए। **बाँकुरा** का बँगला रूपान्तर **बाँकुडा** है। अवधी के **खॅलवार** का बँगला रूपान्तर **खेलोयाड** (खिलाडी) है। हिन्दी **लुटेरा** बँगला मे **लुठेरा** है, डा० चाटुर्ज्या ने इसका कल्पित पूर्वरूप **लुठियाडा** माना है, माना मूल ड बदल कर हिंदी और बँगला म र हा गया हो। हिन्दी **भगड** बँगला **भाँगड** दोना म ड है। हिन्दी **अखाडा** और बगला **आखडा** की भी यही स्थिति है किन्तु हिन्दी **बटमार** पहले **बाटपाड** हुआ (यह रूप डा० चाटुर्ज्या के अनुसार उत्तरी बगाल मे अब भी बोला जाता है), फिर उसका रूपान्तर हुआ **बाटोयाड**।

ट मूलक प्रत्यया की चर्चा करते हुए डा० चाटुर्ज्या ने एक महत्वपूर्ण बात कही है। वह यह कि ट वाला प्रत्यय वदिक भाषा म नही है और इसका उद्भव द्रविड या कोल प्रभाव से सिद्ध नही किया जा सकता पर वह सभी आधुनिक आयभाषाओ मे जड जमाए हुए है। इस स्थापना का महत्व यह है कि डा० चाटुर्ज्या ने जो तत्व संस्कृत मे न मिले, उस द्रविड-कोल प्रभाव स उत्पन्न नही मान लिया। आधुनिक आयभाषाओ मे किसी एक तत्व की व्यापकता देख कर उन्होने कल्पना की है कि उसका स्रोत प्राचीन आयभाषा म अवश्य रहा होगा अर्थात उन्होने माना है कि आधुनिक आयभाषाओ के अध्ययन से प्राचीन आय भाषा-तत्वा का पता लगाया जा सकता है। टवर्गीय ध्वनियो के दो केन्द्र सौराष्ट्र और असम अब भी विद्यमान है। बँगला असमिया की पडोसी भाषा है, इसलिय ट वाले रूपो स उसके लिए ड और ड का विकास करना स्वाभाविक है।

कही कही अवधी के स्त्रीलिंग इकारान्त रूप, खडी बोली की तरह, बँगला मे अकारान्त हो गए हैं। जैसे **बहिनि** शब्द खडी बोली म **बहन** है वसे ही अवधी **नातिनि** बँगला म **नातिन** है। जसे हिन्दी मे **बचपन** और **बचपना** दोना तरह के रूप प्रचलित है, वैसे ही बँगला म गिन्नीपन (गहिणीपन), **ढीग्पना** (ढिठाई) ह। हिन्दी **गभरू गभरूप** से और **गोरू गोरूप** से विकसित माने गये है, बँगला मे **गोरु, गाभरु** रूप हैं। **दूसरा, तीसरा** के बँगला प्रतिरूप **दोसर, तेसर** है, इनम **सर** प्रत्यय बताया गया है जिसका अथ है चलना। **दूसरा, तीसरा** के **सर** से चलने वाले **सर** का कोई सम्बन्ध नही है। बँगला रूप अवधी के **दूसर, तीसर** से बने हैं। इसी तरह बँगला शब्द **दोहारा, तेहारा** अवधी के **दोहरा, तेंहरा** का रूपान्तर है।

बँगला मे **एमन** और **केमन** का अथ है इस तरह, किस तरह। **मन** प्रत्यय तरह का अथ देता है। जब यह **तरह** शब्द बगाल पहुँचा, तब वह भी **मन** के साथ जुड गया। महाप्राण ध्वनि का लोप होने पर रूप बने, **एमनतर, केमनतर**। डा० चाटुर्ज्या ने माना है कि हिन्दी म **इस तरह, किस तरह** आदि के समान बँगला के इन रूपा का निर्माण हुआ है। पुराने आय भाषातत्व बगाल मे किस रास्ते से पहुँचे वह तो पुरानी बात है, फारसी का प्रभाव हिन्दी प्रदेश को लाघकर सीधे बगाल पहुँच न सकता था। ईरानी प्रभाव के मुख्य केन्द्र दिल्ली, आगरा, लखनऊ आदि हिंदी प्रदेश के नगर थे। डा० चाटुर्ज्या ने फारसी प्रत्यया का विवेचन भी किया है। **दरबान** मे **बान, छापाखाना** मे

खाना, **कारीगर** (बँगला रूप कारिगर) में **गर**, **बाबूगीरी** (बँगला रूप **बाबूगिरि**) में **गिरि**, कलमदान में **दान**, **चौकीदार** में **दार** प्रत्यय बँगला में वैसे ही प्रयुक्त हुए हैं जैसे हिन्दी में। हिन्दी का एक बहुत अर्थ-व्यंजक शब्द **धड़ोबाज** बँगला में भी प्रचलित है। यहाँ **बाज** प्रत्यय फारसी का है। **बगीचा** और **चमचा** बँगला में **बागिचा**, **चामचा** हैं।

तुर्क आक्रमणों के बाद और उनसे पहले हिन्दी प्रदेश के भाषातत्व निरन्तर बंगाल पहुँचते रहे हैं। इनमें प्रत्ययों का स्थान महत्वपूर्ण है। इन प्रत्ययों के कल्पित पूर्व रूपों की चर्चा इस ढंग से की गई है कि पढ़ने वाले को लगता है कि वे सीधे संस्कृत से, प्राकृत अपभ्रंश मंजिलें तै करते हुए, बँगला में पहुँच रहे हैं। परिणाम यह कि हिन्दी और बँगला का घनिष्ठ सम्बन्ध आँखों से ओझल हो जाता है।

शब्द रचना प्रक्रिया के अन्तर्गत दो शब्दों को मिलाकर नये अर्थ वाला रूप गढ़ने अथवा एक ही शब्द की आवृत्ति द्वारा नया रूप रचने की प्रवृत्ति बहुत पुरानी है और भारत के अनेक भाषा परिवारों में मिलती है। कोल भाषाओं में क्रियापद रचना संस्कृत क्रिया रूपों की याद दिलाती है। संथाली में **दल**—मारना, **ददल**—ज्यादा मारना। संस्कृत के ददाति पिबति से ये रूप तुलनीय हैं। कोल भाषाओं में प्रत्यय लगाकर क्रिया को नया अर्थ दिया जाता है। मुण्डारी में **नेल**—देखना, **नेपेल**—एक दूसरे को देखना। संस्कृत के **चल** और **चपल** इस संदर्भ में विचारणीय हैं। पूर्वी अञ्चल में नाग भाषा मानपा बोली जाती है। इसमें शब्द की आवृत्ति का उदाहरण देते हैं। **रि लेम् लेम** अर्थात पानी पूरी तरह भरा हुआ है। **रि** का अर्थ है जल, नदी। नदी के लिए एक अन्य शब्द **गोड रि** है। इसमें **रि** नदी वाचक है ही, **गोड**, **गाड** अर्थात गंगा का प्रतिरूप है। जैसे बँगला में **एमन** मान इस तरह, फिर **एमन** में **तरह** जोड़कर **एमनतर** रूप बना, वैसे ही मोनपा में दो जल सूचक शब्द मिलाकर एक नया शब्द बना। इसी भाषा में मनुष्य के लिए **सोड** शब्द है। इसका बहुवचन बनाने के लिए **बग** या **बाग** शब्द जोड़ा जाता है। यह वही शब्द है जो हिन्दी के **लोग बाग** में सुनने को मिलता है। हिन्दी में **बाग** शब्द का अलग से प्रयोग नहीं होता किन्तु यह अवश्य ही हिन्दी जनपदों का पुराना शब्द है। मोनपा के अतिरिक्त अन्य किसी नाग भाषा में यह शब्द मुझे नहीं मिला न द्रविड़ भाषाओं में दिखाई दिया। इसलिए सम्भावना यह है कि यह हिन्दी जनपदों का पुराना शब्द है जो मानपा में यहाँ से पहुँचा है। हिन्दी जनपदों में उसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है किन्तु मुहावरे में अन्य शब्दों में वह ऐसा अटूट जुड़ा है कि सुरक्षा रहा। भाषाविज्ञान के लिए वह जितना ही विरला है उतना ही अनमोल है। **नाप जोख** या **जोख** मानक हिन्दी में अलग से प्रयुक्त नहीं होता किन्तु जनपदीय भाषाओं में तौलने के लिए **जोख** क्रिया का व्यवहार अब भी होता है। नाप-जोख उस रूप का मिसाल है जिसका एक अंश हमारे देखते देखते पुराना पड़ता जा रहा है। जैसे **बाग** शब्द एक नाग भाषा में पहुँचा है वैसे ही संस्कृत के अनेक शब्द पुराने समय में ऐसी द्रविड़ भाषाओं में पहुँच गये हैं जिनके बोलने वाले आज सामाजिक दृष्टि से बहुत ही पिछड़े हुए हैं। नील गिरि पर्वतमाला में रहने वाले तोद जाति परस्पर मिलने पर एक दूसरे से पूछते हैं सुर

सौद घिळत । जैसे बँगला म **की खबर** कहन का चलन है, व स ही तोद भाषा म यह कहने का चलन है कि खबर अच्छी है । **सुद साद** दो शब्दा का जोडा है जैसे **लोगबाग** दो शब्दा का जोडा है । इसमे **साद्** सस्कृत शब्द का रूपान्तर है और **सुव शुद्ध** का । कहा नीलगिरि की पिछडी हुई द्रविड जाति तोद, कहा सस्कृत के **शुद्ध और शब्द** ! इनके तद्भव रूपो का व्यवहार ये द्रविड जन नित्य प्रति करत है, इस पर किसे विश्वास होगा ? पर इस व्यवहार के प्रमाण है तोद भाषा क विशपन एमेना । (एमेनो **कलेक्टड पेपस**, अन्ना-मलइ यूनिवर्सिटी, १९६७, पष्ठ ३८) । **शब्द शुद्ध** का अथ हुआ अच्छी खबर ।

हिन्दी मे दो शब्दा को मिलाकर दोना के अथ म मिलता-जुलता किन्तु अधिक व्यापक अथ उत्पन्न किया जाता है । अंग्रेजी शब्द क्लाइमेट के अथ म **जलवायु** का प्रयोग होता है । **जलवायु** रूप जल और वायु क अथ को समाप्त नही करता, उस अथ का कायम रखत हुए वह अधिक व्यापक अथ की सृष्टि करता है । लोग कहते है **अभी तो मेरे हाथ पैर चलते हैं** जिसका अथ है, शरीर अपना काम कर रहा है । गावा में **घरदुआर** इसी तरह सम्पत्ति क अथ म प्रयुक्त होता है । **हलमाची** का अथ होगा खेती के उप-करण । माची के अन्दर बैला के सिर होत है और हल उससे बँधा रहता ह । माची के बिना हल नही खीचा जा सकता और हल क बिना माची बेकार है । हल माची का अभिन्न भौतिक सम्बन्ध किसान न हलमाची के जोडे म कायम रखा है । **बल बधिया, बियाबँसार** (बीज)—इन जोडा म पयायवाची शब्दा का व्यवहार हुआ है, किसी नये अथ का सृजन नही हुआ किन्तु अथ को घनत्व अवश्य प्रदान किया गया है ।

हिन्दी म शब्दा के अनक ऐसे जोडे है जिनम क्रिया और सज्ञा का भेद मिट सा गया है । **मारपीट** म **मार** क्रिया है, सज्ञा भी है । **मार** और **पीट** दोनो का एक ही अथ है, किन्तु **मारपीट** का अथ दोना से भिन्न, फिर भी मिलता जुलता, और अधिक व्यापक है । **मारामारी, देखादेखी, तनातनी** जैसे रूपा मे एक ही शब्द की आवृत्ति है किन्तु ध्वनि-सौन्दय के लिए मूल शब्द के अन्तिम स्वर को आवत्ति करते समय बदल दिया गया है । **तना, देखा मारा** कृदन्त है किन्तु यहा न तो विशेषण का भाव है, न क्रिया का, उनका व्यवहार सज्ञा शब्दा के समान हुआ ह । **चिलचिलाती धूप, सांप की फुफकार, बूढे आदमी का बरबराना** (व्यथ की बातें करना), यहा कुछ ध्वनिया की आवृत्ति हुई है और उससे अथ घनत्व पैदा किया गया ह । **पानी झमाझम बरसा, हाल खचा-खच भरा था**—यहाँ अनुकरण मूलक **झम** और **खच** शब्दा की आवत्ति हुई है किन्तु भाषा की लय को ध्यान म रखते हुए बीच मे अतिरिक्त स्वर जोड दिया गया है । यह प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन है और हिन्दी प्रदेश की भाषाओं की विशेषता है । वैदिक भाषा म **गनी-गम, पनीपद, घनीघन, पिबापिब** जस रूप मिलते हैं । व्हिटने ने ऐसे रूपा का विवरण अपनी सस्कृत व्याकरण पुस्तक म दिया है । लौकिक सस्कृत मे ऐसे रूप नही के बराबर है । वैदिक भाषा की अलौकिकता इसी मे है कि बोलचाल की लय के अनुसार जो रूप गढे जात है, व उसके लिए असस्कृत नही है । **एक** और **दश**, इन दो शब्दो को मिलाते समय जो अतिरिक्त स्वर जोडकर **एकादश** रूप बनाया गया, वह इसी प्रवृत्ति का द्योतक है ।

क्रिया के एक वर्ण की आवृत्ति वैदिक भाषा में अत्यन्त सामान्य थी, आवृत्ति करते समय बहुधा मूल वर्ण के स्वर में थोड़ा परिवर्तन कर दिया जाता था। **चल्** से **चाचल**, लप (बोलना) से **लालप्**, **पत्** (गिरना) से **पापत**, नी (ले चलना) से **नेनी**, भू (होना) से **बोभू**, रु (रोना) से **रोरु**, **नम्** से **नन्नम**, **स्तन्** से **तस्तन्** (गरजना) इत्यादि, ये रूप मैक्डनल ने वैदिक भाषा वाले व्याकरण में दिए हैं और आवृत्ति का उद्देश्य यह बताया है कि अर्थ का घनत्व प्रदान किया जाय।

हिन्दी में ऐसे बहुत से शब्द हैं जिनमें आदिस्थानीय व्यंजन की आवृत्ति हुई है यथा **पपीहा, गगरी, घाघरा, ठठेरा, ककहरा, ठिठोली, ठिठकना, ठिठुरना, पोपला** (जिसके दांत न हों), **फफोला, तीतर** इत्यादि। कुछ शब्दों में एक ही शब्दांश की आवृत्ति से नया रूप रचा गया है यथा **दलदल**। संस्कृत में **हलाहल** जैसे शब्द इसी प्रवृत्ति के अनुरूप रचे गये थे। दो भिन्न शब्दों को जोड़ कर **उखाड़ पछाड़, उठना बठना, धक्का मुक्की** जैसे व्यापक अर्थ वाले बहुत से रूप हिन्दी में रचे गये हैं। समानार्थी शब्दों के जोड़े—**काम काज, धरम ईमान** की तरह—पचासों हैं। आधुनिक आर्य भाषाएं नये शब्द ही नहीं गढ़तीं, पुराने शब्द रूपों को नये ढंग से मिलाकर उन्हें नया अर्थ भी देती हैं।

परिनिष्ठित हिन्दी की अपेक्षा जनपदीय भाषाओं में नयी शब्द रचना का कार्य अधिक स्वच्छन्दता से होता है। **गवया, बजवया, अनवैया** (जो किसी व्यक्ति को ले जाने के लिए जाय), **देवया** (जो कोई वस्तु देने को हो), **देवार** (उप०), **लेवार** (जो कोई वस्तु लेने को हो), **जवार** (जो व्यक्ति जाने को हो), **अवार** (जो व्यक्ति आने को हो), **बकरिहा** (बकरियों से सबद्ध) **गुलरिहा** (गूलर के वृक्षों से सबद्ध), **इंबिलिहा** (इमलियों से सबद्ध) जैसे रूप परिनिष्ठित हिन्दी की अपेक्षा अवधी में ही अधिक प्रयुक्त होते हैं। जनपदीय भाषाओं की यह शब्द-रचना क्षमता संस्कृत से अधिक वैदिक भाषा की प्रवृत्ति के अनुरूप है।

संस्कृत हिन्दी क्षेत्र की भाषा थी, अतः उसके प्रत्यय हिन्दी में भी प्रयुक्त होते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं। इनमें दो वर्ग हैं। एक वर्ग उन प्रत्ययों का है जो परिनिष्ठित हिन्दी में संस्कृत से उधार लिये गये हैं यथा **पुरुषत्व** का **त्व**। ऐसे प्रत्यय अधिकतर तत्सम रूपों के साथ ही प्रयुक्त होते हैं। दूसरे वर्ग में वे हैं जो संस्कृत के समानान्तर जनपदीय भाषाओं में प्रयुक्त होते थे और आज भी होते हैं जैसे वैदिक भाषा का **अत** प्रत्यय **ददत** (देते हुए), वैसे ही अवधी में जियत (जीते हुए)। इनके अलावा **पा** और **पन** जैसे प्रत्यय हैं जिनके प्राचीन अस्तित्व के बारे में वैदिक भाषा के प्रत्यय विश्लेषण से पुष्ट तर्कसंगत अनुमान कर सकते हैं। अनेक साहित्यशास्त्रियों, भाषाविज्ञानियों ने यह भ्रम फैलाया है कि १२वीं-१३वीं सदी का वास्तविक भाषाई स्थिति अपभ्रंश रूपों में व्यक्त है, उससे पहले की स्थिति प्राकृत रूपों में। १२वीं सदी के बाद संस्कृत प्रेम की ऐसी लहर आई कि प्राकृत अपभ्रंश रूप निष्कासित हो गये और उनकी जगह संस्कृत रूप स्थापित हो गये। यह धारणा इन विद्वानों का वैदिक काल से चली आती निरन्तर विकासमान,

परिवर्तनशील फिर भी अविच्छिन्न, जनपदीय आर्य-भाषाओं की शब्द रचना प्रक्रिया देखने नहीं देती। उनके लिए शब्द-रचना विश्लेषण का अर्थ है तत्सम, तद्भव और देशज, तीन वर्गों में शब्द सम्पदा को बाट देना। मुटापा बुढ़ापा जैसे शब्द न तो तत्सम हैं, न प्राकृत-अपभ्रंश तत्र के अनुरूप हैं। अपभ्रंश की प्रतिक्रिया में ये रूप अचानक कैसे अवतरित हो गये ? हिन्दी ही नहीं, बंगला, मराठी आदि अन्य आर्य भाषाओं की जनपदीय शब्दावली की जितनी ही छानबीन की जायगी, उतना ही अपभ्रंश की प्रतिक्रिया में तत्सम रूपों की प्रतिष्ठा का सिद्धान्त झूठा साबित होगा। वास्तव में तत्सम रूपों से भाषा को शिष्ट और परिनिष्ठित बनाने की बीमारी इन विद्वानों को है, अपना यह रोग अपने पूर्वजों पर आरोपित करके वे हिन्दी को उधार लेने वाली भाषा घोषित कर देते हैं। जनपदीय भाषाओं की संपदा की अनदेखी करके वे भदेसपन से अपनी संस्कृति की रक्षा करते हैं। किन्तु प्राकृत-अपभ्रंश और संस्कृत, इन दोनों से अलग जहाँ जनपदीय भाषाओं की शब्द निर्माण प्रक्रिया अबाध चलती रही है, उसकी उपेक्षा करके भाषा के विकास की व्याख्या नहीं की जा सकती। हिन्दी तथा अन्य आर्य भाषाएं विद्वानों की मानक भाषाएं, क्या उनकी जनपदीय बोलियां, शब्द रचना में और सामान्य जनता की बोलचाल में, क्या देन में अपनी अपूर्व क्षमता का परिचय देती हैं।

हिन्दी शब्द भंडार के अनेक स्रोत हैं हिन्दी शब्द रचना प्रक्रिया की ओर शब्दों को नया अर्थ दिया है, अनेक युगों में इनका विकास हुआ है। इनमें बाहर से आये हुए तत्व अति अल्प हैं। समस्त आर्य भाषाओं की जनपदीय बोलियों में शब्द रचना प्रक्रिया का मार्ग मिलता जुलता है, अपभ्रंश के अनुरूप वह वही नहीं है जैसा कि बँगला शब्द रूपों के अध्ययन से सिद्ध होता है। उत्तर भारत में समस्त आर्य भाषाई विकास में हिन्दी जनपदों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। यह योगदान प्राकृत अपभ्रंश वाला विकास मार्ग अपनाने से समझ में नहीं आता। शब्दतंत्र का विश्लेषण ध्वनितंत्र के विश्लेषण से जुड़ा हुआ है। शब्दतंत्र का जो विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया गया है उसमें ध्वनितंत्र की कुछ समस्याएं भी विवेचित हैं विशेषकर तद्भवीकरण प्रक्रिया के विश्लेषण सम्बन्ध में। दूसरी ओर शब्दतंत्र का विश्लेषण रूपतंत्र (और वाक्यतंत्र) के विचार से जुड़ा हुआ है। आगे रूपतंत्र के प्रसंग में शब्दतंत्र की अनेक समस्याओं पर फिर विचार करना आवश्यक होगा।

३

आर्य भापा केन्द्र और हिन्दी रूपतत्र

१ सश्लिष्ट विश्लिष्ट भेद

सस्कत और आधुनिक आय भापाओ म सबसे बडा भेद रूपतत्र का लेकर बताया गया है। सम्कत सश्लिष्ट भापा है हिन्दी तथा आधुनिक आय भापाएँ विश्लिष्ट है, पूरी तरह विश्लिष्ट है अथवा उनम पुरान सश्लिष्ट रूपो के अवशेप मात्र रह गए हैं। यहाँ रूपतत्र मे नाम शब्द और क्रियापद दोना के विकार शामिल हैं। सस्कत के समान ग्रीक और लैटिन सश्लिष्ट हैं, हिन्दी और बँगला के समान अग्रेजी और फ्रेच विश्लिष्ट है या उनम पुरान सश्लिष्ट रूपा के अवशेप मात्र है। विभिन्न कारको मे नाम शब्दा के प्रयोग के अनुसार उनके रूप बदलते है। कारक नाम शब्द का सम्बन्ध क्रिया पद से व्यक्त करता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि यदि भापा नाम शब्दा के मामले म सश्लिष्ट है तो वह क्रियापदा के मामले म भी सश्लिष्ट होगी। यदि वह नाम शब्दा के मामले म विश्लिष्ट होगी तो वसी ही स्थिति क्रियापदा के मामले मे भी होगी।

जहा तक अग्रेजी जसी भापा का सम्बन्ध है, वह यदि आदि जमन के सश्लिष्ट रूप छाडकर विश्लिष्ट हो गई है तो यह प्रगति का चिह्न है। उसन सश्लिष्ट रूपा का अनावश्यक बाझ उतार फेंका, विश्लिष्ट होकर वह सरल और अधिक शक्तिशाली हो गई विश्वभापा बन गई। भारतीय भापाएँ सस्कत का मतयुग छोडकर क्रमश आधुनिक भापाओ के कलियुग की ओर बढती गई, और इस प्रकार उनका आधुनिक विश्लिष्ट रूप ह्रास का परिणाम है। जहा तहा जो थाडे स सश्लिष्ट रूप बचे है, व इनके गौरव शाली उद्भव की याद दिलात है। सस्कत ने जब प्राकता का रूप ग्रहण किया तब ध्वनि तत्र म भारी परिवतन हुआ किन्तु रूपतत्र लगभग वैसा ही रहा जसा वह सस्कत म था। यह बात अपन म काफी आश्चयजनक है। ध्वनितत्र म एसा मौलिक परिवतन हा कि शब्द पहचान म न आयें और रूपतत्र ज्या का त्या बना रह, एसा जरा कम होता है। सामान्य प्रक्रिया यह है कि भापा क एक स्तर पर भारी परिवतन हाता है ता उसक साथ उतना नही ता थोडा बहुत परिवतन अन्य स्तरा पर अवश्य हाता है। जा लोग हिन्दुस्तानी ढँग म अग्रजी बालत हैं, व अग्रेजी के ध्वनितत्र का बदलन क साथ थोडा बहुत परिवतन अग्रेजी क मुहावरा, उसकी व्याकरण-व्यवस्था म भी करत हैं। कहने

म या कलकत्ते के बाहर बँगला भाषी भद्रजन जब अपने ढँग से हिन्दी बोलते हैं तब वे उसकी वाक्यरचना भी काफी बदल देते हैं। कलकत्ते के बाजार में बंगालियों द्वारा बोली जाने वाली हिन्दुस्तानी डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या को व्याकरण की दृष्टि से इतनी सरल प्रतीत होती थी कि वह उसे कभी-कभी राष्ट्र भाषा ही नहीं, हिन्दी साहित्य की भाषा भी बनाने की बात करते थे। किन्तु पुराने जमाने में प्राकृतों ने संस्कृत के ध्वनि-तंत्र में भारी उलटफेर किया, और रूपतंत्र लगभग पहले जैसा बना रहा।

उसके बाद अपभ्रंश का समय आया। भाषा अचानक विश्लिष्ट होने लगी। कुछ पुराने रूप बचे रहे पर उनके समानान्तर दूसरे रूपों का भी प्रयोग होने लगा। विद्वानों का कहना है कि इस समय कारकों के व्यवहार में बड़ा झमेला पैदा हो गया। किस कारक का प्रयोग कहाँ करना चाहिए, लोगों को इसका ज्ञान ही न रहा। कर्ता और कर्म का भेद मिटा दिया, सम्प्रदान अपादान सम्बन्ध, अधिकरण, जहाँ जैसी इच्छा हुई किसी भी कारक का प्रयोग कर दिया। इससे कारकों की संख्या घट गई और आगे चलकर दो ही कारक रह गए एक शब्द का सीधा रूप और दूसरा शब्द का तिर्यक् रूप। फिर भी अपभ्रंश में कारक-चिह्न बहुत हैं, कारकों की संख्या में भले कमी हुई हो, उनके चिह्नों में तो वृद्धि ही हुई। संस्कृत में शब्दों के अनेक वर्ग होते थे, किसी के अन्त में ह्रस्व अ, किसी के अन्त में दीर्घ आ कोई इकारान्त, कोई उकारान्त, और कोई मात्र हलन्त। इन विभिन्न वर्गों के शब्दों के साथ अलग-अलग तरह के कारक चिह्न लगते थे। अपभ्रंश में शब्दों के वर्ग कम हो गए किन्तु कारक चिह्नों की संख्या बढ़ गई, यह आश्चर्य की बात है।

इस समय एक नये भाषा-तत्व का जन्म हुआ जिसे कुछ आधुनिक वैयाकरण परसर्ग कहते हैं। यह परसर्ग कारक-चिह्नों से भिन्न माना गया है। कारक-चिह्न परतंत्र भाषा तत्व है, किसी स्वतंत्र शब्द के साथ जुड़कर ही सार्थक होता है। इसके विपरीत परसर्ग अपेक्षाकृत स्वतंत्र है। उक्तकोटि के वैयाकरणों का कहना है कि कारकों के व्यवहार में झमेला होने से कारकों की संख्या घट जाने से कारक-चिह्नों के घिस जाने से परसर्गों का व्यवहार अनिवार्य हो गया।

यहाँ पहले नाम शब्दों को लेकर ही रूपतंत्र की समस्याओं पर विचार करेंगे। इस समस्या का विवेचन करते हुए यह बात ध्यान में रखना उचित है कि संस्कृत की तुलना में जैसा परिवर्तन आधुनिक आर्य भाषाओं में दिखाई देता है, वैसा परिवर्तन ग्रीक और लैटिन को देखते हुए यूरप की भाषाओं में भी हुआ है, कहीं कम हुआ है, कहीं अधिक हुआ है। इनके सिवा भारत में अन्य भाषा-परिवारों की भाषाएं भी बोली जाती रही हैं, उनके रूपतंत्र को भी ध्यान में रखना चाहिए।

२ कारक-रचना

कारक संस्कृत में हैं, कारक हिन्दी में हैं। दोनों के व्यवहार में अन्तर यह है कि संस्कृत में एकवचन के कारक-चिह्न द्विवचन और बहुवचन के कारक

भिन्न होता है। इसके सिवा पुल्लिंग, नपुंसकलिंग और स्त्रीलिंग के कारक चिह्न एक सीमा तक भिन्न होते हैं। इनमें पुल्लिंग और नपुंसकलिंग को लेकर इतना भेद नहीं है जितना स्त्रीलिंग तथा इन दोनों को लेकर है। कह सकते हैं कि संस्कृत नाम शब्दों की रूप रचना में कारक के साथ लिंग और वचन का बोध भी होता है। स्वभावतः यह प्रश्न सामने आता है कि कारक का प्रयोजन क्या है। क्या उसका प्रयोजन लिंग और वचन का निर्देश करना है? क्रिया से नाम शब्द का कैसा सम्बन्ध है, यह दिखाना कारक का उद्देश्य है। क्रिया में न तो लिंग का महत्व है, न वचन का। अतः कारक में भी लिंग वचन का महत्व नहीं है। जैसे अधिकरण कारक का उद्देश्य यह बताना है कि क्रिया के सम्पन्न होने का क्षेत्र कौन सा है, अधिकरण कारक का चिह्न क्रियापद के प्रभावी क्षेत्र का सूचित करेगा, नाम शब्द की क्षेत्रीयता सूचित करेगा, उस क्षेत्रीयता के एक या अनेक होने का प्रश्न नहीं है। **पेड़ पर** और **पेड़ों पर** इन दो पदों में **पर** क्षेत्रीयता का सूचक है, उसमें एकवचन या बहुवचन का भेद अनावश्यक है। **पेड़** और **पेड़ों** में वचन भेद आवश्यक है पर यह वचन-भेद बताना कारक चिन्ह का कार्य नहीं है। संस्कृत में कारक चिह्न के साथ यदि मुख्यतः वचन बोध, और अंशतः लिंगबोध, होता है तो ऐसा बोध कराना कारक का मुख्य कार्य नहीं है।

नाम शब्द के साथ कारक-चिन्ह किस तरह जोड़ा जाता है, यह विन्यास (वाक्यतन्त्र) का विषय है। वाक्य-विन्यास से अलग, चाहें तो, इसे रूप विन्यास कह सकते है। कारक का अस्तित्व क्रिया के संदर्भ में ही सार्थक है, क्रिया के साथ कारक का अस्तित्व वाक्य में ही संभव है। अतः रूप विन्यास (रूपतन्त्र) वाक्य विन्यास (वाक्य तन्त्र) से अलग करके नहीं देखा जा सकता, रूपतन्त्र वाक्यतन्त्र के अन्तर्गत है, उसी तन्त्र का एक अंग है। वाक्यतन्त्र में ध्यान देने की एक बात शब्दों का क्रम होना है। कारक चिह्न नाम शब्द के पहले आता है या उसके पीछे, यह विन्यास का विषय है। संस्कृत में कारक चिन्ह सदा मूल नाम शब्द का अनुगामी होता है, उससे पहले कभी नहीं आता। यह कारक चिह्न चाहे लिंग-वचन-बोध के साथ जुड़ा हो, चाहे उससे मुक्त हो, उसकी स्थिति सदा मूल शब्द के पीछे है। जिन्हें लोग परसर्ग कहते हैं, वे भी मूल शब्द के पीछे ही रहते हैं, वाक्य में उसके आविर्भाव के पहले ही उसके आगे आकर खड़े नहीं हो जाते। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, आधुनिक आर्य भाषाओं की यह सामान्य प्रवृत्ति है कि कारक चिह्न—वह किसी भी कोटि का हो, घिसा, बेघिसा, स्वतन्त्र, परतन्त्र, पूर्ण शब्द या शब्दांश, प्रत्यय या परसर्ग—वह सदा मूल शब्द के पीछे रहता है। आर्य भाषा-परिवार ही नहीं, कोल, द्रविड़ और नाग परिवारों की भाषाएँ भी इसी प्रवृत्ति के अनुरूप आचरण करती हैं। केवल कम्बोज समुदाय की भाषाएँ इसका अपवाद हैं। यूरप की संश्लिष्ट भाषाएँ, संस्कृत के समान, कारक चिह्न मूल शब्द के पीछे जोड़ती हैं, किन्तु जो सम्बन्ध सूचक शब्द अपेक्षाकृत स्वतन्त्र हैं वे मूल शब्द से पहले आते है। इसीलिए उन्हें 'प्रिपोजीशन' (अग्र सर्ग) कहा जाता है। 'प्रिपोजीशन' यूरप की आधुनिक भाषाओं में ही नहीं हैं इंडोयूरपियन परिवार की ग्रीक और लैटिन जैसी प्राचीन भाषाओं में भी

हिन्दी कारक रचना और संस्कृत कारक-रचना में मौलिक अन्तर न होगा। हिन्दी और संस्कृत में बहुत बड़ा भेद वचन और विभक्ति को लेकर दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि हिन्दी में विभक्तियाँ बदलती नहीं हैं, संस्कृत में बदलती हैं। इस संदर्भ में वाजपेयीजी की यह स्थापना अत्यन्त सारगर्भित है "विभक्ति का रूप बदलना नहीं है। हिंदी की ने **को में से** आदि विभक्तियाँ सदा एक रूप रहती हैं।" (**हिन्दी शब्दानुशासन**, पृष्ठ १२८)। क्रिया का सारतत्व जैसे लिंग-वचन-भेद से मुक्त है, वैसे ही क्रिया के साथ कारक का सीधा सम्बन्ध होने से वह भी लिंग वचन भेद से मुक्त होगा। "शुद्ध क्रिया में लिंग, वचन आदि कुछ है ही नहीं।" (उप० पृष्ठ १३८)। और भी—"क्रिया के साथ जिसका सीधा सम्बन्ध हो उसे 'कारक' कहते हैं—'क्रियान्वयित्व कारकत्वम्'।" (उप० पृष्ठ १३६)। वैदिक भाषा सुदीर्घ विकास का परिणाम है। वैदिक काल में बालकेभि, रामेभि जैसे रूप प्रचलित थे जो *आगे चलकर बालकै, रामै रह गए*, प्राकृत में रामेहिं जैसे रूप मिलते हैं। यह हि अवधी, व्रजभाषा आदि में अवतरित हुआ। अतः शोधकर्ता को यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि 'हिन्दी में 'मूल भाषा' के (तथा वैदिक संस्कृत के) और भी कितने ही अवशेष विद्यमान हैं।' (उप० पृष्ठ १३५)।

वाजपेयी जी ने मूल भाषा तथा वैदिक संस्कृत की चर्चा की है। वैदिक संस्कृत एक मात्र मूल भाषा नहीं है। वैदिक भाषा के समानान्तर कौन सी भाषाएँ बोली जाती थीं, उनका कुछ ज्ञान तुलनात्मक भाषा विज्ञान से हो सकता है। इस पुस्तक में मध्यदेश की आर्य भाषा अथवा आर्य गणभाषाओं के बारे में जो कुछ कहा गया है, वह हिन्दी **शब्दानुशासन** के इस मूल भाषा वाले सूत्र का विस्तार है।

कौन से शब्द घिस कर विभक्तियाँ बने, यह जानने के लिए मूल भाषा वाले सूत्र का सहारा लेते हुए अनघिसे रूपों की खोज करना चाहिए। कारक-रचना प्रक्रिया के सिलसिले में ब्रुगमन ने अपने *तुलनात्मक व्याकरण में कुछ दिलचस्प बातें कही हैं।* उन्होंने कल्पना की है कि आदि इंडोयूरोपियन भाषा **एकुओस एकुओम** (अर्थात **अश्व, अश्वम**) एक शब्द नहीं समास थे, फ्रेज थे (शब्दबंध थे)। फिर कहते हैं प्रत्यय शब्द का अन्तिम अंश विभक्ति चिह्न बनने से पहले क्या था इसका पता लगाना व्युत्पत्तिशास्त्रीय खोज में संभव नहीं है। कर्म कारक के एकवचन में जो म लगता है वह कर्ता के लिए भी प्रयुक्त होता है। इसलिए इस म से कर्म कारक का अर्थ पहले निकलता होगा यह संभव प्रतीत नहीं होता। विभक्तियाँ पहले स्वतंत्र शब्द थीं इस बारे में उन्होंने लिखा है 'विभिन्न भाषाओं में विशेषक शब्द (प्रास्टपोजीशन आदि) पूर्व निर्दिष्ट कारकों से बहुधा ऐसे सम्बद्ध हो गये थे कि वे कारक चिह्नों में विलीन हो गए थे।' (**ब्रुगमन ए कम्परेटिव ग्रामर ग्राफ द इंडोजर्मनिक लग्वेजेज**, खंड २, पृष्ठ ६२)। यहाँ कारक चिह्न बन जाने के बाद भी उनमें सम्बन्धक शब्दों के विलीन होने की बात कही गई है। अतः कारक रचना में पहले सम्बन्धक शब्द मूल शब्द से जुड़ता रहा हो तो इसमें आश्चर्य की बात न होगी।

रामात् तस्मात् के स्थान अथवा स्रोत पर विचार करें। अपादान कारक के एक

वचन रूप मे एक वग के पुल्लिग शब्दो के साथ इसका प्रयोग होता था। रूसी भाषा मे **ग्रत** अथवा **ग्रात** का स्वतत्र प्रयोग होता है। किसी स्थान से गति आरम्भ हो तो उसकी ओर सकेत करने के लिए इसका प्रयोग होता है। **मुइ एखालि अत वक जाल न ग्रवतो-मोबीले** (हम स्टेशन से मोटर गाडी मे आये।) यहा चलन का काम स्टेशन से आरम्भ होता है। स्टेशन (**वकजाल**) से पहले इस सम्बन्धक शब्द अत का प्रयोग हुआ है। ठीक इसी प्रकार सस्कृत मे इसका प्रयोग होता है, सस्कृत मे मूल शब्द से सम्बद्ध होकर उसने सश्लिष्ट रूप भी जन्म दिया है, रूसी मे वह विश्लिष्ट और स्वतत्र है। किंतु रूसी म जिस शब्द के पहले वह आया है, वह शब्द स्वय कारक के बधन म है। **वकजाल** सम्ब ध कारक का एकवचन रूप है। अथ की दृष्टि से **ग्रत** अपादान कारक का काय कर रहा ह किन्तु रूप रचना के विचार से वह सम्बन्धकारक स जोडा गया है। रूसी तथा अन्य इडोयूरोपियन भाषाओ म कारक रचना बार बार, इस प्रकार, अथ के दायरे से मुक्त हो जाती है। इसका कारण यह है कि एक सम्बन्धक शब्द सीमित अथवत्त म बन्द नही रहता। विभिन्न शब्दो क साथ जुडकर वह नये अथ देता है, नये मुहावरो की रचना करता है। कारक व्यवस्था बाद की है, सम्बन्धक शब्दो की बहुविध भूमिका पहले की है। यही कारण है कि सस्कृत मे एक कारक अपनी मुख्य भूमिका छोडकर दूसरे कारको के काम करता दिखाई देता है। अपभ्रश मे तो कारक सम्बन्धी अव्यवस्था की बात कही जाती है किन्तु सस्कृत मे किसी कारक का एक ही काय अटल नही है, यह न भूलना चाहिए।

अपभ्रश म अपादान कारक का एक चिह्न **ग्रदु** है (देखें तागरे **हिस्टौरीकल ग्रामर ग्राफ ग्रपभ्रश**, पृष्ठ १२८)। तागरे ने इस पर शूरसेनी प्राकृत का प्रभाव माना है। अधमागधी मे **ग्रादु, आदो** रूप होते है। मागधी म **ग्रादो**, पैशाची मे **ग्रातो ग्रातु** रूप है। (उप० पृष्ठ १२९)। पैशाची उत्तरी सीमान्त की प्राकृत मानी गई है। सघोष ध्वनि **द्** वहा अघोष हो गई है। महाराष्ट्री प्राकृत मे इसके समानान्तर **ग्राहि ग्राउ, ग्राग्रो** रूप हैं। अपभ्रश म, और उससे पहले प्राकृत मे भी, ऐसे रूप है जो सीधे सस्कृत की छाया नही है। इनम **ग्रादु, ग्राहु** या **ग्राहि** जैसे रूप है। ये स्वतन्त्र शब्द नही है, विभक्तिया है। सस्कृत **ग्रात** मे इनका सम्बन्ध स्पष्ट दिखाई देता ह, दोनो एक ही कारक की भूमिका निबाहते है। सस्कृत मे, सभवत बलाघात की आवश्यकता के कारण, विभक्ति का अन्तिम अश हलन्त है। **ग्रादु** रूप उकारान्त है, और अनेक उकारान्त नाम शब्दो के समान, वह पूव जन्म के अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा करता है। उसके समानान्तर जो ह वाला रूप ह, वह या तो इस **ग्रादु** से बिल्कुल भिन्न है या फिर य दोनो रूप किसी तीसरे मूल रूप का विकास हैं। **द्** ध्वनि ह मे कठिनाई म बदलती है। जैसे **हस्त** और **दस्त** का एक पूवरूप **धस्त** कभी प्रयुक्त होता था, वसे ही यहाँ **द्** और **ह्** का पूवरूप **ध** था। **ध** या **द्** देश काल वाचक ध्वनि-सकेत है, उसके पहले **इ** निर्देशक सवनाम जुडता है तब **इध, इदम्** जैसा रूप बनता है। **इ** सवनाम उस पदाथ की ओर सकेत करता है जो वक्ता के निकट है। यह पदाथ देश और काल हो ... **इध इद** अथात् यहाँ, अब, वह पदाथ व्यक्ति हो सकता है तब **इध इद**

प्रका॰ इ सवनाम से बना हुआ शब्द विशेषक है जो पुन सवनाम बन जाता है। जा पदाथ दूर है, उसके लिए **श्र** सवनाम का प्रयोग होगा, तब **श्रदु** जैसा रूप बनेगा। तमिल में **श्रदु** नपुसकलिंग का निर्देशक सवनाम अब भी है।

आय द्रविड भाषाओ म निर्देशक सवनामो, सम्बन्धक शब्दो और अनेक विशेषको की रचना प्रक्रिया एक ही है। जो सबधक शब्द है, वह मूलत विशेषक है। देश काल सूचक **त** या **द** के पहले कोई सवनाम मूल जुड जाता है। सस्कृत का **श्रत** सवनाम है, विशेषक है, जो रचना-प्रक्रिया **इदम** की है, वही **इदानीम, इह, इत** आदि की है। **द** और **त्** शब्द की मूल ध्वनिया नही हैं **श्रध, अध, श्रधि, बहुधा, मगध** जैसे रूपो म देश काल-सूचक **ध** ध्वनि दिखाई देगी। रूसी म **श्रत** के अलावा एक रूप है **इज**। इसका काम वही है जो **श्रत** का है। **मुइ एदेम इज गोरोद** (हम शहर से आ रहे हैं)। जिस स्थान से गति आरम्भ हुई है, उसके साथ सम्बन्धक **इज** का प्रयोग हुआ है। काम अपादान का है पर **गोरोद** सम्बन्ध कारक का रूप है। यदि **श्रत** और **इज** का कोई सम्बन्ध है तो वह **श्रध, इध** रूप स स्पष्ट हो जाता है। **त द** वाले भारतीय आय शब्दो के रूसी प्रतिरूपो म ज न दिखाई देगा, **ध** या **घ** वाले शब्दो के प्रतिरूपो मे वह इनका स्थान लेता है। रूसी **इज इध** जैसे रूप का विकास है। फारसी मे इसी के समान **श्रज्** है जिसका सीधा सम्बन्ध **श्रध** से होना चाहिए।

अग्रेजी मे स्थान की ओर निर्देश करने वाला एक सम्बन्धक शब्द **ऐट** है। इसे **श्रत्** का प्रतिरूप मानना चाहिए। रूसी म जिस स्थान तक गति पूरी हो, उसके साथ **द** या **दों** शब्द का व्यवहार होता है, अग्रेजी का सम्बन्धक **टु** रूसी का प्रतिरूप है। रूसी **दों** और अग्रेजी **टु** का सम्बन्ध **श्रदु** के **दु** से हो सकता है। या तो यह **दु** निर्देशक सवनाम के बिना, सम्बन्धक रूप म प्रयुक्त होता था, या फिर **श्र** का लोप हो गया।

सस्कृत म एक उपसग **श्रधि** है। उपसग के अलावा यह स्वतत्र सम्बन्धक और विशेषक भी है। इसका अथ ऊपर, ऊपर स, आदि है। इसका व्यवहार अपादान, अधिकरण और कम तीनो कारको म (मोनियर विलियम्स के अनुसार) होता था। (**श्रधिकरण** म यही **श्रधि** है)। यह स्वतत्र सम्बन्धक था, इसलिए विभिन्न कारको के साथ प्रयुक्त होता था। ये कारक, रूप-रचना के विचार स, अलग अलग थे इन अलग कारको के साथ प्रयुक्त होने स **श्रधि** के मूल अथ म कोई अन्तर नही आया। अपादान कारक के **श्रत** म ऊपर जिस **श्रध** का सम्बन्ध जोडा गया है वह इसी **श्रधि** के गोत्र का है। यहाँ सुपरिचित **श्रथ** शब्द का उल्लेख भी करना चाहिए। कोई प्रसग आरम्भ करने मे पहले **श्रथ** लिखने की पद्धति रही है। इसका मूल अथ काल-सूचक अब है। **अथ** का एक प्रतिरूप **श्रध, श्रधा** भी है। **ध** का व्यवहार स्थान दोनो की ओर सकेत करने के लिए होता है। **श्रध** काल के अलावा, स्थान की ओर भी सकेत करता था जैसे नि **श्रध** (नीचे की ओर) म प्रकट है। यह **श्रध** सस्कृत के अपादान कारक चिन्ह **श्रत** का पूव रूप है।

श्रधि का एक सस्कृत प्रतिरूप **श्रभि** है। यह भी उपसग है, स्वतत्र विशेषक और

गया है, पर समीपवर्ती व्यक्ति आर देश-काल की सूचना देनवाले लैटिन के हिक, हमक, होक् सवनामो मे वह विद्यमान है।

३ सर्वनाम और कारक-चिन्ह

सस्कृत मे निर्देशक सवनामा, सम्ब धका, देशकाल सूचक विशेषण की रचना प्रक्रिया ही मिलती जुलती नही है, वहुधा उनका आधार भी एक ही होता है। क, त, प, म, न य स श्र, इ उ आदि ध्वनिया उक्त कोटि के शब्दा के निर्माण मे प्रयुक्त होती हैं। विभक्तिया से इनका सम्ब ध पहचानने पर सस्कृत शब्दा की रूप रचना अधिक स्पष्ट होती है, आर्य भाषाओ का विकास भी समझ मे आने लगता है।

सबसे पहले क सवनाम लेत हैं। सस्कृत क के अतिरिक्त भोजपुरी-अवधी के, को आदि रूपो म यह सवनाम अब भी प्रयुक्त होता है। इस शृखला के सभी सवनाम विभिन्न स्वरो के साथ प्रयुक्त होत है और इसमे उनमे अथभेद भी उत्पन्न होता है जम सस्कृत क व्यक्तिवाचक है और किम वस्तुवाचक है अथवा उसकी व्यजना हिन्दी क्यों से मिलती जुलती है। यह क सवनाम मूलत प्रश्नवाचक न था। हिन्दी के कुछ और कोई इसी शृखला में हैं पर इन शब्दो मे प्रश्न का भाव नही है। कु उपसर्ग हीनता के अथ से सम्बद्ध हो गया। यह उसका मूल अथ न रहा होगा।

उक्त सभी सवनामो म देश काल-व्यक्ति- सूचक ध जोडा जाता है। हिन्दी शब्द किधर और सस्कृत कदा मूलरूप कध या किध के आधार पर बने हैं। यह ध जब अल्प प्राण होता है तब कद रूप मिलता है जो सस्कृत मे, कु के समान, हीनता का भाव व्यक्त करता है जैसे कदथ। जब ध स्पश गुण खोकर ह म परिवर्तित होता है तब कह या कह रूप मिलते हैं जो पुरानी अवधी म कम या सम्प्रदान की विभक्ति का काम देत है। का, के, को इसी कह का विकास है। भिन्न जनपदा मे ह ध्वनि पूववर्ती स्वर को एकार, इकार, ओकार, उकार रूप में बदलती है। अन्य सवनामो की रचना प्रक्रिया पर ध्यान देने से ऐसा लगता है कि सवनाम मूल क म ध जोडा गया है और तभी का के को आदि का विकास हुआ है। अवधी मे का कहत है—इस वाक्य मे का परिनिष्ठित हिन्दी क्या का अथ देता है। वहि का बोलाव्—इस वाक्य मे का परिनिष्ठित हिन्दी के को की जगह है। उसको बुलाओ, यह भाव है। कहिका लरिका आय—अर्थात किसका लडका है। यहा का सम्ब ध सूचक विभक्ति है। कुछ लोग कह के विकास की कल्पना कर के आधार पर करते हैं। कर से का का विकास हो सकता है पर अन्य सवनामो मे हम देखेंगे कि ऐसी कल्पना अनावश्यक है। स्वय कर उसी कध के आधार पर बना है। ध के अल्पप्राण होने पर कद रूप मिला और द पुन र मे परिवर्तित हुआ। इस प्रकार कध के आधार पर विकसित कर रूप का करना क्रिया से कोई सम्ब ध नही है। काय का अपभ्रश रूप कर हो, यह भी निराधार कल्पना है। क सवनाम बहुत पुराना है, इसमे तो किसी को कोई सन्देह नही। बहुत से बहुत उसे प्रश्नवाचक मानकर उसके अथ को सीमित किया जा सकता है। यह क सम्ब धक भी है और काफी पुराना है, इसका प्रमाण यह है कि रूसी भाषा म

यह समीपता सूचक सम्बन्धक है और सम्प्रदान कारक के साथ इसका व्यवहार होना है। मैं अध्यापक के पास जाता हूँ, यहाँ 'के पास' के लिए रूसी मे क सम्बन्धक प्रयुक्त होगा। क उचीतेल निसे अर्थात् अध्यापक के पास। इसी प्रकार शाम तक मैं आऊँगा, यहाँ क वेचेरु क्हवर क द्वारा समीपता का भाव व्यक्त किया गया। रूसी क स्वतन्त्र सम्बन्धक या सवनाम हो सकता है, कध का विकास भी हो सकता है। इतना निश्चित है कि कर या कार्य के आधार पर उसकी व्याख्या नही की जा सकती। रूसी क अवधी कहँ से मिलता जुलता है और सभव है, वह कध कह-क की विकास प्रक्रिया से प्राचीन कध का अवशेष हो। अवधी के कर, को आदि 'परसर्गों' की रचना प्रक्रिया वही है जो सस्कृत अभि, अधि की है। क सवनाम से बने 'परसग' सस्कृत म न मिलें तो इससे यह सिद्ध नही होता कि पहले उनका व्यवहार न होता था।

त सवनाम मूल म ध जोडकर तध रूप बना। ध के अल्पप्राण होने पर तद और उससे, अन्त्य स्वर के लोप के बाद, तद् रूप निश्चित हुआ। यह सस्कृत का सुपरिचित सवनाम है। तद् रूप नपुसक लिंग मे रखा गया। पुल्लिंग रूप स माना गया। स से तद का विकास सभव नही है। वास्तव मे एक अन्य सवनाम तद के साथ जोड दिया गया। दो भिन्न सवनाम एक ही शब्द की रूप रचना के अन्तगत स्वीकृत हुए। बहुवचन रूप ते सीधा तध—तह का विकास है जैसे कि कध—कह का विकास के है। सस्कृत मे सज्ञा-सवनाम शब्दो के बाद त लगाकर जो अपादान कारक जैसा दूर हटने का भाव व्यक्त किया जाता है, वह तध के आधार पर निश्चित हुआ है। अवधी आदि म ठीक इसी त के अनुरूप जो ते का व्यवहार होता है, वह तध—तह का विकास है। कहँ के समान तहँ मे अनुनासिकता वैसे ही है जैसे को के समानान्तर कूँ का व्यवहार ब्रजभाषा मे होता है। ते के साथ तें का व्यवहार होता है। सस्कृत तदा और हिन्दी तहाँ मे त सवनाम मूल है। सभव है कि तुलना करने के लिए सस्कृत मे विशेषणा के साथ जो तर लगाया जाता है, वह तद का परिवर्तित रूप हो। यह तर विशेषण की विशेषता बताता है, अत स्वय विशेषक है। अन्य विशेषको की तरह वह भी रचा गया होगा। हिंदी मे वाक्य आरम्भ करते हुए जिस तो का बहुत प्रयोग होता है, वह भी तध—तह का विकास हो सकता है।

जैसे कध—कद से कर रूप प्राप्त होता है, वैसे ही पध—पद से पर रूप मिलता है। प्राचीन इडोयूरोपियन भाषाओ का यह सुपरिचित सम्बन्धक है। सु या उ सवनाम जोडकर सुपर, उपरि जैसे रूप बने। सस्कृत म पद का अथ स्थान भी है। जो पद बोला जाता है या गाया जाता है, वह इससे भिन्न शब्द है। जिस पद का सम्बन्ध चलने से है, वह शब्द भी अलग है। स्थान सूचक पद की रचना वैस ही हुई है जैस हिन्दी के काल सूचक जद, तद की। आधुनिक आय भाषाओ और यूरुप की भाषाओ मे लटिन सुपर, ग्रीक हुपेर आदि मे—पर किसी वस्तु या स्थान की ओर सकेत करता है। रूसी भाषा मे पाद् नीचे का अथ देता है। दोनो शब्द एक ही है, रूसी शब्द पध के अधिक समीप है। ऊपर और नीचे का अथभेद बाद का है। पर मे ऊ जोडने स दूर की चीज का

बोध हुआ, फिर **पर** ऊपर का पर्याय बन गया।

जैसे **को** का विकास **कर** से माना जा सकता है, वैसे ही **पो** का विकास **पर** म सभव है। ह और र दोनो अन्तस्थ ध्वनियाँ हैं, दोना ही व्यजन तत्व का लोप होने पर पूर्ववर्ती अकार को एकार-ओकार म परिवर्तित कर सकती हैं। दक्खिनी हिन्दी म **पर** की जगह **पो** का प्रयोग होता है, हिन्दी क्षेत्र की पछाही बोलियो म **प** और **पे** का व्यवहार होता है। भारत मे **पर** शब्द का चलन रहा है इसलिए **पो, प** आदि को **पर** से जोडना स्वाभाविक है। किन्तु **पो** से मिलता-जुलता रूप **पॉ** रूसी मे भी प्रयुक्त होता है। कोई आदमी काम पर है। रूसी मे **पॉ रबोतॅ** कहने से ठीक वही व्यजना होगी जो हिन्दी म 'काम पर' कहने से होती है। आसमान मे बादल छाये हैं। रूसी कहते हैं **पा नेबू**, नभ पर। इसी प्रकार गली में **पॉ ऊलित्सॅ**। सम्बन्धक **क** के समान **पॉ** का व्यवहार भी सम्प्रदान कारक के साथ होता है। **क** के समान **पॉ** भी समीपता सूचित करता है। इस **पा** का विकास **पर** से हुआ है, यह मानने का कोई कारण नही है। वह रूसी **पोंद** का जोडीदार है और दोनों का आधार **पध** है। रूसी भाषा मे **पॉ** क्रियाओ के साथ प्रयुक्त होने वाला प्रत्यय भी है। पुरानी हिन्दी में समीपता सूचित करने के लिए **पहँ** शब्द का व्यवहार होता था। **कहँ** के समान **पहँ** का आधार **पध** है। **पध** के आधार पर **पह** रूप का व्यवहार प्राचीन काल मे यहा होता था, यह मानना चाहिए। दक्खिनी हिन्दी का **पो** और पछाही हिन्दी का **पैं** उसी **पह** के आधार पर विकसित हुए हैं, यह सभव है।

हिन्दी का **पर** अनेक अर्थों मे प्रयुक्त होता है। सस्कृत म **पर, अपर** सवनाम हैं जो अन्य पुरुष की ओर सकेत करते है। हिन्दी मे बोलचाल के स्तर पर सवनामवत इसका पयोग नही होता किन्तु अवधी मे **परार, परारि** (दूसरे का, दूसरे की) रूपा म सवनाम **पर** अभी बना हुआ है। सम्बन्धक रूप मे तो इसका व्यवहार होता ही है, दो वाक्या का अन्तर दिखाने के लिए भी इसका प्रयोग होता है। **मैंने उसे बुलाया पर वह आया नहीं**, 'परन्तु' के अथ मे **पर** का प्रयोग होता है और स्वय **परन्तु पर** के सहयोग से बना है। सस्कृत मे **क** जैसे प्रश्नवाचक सवनाम बना, वैसे ही गाडी जैसी द्रविड भाषा में **प** सवनाम—अपने सघोष ध्वनिरूप मे—प्रश्नवाचक बना **बद्, बउ** (कौन व्यक्ति) (द्रविड व्युत्पत्ति कोश, शब्द सख्या ४२२८)। **बद्** सीधा **पध** का रूपान्तर है।

म और **न** दो अन्य महत्वपूण सवनाम हैं। **पध** के समान **मध** रूप निर्मित हुआ था। **मध्य** इसी का रूपान्तर है। मराठी **मधे** इसका प्रतिरूप है। यह रूप, सवनाम से भिन्न, देश-काल सूचक विशेषक या सम्बन्धक का काम करता है। **मध** के समानान्तर **मिध** भी प्रचलित था इसका प्रमाण अग्रेजी का **मिड्** है जो इस भाषा मे लटिन **मेदिउस** का विकास माना जाता है। लटिन मे इकारवाला रूप भी प्रचलित था, यह **दीमीदीउस** जैसे शब्द से विदित होता है। इस शब्द का अथ है मध्य से विभाजित। जमन समुदाय की भाषाओ मे **मित्ति, मिटटे** जैसे रूप प्रचलित थे। **मिद्** का **द** जब **न** मे परिवर्तित हुआ तब **मिन्** रूप बना। सस्कृत के **तस्मिन्** का अथ होगा उसके भीतर।

संस्कृत में मूल सर्वनाम के बाद म का व्यवहार तस्मिन के अलावा तस्मै, तस्मात आदि मे भी है। मानना चाहिए कि मै, मात, मिन् आदि म सवनाम के रूप है और किसी समय उनका इतना अधिक प्रयोग होता था कि अय सवनामा के साथ उहे जोडकर रूप रचना की जाने लगी।

कहँ और पहँ के समान पुरानी हिदी मे महँ या मह का व्यवहार होता था। इसी मह के आधार पर आधुनिक हिन्दी के मे रूप की रचना हुई है। गली मे, आकाश मे, अर्थात् गली के मध्य, आकाश के मध्य। जैसे कह से का रूप बना और सम्बध कारक की व्यजना के लिए उसका व्यवहार हुआ, वैसे ही मा या म का व्यवहार भी सम्बन्ध प्रदर्शित करन के लिए होता था। सस्कृत मम मे पहला म उत्तम पुरुष सव नाम का एकवचन रूप है, दूसरा म सम्बधकारक का चिन्ह है। सस्कृत मे अपादान कारक एकवचन मत्, सम्बधकारक एकवचन मम और सम्प्रदानकारक तथा सम्बध-कारक एकवचन मे का आधार यही म है। उत्तम पुरुष अस् सवनाम अय स्रोत से आया है। सस्कृत मे उत्तम पुरुष सवनाम के एकवचन रूप मत्, मम, मे, मया इसी म सवनाम के आधार पर बन है। यह बात कुछ आश्चयजनक लगगी कि म सवनाम-मूल एक ओर अय पुरुष का निर्देश करता है, दूसरी ओर उत्तम पुरुष का भी। सवनामा की रचना ही इस तरह हुई है कि पहले उत्तम और अय पुरुषो का भेद नही था। अस्मद के अस् पर ध्यान दे तो देखेंगे कि अय पुरुष असौ म यही उत्तम पुरुष का अस विद्यमान है। अस्म, अस्मात् आदि का सम्बध इदम् से जोडा जाता है। वास्तव मे ये इदम् स भिन्न अस् के आधार पर बने हुए रूप है। इससे मिलती जुलती स्थिति अय उत्तम पुरुष सवनामा के सदम मे दिखाई देगी। उत्तम पुरुष मद् से मदीय आदि रूप बन हैं, इसी मद् का प्रतिरूप फारसी का मन् (उत्तम पुरुष, एकवचन) सवनाम है।

हिदी का उत्तम पुरुष एकवचन सवनाम मैं और अधिकरणकारक का सम्बधक मे एक दूसरे से बहुत मिलते जुलते हैं। इसका कारण यह है कि दोनो का आधार मध है। जनपदीय प्रवत्तिया के अनुरूप सवनाम और सम्बधक के उच्चारण मे भिन्नता है। बुदेलखड और उससे आगे पश्चिम की ओर मैं सवनाम का उच्चारण में सुनाई देता है। अवधी तथा कुछ अय भाषाओ मे परिनिष्ठित हिदी के सम्बधक मे का उच्चारण मा होता है। मध के आधार पर बने मां और मे दो जनपदीय रूप हैं।

म के समानान्तर दूसरा सवनाम न है। यह एक स्वतत्र सवनाम था, इसका प्रमाण सस्कृत के दो शब्द अक्तम् और नक्तम् है। अक्ता, अक्तु शब्द रात्रि के लिए प्रयुक्त हुए है। स्पष्ट ही नक्त का सम्बध इन शब्दो से है। या तो यह माना जाय कि न का लोप हो गया और अक्तु रूप बच रहा या फिर यह कहा जाय कि अक्तु मे न जोड दिया गया और इसका कोई प्रयोजन नही था। आय भाषाओ के प्राचीन लुप्त रूप बहुधा आर्येतर भाषाओ म मिल जात हैं। सथाली भाषा का बहुप्रयुक्त निर्देशक सवनाम

न, नॅ है। यह निकटवर्ती वस्तु की ओर सकेत करता है। नइँ, नॅडॅ (यहाँ), इस रूप मे ड पूर्व परिचित ध का रूपान्तर है। नॅतॅ (इस ओर), यहाँ घ अघोष अल्पप्राण रूप मे है। सथाली मे न के समकक्ष नि वाले रूप भी हैं। अब अग्रेजी के कालवाचक नाउ शब्द पर विचार करें। इसका सम्बध पुरानी अग्रेजी के नु, ग्रीक नुन, लटिन नुक स जोडा जाता है। ग्रीक नुन् का वही अथ है जो अग्रेजी नाउ (अब, अभी) का है। इसी नुन् के आधार पर लटिन नु क् रूप बना है और उसका वही अथ है जो ग्रीक शब्द का है। इनके अतिरिक्त सस्कृत नू शब्द है और वह भी निकटवर्ती काल की सूचना देता है। सस्कृत मे नेद जैसा शब्द कभी प्रचलित था, इसी से बने नेदिष्ठ (सर्वाधिक समीप), नेदीयस (अधिक समीप)। सवनाम ने म द (मूल रूप ध) जोडकर यह शब्द बनाया गया है। इसी नेद के आधार पर पजाबी नेडे, हिन्दी नेरे, अग्रेजी नियर शब्द बने हैं और सभी समीपता सूचित करत है। फारसी नजदीक म शब्द मूल नज का आधार प्राचीन रूप नध है। उप के साथ जैसे ऊपर का भाव जुड गया, वैसे ही नीच शब्द म निम्नता का भाव जुड गया, इस शब्द का आधार है नीध।

बहुत स सस्कृत शब्दा म नि उपसग लगा रहता है। वह किसी वस्तु के मध्य, उसके पीछे या नीचे की ओर सकेत करता है। कही वह अभाव की व्यजना करता है कही वह अथ को घनत्व प्रदान करता दिखाई देता है यथा सद् माने बैठना और निषद (जैसे उपनिषद् मे), विशेष उद्देश्य से बैठना। अभाव सूचक शब्द बहुधा अथ को घनत्व भी प्रदान करत है। विष मृत्यु का कारण है और औषधि रूप म जीवनदायी भी हो सकता है। वही स्थिति भाव और अभाव दोना की सूचना देने वाले नि की है जा मूलत सवनाम है और उपसग रूप म विशेषक का काम करता है।

सस्कृत म उत्तम पुरुष सवनाम के रूपा म नौ, न रूप भी है, एक स अधिक कारका मे द्विवचन, बहुवचन के लिए प्रयुक्त होते है। जैस म के आधार पर बने मे, मम आदि रूप है, वसे ही न के आधार पर बने नौ, न रूप हैं। जैसे मम रूप में दूसरा म सम्बधकारक का चिह्न है, वैसे ही नदीनाम, आत्मनाम्, रामाणाम् का न या ण सम्बधकारक का चिह्न है। ना, नो, नी 'परसग' सम्बधकारक का भाव बताने के लिए गुजराती म आज भी प्रयुक्त हाते है। करणकारक मे सस्कृत के रामेण, ज्ञानेन, अमुना, वारिणा आदि को इस न से जोडा जा सकता है। सस्कृत केन (बँगला केनो) के समानातर गुजराती केम है। यहा म और न की भूमिका एक सी है।

मध के आधार पर जैसे सम्बधक मे का विकास हुआ है वैस ही नध के आधार पर कारक चिह्न ने का विकास हुआ। गुजराती, पजाबी आदि मे कम और परिनिष्ठित हिन्दी मे कर्ताकारक के साथ इसका व्यवहार होता है। पजाबी का कारक चिह्न नु भी इसी कुल का है।

रूसी भाषा म, सस्कृत के समान, उत्तम पुरुष सवनाम के रूप तो न के आधार पर बनते ही हैं, वहा सम्बधक नाद् (ऊपर) का व्यवहार भी होता है। सस्कृत मे करणकारक के न के समान नाद का व्यवहार भी रूसी मे करणकारक के साथ

होता है। इसके अतिरिक्त गति की दिशा बताने के लिए स्वतन्त्र सम्बन्धक रूप मे भी न का व्यवहार होता है। और करणकारक के साथ होता है। सस्कृत करणकारक की म विभक्ति स्वतन्त्र सम्बन्धक थी, इसका प्रमाण रूसी भाषा में न सम्बन्धक का व्यवहार है। यूरप की अनेक भाषाओ के समान रूसी म भी यह पूवगामी है, मूल शब्द से पहले आता है 'प्रिपोजीशन' है। सस्कृत म वह मूल शब्द का अनुगामी है और एक ही स्थिति म निरन्तर प्रयुक्त होने से स्वतत्र न रहकर विभक्ति बन गया है। सस्कृत की सश्लिष्ट रूप रचना का विकास कैसे हुआ, उसका यह उदाहरण है।

सस्कृत का सर्वाधिक प्रयुक्त सवनाम स है। यहा दन्त्य स है, तालव्य या मूधन्य नही, यह तथ्य मध्यदेशीय आय भाषा म इस सकार की भूमिका सिद्ध करता है। अन्य सवनामो की तरह स म ध जोडकर सध रूप बना। सम्बन्धक सह इसका रूपान्तर है।

। । सस्कृत, रूसी आदि भाषाओ मे जो स उपसग प्रयुक्त होता है और किसी वस्तु के साथ होने का अथ देना है, वह सह का सक्षिप्त रूप है। हिन्दी म विभिन्न कारको के लिए जिस से का व्यवहार होता है, वह सध—सह के आधार पर बना है। हिन्दी का अन्य पुरुष सवनाम सो, इसका बँगला प्रतिरूप से (या शे) उसी आधार पर बने हैं। हिन्दी म तो के समान वाक्य या वाक्याश के आरम्भ मे जिस सो का व्यवहार होता है, उसका आधार भी यही है। सस्कृत म जैसे कद् का व्यवहार निम्न भाव की व्यजना के लिए हुआ, वैसे ही सद् का व्यवहार गरिमा दिखाने के लिए होने लगा। कु के समान, उसका विरोधी अथ देत हुए, सु को नई व्यजना दी गई। वास्तव मे सु सवनाम है और सम्बन्धक का काय भी करता है। लैटिन के सुपर म पर के पहले यही सवनाम सु है। सस्कृत मे अधिकरणकारक के बहुवचन रूपा के लिए वह सुरक्षित सा हो गया। सि से भिन्न सु दूरस्थ वस्तु की सूचना देता था। क्रिया जहा सम्पन्न हो रही है, उस स्थान का निर्देश करन के लिए सु का प्रयोग होने लगा। स सि सु ह हि हु मे परिवर्तित हुए और अनेक भाषाओ म इनका व्यवहार हुआ। फिर हकार का लोप हुआ और अ इ उ सवनाम बच रहे जिनका अत्यन्त कुशल और सगत उपयोग तमिल तथा अन्य द्रविड भाषाओ मे दिखाई देता है। उनकी चर्चा करने से पहले सस्कृत सह पर विचार कर लें।

। सस्कृत मे न के अलावा करणकारक के एकवचन मे जिस आ विभक्ति का व्यवहार होता है सभवत उसका आधार सह है। वास्तव मे आ विभक्ति पुरानी है और न विभक्ति अपेक्षाकृत पीछे की है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि रूसी मे न स्वतत्र सम्बन्धक है, विभक्ति नही बन पाया किन्तु आ, सस्कृत के समान, वहा शब्दानुगामी विभक्ति है। ब्रुगमन ने इस बात का उल्लेख किया है कि आ वाले रूप वैदिक भाषा मे अधिक है और न वाले रूप सस्कृत मे। भ्रात्रा, मत्या मरुता, वाचा मे यही आ विभक्ति है। इस आ का पूवरूप सा था जो कुछ प्राकृत भाषाओ मे मिलता है। मनसा का अनुकरण करके प्राकृत म कायसा रूप का चलन हुआ हो, यह सभव है किन्तु पिशल ने बलसा, पओगसा (प्रयोगसा), णियमसा (नियमसा), जोगसा (योगसा), भयसा

आदि अनेक रूप दिये है, और यह विश्वास नही होता कि ये सभी भ्रामक अनुकरण का परिणाम है। इनमे सा विभक्ति का आधार सह है।

संस्कृत की विभक्तियां स्वतत्र सम्बन्धक हैं और उनका एक से अधिक कारको म प्रयोग होता था, इसके अनेक प्रमाण है। न, ना संस्कृत मे करणकारक की विभक्ति है। संस्कृत एन के साथ वैदिक रूप एना भी था। रामाणाम मे वही ना विभक्ति सम्बन्ध कारक के लिए प्रयुक्त हुई। रामाणाम का णा वही विभक्ति है जो करणकारक एना म है, इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि लियुआनियन भाषा मे केनो रूप करण का नही, सम्बन्धकारक का है। इसका उल्लेख ब्रुगमन ने किया है। न या ना म एकवचन या बहुवचन का भाव नही है। न का व्यवहार करणकारक के बहुवचन रूपों में भी होता था, यह प्राकृत भाषाओ के कुछ रूपो से स्पष्ट है।

भि विभक्ति का व्यवहार संस्कृत मे करणकारक के बहुवचन रूप मे होता है। अपभ्रंश के एकवचन रूपा म इसी करणकारक के अन्तगत जहाँ हि विभक्ति मिलती है, वहा उसका विकास भि से माना जा सकता है। तागरे न भ्रप्पहि, बिसहि आदि रूप करणकारक क एकवचन के अ तगत दिए हैं। भि सम्बन्धक है, उसका वचन-बोध से सम्बन्ध नहीं है, इसलिए एकवचन मे भी उसका व्यवहार होता रहा होगा। भ्याम और भिस् के स् और म् का कोई सम्बन्ध बहुवचन या द्विवचन से नहीं है, इस धारणा की पुष्टि इस बात से होती है कि अपभ्रंश मे करणकारक के एकवचन मे एहिं और एँहि दोनो का व्यवहार होता था। इसी प्रकार संस्कृत म रामाभ्याम तो होता है, रामेणम नही होता किंतु अपभ्रंश म करणकारक के एकवचन रूप में एण के अलावा एण विभक्ति भी लगाते थे।

सध और सह के समानान्तर एक दूसरा सवनाम सम, सन था। सम, सिम जैसे सवनाम वैदिक भाषा म प्रयुक्त होत थे। जैसे मध मद् मन् की विकास प्रक्रिया सपन्न हुई, वैसे ही सध सद सन की सपन्न हुई। सन्माग का सन् सद का रूपान्तर है, इस बारे मे किसी को शका नही है। जैसे कद् निम्न भाव सूचित करता है, वैसे ही सद उसका विरोधी उच्च भाव। संस्कृत सम और सम् सध के आधार पर निर्मित सन और सन का प्रतिरूप है (उनका आधार सभ हो, यह भी सभव है)। संस्कृत का सम उपसग किसी के साथ काय सपन्न करन का भाव व्यक्त करता है। ठीक यही भाव सबधक सह का है। सह और सम् का उदगम एक है या मिलता जुलता है, अथ साम्य होना ही चाहिए। अवधी सन ब्रजभाषा सों संस्कृत के सह सम के अथ से मिलता जुलता भाव व्यक्त करत हैं।

सम विशेषक भी है, समानता का भाव दिखाता है। अवधी के भ्रइसन, जइसन म सन स्पष्ट यह समानता का भाव दिखाता है, वह सम का प्रतिरूप है। भ्रइसन—भ्रइसे—ऐसे, मानक हिन्दी के ऐसे जसे की यह विकास प्रक्रिया है।

जैसे स सि सु सवनाम ह हि हु का माग पार करके भ्र इ उ रूप मे प्रयुक्त हुए, वैस ही सध सह सा हा भ्रा का माग पार करके संस्कृत के करणकारक की भ्रा विभक्ति बनी। स्वरो के ह्रस्वदीर्घ भेद, सवृत-विवृत भेद के अनुरूप से सो सी सू

आदि और उनके रूपान्तर भी प्रचलित हुए।

संस्कृत में **अ इ-उ** का प्रयोग स्वतंत्र सर्वनामों के रूप में होना दिखाई नहीं देता किन्तु देश काल व्यक्ति सूचक **ध ध-भ** के साथ इनका व्यवहार होता रहा। **अध** निम्न स्थान सूचित करने के लिए प्रयुक्त हुआ। इसका मूल अर्थ है अपने से दूर वह स्थान या व्यक्ति। यही **अध** उत्तम पुरुष (एकवचन) सर्वनाम बना। पुरानी फारसी का **अदम्** (मैं) इसका रूपान्तर है। **अद** अन्य पुरुष सूचक (एकवचन) सर्वनाम भी है। **असौ** का मूल आधार **अदस** माना जाता है। **इदम** के समान **अदम्** और **अदस्** का व्यवहार अन्य पुरुष के लिए अवश्य होता रहा होगा। **असौ** में सर्वनाम मूल **अस** है। **अस्मै, अस्य** रूपों में **अस** मूल शब्द है। **इध इज इस**, विकास की यह प्रक्रिया रही है। **मध मज-मस** में यही प्रक्रिया है। संस्कृत **मध्य**, कश्मीरी **मज**, ग्रीक **मेसोस**—तीनों का मूल रूप **मध**।

अद के समानान्तर **इद** का व्यवहार तमिल से लेकर लैटिन तक हुआ। इसका मूलाधार **इध** है, इसका प्रमाण संस्कृत **इह** है। **इह** अर्थात् यह समीपवर्ती स्थान। जैसे **अद** से **असौ** का अस शब्दमूल बना, वैसे ही **इद** से **इस** रूप बनेगा। यदि **असौ** और **अस्मात्** रूप पुराने हैं तो **इस** शब्द मूल को पुराना मानना अनुचित नहीं है। **इद** का ही प्रतिरूप **इन** है जिसका व्यवहार अब बहुवचन के लिए होता है। **इदम्** शब्द के रूप **इमे, इमा** आदि स्वीकृत हैं। **इने, इना** जैसे रूप भी होते होंगे। जो लोग **इस साल** की जगह **इम् साल** कहते हैं, वे **इम्** का व्यवहार एकवचन में करते हैं और यह बहुत पुराना **इम्** है। वह फारसी के **इमरोज** में विद्यमान है। **इमरोज** का तमिल प्रतिरूप **इनुरु** है। **रोज** का प्रतिरूप **रु** और **इम्** का प्रतिरूप **इन्**। **इन्रु** अर्थात् यह दिन, आज। (**आज** के पूर्व रूप **अद्य** में **अ** सर्वनाम है और **द्य** दिव या दिवस का सूचक है।)

इन सर्वनाम के अतिरिक्त स्वतंत्र सम्बन्धक भी है। अंग्रेजी में भीतर का अर्थ प्रकट करने के लिए **इन** का व्यवहार होता है। तमिल भाषा में इसी सम्बन्धक का उपयोग अधिकरण के अलावा सम्बन्धकारक के लिए भी किया गया है। रूसी नामों के अन्त में जहाँ **इन्** लगा दिखाई देता है, वहाँ वह सम्बन्धसूचक प्रत्यय का काम करता है यथा **स्ताल्** माने इस्पात, **स्तालिन** अर्थात् इस्पात का, लौह पुरुष। **इद** में **द्** के मूर्धन्यीकरण से जो **इड** रूप मिलता है, वह तमिल में घर के लिए प्रयुक्त होता है। यहाँ घर का अर्थ 'बाहर' से भिन्न 'भीतर' है। **द** जहाँ **ल्** में बदलता है, वहाँ **इल** शब्द का अर्थ भी तमिल में घर है। अंतिम वर्ण के स्वर का लोप होने पर यही **इल** अधिकरण कारक का चिह्न बनकर तमिल में प्रयुक्त होता है, ठीक अंग्रेजी के **इन** की तरह। **इड** (घर) में जो निवास का भाव है, उसी के कारण नि उपसर्ग लगाकर **नीड** शब्द बना है। इस शब्द को लेकर ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में काफी ऊहापोह किया गया है। **इड** का मूल रूप **इध** भी घर, बसेरे के लिए प्रयुक्त होता होगा। **नीड** से पहले **नीध, नेध** जैसे शब्द प्रचलित थे। इन्हीं का एक अपभ्रंश रूप अंग्रेजी का **नेस्ट** (घोंसला) है।

इल के **ल** का मूर्धन्यीकरण होने पर **इळ** जैसा रूप मिलेगा। इसका व्यवहार तमिल में नहीं होता किन्तु उस भाषा में **उ** सर्वनाम से बना हुआ **उळ** रूप है। इसका अर्थ

है भीतर। यह एसा 'भीतर' है जो वक्ता के निकट नही, उससे कुछ दूर है। **उळ** के निर्माण की वही प्रक्रिया है जो **इल्** की है। हिंदी की बोलिया मे **इत, उत, इतै, उनै, उरे** आदि इसी शृखला के शब्द है।

इध-इद से जैसे **इस** और **इन** रूपा का विकास हुआ, वसे ही **उध उद** से **उस** और **उन** रूपो का विकास हुआ। **इमे** के समान सस्कृत म **उमे** रूप नही हैं किन्तु **इम** के समान **उम** का व्यवहार कुछ गण भाषाओ म होता था, यह कल्पना की जा सकती है। उसी का प्रतिरूप ह **उन**। **उद** रूप दूरी के अलावा ऊँचाई का भाव व्यक्त करन लगा, जैसे **अध** के साथ निचाई का भाव जुड गया था।

अ इ उ के अतिरिक्त **व** और **य**, ये दो सवनाम भी महत्वपूण थे। भीतर के अथ की व्यजना के लिए इसका व्यवहार रूसी म होता ह। इसी के प्रतिरूप **ब** म साथ होने का भाव है और उसका व्यवहार फारसी म होता है। जिस प्रवत्ति से अन्तस्थ **य्** अधिक स्पश तत्व प्राप्त करके ज बनता है, उसी से **व** अन्तस्थ न रहकर स्पश व्यजन **ब्** रूप ग्रहण करता है। इडोयूरोपियन परिवार के **ब** और **व** दोना मूलत एक ही शब्द है। यह **व** उकार मे बदलकर लैटिन मे प्रश्नसूचक सवनाम बनता है। लटिन **उबी** का अथ है—कहा। ऐसा ही अथ **य** के परिवर्तित रूप **श्रं** मे भी आगे दिखाई दगा। जैसे **म्र** के साथ **इ** सवनाम है, वैसे ही **व** के साथ **वि** सवनाम हे। सस्कृत म **विधि** शब्द इसी **वि** के सहारे बना है। अग्रेजी **विद** (साथ) की भी यही रचना प्रक्रिया है।

सस्कृत म **यद** सवनाम **यध** का विकास ह। **य** के प्रतिरूप **श्रं** के आधार पर द्रविड भाषाओ म प्रश्नसूचक सवनाम रूप बन है। जैसे **क** सवनाम (**किम, क** आदि) मूलत प्रश्नवाचक नही हे, वैसे ही द्रविड भाषाओ का **श्रं** भी मूलत प्रश्नवाचक नही है। हिंदी क्षेत्र के **जो जे**, जेंहि आदि इसी **यध** के रूपान्तर है।

सस्कृत म विभक्तिया दो प्रकार की है एक वे जो सवनाम के साथ कोई वस्तु वाचक ध्वनि चिह्न जोडकर बनी है, जो मूलत स्वतन्त्र सबन्धक थी, निरन्तर व्यवहार से अपनी स्वतन्त्रता खोकर कारक चिह्न रह गइ दूसरी वे जो केवल सवनाम हैं या सवनामा का अवशेष हैं जिनकी भूमिका सबन्धका की भूमिका से मिलती जुलती है। सबन्धका के निर्माण में सवनामा की भूमिका अपरिहाय है, इसलिए सबन्धको के स्थान मे कही कही सवनामा का ही प्रयाग होन लगा, ता यह आश्चय की बात नही ह।

अधिकरणकारक के बहुवचन रूपा मे **सु** विभक्ति का व्यवहार होता था। **सु** सवनाम था। कारक चिह्न **सु** और सवनाम **सु** मे काई सबन्ध है या नही ? **सु** म उकार दूरस्थ वस्तु का सूचक है यह बात ब्रुगमन का मालूम थी। उन्हाने इडोयूरोपियन परिवार के व्यापक सदभ म लिखा है कि अधिकरणकारक के बहुवचन मे, बहुत सभव है, **सु** और **सि** के अलावा **स** का व्यवहार भी होता था, ऐसा हो तो सही विभक्ति चिह्न होगा **स्** और उसम विशेषक चिह्न **उ** लगा, तो शायद अथ होगा—वहा, और शायद **इ** का अथ था यहा, और हो सकता है कि यही 'अधिकरणकारक के एकवचन मे प्रयुक्त **इ** हो कुछ भाषाओ म **इ, उ** जोडे बिना ही **स** का व्यवहार होता है। (कम्परेटिव

प्रीमर०, खंड ३, पृ० २५६ ७)।

ब्रुगमन ने उ और इ को दूरस्थ और निकटस्थ वस्तुओं की ओर संकेत करने वाले चिह्न ठीक माना है। इंडो-यूरोपियन और द्रविड, दोनों परिवारों में उनकी यह भूमिका है। किंतु ये उ और इ, सु और सि का विकास हैं, यह बात उनके ध्यान में नहीं है, अत वे स को मूल विभक्ति मान लेते हैं। अधिकरणकारक क्रिया के स्थान की सूचना देता है, इसलिये स्थानसूचक उ और इ चिह्न विभक्ति का अभिन्न अंश हैं, स नहीं। स् से किसी स्थान की सूचना नहीं मिलती। ऐसी सूचना सुध सिध, उध इध जैसे विशेषकों से मिल सकती है, और वह केवल निर्देशक सर्वनाम सु सि, उ इ से भी मिल सकती है। यही कारण है कि अधिकरणकारक के बहुवचन में विशेषक की जगह केवल सर्वनाम सु से काम लिया गया। इसी कारक के एकवचन में प्रयुक्त इ अवश्य ही सि-हि का रूपान्तर है। विभक्तियों का मूल उद्देश्य शब्द के लिंग की सूचना देना नहीं है। संस्कृत रूप रचना में एक ही विभक्ति अनेक बार विभिन्न लिंगों वाले शब्दों के साथ प्रयुक्त होती है। **रामेषु, गुरुषु**—पुल्लिंग है, **वारिषु नामसु**—नपुसक लिंग है, **मालासु, मतिसु**—स्त्रीलिंग है। तीनों लिंगों में एक ही विभक्ति सु है। लिंगभेद यहां **राम, वारि, माला** शब्दों के मूल रूपों से सूचित है, विभक्ति से नहीं। अधिकरणकारक के एकवचन में **चन्द्रमसि** पुल्लिंग, **नामनि** नपुसक लिंग, **मातरि** स्त्रीलिंग है। सबमें **इ** विभक्ति का व्यवहार हुआ है। सम्प्रदानकारक के एकवचन में **हरये, गुरवे, भ्रात्रे** पुल्लिंग है, **मतये, धेनवे, मात्रे** स्त्रीलिंग है, **वारिणे, मधुने, नाम्ने** नपुसक लिंग है। करणकारक के एकवचन रूप **चन्द्रमसा, अर्चिषा, नाम्ना** क्रमश पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुसक लिंग है। ऐसे और बहुत से उदाहरण दिये जा सकते है जिनसे विभक्ति का लिंग-भेद से मुक्त होना सिद्ध होगा। कुछ विभक्तियां कुछ लिंगों के साथ अधिक प्रयुक्त होने लगीं, इस संसर्ग के कारण उनसे लिंगबोध होने लगा। किंतु संस्कृत रूप रचना में यह विभक्ति की मुख्य भूमिका नहीं है। इसी प्रकार वचन-बोध कराना भी विभक्ति की मुख्य भूमिका नहीं है। उत्तम पुरुष सर्वनाम के अपादान रूप, एकवचन और बहुवचन में, **मत** और **अस्मत** है। दोनों में एक ही विभक्ति **त** है। इसी कारक में मध्यम पुरुष सर्वनाम के एकवचन-बहुवचन रूप **त्वत** और **युष्मत** है। भि विभक्ति, ग्रीक भाषा के **फि** प्रतिरूप में, एकवचन और बहुवचन दोनों में प्रयुक्त होती थी, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। कुछ विभक्तियों का व्यवहार किन्हीं विशेष वचनों में अधिक होने लगा, इस प्रकार संसर्ग से वे वचन भेद सूचित करने लगीं। यह उनकी मूल या मुख्य भूमिका नहीं है।

भ्याम्, भ्यस्, भिस जैसी विभक्तियों में मूल तत्व भि है। उसके बाद **आम, अस** स सर्वनाम चिह्न है। इनकी भूमिका वही है जो **रामस** या **ज्ञानम** में सर्वनाम चिह्नों **स्** और **म** की है। इन रूपों की रचना वाक्यतंत्र की उस पद्धति के अनुसार हुई है जिसमें विशेषक मूल शब्द के बाद आता है। **स** और **म** निर्देशक सर्वनामों के चिह्न है, वे शब्द से जुड़कर उसकी निश्चित स्थिति का बोध कराते है। इनकी भूमिका वही है जो अंग्रेजी में 'डेफिनिट आर्टिकल' की है। कर्ताकारक के अलावा जिस कारक में भी इनका

विभक्ति के बाद व्यवहार होता है, उसमें उनका प्रयोजन वचन भेद सूचित करना नहीं वरन् शब्द को निश्चयात्मकता प्रदान करना है। **पितामह** जैसे रूप में मूल शब्द **पिता** के बाद विशेषक **मह** लगा है, इसी पद्धति से **रामस, ज्ञानम** रूप बने थे।

संस्कृत में दो भिन्न और विरोधी प्रवृत्तियां काम करती दिखाई देती हैं। एक प्रवृत्ति नाम शब्द के बाद सर्वनाम चिह्न लगाती है, दूसरी नहीं लगाती। **माता, पिता, भ्राता, चन्द्रमा, नदी, रमा मधु, नाम** आदि शब्द कर्ताकारक के एकवचन में सर्वनाम चिह्न लगाये बिना प्रयुक्त होते थे। **रामात** जैसे रूपों में जहां **अत** सर्वनाम लगाया गया है, वहां भी कोई निश्चयार्थी सर्वनाम नहीं है। **रामेषु** जैसे रूपों में जहां **सु** सर्वनाम विभक्ति बन गया है, वहां वह निर्देशक सर्वनाम तो है, स्थान की सूचना तो देता है, पर वह निश्चयार्थी सर्वनाम नहीं है। सर्वनाम चिह्नों का व्यवहार करें या न करें, जैसे ये दो प्रवृत्तियां हैं, वैसे ही किसी शब्द का कारक रचना में बांधा जाय या नहीं, ऐसी भी दो प्रवृत्तियां हैं। संस्कृत पर अपनी पुस्तक में बरो ने लिखा है कि अधिकरणकारक का सबसे प्राचीन रूप वह है जिसमें कारक चिन्ह था ही नहीं। **अहन्, मूधन, शीषन** आदि रूप अधिकरणकारक का बोध कराते हैं और उनमें इस कारक का कोई चिह्न नहीं है। **ऊधर्, मधु, नाम** नपुंसक लिंग है। कर्ता और कर्मकारकों में इनका एक सा रूप रहता है।

संस्कृत में कारक चिह्नों का गहरा संबंध सर्वनामों से है। यदि भाषा में सर्वनाम चिह्न जोड़ने और न जोड़ने की दो प्रवृत्तियां होंगी तो शब्द से कारक चिह्नों को भी जोड़ने और न जोड़ने की दो प्रवृत्तियां होंगी। निष्कर्ष यह कि संस्कृत के भीतर संश्लिष्ट और विश्लिष्ट रूप रचना की दोनों पद्धतियां काम करती हैं। **अहन** और **मूधन्** जैसे रूप कारक चिह्न के बिना ही अधिकरण में हैं, यह वाक्य में उनकी स्थिति से, कथ्य के पूरे संदर्भ से, पहचाना जायगा। क्रियापद रचना पर भी ध्यान दें तो विदित होगा कि सर्वनाम चिह्न जोड़ने वाली पद्धति ही पुरानी है। वह नाम शब्दों तक सीमित नहीं है, क्रिया पद रचना में उसका प्रसार और भी व्यापक है। वैदिक भाषा से लेकर आधुनिक आर्य भाषाओं तक का विकास यह तथ्य उजागर करता है कि सर्वनाम संयोजक-पद्धति निरंतर क्षीण होती गई है। इस समय हिंदी तथा अन्य आर्य भाषाएं कारक रचना में सर्वनाम संयोजन से मुक्त हो चुकी हैं किंतु क्रिया पद रचना में उस पद्धति के अवशेष काफी हैं। अपभ्रंश-काल में जो कारक रचना संबंधी 'अराजकता' दिखाई देती है वह अंशतः संस्कृत में भी है संस्कृत की अपेक्षा वैदिक भाषा में अधिक है। इस 'अराजकता' का कारण यह है कि वैदिक भाषा के निर्माणकाल में विभिन्न आर्य गण भाषाओं की प्रवृत्तियां एक दूसरे से टकरा रही हैं। संस्कृत में ऐसी टक्कर को सीमित करने का प्रयास किया गया है पर बोलचाल के स्तर पर वैदिक काल की भिन्न प्रवृत्तियां निरंतर सक्रिय बनी रहीं। सर्वनाम-संयोजक-पद्धति के मुख्य केन्द्र मध्यदेश और पूर्वी प्रदेश में थे, सर्वनाम वियोजक पद्धति का मुख्य केन्द्र कुरुगण का क्षेत्र था। उदीच्य जन कृदन्त प्रिय थे, कृदन्त क्रियाएं सर्वनामी बन्धनों से मुक्त थीं। यही उदीच्य जन कारक-रचना को

सवनाम चिन्हो से मुक्त कर रहे थे। उनका राजनीतिक-सास्कृतिक प्रभाव जितना ही बढा, उतना ही वे भाषा को विश्लिष्ट पद रचना की ओर प्रेरित करत रहे। ग्रहन और नीचन कारक चिन्ह के बिना ही, अधिकरण-भाव व्यजित करत हैं यह स्थिति अपभ्रश और आधुनिक आय भाषाओ मे प्रतिफलित हुई है। हिन्दी के 'परसग' मूलत विशेषक हैं जिनका एक अश सवनाम है या व विशेषक का काय करने वाले सवनाम हैं। उनकी रचना प्रक्रिया वही है जो सस्कृत की विभक्तिया की है। हिन्दी तथा अन्य आय भाषाओ मे सवनामो की वह प्राचीन भूमिका कभी समाप्त नही हुई, इसलिय यह स्वाभाविक है कि ये भाषाएँ पूणत विश्लिष्ट नही हुई। न अग्रेजी जैसी भाषा पूणत विश्लिष्ट है। जो परस्पर विरोधी प्रवृत्तिया हिन्दी के आदि स्रोता में काम करती रही हैं वही अग्रेजी के आदिस्रोतो को भी प्रभावित करती रही हैं। अत आधुनिक आय भाषाओ की कारक-रचना-सबधी स्थिति अपभ्रश काल मे अकस्मात् प्रस्फुटित होने वाली किसी अरा-जकता का परिणाम नही है।

वाक्य मे कारक की स्थिति क्रिया पर निभर है क्रिया के सन्दभ मे ही वह अपना कारक नाम साथक करता है। अत अब क्रियापद-रचना पर विचार करना चाहिए।

४ क्रियापद-रचना तिडन्त और कृदन्त

आधुनिक आय भाषाओ तथा हिन्दी मे सस्कृत के समान दो तरह के क्रियापदो का व्यवहार होता है। एक हैं तिडन्त, दूसरे हैं कृदन्त। "तिड् प्रत्यय जिनके अन्त मे हो, वे (पतति आदि) तिड् त और कृत जिनके अन्त म हो, वे (पत्र आदि) कृदन्त शब्द। तिडन्तो से क्रिया का आख्यान होता रहा, कृदन्तो स सिद्ध जीवो या वस्तुओ का बोध। बहुत आगे चलकर कृदन्त शब्दो से भी क्रियाओ का आख्यान होन लगा। तब क्रिया शब्दो के तिडन्त और कृदन्त ये दो भेद किये गए।' (हिन्दी शब्दानुशासन पृष्ठ ३९९)। सस्कृत मे कृदन्त और तिडन्त, क्रिया के व्यवहार की दो भिन्न पद्धतियाँ है। इनम कृदन्त पद्धति क्रमश बलवती होती गई। दोनो प्रवृत्तियो म मूल भेद यह है कि तिडन्त क्रियाओ के अन्त मे पुरुष सूचक सवनाम चिन्ह लगते हैं और कृदन्त रूपो मे ऐसे चिन्ह नही जोडे जाते। जैसे अगच्छत और गत, दोनो से वह गया, एसा भाव प्रकट होता है। अगच्छत् रूप के अन्त मे त् अन्य पुरुष सवनाम का चिन्ह है और कत्ता या कम के लिंग के अनु सार ऐसे रूप म कोई परिवतन न होगा। किन्तु कृदन्त रूपो मे लिंगभेद व्यजित होता है। दो प्रवृत्तियो मे जो भेद है, उसका सम्बन्ध वाक्य रचना की दो पद्धतियो से है। -

पठामि—यह केवल क्रियापद नही है पूरा वाक्य है। आरम्भ म क्रिया है और क्रिया के बाद सर्वनाम चिन्ह है जो कर्ता की भूमिका निबाहता है। हिन्दी मे पढता हूँ कहने से विदित हो जायगा कि पढने वाला मैं हूँ। वाक्य के आरम्भ मे कर्ता मैं जोडे बिना भी अथ स्पष्ट हो जाएगा। सस्कृत मे पुरानी पद्धति पठामि कहने की है अहम पठामि इस तरह का वाक्य-विन्यास बाद का है। सस्कृत समेत भारतीय भाषाओ के वाक्यतत्र की

विशेषता यह है कि वाक्य के आरम्भ मे कर्ता होता है और अन्त मे क्रिया। पहले उद्देश्य, फिर विधेय, वाक्य-रचना की यही पद्धति भारत के विभिन्न भाषा परिवारो मे प्रचलित है। कोल-परिवार की क्रिया पद रचना में पठामि वाली पद्धति की छाया अब भी दिखाई देती है। कोल भाषा विशेषज्ञ पिनोव का विचार है कि प्राचीन काल मे कोल भाषाओ के वाक्य के आरम्भ में क्रिया रहती थी। यदि ऐसी ही स्थिति आर्य भाषाओ की न होती तो **पठामि** जैसे रूप की रचना न होती। कृदन्त पद्धति उन आर्य भाषाओ की देन है जो वाक्य-रचना मे पहले उद्देश्य फिर विधेय, यह क्रम रखती थी। परम्परा से यह प्रसिद्धि रही है कि उदीच्य लोग कृदन्तप्रिय रहे है। जो लोग यह मानते है कि आर्य गण उत्तर पश्चिम से भारत में आये, वे इस बात की व्याख्या नही करते कि तिङन्तप्रेमी आर्यो मे यह कृदन्त प्रेमियो का दल कहा से पैदा हो गया। तिङन्त और कृदन्त का भेद दो वाक्य तन्त्रो का भेद है इस पर उन्होंने विचार नही किया। इडोयरोपियन परिवार मे ऐसी भाषाएँ अब भी हैं जो वाक्य क्रिया मे आरम्भ करती है इस तथ्य का उनके लिए मानो कोई महत्व ही नहीं है। स्काटलैंड मे जो गेलिक भाषा बोली जाती है वह केल्त समुदाय की है, अग्रेजी भाषा जर्मन समुदाय की है। गेलिक की वाक्य रचना अग्रेजी से नितान्त भिन्न रूप मे होती है। उसमे क्रिया पहले आती है और कर्ता कर्म आदि उसके बाद आते हैं। भारतीय कोल और आर्य भाषाओ म अनेक समानताएँ हैं। यदि कोई कहे कि स्काटलैंड की गेलिक भाषा पर कोल भाषाओ का प्रभाव है तो मुझे कोई आपत्ति न होगी। स्मरण यह रखना चाहिए कि ग्रीक और संस्कृत की क्रिया पद रचना उसी पद्धति से सभव है जो गेलिक मे दिखाई देती है। इडोयूरोपियन भाषाओ, इनके प्रमुख समुदायो, के विकास की अनेक मजिले है और यह विकास हजारो साल की दीर्घ अवधि म सपन्न हुआ है। भारतीय सदर्भ मे आर्य भाषाओ का एक समुदाय कृदन्तप्रिय है, दूसरा तिङन्तप्रिय। पहला समुदाय उदीच्य है, यह बात प्रसिद्ध है। दूसरा समुदाय मध्य देशीय होना चाहिए यह निष्कर्ष स्वाभाविक है किन्तु इसका उल्लेख नही होता। कारण यह कि वैदिक भाषा बोलने वाले आर्य मध्यदेशीय थे, यह कोई नही कहता। वैदिक आर्य उदीच्य हैं और कृदन्तप्रिय आर्य भी उदीच्य है। इसलिए यह माना जाता है कि संस्कृत एक ही प्रदेश और एक ही समाज की भाषा है, परिवर्तन होता ही है, यहा भी कुछ परिवर्तन हो गया।

यदि आधुनिक आर्य भाषाओ की ओर ध्यान दें तो विदित होगा कि कृदन्त तिङन्त वाला भेद अब भी बना हुआ है और यह भेद एक ही समाज, एक ही प्रदेश का आन्तरिक भेद नही है। वह दो प्रदेशो दो समाजो, दो भाषा-समुदायो के बीच का भेद है। उदाहरण के लिए **उसने किताब पढ़ी** यहा पढ़ी कृदन्त रूप है कर्म के अनुसार उसका लिंग निर्धारित हुआ पढी म कही पुरुष वाचक सर्वनाम चिह्न नही है जिससे अन्य पुरुष या उत्तम पुरुष का बोध हो। अवधी म कहेंगे **वहु किताब पढ़ैसि**। यहाँ **पढ़ैसि** क्रिया कर्म के अनुसार लिंग भेद सूचित नही करती, उसम अन्य पुरुष का सर्वनाम चिन्ह है, **वहु** कर्ता न भी लगाया जाय, तो भी उसका बोध हो जाएगा। **वहु पढ़ैसि**—ऐसा

प्रयोग ब्रजभाषा, बाँगरू या परिनिष्ठित हिन्दी मे नही होता। जो लोग आधुनिक भाषाओ की स्थिति की छानबीन करते हुए प्राचीन भाषाओ की स्थिति पहचानने का प्रयत्न करते हैं, उनके लिए यह भेद महत्वपूर्ण है। वर्तमान स्थिति यह है कि एक क्षेत्र मे भूतकालीन क्रियारूप अब भी तिङन्त है, दूसरे म वह कृदन्त है।

भाषा के अन्य स्तरों—जैसे ध्वनितंत्र—का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्कृत मूलत मध्य देश की भाषा थी, उसका जो रूप मिलता है, वह बाद का परिवर्तित रूप है। उसी प्रकार वाक्यतंत्र—और वाक्यतंत्र के अन्तर्गत रूपतंत्र—का विश्लेषण करते हुए इस बात का आभास मिलता है कि तिङन्त क्रियारूपो का व्यवहार मध्यदेशीय आर्यभाषाओ की विशेषता थी। तिङन्त रूपो का सम्बन्ध क्रियापदो मे सर्वनाम चिन्हो के व्यवहार से है। ये सर्वनाम चिन्ह क्रिया के बाद आते हैं और वे उस विन्यास-पद्धति की याद दिलाते है जिसम वाक्य क्रिया से आरम्भ होता था। संस्कृत म जहाँ लोक कथाएँ लिखी गई हैं—उनकी मूल भाषा कोई भी हो—वहा बहुधा वाक्य **अस्ति** क्रिया से आरम्भ होता है। पंचतंत्र की कथाओ मे यह बात देखी जा सकती है। **अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे पाटलिपुत्र नाम नगरम**। इसी प्रकार **कथा सरित सागर** मे कथा **अस्ति** से आरम्भ होती है—**अस्ति किन्नर-गन्धर्व विद्याधर निषेवित** इत्यादि। **कुमारसंभव** के आरम्भ म जो **अस्ति** का व्यवहार हुआ है—**अस्त्युत्तरस्यां दिशिदेव तात्मा**—संभव है, वह लोक कथाओ की शैली के प्रभाव के कारण हो। इससे यह निष्कर्ष नही निकलता कि कालिदास के समय मे लोग संस्कृत वाक्य क्रिया से ही आरम्भ करते थे। वाक्य के आरम्भ मे **अस्ति** का आना पुरानी पद्धति का अवशेष मात्र है और वह पद्धति लोक कथाओ में प्रचलित थी। लोक गीत, लोक कथाएँ, कहावतें, मुहाविरे भाषा के ऐसे रूप बनाये रखते हैं जो सामान्य व्यवहार स उठ जाते है।

- तुलसीदास और जायसी अवधी के दो ऐसे कवि है जो लोक संस्कृति मे रंगेपगे हैं। यद्यपि वे अवधी का व्यवहार काव्य मे कर रह हैं और काव्य मे, शब्दो के रूप की तरह, वाक्यतंत्र मे बहुत तरह के परिवर्तन किये जा सकते है, फिर भी इनके वाक्य विन्यास का अध्ययन इस दृष्टि से किया जा सकता है कि वाक्य क्रिया से आरम्भ होते हैं या नही, होते हैं तो पद्य रचना की सुविधा के लिए, या शैली चमत्कार के लिए, अथवा इन दोनो से भिन्न वाक्यतंत्र की किसी पद्धति का अनुसरण करते हुए वे ऐसा करते हैं। जायसी पदमावत इस प्रकार आरम्भ करते हैं **सुमिरौं आदि एक करतारू, जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू**। इसके बाद **कीन्ह** क्रिया की आवृत्ति सी करते हुए **कीन्हेसि प्रथम ज्योति परकासू**। और हर अर्धाली का आरम्भ इसी **कीन्हेसि** क्रिया रूप से करते चले जाते हैं। पहली पंक्ति के **कीन्ह** की प्रतिध्वनि आगे दोहे मे सुनाई देती है **कीन्ह सबै अस जाकर दूसर छाज न काहि**। इस दोहे के बाद फिर **कीन्हेसि** रूप वाली पंक्तियो का सिलसिला शुरू हो जाता है। जायसी निस्सन्देह कलाकार थे और यहा **कीन्हेसि** क्रिया की आवृत्ति उनकी वक्तृत्व कला का उपकरण है। पर आवृत्ति के अलावा भी वह **कीन्हेसि** क्रिया वाक्य के आरम्भ मे रखते हैं। कर्ता की आवश्यकता नही क्रिया

इत्यादि। **कवितावली** ब्रजभाषा मे है। यदि ब्रजभाषा के अन्य किसी कवि
तुलसीदास की इस भाषा की तुलना की जाय तो विदित होगा कि क्रिया से
वाले वाक्य तुलसीदास की रचनाओ मे अधिक है। यहा क्रिया का स्थान
और कर्म उसके बाद आते हैं। सूरदास के पदो मे ऐसे वाक्य मिल जाते हैं
कर्ता या कर्म से पहले है जैसे इस प्रसिद्ध पद मे **निसिदिन बरसत नैन**
तु यदि कही से सौ पक्तिया लेकर क्रियामुख वाक्यो का औसत निकाला
सीदास की अपेक्षा सूरदास के यहा यह औसत कम होगा। उनकी ब्रज
के वाक्यविन्यास से प्रभावित है इस कारण, अन्य ब्रजभाषा कवियो की
नके यहा क्रियामुख वाक्य अधिक है। यदि सूर की भाषा की तुलना रीति-
की ब्रजभाषा से की जाय तो उनके यहा, सूर की अपेक्षा क्रियामुख
ख्या और भी कम होगी। कारण यह है कि रीतिवादी रचनाओ पर लोक
पन नागरिकता की छाप है। हिन्दी प्रदेश मे जो भाषा नागरिक सस्कृति
ी, उस पर उत्तर पश्चिमी कर्तामुखी वाक्यपद्धति का प्रभाव अधिक है।
ने पहले खडीबोली की रचनाओ की तुलना बाद की हिन्दी उर्दू रचनाओ
तीत होगा कि क्रमश पुरानी पद्धति का व्यवहार कम होता गया है गद्य
द्य मे भी। यह एक लम्बी प्रक्रिया है और इस पर ध्यान देने से तिङन्त
रचनाओ का विकास भेद समझने मे आने लगता है।

त रूपो का व्यवहार अकर्मक और सकर्मक दोनो प्रकार की क्रियाओ मे
यर्सन ने यह माना था कि सकर्मक क्रियाओ के भूतकालीन कृदन्त रूपो का
ाँ होता है, वहा रचना कर्मवाच्य होती है जहा अकर्मक क्रिया मे ऐसे रूपो
होता है वहा वाक्यपद्धति कर्तवाच्य होती है। **लिंग्विस्टिक सर्वे** (खड
मे बिहार की भाषाओ की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा था कि हिन्दी मे
ओ का भूतकालीन कृदन्त रूप कर्मवाच्य ही होता है। **मैंने उसे मारा** का
थ है वह मेरे द्वारा मारा गया। ग्रियर्सन ने दो तरह के वाक्यो को
है। **मैंने पुरुष को मारा, मैंने स्त्री को मारा,** कर्म चाहे जिस लिंग मे हो,
रिवर्तित रहता है। **स्त्री ने मुझे मारा पुरुष ने मुझे मारा,** यहाँ भी कर्ता
क्रिया मे परिवर्तन नही होता। **उसने, तुमने, मैंने, हमने, उन्होंने,**
ा, यहा भी पुरुष वचन भेद से क्रिया नही बदलती। क्रिया का यह शुद्ध
ङन्त है या कृदन्त, यह बात गौण है। वह भाववाच्य है या कर्तवाच्य, या
ह बात भी गौण है। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के शब्दो मे 'शुद्ध
, वचन आदि कुछ है ही नही।'' (हिन्दी शब्दानुशासन पृष्ठ १३८)।
र्वथा स्वतन्त्र'' है उसके उदाहरण उक्त ग्रन्थ मे इस प्रकार हैं **हमने तुमको**
हमको देखा, लडके ने माँ को देखा, माँ ने लडके को देखा। यहाँ **देखा**
र्तन नही होता। ग्रियर्सन ने जिसे 'पैसिव कन्सट्रक्शन' कहा है, वह वास्तव
है। **मैंने उसे मारा** वाक्य को बदलकर कहा जाय, **मैंने उसे लाठी मारी,**

तो क्रिया की स्वतन्त्रता नियन्त्रित हो जाती है। संस्कृत में कृदन्त रूप लिंग वचन भेद से मुक्त नहीं होता, यह भेद कर्ता के लिंग वचन के अनुसार होगा या कर्म के लिंग वचन के अनुसार। हिन्दी में कृदन्त जहाँ स्वतन्त्र क्रिया रूप है, वहाँ वे संस्कृत पद्धति का अनुसरण नहीं करते।

उसने लाठी मारी में क्रिया दूसरे ढंग से प्रयुक्त हुई है। लाठी चाहे करण-कारक हो चाहे कर्म, क्रिया उसके लिंगानुसार बदलती है (और पंजाबी में वचन का अनुसरण भी करेगी यानी हिन्दी की अपेक्षा पंजाबी संस्कृत की कृदन्त पद्धति के अधिक समीप है।) बँगला में लिंगभेद होता ही नहीं है किन्तु कृदन्तों का प्रयोग होता है। **उसने लाठी मारी** जैसा प्रयोग बँगला में असंभव है। शायद इसीलिए ग्रियर्सन ने लिखा है कि कृदन्त रूपों का हिन्दी जैसा भेद बँगला में नहीं है और बँगला तथा बिहारी भाषाओं में सकर्मक अकर्मक दोनों तरह की क्रियाओं का रूप विन्यास एक ही ढंग का होता है।

प्रश्न बंगाल और बिहार की भाषाओं का ही नहीं है। अवधी में भी **उसने लाठी मारी, उसने किताब पढ़ी** जैसे प्रयोग संभव नहीं हैं। **वह लाठी मारेसि वह किताब पढ़ेसि,** यहाँ क्रिया में लिंग-भेद नहीं है। किन्तु **मारेसि** का मूल अंश **मार** कृदन्त है। बँगला के **मारिलाम, गेलाम,** में कृदन्त रूपों का व्यवहार स्पष्ट है। फिर भी **लाठी मारी** जैसे क्रियारूप से ये भिन्न हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कृदन्तों के व्यवहार की अनेक पद्धतियाँ हैं, इनका सम्बन्ध अलग-अलग क्षेत्रों की आर्यभाषाओं से है, तिङन्त कृदन्त भेद काफी नहीं है।

अवधी के **कीन्हेसि, दीन्हेसि** में **कीन्ह, दीन्ह** कृदन्त रूप हैं, कृदन्त रूप के पश्चात् पुरुष सूचक चिह्न लगा है। जैसे तिङन्त क्रियाओं में पुरुष सूचक चिह्न लगता है, वैसे ही कृदन्त क्रियाओं में मानो कृदन्त रूपों का पुनः तिङन्तीकरण हुआ हो। इसका कारण भाषा में अन्तर्निहित वाक्यतन्त्र की वह प्राचीन पद्धति है जो क्रिया के बाद पुरुष सूचक कर्ता चिह्न जोड़ती है। तुलसीदास ने कृदन्तों का तिङन्तीकरण किया है और कृदन्तों का विशेषणवत् प्रयोग भी किया है। **मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत तदपि कही गुरु बारहिं बारा चलत मोहि चूडामनि दीन्हीं, कही बिभीषन नीति बखानी।** यहाँ क्रिया कर्म के अनुसार, लिंग भेद सूचित करती है। ये प्रयोग अवधी के नहीं है। अवधी की प्रवृत्ति इस प्रकार है **रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु।** यहाँ **कीन्हेसि** और **कहिसि** क्रियाओं की कर्ता एक स्त्री है, **कीन्हेसि** का कर्म **कपट प्रबोध** पुल्लिंग है, **कहिसि** का कर्म **कथा** स्त्रीलिंग है। किन्तु **कीन्हेसि** और **कहिसि** दोनों रूप तिङन्त क्रियाओं के समान कर्ता के पुरुष और वचन की सूचना देते हैं कर्म के अनुसार उनमें लिंग-परिवर्तन नहीं होता। तुलसीदास की अवधी पर जहाँ-तहाँ कनौजी ब्रज बुन्देलखंडी, बागरू आदि पछाहीं बोलियों का प्रभाव भी है। इसलिए रामचरितमानस के क्रिया रूपों को सर्वत्र पुरानी अवधी के रूप न मान लेना चाहिए।

कृदन्त रूपों का एक सुपरिचित और व्यापक प्रत्यय ल है। इसका व्यवहार

भोजपुरी क्षेत्र से लेकर असमिया और उडिया के प्रदेशा तक होता ह। डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने बँगला भाषा पर अपने ग्रन्थ मे लिखा है कि यह प्रत्यय काफी पुराना है और मागधी अपभ्रश म प्रयुक्त होता होगा यद्यपि इस अपभ्रश के उदाहरण नही है। यदि यह प्रत्यय मागधी अपभ्रश म प्रयुक्त होता था तो मानना होगा कि इस अपभ्रश स न केवल बँगला, उडिया, मैथिली आदि का जन्म हुआ वरन मराठी जैसी भाषा का जन्म भी उसी स हुआ। अपन ग्रन्थ के पृष्ठ ६८० पर डा० चाटुर्ज्या ने इस सदभ म गुजराती, राजस्थानी और सिन्धी का हवाला दिया है और अगले पृष्ठ ६४१ पर मराठी का उल्लेख भी किया है। जैसे अनक बाता म बँगला मराठी से मिलती है वैसे ही कृदन्त रूपा के ल प्रत्यय को लेकर भी दोनो म समानता है। यहा मध्यदेश की स्थिति पूर्वी और पछाही बोलिया से भिन्न है। डा० चाटुर्ज्या कहते है कि पूर्वी और पछाही हिन्दी तथा पूर्वी तथा पछाँही पजाबी का जन्म जिन बोलिया से हुआ है, उनमे कमवाच्य कृदन्त के साथ इसका व्यवहार न होता था। मध्यदेश लकारान्त रूपो से घिरा हुआ है, यद्यपि मध्यदेश मे कृदन्त रूपो का व्यवहार होता है, फिर भी इस विशेष कृदन्त रूप का व्यवहार अवधी ब्रज, बागरू, पजाबी और परिनिष्ठित हिन्दी मे नही होता। साथ ही अवधी म सकमक क्रियाओ के भूतकालीन कृदन्ता का कमवाच्य प्रयोग नही होता। इसका अथ यह है कि अवधी का क्षेत्र कृदन्तो से कम प्रभावित हुआ है। आचाय किशोरीदास वाजपेयी ने लिखा है हिन्दी मे कृदन्त क्रियाएँ ही अधिक है। वतमान काल की सबकी सब क्रियाएँ कृदन्त हैं, सहायक क्रिया केवल 'है' ही तिडन्त है—लडका पढता है लडकी पढती है। भूतकाल की भी सब क्रियाएँ कृदन्त हैं—लडका गया और लडकी गई।' (हिन्दी शब्दानुशासन पृष्ठ ४२०)। परिनिष्ठित हिन्दी के लिए यह बात सही है। आधुनिक अवधी मे *लडका पढ़ता है* की तरह *लरिका पढत है* और *लडकी पढती है* की तरह **बिटिया पढति है** प्रयोग होते है। किन्तु ये अपेक्षाकृत आधुनिक है। तुलसीदास की अवधी म वतमानकालीन क्रिया रूप मुख्यत तिडन्त है कृदन्त नही यथा **सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग, लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।** यहा **समुझहिं, मज्जहिं** आदि तिडन्त रूप है।

पश्चिमी और पूर्वी भाषाओ मे कृदन्त रूपो का जो व्यवहार हुआ, उसम भेद यह है कि पूर्वी भाषाएँ कृदन्ता के अन्त मे पुरुष-सूचक चिन्ह लगाती है। मगही मे उसने रोटी खाई इस वाक्य को कहेगे, **उ रोटी खलकइ**। यहा **खल** कृदन्त रूप है। **खलकइ** के अन्त म जो इ है उसका स्त्रीलिंग से कोई सम्बन्ध नही है। वह चला गया, मगही म **उ चल गेलइ**। यहाँ भी इकारान्त रूप है और उसका स्त्रीलिंग से कोई सम्बन्ध नही है। (*ये उदाहरण डा० विश्वनाथ प्रसाद कृत* ***लिग्विस्टिक सर्वे आफ सदर सब डिवीजन आफ मानभूम एन्ड ढलभूम***, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, मे है।)

भोजपुरी स भिन्न मगही और मैथिली भाषाओ के क्रिया रूप न केवल कर्ता की ओर वरन् कम की ओर भी सकेत करत है और यह सकेत क्रिया के बाद प्रत्यय लगाकर किया जाता है। ग्रियसन ने उदाहरण दिए हैं **देखलथिन्** अथात् उसने उस मान्य

व्यक्ति को वेखा, वेखलथुन् अर्थात् उसने आपको देखा। कर्ता अन्य पुरुष या मध्यम पुरुष में है, तो यह सूचना क्रिया रूप देगा। **ओकर भाय अइलथी हइ**—उसका भाई आया है, **तोहर भाय अइलथु हइ**—तुम्हारा भाई आया है। यहा भी कृदन्त रूप हैं किन्तु उनके व्यवहार की पद्धति न केवल परिनिष्ठित हिन्दी से भिन्न है वरन बँगला और भोजपुरी की पद्धति से भी भिन्न है। कृदन्ता के बाद सर्वनाम चिह्न जुड़े है।

अवधी मे अकमक क्रिया रूप परिनिष्ठित हिन्दी के रूपा से काफी मिलत जुलते है। **हम गये वे गये**, हिन्दी के इन वाक्या म **गये** रूप वचन और लिंग सूचित करता है, पुरुष भेद नही बताता। अवधी मे **हम गन, वी गे**—इन वाक्यो मे पुरुष भेद सूचित है। **वी गे** पुल्लिग रूप है **वी गईं** कहें तो स्त्रीलिंग का बोध होगा। अवधी भाषा कृदन्त रूपा के बाद पुरुष सूचक चिह्न लगाती है और जहा-तहा पश्चिमी बोलिया के समान लिंग भेद भी सूचित करती है।

मुख्य भेद दो तरह की क्रिया पद रचना का है। एक म पुरुष सूचक चिह्न लगत है, *दूसरी मे नही लगते। इस दूसरी पद्धति मे लिंग भेद भी सूचित किया जाता है* और इस तरह का लिग भेद उन भाषाओ के क्रिया रूपा म भी कही-कही झलकता है *जिनमें पुरुष-सूचक चिह्न लगाए जाते हैं। गौण भेद कृदन्त प्रत्ययो के व्यवहार को* लेकर है। मध्यदेश के उत्तर पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्र मे इन प्रत्यया का व्यवहार अधिक होता है। अवधी भाषा का क्षेत्र कृदन्त प्रभाव स अपेक्षाकृत मुक्त है।

परिनिष्ठित हिन्दी मे भी कृदन्त रूपा का व्यवहार काफी नियन्त्रित है। **लडका पढता है** मे **पढता** पूर्ण क्रिया नही है, उसके साथ **है** क्रिया भी है। आचार्य किशोरीदास वाजपयी ने कृदन्त और तिङन्त के अलावा दोनो के सयुक्त रूपा के व्यवहार की बात कही है। **है**—यह रूप तिङन्त है **पढ़ता** कृदन्त है। कृदन्ता का जोर भूतकालीन रूपा म अधिक है। इसका कारण यह है कि जिन रूपा को अब काल विशेष स जोडा जाता है, व पहले क्रिया की अवस्था मात्र सूचित करते थे। क्रिया की पूर्णता, अपूर्णता निरन्तरता आदि का बोध इन अवस्थाओ से होता था। य अधिकाश अवस्थाएँ आग चलकर वर्तमान काल स सम्बद्ध हो गइ, अतीतकाल से इनका वैषम्य दिखाने के लिए कृदन्त रूपो का व्यवहार होने लगा। अतीतकाल के लिए कृदन्त रूपो के व्यवहार म भेद है। **हमने लडकी देखी** या **देखी थी** यहा कृदन्त रूप विशेषण के समान कर्म के अनुरूप लिंग भेद सूचित करता है, किन्तु **हमने लडकी को देखा** या **देखा था** म कृदन्त रूप लिंग निरपेक्ष है। **देखा था** रूप पुल्लिग लगता है किन्तु यदि कहे कि **लडकी ने, लडके को देखा** या **देखा था** तो भी *क्रिया रूप मे परिवर्तन नहीं होता। यह कृदन्त* का भाववाच्य प्रयोग है जो सस्कृत म नही है। एक तिङन्त पद्धति दूसरी कृदन्त पद्धति तीसरी सयुक्त पद्धति और चौथी वह जिसमे क्रिया स्वतन्त्र है। यह पद्धति भी काफी पुरानी होनी चाहिए। क्रिया रूप द्वारा लिंग भेद सूचित करने की प्रवृत्ति सस्कृत म प्रबल है, इस चौथी पद्धति म उसके प्रभाव स मुक्ति है। यहा वाजपेयी जी का यह कथन सस्कृत और हिन्दी का अन्तर समझने के लिए महत्वपूर्ण है 'सस्कृत मे हिन्दी

है। **करे है** की तरह **करे था** रूप का भी चलन है। परिनिष्ठित हिन्दी के **करेगा, जायगा** रूपों में वही वर्तमानकालीन **करे** और **जाय** हैं। ये वर्तमानकालीन रूप ही, भूत और भविष्य के लिए, अन्य काल चिह्नों के साथ प्रयुक्त हुए। **करे है** में है अनावश्यक है किन्तु जब **करे** रूप का व्यवहार भूत और भविष्य के लिए होगा, तो वर्तमान काल का अलग संकेत देने के लिए **है** का प्रयोग अनिवार्य होगा। इससे वर्तमानकालीन रूपों के व्यापक प्रयोग का ज्ञान होता है। अवधी में भविष्य और भूत के चिह्न **गा** और **था** नहीं है, अतः **करइ** के बाद **है** जैसी क्रिया का व्यवहार आवश्यक नहीं है। **करे था** के समानान्तर **किया था** वाला रूप भी विद्यमान था किन्तु भविष्य के लिए भूतकालीन **किया** से काम न चल सकता था। उसके लिए पुराने रूप **करे** से ही काम लिया जा सकता था। **करइ** का संस्कृत प्रतिरूप **करोति** है। प्राकृत में क्रिया के साथ **ति**, उसका सघोष रूप **दि**, और **इ** प्रत्ययों का व्यवहार हुआ है। अपभ्रंश में भी अन्य पुरुष के साथ क्रिया के एकवचन रूप में **इ, दि** दिखाई देते हैं। इसका अर्थ यह है कि **करइ** जैसा अवधी का रूप उतना पुराना है जितना कोई भी प्राकृत का ऐसा ही रूप। बहुवचन में प्राकृत तो, संस्कृत का अनुसरण करते हुए, न्ति वाले रूपों से काम लेती है अपभ्रंश में न्ति वाले रूपों का लोप हो जाता है उनके स्थान पर हिं वाले रूप आ जाते हैं। अपभ्रंश में जहां प्राकृत का अनुसरण किया जाता है वहां न्ति वाले रूप कायम रहते हैं। समस्या यह है कि यदि संस्कृत के **ति** और **न्ति** वाले रूप मूल हैं, तो एकवचन में **त** का पूर्ण लोप हो जाता है और ति के स्थान पर केवल इ ध्वनि बच रहती है किन्तु बहुवचन में **त्** का लोप नहीं होता वरन् वह ह में बदल जाता है। **त** का **ह** में परिवर्तन अत्यन्त अस्वाभाविक है। अस्वाभाविक न हो तो भी एक जगह ह के बने रहने और दूसरी जगह उसके लोप हो जाने का कोई कारण होना चाहिए।

रामचरितमानस और **पदमावत** में वर्तमान काल में अन्य पुरुष के लिए क्रिया के एकवचन और बहुवचन रूपों को मिलाकर देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि बहुवचन का हिं एकवचन के हि रूप का अनुस्वारयुक्त प्रयोग है। एकवचन रूपों का व्यवहार बहुवचन रूपों की तुलना में अधिक हुआ, इसलिए अल्पप्राणता के भाषाई परिवेश में ह का लोप हुआ। भविष्य काल के अन्य पुरुष एकवचन रूपों में सामान्यतः हि सुरक्षित है। इसी काल और पुरुष के बहुवचन रूपों में हिं का व्यवहार होता है। यहाँ हि और हिं का सम्बन्ध स्पष्ट है। यदि एकवचन में इ हो और बहुवचन में हिं तो यह मान लेना चाहिए कि एकवचन में हि रूप का चलन था। अवधी के कुछ क्षेत्रों में अब भी हि वाले क्रिया रूपों का व्यवहार होता है जिनके समानान्तर अन्य क्षेत्रों के रूपों में ह का लोप हो गया है। बघेली का एक वाक्य है "त कर ल्य वह मार सहाव निह् हाही।" (धीरेन्द्र वर्मा **ग्रामीण हिन्दी**, पृष्ठ ८६)। यहां **होही** भविष्यकालीन क्रिया रूप है, बैसवाड़ी में इसका **होई** प्रतिरूप प्रचलित है। इसी प्रकार बघेली का **चलही** भविष्य काल में अन्य पुरुष का एकवचन रूप है (उप०) उसके स्थान पर बसवाड़ी में **चली** रूप होगा।

बहुवचन और एकवचन दोनों रूपों में ह् ध्वनि विद्यमान थी। अवधी के लिए त् का ह् में परिवर्तन अस्वाभाविक है किन्तु यदि त के स्थान पर ध हो, तो उसका एक क्षेत्र में ह् रूप धारण करना और दूसरे क्षेत्र में त् या द् रूप धारण करना अत्यन्त स्वाभाविक होगा। **इधर, इहर** और **इत** रूपों पर ध्यान दें तो ध्वनि-परिवर्तन का उक्त क्रम समझ में आ जाएगा। जो क्षेत्र सघोष महाप्राण ध्वनियों में स्पर्श तत्व की रक्षा करता है केवल महाप्राणता या उसके साथ सघोषता का लोप करता है वह **गच्छदि, गच्छति** रूपों का व्यवहार करता है जो क्षेत्र स्पर्श तत्व का लोप करता है केवल महाप्राणता की रक्षा करता है वह **गच्छहि** जैसा रूप अपनाएगा।

मूल रूप गच्छधि में धि की भूमिका क्या है? इसकी भूमिका वही है जो **गच्छामि** में **श्रामि** की है अर्थात वह क्रिया के बाद आने वाला कर्ता रूप सर्वनाम है। **गच्छामि** का **मि, श्रमि** या **श्रामि** अनेक उत्तम पुरुष सर्वनाम रूपों से मिलता जुलता है, किन्तु **गच्छधि** का वह् धि कहीं दिखाई नहीं देता। कभी-कभी पुराने रूप मूल क्षेत्र से दूर की भाषाओं में सुरक्षित रहते हैं। ऐसी ही एक भाषा अंग्रेजी है। इसके अन्य पुरुष सर्वनाम का बहुवचन कर्ता रूप **दे** होता है। कर्म कारक में **देम** रूप प्रचलित है। एकवचन कर्ता रूप **ही** है, उसी का कर्म रूप **हिम** है। **हि** और **हिम**, इनके समानान्तर **दे** और **देम**। यदि सर्वनाम के मूल रूप में **ध** की कल्पना की जाय तो अंग्रेजी के इन रूपों की व्याख्या बहुत अच्छी तरह हो जाती है। **ही** और **हिम** एक क्षेत्र के रूप हैं **दे** और **देम** अन्य क्षेत्र के। दोनों का आधार धि सर्वनाम है। दो तरह के रूप सुलभ होने पर एक तरह के रूप एकवचन के लिए सुरक्षित हो गये, दूसरी तरह के रूप बहुवचन के लिए। **ही** के अलावा अंग्रेजी में एक सर्वनाम **दि** और है जो अब किसी संज्ञा के पहले आने वाला विशेष संकेतक (डेफीनिट आर्टीकिल') बन गया है। व्युत्पत्ति विशेषज्ञों को इस **दि** की व्याख्या करने में कठिनाई न होनी चाहिए। वह सीधे प्राचीन आर्य सर्वनाम धि का अल्पप्राण रूप है। शिलालेखों की पुरानी फारसी में अन्य पुरुष सर्वनाम का कर्म-कारक रूप **दिम** (अंग्रेजी **हिम**) इसी **दि** से बना है। फ्रांसीसी भाषा में यही **दि** या **द ल** में परिवर्तित होकर वैसी ही भूमिका निबाहता है। भारत के पूर्वी क्षेत्र की भाषाओं में तृतीय **त** इसी प्रकार **ल** में बदलकर **कहिल, गेल** आदि रूपों को जन्म देता है।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने जिस मूल भाषा का उल्लेख हिन्दी शब्दानुशासन में अनेक बार किया है उसमें **गच्छधि गर्च्छधि याधि यान्धि** जैसे रूप किसी समय अवश्य प्रचलित रहे होंगे। **याधि** और **यान्धि** के संस्कृत रूप **याति** और **यान्ति** हैं अवधी प्रतिरूप **जाहि** और **जाँहि** हैं। इन्हीं रूपों में जब ह का लोप होता है तो जाइ, जाय, जायँ आदि रूप प्राप्त होते हैं।

एक क्रिया है **दुह्**। इसका वर्तमान काल में अन्य पुरुष का एकवचन रूप होता है **दोग्धि**। यहाँ **ध्** स्पष्ट दिखाई दे रहा है। एक क्रिया है **लिह्**। इसका अन्य पुरुष में एकवचन रूप होता है **लेढि**। इसका प्रतिरूप **रिह्** भी है जिससे वर्तमानकालीन अन्य

पुरुष का **रेढि** रूप बनता है। यहाँ भी ढि के पूर्व रूप धि के अस्तित्व का बोध होता है। वैयाकरण कहते है कि वर्तमानकालीन अन्य पुरुष के इन एकवचन रूपो मे मूलत **ति** चिन्ह था जो धि मे बदल गया है। संस्कृत के सारे विकास को देखते हुए **थ** ध्वनि **त्** मे परिवर्तित हुई, इसकी संभावना अधिक है, **त्** ध्वनि सघोष महाप्राण **ध्** बन जाय, इसका कोई तर्कसंगत कारण प्रतीत नही होता।

ऐसे नियमो की कल्पना की गई कि **ति** बदल कर **ढि** हो जाय। यदि अधिकांश रूपो मे धि के दर्शन होते तो ऐसे नियमो की कल्पना की जाती कि, विशेष संदर्भो मे, ध की महाप्राणता और सघोषता का लोप हो जाता है। **ति** वाले रूपो के समानान्तर **धि** और **हि** वाले रूप प्रचलित थे, इसका प्रमाण वर्तमान काल मे अन्य पुरुष के वे एक वचन रूप है जो प्राकृत, अपभ्रंश और पुरानी अवधी मे प्राप्त है और जिनके अवशेष परिनिष्ठित हिन्दी समेत अनेक आधुनिक आर्यभाषाओ मे अब भी विद्यमान हैं। उनकी व्याख्या **गच्छति** के **ति** चिह्न के बदले **दोग्धि** के धि चिन्ह द्वारा ज्यादा अच्छी तरह हो जाती है।

लिह् क्रिया मूलत **लिघ** या **रिघ्** थी, इसका ज्ञान अंग्रेजी के **लिक** (चाटना) रूप से होता है। कहा जा सकता है कि बहुत से शब्दो मे **घ** और घ स्वच्छन्द संचरण की स्थिति मे दिखाई देते है, इसलिए यह संभव है कि **लिह** , **रिह** क्रिया के मूल रूप **लिघ**, **लिध** दोनो हो। इसमें असंभव कुछ नही किन्तु **लिह** क्रिया का वर्तमान काल मे मध्यम पुरुष एकवचन रूप **लेक्षि** होता है। जब हम क्रिया का मूल रूप **लिघ** मानते हैं तब घ का अपने ही वर्ग के अघोष अल्पप्राण **क्** मे परिवर्तित होना स्वाभाविक लगता है। **लिह्** (**लिक**) के साथ **धि** का संयोग होने पर मूर्धन्यीकरण की जिस प्रक्रिया से धि के स्थान पर **ढि** का अवतरण होता है उसी से **लेक्षि** मे, **क** के संसर्ग से, दन्त्य **स** मूर्धन्य **ष** मे बदल जाता है। घ ध्वनि पडोस के तवर्गीय व्यंजन को प्रभावित करती है, इसका एक उदाहरण **मूढ** शब्द है। यहा **मुह्** क्रिया का मूल रूप **मुघ** है, **लिघ** के समान। **मूढ** का वैकल्पिक रूप **मुग्ध** है। जब घ् के अस्तित्व का बोध बना रहता है, तब **मुग्ध** रूप बनता है, **घ्** ध्वनि अल्पप्राण हो जाती है क्योंकि दो महाप्राण व्यंजनो को संस्कृत एक साथ स्वीकार नही करती। जब केवल **ह** का बोध रहता है तब यह व्यंजन (अन्तस्थ) सामने की तवर्गीय ध्वनि को मूर्धन्य कर देता है और ह पूर्व स्वर को दीर्घ करके उसी मे लीन हो जाता है। **मुह** से मिलती जुलती क्रिया **मिह** है। **मूढ** के समान इसका **मीढ** रूप बनता है। यह क्रिया मूलत **मिघ्** है, इसका प्रमाण **मिह** का एक रूप **मेघमान** है।

ऐसा प्रतीत होता है कि अन्य पुरुष और मध्यम पुरुष दोनो के अनेक सर्वनाम रूप **घ** के आधार पर रचे गये है। वर्तमान काल मे **अस** का मध्यम पुरुष एकवचन रूप **एधि** है। धि यहा मध्यम पुरुष सर्वनाम का एकवचन रूप है। **शास्** क्रिया का मध्यम पुरुष एकवचन रूप **शाधि** होता है। **चकास** क्रिया का ऐसा ही **चकाधि** रूप होता है। मध्यम पुरुष के **मोदध्वम्**, **अलभध्वम** **युध्यध्वम** जैसे बहुवचन क्रिया रूप देखते हैं तो उक्त कल्पना पुष्ट होती है। आत्मनेपद मे **ध्वम** के स्थान पर **ध्वे** दिखाई देता है (जो

संभवत ध्वस का 'अर्द्ध मागधी' ध्वे रूप है)। मध्यम पुरुष मे क्रिया के एकवचन रूपों म स्व के दशन भी होत है, लभस्व, मोदस्व आदि। एसा प्रतीत होता है कि ध्व, त्व, स्व, इन मध्यम पुरुष सवनाम् रूपो का एक ही आधार है। विभिन्न वचना मे थ का व्यवहार भी होता है यथा द्विवचन मे मोवेथाम्। भ्रलभथ मध्यम पुरुष म त्रिया का एकवचन रूप है, बोधथ, भवथ, मे मध्यम पुरुष के बहुवचन रूप है। मध्यम पुरुष सवनाम के चिन्ह विभिन्न लकारो और वचना मे बाँट दिए गए है किन्तु इन सबका आधारभूत रूप ध्व पहचान म आता है। और यह सवनाम रूप ध पर आधारित अन्य पुरुष सवनाम धि से सबद्ध है।

यह उल्लेखनीय है कि सस्कृत मे मध्यम पुरुष के एकवचन रूपा म धि के अलावा सि और हि दोना दिखाई देत है। या क्रिया का वतमान काल मे यासि रूप है और आज्ञा मे याहि। हि का विकास सि से हो सकता है और सीधे धि से भी। अपभ्रश और पुरानी अवधी मे मध्यम पुरुष के जो हि वाले रूप मिलते है, उनका निर्माण सस्कृत काल म हो चुका था। हि के साथ अपभ्रश और अवधी म जहाँ हु दिखाई देता है, उसका आधार ध्व, स्व अथवा धु, सु होना चाहिए।

यहाँ सस्कृत क गच्छामि पठामि रूपा के मि, अमि या आमि पर विचार करना चाहिए। बँगला मे आमि सवनाम रूप प्रचलित है किन्तु मराठी मे उत्तम पुरुष का बहुवचन रूप आम्ही प्राप्त है। या तो इसमे महाप्राण ध्वनि जोडी गई है या बँगला मे महाप्राण ध्वनि का लोप हुआ है। यहा केवल सस्कृत रूप देखने से समस्या हल नही होती। प्राकृता मे जो रूप मिलते है, उनसे सहायता मिलती है। पिशल ने अपन प्राकृत व्याकरण म उत्तम पुरुष सवनाम का बहुवचन रूप अम्हे दिया। मराठी आम्ही का सम्बन्ध अम्हे से दिखाई देता है। इस रूप मे ह मूलध्वनि नही है। वह किस ध्वनि का परिवर्तित रूप है, इसका अनुमान पिशल द्वारा दिए हुए पैशाची प्राकृत के रूप अम्फ स होता है। इस रूप से विदित होता है कि मूल सवनाम अम्भ था जिसके परिवर्तित रूप अम्ह, अम्हे आदि थे। मराठी आम्ही, बँगला आमि और सस्कृत के पठामि का अमि या आमि तथा पशाची प्राकृत का अम्फ एक ही मूल सवनाम अम्भ के परिवर्तित रूप है। सवनामो के निर्माण में घ ध भ, देश-काल व्यक्ति-वस्तु-सूचक सकेत चिन्हो की जिस भूमिका का उल्लेख पहले किया गया है, यहा उसकी पुष्टि होती है।

सस्कृत के क्रियारूपो मे जो सवनाम चिन्ह दिखाई देत है, वे बहुधा परिवर्तित रूप मे है। कही तो धि ध्वम जसे रूपो मे सघोप महाप्राण ध्वनि स्पष्ट है, कही वह स, ह त् आदि म बदल गई है। ध के साथ भ ध्वनि का व्यवहार भी सवनाम रचना म होता था। अपभ्रश और आधुनिक आयभाषाओ के सवनामो का सबध सस्कृत रूपा से उतना नही है जितना प्राचीन मध्यदेशीय गणभाषाओ के रूपा से। श्राम्हीं का आधार श्रम्भ, श्रम्भें जैसा रूप है, इसी तरह अवधी त्रियापद जाहि का पूवरूप याधि है, और यह याधि सस्कृत याति का भी मूलरूप है।

सस्कृत के क्रिया रूपो के बारे म एक रोचक तथ्य यह है कि इनम अनेक सज्ञा रूप

है। सज्ञा रूप होने से वे किसी न किसी कारक चिह्न के साथ दिखाई देते हैं। मैकडनल ने पूर्वकालिक क्रिया **पीत्वा**, भूत्वा, हत्वा आदि के लिए लिखा है कि य करणकारक में उस सज्ञा का एकवचन रूप है जिसके अन्त में तु चिह्न था अर्थात पी तु+आ=पीत्वा। यह उकारान्त **पीतु** सज्ञा का मध्यदेशीय कर्ता रूप है। इसमें करणकारक की **आ** विभक्ति जोडी गई है। यदि करणकारक का यह प्रयोजन माना जाय कि किसी वस्तु के कारण काय विशेष होता है, तो इससे क्रिया में पूर्वकाल का भाव उत्पन्न नही होता। मैकडनल ने, **गत्वा** आदि क्रिया रूपों की व्याख्या करते हुए, लिखा है कि मूल क्रिया जिस काय की ओर सकेत करती है, उसके साथ होने वाले काय या उससे पहले होने वाले काय की ओर यह पूर्वकालिक रूप सकेत करता है। इस व्याख्या से करणकारक सम्बन्धी सामान्य धारणा मेल नही खाती। किन्तु कारक पर ध्यान न देकर विभक्ति पर विचार करें तो **गतु** सज्ञा के साथ **आ** सम्बन्धक का सयोग सार्थक है। पहले कहा गया है कि **सह** सम्बन्धक का विकास यह **आ** है। यह कल्पना **गत्वा** में **आ** की भूमिका से पुष्ट होती है। जाने की क्रिया के साथ वाक्य की मूल क्रिया सम्पन्न होती है। दोनो क्रियाएँ एक साथ पूरी तरह सम्पन्न नही होतीं, कुछ अन्तराल रहता है, इसलिए गौण क्रिया पूर्वकालिक हो गई।

ऐसे उकारान्त रूप अनेक क्रिया रूपों में प्रयुक्त होते हैं। **गत्वा** के साथ एक वैदिक रूप **गत्वी** है जिसमें मैकडनल के अनुसार, अधिकरण कारक की विभक्ति लगी है। इस तरह के रूपों में कारक का, वैयाकरणों द्वारा निर्धारित, काय छोडकर विभक्तियों अर्थात् सम्बन्धकों, की भूमिका पर विचार करना चाहिए। **तुम्हारी बात सुनने पर मैं कुछ कहूँगा,** इस वाक्य को यो भी कह सकते हैं **तुम्हारी बात सुनकर मैं कुछ कहूँगा। सुनने पर** से मिलता जुलता प्रयोग **गत्वी** का है। उसी **गतु** में **आय** जोडकर **गत्वाय** रूप बनता है। यह सम्प्रदान कारक का रूप है। क्रियार्थी सज्ञाओं में पातु जैसे उकारान्त रूप से पातवे, पातवै (पीना) शब्द सिद्ध होते हैं। क्रियार्थी सज्ञाओं के बारे में मैकडनल ने लिखा है कि क्रिया के आधार पर बने हुए सज्ञा शब्दों के ये सब कारक रूप हैं। कर्म, सम्प्रदान, अपादान सम्बन्ध या अधिकरण किसी न किसी कारक रूप में क्रियार्थी सज्ञाओं का व्यवहार होता है। मैकडनल के अनुसार ऐसे क्रियार्थी सज्ञा रूप ऋग्वेद में लगभग ७०० बार आये हैं। इससे विदित होगा कि ऋग्वेद की रचना के समय क्रियार्थी सज्ञा रूपों का व्यवहार कितना व्यापक था। यह प्रवृत्ति मध्यदेशीय *विन्यास तन्त्र से भिन्न है जहाँ क्रिया की प्रधानता है।* विशुद्ध क्रियाएँ अपने साथ पुरुष सकेत लिए रहती है, कृदन्तवादी पद्धति में क्रिया—सज्ञा रूप में—पुरुष सूचना से मुक्त है। कृदन्तों का व्यवहार उस पद्धति के अनुकूल है जिसमें वाक्य के पूर्व भाग में उद्देश्य होता है और उत्तर भाग में विधेय। ऋग्वेद में कर्म की अपेक्षा सम्प्रदान कारक वाले क्रियार्थी सज्ञा रूप अधिक हैं। आगे चलकर इस रूप का व्यवहार कम होता जाता है और कर्मकारक वाले रूप का चलन अधिक होता है। उत्तर भारत की आय भाषाओं में सम्प्रदान का काय अधिकतर कर्म की विभक्ति करती है, इस प्रवृत्ति की शुरुआत

उत्तर वैदिक काल में हो जाती है।

उकारान्त रूपों में भविष्यकालीन कृदन्त कत्व (कर्तु + अ), वक्त्व (वक्तु + अ) का उल्लेख यहाँ कर देना चाहिए। इन रूपों की रचना उसी करण कारक की अ विभक्ति से हुई है। कत्व वह जो निर्मित किया जाएगा, वक्त्व वह जो कहा जाएगा। भविष्य का भाव इस रूप पर आरोपित है, एक ही सदर्भ में निरन्तर प्रयुक्त होने से इस सज्ञा रूप ने वैसा भाव अर्जित किया है। य जितने त वाले रूप है, उनके बारे में इस बात की जाच-पड़ताल के लिए निरन्तर सचेत रहना चाहिए कि ये ध् वाले रूपों का विकास तो नही है। एक क्रिया है जक्ष् (हड़पना, भक्षण करना)। पीत्वा, गत्वा के समान इसका पूर्वकालिक रूप बनता है जग्ध्वा। इसी तरह ब ध् (बाधना) से बद्ध्वा रूप बनता है। रुह् (ऊपर चढ़ना) से रूढ्वा रूप बनता है। जैसे गत्वा के समानान्तर गत्वी है, वैसे ही गुह् (छिपाना) से गूढ्वी रूप बनता है। सभव है, गत्वा, पीत्वा आदि में पहले ध्वा चिह्न रहा हो सज्ञा रूप गधु, पीधु से गतु, पीतु रूपों का विकास हुआ हो। क्रियार्थी सज्ञाओं में कुछ रूप ऐसे है जिनमें स्पष्टत ध विद्यमान है, उसे किसी अन्य ध्वनि का रूपान्तरण नही कहा जा सकता। सम्प्रदानकारक में प्रयुक्त होने वाली क्रियार्थी सज्ञा का एक रूप गमध्य (जाना), चरध्य (चलना) जैसा होता है। मैक्डनल के अनुसार ऐसे रूप अधिकतर ऋग्वेद में है। इसका अर्थ यह है कि ऋग्वेद की रचना के समय ध वाले कुछ मूल रूप बचे हुए थे, अन्यत्र अल्पप्राण अघोष त का ही साम्राज्य है। विभिन्न लकारों में क्रिया के साथ सयुक्त होने वाले अन्य और मध्यम पुरुष सर्वनामों के बारे में पहले जो कुछ कहा गया है उसकी यहाँ पुष्टि होती है। यदि गमध्य से गन्तव जैसे रूप की तुलना की जाय तो दोनों की रचना विधि समान है, यह विदित होगा। दोनों ही क्रियार्थी सज्ञारूप है और सम्प्रदान कारक में हैं। ध् के साथ अन्तस्थ य है जिसका व्यवहार मध्यदेश में अधिक होता है और त वाले रूप में अन्तस्थ व् है जिसका व्यवहार उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में अधिक होता है। इसी उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में अल्पप्राणता का जोर अधिक है। गन्तवै की तुलना में गमध्यै रूप प्राचीन है।

उकारान्त रूपों के साथ इकारान्त सज्ञा रूपों का भी चलन था। सद (बैठना) से सज्ञा रूप निषदि बना, उसमें करण कारक की विभक्ति आ अथवा अ लगाने पर निषद्या, निषद्य रूप बने। इसी प्रकार नमस्कृति में अ लगाने पर नमस्कृत्य जैसा रूप बना।

पूर्वकालिक क्रिया का एक रूप कर्मकारक में होता है। मैक्डनल ने उदाहरण दिया है महानागम अभिससारम (महानाग के चारों ओर साथ दौड़ते हुए)। ऐसे प्रयोगों के बारे में मैक्डनल ने लिखा है कि संहिताकाल में ऐसे सज्ञारूप पूर्वकालिक क्रिया का भाव व्यक्त न करते थे किन्तु आगे चलकर ब्राह्मणों और सूत्र ग्रन्थों में उनसे बहुधा वैसा भाव व्यक्त किया जाने लगा। इससे विदित होता है कि क्रिया के स्थान पर सज्ञा रूपों का व्यवहार करने की प्रवृत्ति निरतर बढ़ रही थी।

भुजे (भोग करना), भुवे (होना) दृशे (देखना) क्रियार्थी सज्ञा रूप है

सम्प्रदान कारक म है। **दृशये, पीतये, पातवे** (पीना), **पातवइ,** ये रूप भी उसी कारक मे है। **इत्य** (जाना), **इयद्य** (जाना) की तरह **सह** (विजय प्राप्त करना) से **साढ्य** रूप बनता है। **मन् मान्** जैसे चिह्न जोडकर शुद्ध सज्ञा शब्द बनते है। **दा** क्रिया से **वामन** रूप बना और फिर सम्प्रदान कारक म **दामिने** क्रियार्थी सज्ञा रूप रचा गया। इसके ग्रीक प्रतिरूप **दोमेनइ** (देना) म सम्प्रदान कारक की विभक्ति **अइ** विद्यमान है और वह **अय** का वकल्पिक रूप है।

क्रियार्थी सज्ञाओ म कमकारक (या नपुसक लिंग के कर्ताकारक) रूपो का चलन काफी है। **समिधम** अर्थात जलाना, **शुभम** (अर्थात चमकना)। **दातु कर्तु** जसे उकारात रूपा स **दातुम्** (देना) **कतुम्** (करना) जसे क्रियार्थी सज्ञा रूप बने। **कर्तो** (करना), **दातो** (देना) सम्बन्धकारक मे है। क्रियार्थी सज्ञा रूपा की इतनी माग है कि किसी भी कारक का सज्ञा रूप क्रिया-भाव की पूर्ति करता है।

सस्कृत मे ऐसे कृदन्त रूपो का बहुत चलन है जिनमे क्रिया भाव की प्रधानता है। इनम अनक का निर्माण **अत अन्त** जैसे प्रत्यय लगाकर होता है जसे भू क्रिया स **भवन्त**। यहा वतमानकाल की व्यजना है। इसके साथ **भविष्यन्त** रूप है जिसमे भविष्य काल की व्यजना है। **पात्** (पीने वाली **पा** क्रिया से) अतीत काल की व्यजना करता है। क्रियार्थी सज्ञा रूपा से काल व्यजना नही होती, किन्तु विशेषण की भूमिका वाल कृदन्ता स काल व्यजना होती है। एस क्रियार्थी विशेषको की समद्धि हिन्दी मे नही है, तमिल मे है। इसका कारण यह है कि जिस मूल भाषा से तमिल का विकास हुआ है, वह सस्कृत क्षेत्र के पडास मे बोली जाती थी और दोना म एक ही प्रवत्ति काम कर रही थी। काल सूचक विशेषण भाव वाले कृन्तो के सदभ मे तमिल सस्कृत के बहुत समीप है, हिन्दी तिन्त प्रधान प्राचीन मध्यदशीय भाषा की प्रवत्ति व्यजित करती है। काल भेद सूचित करन के लिए हिन्दी मे साधारणत पूण क्रिया का व्यवहार करना होगा, विशेषक स काम न चलेगा। इसी तरह पूवकालिक क्रिया के लिए हिंदी मे कारक रूपो का व्यवहार नही होता। **पढकर, लिखकर** जसे पूवकालिक रूपा म **कर** विशुद्ध क्रिया है कारक बधन मे मुक्त। **करना, जाना** सना रूप हैं यथा **उसका जाना न होगा,** साथ ही व आनाभाव व्यक्त करनेवाले क्रिया रूप है, **तुम जाना, तुम यह काम करना**। इस तरह के आज्ञा रूपा म भविष्य काल का बाध भी है। सस्कृत के क्रियार्थी सना रूपा स काल बोध नही होता। **करना जाना** आदि रूपा म भविष्यकालीन भाव, सस्कृत मे भिन्न हिन्दी की अर्जित सम्पत्ति है।

कृदन्त रूप बनान म तमिल तथा आय भाषाओ म एक समानता यह है कि सस्कृत जैसे भूतकालिक कृदन्ता म **त** प्रत्यय का उपयोग करती है, वैस ही तमिल क्रिया के भूतकालीन रूपा म इसी **त** या **द** प्रत्यय से काम लती है। जैसे तमिल क्रिया **पार** मान दखना। इसका अन्य पुरुष म भूतकालीन एकवचन रूप हुआ **पार्त्तान**। चेय (करना) क्रिया का ऐसा ही रूप **चॅय्दान्**। यहाँ जो प्रक्रिया घटित हुई है, वह यह है कि मूल क्रिया के बाद **त** प्रत्यय लगाकर पुरुष सूचक सवनाम चिह्न जाडा गया है। जब पूण

किया के बदले केवल कृदन्त का व्यवहार करना होता तो सर्वनाम चिह्न को अलग रखना होता, कॅट्ट (किया) काफी होगा। [illegible] तमिल और संस्कृत के कृदन्त प्रत्यय त का [illegible] आश्चर्यजनक समानता है या अन्य लक्षणों के समान इससे भी दो समुदायों के सम्पर्कों का सम्बन्ध प्रमाणित होता है। आश्चर्य की बात यह है कि हिन्दी में इस के स्थान पर [illegible] का चलन हो गया किन्तु तमिल में त बना रहा।

अवधी तथा पूर्वी क्षेत्र की अन्य भाषाएँ कृदन्त रूपों को विशेष क्रियाओं के समान, पुरुषसूचक चिह्नों के साथ मिलाकर कैसे काम में लाती हैं, इस बात पर ध्यान देने से त के समानान्तर दो अन्य कृदन्त प्रत्ययों का ज्ञान होता। ये प्रत्यय हैं ह और न्ह। तुलसी ने कीन्ह कीन्हेसि रूपों का प्रयोग किया है। इनमें करने का अर्थ देने वाली की क्रिया है। कीन्हेसि के साथ किहिसि रूप भी होता है। इसी प्रकार दिहिसि (दिया), लिहिसि (लिया) रूप हैं। अवधी में लिहे जैसे कृदन्त रूप प्रचलित हैं। लिहे आव है लीन्हे जात है अर्थात् लिये जाता है। परिनिष्ठित हिन्दी का लिये इसी लिहे का रूपान्तर है। जैसे गच्छति से गच्छहि रूप सिद्ध नहीं होता, वैसे ही लिहे, दिहे किहे आदि रूप त प्रत्यय जोड़कर बनाये गए शब्दों से सिद्ध नहीं होते। कीन्हे दीन्हे, लीन्हे भी न तो त प्रत्यय वाले शब्दों से और न न्त प्रत्यय वाले शब्दों से सिद्ध होते हैं। इनके लिए त, न्त के पूर्व रूपों ध और न्ध की कल्पना करनी होगी। एक ओर संस्कृत और तमिल के त वाले रूप और दूसरी ओर अवधी के ह और मानक हिन्दी के य वाले रूप ये सब एक ही मूल प्रत्यय ध वाले रूपों से विकसित हुए हैं। रूप-रचना के विभिन्न क्षेत्रों में ध की जो भूमिका है उससे यही विदित होता है कि ध प्रत्यय मध्यदेशीय है और त उसका उत्तर पश्चिमी रूपान्तरण।

आधुनिक अवधी में पुराने कीन्ह रूप में ह् का लोप हो गया है और केवल न् रह गया है। हमार कीन न होई अर्थात हमारे किए न होगा। अघोष रूपों में इसी प्रकार महाप्राणता का लोप हुआ है। विचारणीय है कि संस्कृत में पीन रूप क्रिया में सीधे न प्रत्यय जोड़कर बना है या पि (फूलना, स्थूल होना) में न्ध जोड़कर पिन्ध उससे पिन्ह और फिर पीन रूप बना है। यदि अवधी के कीन (किया), दीन (दिया) आदि से उक्त कोटि के संस्कृत रूपों की कोई समानता है तो इनका सामान्य स्रोत होगा चाहिए यह न्ध प्रत्यय।

तमिल में एक कृदन्त प्रत्यय प या ब है। इसका व्यवहार भविष्यकाल के लिए होता है। पार्प्पान (उसने देखा), चॅय्वान (वह करेगा)। मूल प्रत्यय प है जो कुछ क्रियाओं के साथ व रूप धारण करता है। जहाँ दो प् व्यंजन साथ होंगे, वहाँ उनका अघोष उच्चारण होगा। जहाँ अकेला प् होगा, वहाँ उसका उच्चारण सघोष होगा। जैसे उण् (भोजन करना), इसका भविष्यकाल हुआ उणबान (वह खायेगा)। प या ब, इस भविष्य-सूचक कृदन्त प्रत्यय को देखकर पूर्वी क्षेत्र की आर्यभाषाओं के भविष्य सूचक ब प्रत्यय की याद आती है। या तो आर्य और द्रविड भाषाओं में यह समानता आकस्मिक है या उसका सामान्य स्रोत है। करब, जाब जैसे रूपों में ब का उद्गम [illegible] का

प्रत्यय माना गया है। जो **कतव्य** है वह अवधी मे **करब** हो गया है। यदि करब के ब का उदभव **तव्य** से हो सकता है, तो तमिल के भविष्य-सूचक **प** का उद्भव इसी तव्य से क्या न माना जाय ? किन्तु अवधी मे ब भविष्य सूचक प्रत्यय ही नही है, वह क्रियार्थी सज्ञा बनाने का साधन भी है। **करबु, जाबु** क्रियार्थी सज्ञा रूप है। जसे **करना, जाना** क्रियार्थी सज्ञा हैं और इनका व्यवहार भविष्यकाल की सूचना के लिए भी हो सकता है, वैसे ही **जाब, करब** भविष्यकालीन रूप है मज्ञा सूचक **उ** जोड देने पर **जाबु, करबु** रूप म वे क्रियार्थी सज्ञा का काम करत है। यदि तमिल और आयभाषाओ के **प, ब** मूलत एक है तो मूल प्रत्यय **तव्य** नही, भ होगा। सस्कृत म इस भ प्रत्यय का व्यवहार घ की अपेक्षा कम हुआ है फिर भी कुछ शब्दो म उसे पहचाना जा सकता है। **प्रगल्भ** उसे कहत है जो बहुत बोलता है। इस शब्द मे **प्र** उपसग के बाद **गल्** क्रिया है जो गद का रूपान्तर है। (इसी गद से गद्य शब्द बना है। जो बोला जाये वह गद्य।) **गल्भ** के समानान्तर सुपरिचित **गल्प** शब्द है। जो कहा जाय वह **गल्प**। जहा **ग्** का तालव्यीकरण हुआ, वहा **जल्प** सज्ञा रूप बना जो क्रिया की तरह प्रयुक्त होने लगा। **प्रगल्भ** और **गल्प** *के बीच की कडी ब वाली है जो पूर्वी आयभाषाओ मे विद्यमान है।*

तमिल म एक प्रत्यय **क** या **ग** भी है। इसका व्यवहार वतमान काल के रूपो म होता है। **पार्विकरान** (वह देखता है), **चॅयगिरान** (वह करता है), इन रूपो म पुरुष सूचक प्रत्यय लगा है। पुरुष सूचक चिह्न लगाए बिना भी कृदन्त रूपो का व्यवहार होता है यथा **पाक्क** (देखना) क्रियार्थी सज्ञा रूप है। इसी प्रकार **पोग**(जाना), **चाग**(मरना) **वेग** (जलना जलाना) क्रियार्थी सज्ञा रूप है। तमिल म **क** या **ग** कृदन्त प्रत्यय है इसमे तो कोई सन्देह नही। प्रश्न यह है कि परिनिष्ठित हिन्दी के **जायगा, करेगा** का **गा** कृदन्त प्रत्यय है या नही। जो लोग आधुनिक आयभाषाओ का हर रूप सस्कृत स सिद्ध करते हैं उन्होन इस **गा** का आदि रूप **गत** ढूढ लिया है तो कोई आश्चय नही। **गा** और **गत** मे **ग** वण सामान्य है इसलिए **गा** स **गत** को जोड देना कठिन काय नही है। थोडा सा अथ भेद है। **गत** भूतकालीन रूप है और **जायगा** भविष्यकालीन। **गत** से **गया** रूप बना, तब केवल **त** का स्पश तत्व तिरोहित हुआ, जब **गत** स **गा** बना, तब अन्तस्थ य भी तटस्थ हो गया। वह **गया** कहने स पूरा वाक्य बनता है पूण क्रिया का बोध होता है किन्तु **वह गा** कहा म जान की क्रिया का बोध नही होता न भविष्यकाल मे जाने का, न भूत और वतमान में जान का। ऐसी शकाए आचाय किशोरीदास वाजपेयी किया करत हैं, विश्वविद्यालयो के प्राध्यापको ने बडे परिश्रम म आयभाषाओ के विकास की जो सीढिया बनाइ है उन्ह व उलट पुलट देत है। जस **गत** का **त** कृदन्त प्रत्यय है, जस **करब** का **ब** कृदन्त प्रत्यय है वैसे ही **जाऊँगा** का **गा** कृदन्त प्रत्यय है। हिन्दी शब्दानुशासन में आचाय वाजपेयी कहत हैं आज यह 'ग एक कृदन्त प्रत्यय ही है—भविष्यत प्रकट करने के लिए, वस्तुत भविष्यत—क्रिया की निष्पत्ति में निश्चिन्ति प्रकट करने के लिए 'गत मूतकाल की क्रिया म भविष्यत के 'ग प्रत्यय का क्या मेल ?" (पृष्ठ ४२६ ६३०)।

रुकना ठहरना है। इसी का वैकल्पिक रूप कन्नड में **तग, तगॅ है,** तमिल म **तगइ है,** अथ है रोकना। **स्तभ** रूप के समानान्तर यहा **स्तघ** रूप का चलन था, **स्तभ** के समानातर **स्तध** का चलन था। **तग और तगु स्तघ** और **स्तघ** के रूपान्तर हैं। **पोग** का पूवरूप **पोघ** ही रहा हो यह अनिवाय नही है किन्तु सघोष महाप्राण ध्वनियो वाले प्रत्यया की जैसी भूमिका प्राचीन आयभाषाओ में रही है, उसे देखते हुए इसकी सभावना काफी है।

भविष्य सूचक कृदत रूपा म **ग** और **ब** दो मुख्य प्रत्यय दिखाई देते है। जिन क्षेत्रो मे इनका व्यवहार होता है वे प्राचीन आयभाषाओ के भिन्न समुदाया की ओर सकेत करते है। **ग** का व्यवहार क्षेत्र कोसल के उत्तर पश्चिम म है। पजाबी, बागरू, ब्रज, बुदेलखडी तक इसका प्रसार है। कनौजी म इसका प्रवेश नही हो पाया। अवधी और उसकी छत्तीसगढ़ी, बघेली बैसवाडी आदि शाखाओ से लेकर मगही और मैथिली तक कही इसका व्यवहार नही होता। प्राचीन काल मे **घ, ध भ** के जिन तीन विकास क्षेत्रो की यहा कल्पना की गई है वह **ग** (मूलत **घ**) प्रत्यय के व्यवहार क्षेत्र से पुष्ट होती है। उधर **ब** वाले कृदत का व्यवहार क्षेत्र देखें तो वह पजाबी, बांगरू और परिनिष्ठित हिन्दी म अप्राप्य है। ब्रजभाषा के कुछ रूपो मे उसके दशन होते है। अवधी के बसवाडी रूप म क्रियार्थी सज्ञा के अलावा भविष्य काल की सूचना के लिए उसका प्रयोग केवल उत्तम पुरुष के बहुवचन रूप मे होता है, **हम जाव हम पढब,** किन्तु **मैं जइहौं, मैं पढिहौं। ब** वाले रूपो का ऐसा ही सीमित व्यवहार छत्तीस गढी मे होता है किन्तु बघेली म उसका बिल्कुल व्यवहार नही होता। ध्वनितत्र और रूपतत्र दोना की दृष्टि स अवधी के पुराने रूप बघेली म अधिक सुरक्षित है। भविष्य काल म उत्तम, मध्यम या अन्य किसी भी पुरुष के लिए **ब** वाले रूप का प्रयोग उसमें नही होता। इससे अनुमान होता है कि कोसल की पुरानी भाषा मे **ब** वाले कृदत प्रत्यय का व्यवहार न होता था। अवधी के प्रभाव स ब्रज, बुदेलखडी आदि मे इसका आशिक चलन है, पहले वहा इसका चलन न था। अवधी की अपेक्षा भोजपुरी म इसका व्यवहार अधिक होता है उत्तम और मध्यम दोनो पुरुषा के लिए भविष्य सूचक क्रिया रूपा म इसका चलन है। अन्य पुरुष म इसका प्रवेश नही हुआ। ऐसा बहुधा देखने म आया है कि अन्य पुरुष वाले क्रिया रूप ही भाषा की प्राचीन प्रवत्ति सर्वाधिक दरसाते है। भोजपुरी म अन्य पुरुष के अलावा उत्तम मध्यम पुरुषो मे जहा **ब** वाले कृदत रूपो का व्यवहार होता है वहा दूसरे रूपा का भी चलन है जिनमे इस **ब** का अभाव है। मेरी समझ मे ये दूसरे रूप अधिक प्राचीन है किन्तु यदि उन्हे अधिक प्राचीन न माना जाय तो भी यह स्पष्ट है कि भोजपुरी के क्रिया रूपा म **ब** वाले कृदत रूपा का एकच्छत्र आधिपत्य नही है। यही स्थिति मगही और मथिली की है। इसस भिन्न स्थिति बँगला, असमिया और उडिया की है। क्रियार्थी सज्ञा के अलावा भविष्य काल के लिए तीना पुरुषा म इस **ब** वाले रूपा का व्यवहार होता है। ब्रज से अवध होते हुए जस जैसे पूरब को बढ़ते हैं, वैसे वैसे **ब** वाले कृदत अधिक प्रयोग में आते दिखाई देते है। आश्चय की बात है कि **तव्य** प्रत्यय का उपयोग पजाबी और

निश्चित स्थिति का बोध कराया जाता था। सवनाम मूला में वस्तु व्यक्ति देश-काल वाचक प्रत्यय जोड कर सम्ब धक शब्द बनाये गये। ऐसे शब्द स्वतन्त्र थे और कारक रचना मे मूल नाम शब्द के पीछे आते थे। लिंग वचन-भेद से इनका कोई सब ध न था। यही स्वतन्त्र सब धक शब्दऔरउनके अवशिष्ट चिह्न सस्कृत की विभक्तिया बने। सब धको के अलावा सवनामों अथवा सवनाम चिह्नो से भी विभक्तिया का काम लिया गया। इसके साथ दूसरी पद्धति भी सक्रिय थी। यह पद्धति मूल शब्द के बाद निर्देशक सवनाम न जोडती थी, वह उक्ति के पूरे सदभ से कारक रूप पहचानती थी शब्द के साथ कारक चिह्न न जोडती थी। यह दूसरी पद्धति निर तर शक्तिशाली होती गई। इसलिए आधुनिक आयभाषाए सस्कृत की अपेक्षा कारक रचना में विभक्तियो के ब धन से अधिक मुक्त हैं। कि तु सस्कृत कभी भी पूणत विभक्तिया से बँधी हुई नही थी, अत वह कभी भी पूणत सश्लिष्ट भाषा नही थी। इसी प्रकार आधुनिक आयभाषाए पूणत विभक्तियो के ब धन से मुक्त नही हैं, अत वे पूणत विश्लिष्ट नही हैं।

क्रियापद रचना में पुरुषभेद सूचित करने के लिए सवनाम चिह्न जोडे जाते थे। यह मध्यदेशीय भाषा समुदाय की पुरानी पद्धति थी। क्रिया रूप न कालभेद सूचित करते थे, न लिंग भेद, वे मुख्यत क्रिया की अवस्था सूचित करते थे। कृद ता के प्रसार का केंद्र कौरवी भाषा समुदाय का क्षेत्र था। जब भूत और अभूत का मुख्य काल भेद स्थापित हुआ, तब क्रिया रूप वतमान, भविष्य आदि अनेक प्रकार के काल भेद सूचित करने लगे। कृद त रूप पुरुष भेद से मुक्त थे, वे लिंग वचन-काल भेद सूचित करते थे। भूतकाल की सूचना के लिए कृद ता का व्यवहार अधिक हुआ क्योंकि तिङन्त रूप भूत अभूत का भेद प्रकट न करते थे। पुराने तिङ त रूपो का उपयोग भूत से इतर काला की व्यजना के लिए अधिक किया जाने लगा। कारक रचना की तरह क्रियापद रचना म भी सवनाम चिह्नो स मुक्त, पुरुषभेदज्ञापन की अनिवायता स स्वतन्त्र, क्रियारूप प्राचीन काल से यहा व्यवहार में आते रहे है। आधुनिक आयभाषाओ में न तो सवत्र कृद तो का व्यवहार है, न सवत्र तिङ तो का। उत्तर पश्चिमी क्षेत्र मे तिङ ता का कृद तीकरण हुआ है और मध्यदशीय तथा पूर्वी क्षेत्र में कृद ता का तिङन्तीकरण। इसके साथ इन आयभाषाओ न क्रियापद रचना में नयी अभि यजना क्षमता का विकास भी किया है।

यह सारी विकास प्रक्रिया मूलत प्राचीन आयभाषाओ की अपनी विकास प्रक्रिया है, वसी प्रक्रिया इडोयूरोपियन परिवार की आधुनिक अभारतीय भाषाओ म भी घटित हुई है। यह प्रक्रिया अपभ्रश के आधार पर विवेचित नही हो सकती, न आधुनिक आय भाषाओ के मानकरूपो पर ध्यान केंद्रित कर देने स उसका विवेचन सभव है। जनपदीय भाषाओ म उक्त ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया के अनक तत्व सुरक्षित हैं। रूपतत्र के विवेचन में इनका उल्लेख जहा-तहा हो चुका है। यहा कुछ जनपदीय भाषाओ पर अलग से विचार करना लाभदायी होगा।

४
आर्य भाषा केन्द्र और हिन्दी जनपद

१ मगध
(क) मगही और मागधी भाषा समुदाय

हिंदी प्रदेश की जनपदीय भाषाओं पर अलग से विचार करने पर प्राचीन भाषा परिवारों के बारे में कुछ नवीन सामग्री प्राप्त हो सकती है तथा इनके और हिंदी के विकास के बारे में कुछ नयी बातें मालूम हो सकती है। ये जनपदीय भाषाएँ शताब्दियों से एक दूसरे को प्रभावित करती रही हैं। जिस रूप में वे आज हैं उसी रूप में वे सदा से नही रही है। प्राचीन गण भाषाओं से इनका सम्बन्ध रहा है। ये गण भाषाएँ सकडो वर्ष तक एक दूसरे को प्रभावित करती रही हैं परिवर्तित और विकसित होती रही है, अन्य भाषा-परिवारों से तत्व लेती रही हैं उन्हें देती रही हैं। इस प्रकार भाषाओं के विकास की प्रक्रिया बहुत पेचीदा है और यह प्रक्रिया तब और भी उलझन में डालने वाली हो जाती है जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि कोई भी जनपदीय भाषा अनेक बोलियों का समूह है, और इन बोलियों में शब्द भण्डार की ही नहीं, व्याकरण और ध्वनि-तन्त्र की भी काफी विभिन्नता है। जब हम प्राचीन गण-भाषाओं की बात करते हैं तब हम यह न भूलना चाहिए कि ये गण भाषाएँ भी बोलियों का समूह थी भले ही तब बोलियों की वैसी विविधता न रही हो जैसी आज है। तब गण-समाज बाद के जनपदीय समाजों की अपेक्षा छोटे होते थे। फिर भी भारत के पूर्वी अंचल में जहाँ नाग भाषाएँ बोली जाती हैं, वहा एक गाँव से दूसरे गाव में बोली की जो भिन्नता आज भी दिखाई देती है उसे ध्यान में रखना चाहिए। कभी-कभी एक गण समाज अपनी भाषा के अलावा किसी दूसरे प्रमुख गण समाज की भाषा सीख लेता है, उसके तत्व अपनी भाषा में मिलाता है या अपनी भाषा छोडकर वह दूसरी गण भाषा ही स्वीकार कर लेता है। ऐसी स्थिति भारत के गण-समाजों या आर्थिक दृष्टि से पिछडी हुई जातियों में आज भी दिखाई देती है। ऐसी बातें पुराने समय में भी हुई थी, इसके अनेक संकेत मिलते है। इतना सब होने पर भी प्राचीन गण-समाजों की भाषाओं की कुछ विशेषताएँ पहचानी जा सकती हैं। आधुनिक जनपदीय भाषाओं में उन प्राचीन भाषाओं का सम्बन्ध जोडा जा सकता है। स्थिति की पेचीदगी के बारे में जो कुछ कहा गया है उसका आशय केवल इतना है कि

तथ्यों और निष्कर्षों को निरपेक्ष रूप में सत्य न माना जाय, वे सापेक्ष रूप में ही सही हो सकते हैं जहाँ किसी एक भाषा का उल्लेख है वहाँ भाषाओं या बोलियों का समुदाय है—और यह समुदाय स्थिर और जड़ नहीं है प्रवहमान और परिवर्तनशील है—ऐसा समझना चाहिए।

सबसे पहले मगही के बारे में विचार करेंगे।

प्राचीन मगध भारत का एक शक्तिशाली गण राज्य था यह पौराणिक परम्परा का विख्यात तथ्य है। अशोक और उनके बाद मगध का जो अभ्युदय हुआ, वह आकस्मिक नहीं था उसके पहले एक सुदीर्घ ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया पूरी हो चुकी थी। वैदिक संस्कृति का केन्द्र उत्तर पश्चिमी भारत में था और भारतीय समाज के विकास में इस संस्कृति के वाहकों का अत्यन्त योगदान था। संस्कृत भाषा मूलत इसी संस्कृति का माध्यम थी। इस कारण मगध की प्राचीन गण भाषा के अलग से न तो कोई अभिलेख प्राप्त है और न उसका संस्कृत के समानान्तर स्वतन्त्र भाषा के रूप में अलग से उल्लेख है। इससे यह न समझना चाहिए कि उसका अस्तित्व ही न था। जिसे मागधी प्राकृत कहते हैं, वह प्राचीन गण भाषा की कुछ विशेषताओं की झलक भर दिखाती है, अशोक के शिलालेखों में भाषा के जो रूप मिलते हैं, वे भी प्राचीन गण भाषा के रूप नहीं हैं। अन्य प्राकृतों के समान मागधी प्राकृत भी संस्कृत का रूपान्तर है और यह रूपान्तर सबसे अधिक ध्वनित त को लेकर है। सौभाग्य से मगही ऐसी भाषा है जिसने अनेक गण-भाषाओं के विविध तत्व अपने भीतर समेट लिए हैं अपनी क्षेत्रीय विशेषता की रक्षा करते हुए वह अनेक अन्य गण भाषाओं के तत्वों का समन्वय प्रस्तुत करती है और इन तत्वों को पहचाना जा सकता है। इस कार्य में हिन्दी प्रदेश की जनपदीय भाषाओं की वर्तमान स्थिति से सहायता मिलती है।

बनारस से लेकर असम तक ह्रस्व अ का उच्चारण वृत्ताकार होता है। जितना ही पूर्व की ओर चलते हैं उतना ही यह प्रवृत्ति और स्पष्ट होती जाती है। बहुत से लोग समझते हैं कि इस समूचे पूर्वी प्रदेश में पहले ह्रस्व अ का वैसा ही उच्चारण होता था जैसा संस्कृत पद्धति में शुद्ध माना जाता है। किसी ने इस बात की व्याख्या नहीं की कि इतने विशाल प्रदेश में वह शुद्ध उच्चारण अचानक गायब क्यों हो गया और उसकी जगह वृत्ताकार उच्चारण का चलन क्यों हो गया। किसी भी भाषा समुदाय के ध्वनि-तन्त्र में ऐसे परिवर्तन अकारण अकस्मात नहीं होते। मेरा कहना है कि इस प्रदेश की भाषाओं में कभी ह्रस्व अ का उच्चारण संस्कृत-पद्धति से होता ही न था, यहाँ की गण भाषाओं में ह्रस्व ओकार अथवा औकार का ही प्राधान्य था। भारत की प्राचीन गण भाषाओं की विशेषताएँ भारत के बाहर भी मिलती हैं। यह वृत्ताकार उच्चारण ईरान में बोली जाने वाली आधुनिक फारसी में है। भारत में जो लोग फारसी लिखते पढ़ते आए हैं वे इस मामले में संस्कृत पद्धति का अनुसरण करते हैं, ईरान में फारसी बोलचाल की भाषा है, वहाँ अति प्राचीन काल से चली आती हुई वृत्ताकार उच्चारण-पद्धति अभी तक बनी हुई है। दक्षिणी स्लाव भाषाएँ फारसी की पड़ोसी हैं और उनमें भी उच्चारण की यह विशेषता विद्यमान

देखना चाहिए कि मागधी में एकार संस्कृत अकार का स्थान क्यों लेने लगा। यह एक कल्पित और कृत्रिम ध्वनि परिवर्तन नहीं है। बँगला के बहुत से शब्दों में यह एकारवादी प्रवृत्ति झलकती है। मगही, अवधी आदि भाषाओं में बहुत जगह इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। कभी कभी तो परिनिष्ठित हिंदी में अकार है किंतु पूर्वी बोलियों में एकार है यथा हिंदी वाक्य **डरता है** का अवधी रूप होगा **डेरात है**। एकार का यह व्यवहार पूर्वी भाषाओं पर पश्चिमी भाषाओं के प्रभाव के कारण है। मागधी प्राकृत के संदर्भ में उसका उल्लेख होने से यह भ्रम न होना चाहिए कि वह पूर्वी भाषाओं की मूल प्रवृत्ति का द्योतक है। प्राकृतों में कहाँ वास्तविक प्रादेशिक ध्वनि प्रवृत्तियाँ झलकती हैं, इसे परखने में एक सीमा तक आधुनिक भाषाओं से सहायता मिलती है। **छह** के तीन प्रकार के उच्चारण आज भी तीन क्षेत्रों में मिलते हैं। इनमें वृत्ताकार उच्चारण पूर्वी क्षेत्र की विशेषता है। प्राचीन गण-भाषाओं और उनके बाद जनपदीय भाषाओं ने एक दूसरे को इतना प्रभावित किया है कि एक क्षेत्र की मूल प्रवृत्ति अंशतः दूसरे में स्वीकृत हो गई है। संस्कृत में मगध की गण भाषा का प्रभाव संधि रूपों में स्वीकृत है। **राम** के बाद **अपि** आए तो विसर्ग आकार में बदल जाएगा और अकार का लोप हो जायगा। दोनों शब्दों की संधि होने पर **रामोपि** रूप बनेगा। इसी प्रकार **क** और **अपि** का संयोग होने पर **कोपि** रूप बनता है। यदि हिंदी **कोई** इसी **कोपि** का विकास है तो यह शब्द हिंदी की मागधी परम्परा की देन है। **रामोपि, कोपि** आदि रूपों के निर्माण में वही प्रक्रिया घटित होती है जो **बहुत** के **बोन** रूप धारण करने में घटित होती है। सघोष महाप्राण ह जब अघोष बनता है तब लिखित रूप में उसकी ध्वनि विसर्गों द्वारा व्यक्त की जाती है। **बोन** रूप में महाप्राणता और भी क्षीण हो जाती है, वह पूर्ववर्ती अकार को ओकार रूप देने के बाद तिरोहित हो जाती है, और अपने साथ ह वर्ण के अकार को भी ले जाती है। इसके समानांतर गुजराती के **बेन** रूप में मिलती-जुलती प्रक्रिया घटित होती है, यहाँ ह की महाप्राणता पूर्ववर्ती अकार को एकार में बदलती है। इससे विदित होता है कि संस्कृत में संधि के नियम वैयाकरणों की कल्पना नहीं हैं, वे गण भाषाओं की वास्तविक ध्वनि प्रवृत्तियों के आधार पर बने हैं।

संस्कृत में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनके एक रूप में स्वर ह्रस्व है और दूसरे में दीर्घ है यथा उषा और ऊषा। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि कुछ गण भाषाओं में स्वर की लघुता और गुरुता अर्थ-विच्छेदक नहीं थी। यदि वर्तमान पूर्वी आर्य भाषाओं के ध्वनितंत्र पर ध्यान दिया जाए तो विदित होगा कि वहाँ परिनिष्ठित हिंदी या संस्कृत शब्दों के उच्चारण में भी स्वर के ह्रस्व-दीर्घ भेद का बहुत ध्यान नहीं रखा जाता। मिथिला तक की पूर्वी भाषाओं पर कोसल तथा पश्चिमी जनपदों की भाषाओं का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। इस कारण ध्वनि-तंत्र की अनेक मूल विशेषताएँ बँगला आदि पूर्वी छोर की भाषाओं में सुरक्षित हैं। ह्रस्व दीर्घ स्वरों का भेद कोसल-कुरु जनपदों की देन है। वह अब बँगला आदि धुर पूर्वी भाषाओं को भी प्रभावित करता है। फिर भी सामान्य उच्चारण में ह्रस्व-दीर्घ का बहुत ध्यान नहीं रखा जाता। इसका

मगध और मध्यदेश की प्राचीन भाषाओं के भेद से मिलता जुलता है। भारत में मध्य देश के ध्वनितन्त्र ने पड़ोसी भाषाओं को अधिक प्रभावित किया है, यूरुप में दोनों समुदायों के बीच ध्वनितन्त्र वाला फासला ज्यादा बड़ा है। अँग्रेजी ने लैटिन और फ्रांसीसी, इनके बाद इतावली से भी काफी शब्द सम्पदा प्राप्त की है किन्तु वह उन शब्दों को अपनी ध्वनि प्रकृति के अनुरूप बलाघात के साँचे में ढालती रही है। एक सीमा तक हिन्दी तद्भवों के साथ भी ऐसी ही प्रक्रिया घटित होती है किन्तु यहाँ मुख्य भेद बलाघात को लेकर नहीं है। बलाघात के अतिरिक्त वैदिक भाषा में स्वरतान का महत्व भी था। यूरुप की भाषाओं में नार्वे, स्वीडन और लिथुआनिया की भाषाएँ स्वरतान द्वारा शब्द में एक से अधिक अर्थ उत्पन्न करती है। वैदिक भाषा में स्वरतान का व्यवहार अर्थविच्छेदक नहीं था। यह प्रवृत्ति पूर्वी आर्यभाषाओं में नहीं है। स्वरतान का अर्थविच्छेदक व्यवहार नागभाषाओं की विशेषता है। असमिया, बँगला आदि पूर्वी भाषाएं नाग भाषा क्षेत्रों से घिरी हुई हैं, वे क्षेत्र इन भाषाओं के प्रदेशों के भीतर भी है। किन्तु स्वरतानों का आंशिक व्यवहार पंजाबी में होता है, बँगला में नहीं। या तो पंजाबी और वैदिक भाषा में स्वरतानों का व्यवहार आर्यभाषाओं के पश्चिमी समुदाय की अपनी विशेषता है, या फिर यह मानना चाहिए कि नागभाषाओं ने बंगाल की अपेक्षा पंजाब को अधिक प्रभावित किया है। पूर्वी क्षेत्र में गारो जैसी नागभाषा में स्वरतान का अर्थविच्छेदक महत्व क्षीण हो गया है। इसका कारण पड़ोसी आर्यभाषाओं का प्रभाव है। पंजाबी और वैदिक भाषा में स्वरतानों के व्यवहार को लेकर भेद है, यह बात ध्यान में रखना चाहिए। पंजाबी में स्वरतान अंशतः अर्थविच्छेदक है, वैदिक भाषा में वह नहीं है। वैदिक भाषा में स्वरतानों का व्यवहार संगीत की एक पद्धति का परिणाम था। उधर नौर्वे स्वीडन आदि की भाषाओं में स्वरतानों का जो अर्थविच्छेदक व्यवहार होता है वह वैदिक भाषा की अपेक्षा पंजाबी के अधिक अनुरूप है। वैदिक भाषा मूलतः मध्यदेश की भाषा है इसलिए उसमें स्वरतान का महत्व क्षीण होना ही चाहिए।

पूर्वी भाषाओं की एक विशेषता ब् व्यंजन का व्यापक व्यवहार है। इस संबंध में भी बँगला भाषा प्राचीन मागधी प्रवृत्ति को बनाए हुए है। उसमें व् ध्वनि या तो ब में बदल जाएगी या फिर विघटित होकर ओ और य में बदल जाएगी। वन वन वीना जाग्गा हवा वा रूपान्तर हाओया होगा। प्रश्न यह है कि संस्कृत में व ध्वनि वाले कौन मूल शब्द है या नहीं। संस्कृत में ऐसे अनेक शब्द है जिनके ब् और व् दोनों ध्वनियों वाले दो रूप स्वीकृत है। यहाँ सम्भावना यह है कि ब वाला रूप मौलिक है। संस्कृत में ब ध्वनि शिष्ट उच्चारण का प्रतीक बन गई थी। इस कारण बहुत से ब मूलक शब्दों को व मूलक किया गया। वर्णविकार रूपों का चलन दो भिन्न ध्वनि प्रकृतियों के संगम का प्रमाण है। संस्कृत में ब ध्वनि वाले अनेक शब्द है प्राचीन ग्रीक में भी ब मूलक अनेक शब्द है। फिर भी एतिहासिक भाषाविज्ञानी ब ध्वनि को आदि इण्डोयूरोपियन भाषा के ध्वनितन्त्र में महत्वपूर्ण स्थान नहीं देते। देते हैं तो संकोच के साथ यह मानते हुए कि इसका व्यापक व्यवहार न होता था। इस ऊहापोह का कारण यह है कि ब

मूलतः मगध समुदाय की ध्वनि है और संस्कृत में उसका सीमित व्यवहार होता है। बल जैसे कुछ शब्द असंदिग्ध रूप से ब ध्वनि का मौलिक व्यवहार सिद्ध करते हैं। ब्रज, अवधी आदि में ब् और व दोनों ध्वनियों का व्यवहार होता है। जहाँ भी इन भाषाओं में ब हो और संस्कृत में व हो, वहाँ संस्कृत रूप मौलिक होगा ही ऐसा मानना आवश्यक नहीं है।

मागधी प्राकृत के लिए प्रसिद्ध है कि इसमें दन्त्य स के स्थान पर तालव्य श का व्यवहार होता था। मृच्छकटिक में शूद्रक ने इस प्रवृत्ति को अमर कर दिया है। मगही में, ब्रज और अवधी के समान अब दन्त्य स की प्रधानता है। इस कारण इस बात पर सन्देह न करना चाहिए कि मगध की प्राचीन जनपदीय भाषा में तालव्य श का ही व्यवहार होता था। पश्चिम में भोजपुरी और पूर्व में बँगला, दोनों के बीच में मगही का क्षेत्र है। ऐसे क्षेत्रीय क्षेत्र जब अन्य भाषाओं से प्रभावित होते हैं तब उनकी जनक प्रवृत्तियाँ प्रान्तीय प्रदेशों में सुरक्षित रहती हैं। इन विशेषताओं में एक ब ध्वनि का निर्बाध व्यवहार है, दूसरी तालव्य श का व्यवहार है। स और श की विभाजन रेखा कुछ सामी क्षेत्रों में रही है और जर्मन भाषा क्षेत्र में भी एक सीमा तक दिखाई देती है। इण्डोयूरोपियन परिवार में इस समय परिनिष्ठित बँगला ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो तीन सकारों में केवल तालव्य श का व्यवहार करती है। मगही पर जो मध्यदेशीय प्रभाव पड़ा है, उसका एक परिणाम इस भाषा में दन्त्य स की वर्तमान प्रधानता है। मध्यदेश दन्त्य स के उद्भव विकास और प्रसार का मुख्य केन्द्र रहा है।

संस्कृत में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनमें पहले दन्त्य स का व्यवहार होता था, अन्य प्रभाव से उसका तालव्यीकरण हुआ। यह प्रभाव किस भाषा-समुदाय का था? भारतीय जनपदों की भाषायी स्थिति पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि ऐसा केन्द्र जिसमें तालव्य श के प्रति एकान्त आग्रह हो, पूर्व में था। इस कारण यह मानना समीचीन है कि मध्यदेशीय दन्त्य स वाले शब्दों में तालव्य श की प्रतिष्ठा मागधी प्रभाव का परिणाम है। फारसी और संस्कृत दोनों में दन्त्य और तालव्य सकारों में विवेक शिष्ट उच्चारण का लक्षण माना जाता था। ऐसा विवेक मागध समाज में होता हो, यह आवश्यक नहीं। (उस समाज के प्रभाव से उत्तर पश्चिमी आर्य गण समाजों ने एक नयी ध्वनि—तालव्य श—प्राप्त की, उसे अपने ध्वनितंत्र में शामिल किया और दन्त्य स् से उसकी भिन्नता का उपयोग किया।) संस्कृत में बहुत से शब्द ऐसे हैं जिनमें श् के बाद व का प्रयोग होता है, अश्व, श्वान श्व इत्यादि। मागध वृत्ति ब् को प्रधानता देती है। ऐसे शब्द प्राचीन मागध गण भाषा के अपने शब्द नहीं है। (उनकी रचना उत्तर पश्चिमी गण समाजों ने मागध समाज से प्राप्त श ध्वनि के आधार पर की है।) कुछ शब्द ऐसे हैं जिनमें श ध्वनि शब्दमूल में विद्यमान है और व का संसर्ग नहीं है। सम्भव है ऐसे शब्द मूल मागध गणभाषा के अपने शब्द हों। इनमें शे, शो शा जैसी एक क्रिया थी जिसका अर्थ सोना था और जो मरने के लिए भी प्रयुक्त होती थी। किसी समय इस क्रिया का समस्त उत्तर भारत में व्यवहार होता था। शयन शय्या, शव इसी

क्रिया से व्युत्पन्न होते हैं। शव शब्द उत्तर पश्चिमी है किन्तु मूल क्रिया मागधी हो सकती है। द्रविड भाषाओं में मरने के लिए चा आदि जो शब्द प्रचलित हैं, उनका आधार यही क्रिया है। आधुनिक आर्यभाषाओं में बँगला के बाद शकार वाली प्रवृत्ति मराठी में अधिक है और वह मागध प्रभाव का परिणाम है।

यह सम्भव है कि र का विकास केन्द्र मध्यदेश रहा हो और ल का विकास मगध में हुआ हो। जो परम्परा श का मागधी प्राकृत की प्रधान ध्वनि मानती है, वह उसमें र के स्थान पर ल् के व्यवहार पर भी बल देती है। जैसे संस्कृत के अनेक शब्दों के स श वाले दो रूप हैं वैसे ही रभ् लभ, रघु लघु आदि र् ल् ध्वनियों वाले वैकल्पिक रूप हैं। जैसे मागध प्रभाव से तालव्य श का प्रसार हुआ वैसे ही अन्य गण भाषाओं के ध्वनितंत्र ने ल् ध्वनि को स्वीकार किया। ऐसे अनेक शब्द हैं जिनमें ल् ने र् का स्थान लिया है, रभ लभ, रघु लघु के वैकल्पिक रूप इस प्रकार बने थे। फिर भी कुछ शब्द ऐसे प्रतीत होते हैं जिनमें ल ही मूल ध्वनि थी। कुल, कला जैसे शब्द इनमें गिने जा सकते हैं। संस्कृत में जल, कलश जैसे शब्दों को जो सम्मानप्रद स्थान प्राप्त है उसका कारण मागध प्रभाव हो सकता है। बलि, बालि आदि शब्दों में जहाँ ल के निकट ब ध्वनि है वहाँ अधिक दृढ़ता से कहा जा सकता है कि ये पुराने मागधी शब्द हैं। इसी प्रकार जहाँ श और ल का संयोग है श्लथ जैसे शब्दों में, वहाँ मागधी शब्द-सम्पदा की कल्पना की जा सकती है। इस सम्पदा का एक देदीप्यमान रत्न है श्लोक।

आर्य गण भाषाओं के ध्वनितंत्र का विवेचन करते हुए इस पुस्तक में यह धारणा प्रस्तुत की गयी है कि घ ध, भ इन तीन ध्वनियों के विकास केन्द्र क्रमशः उत्तर पश्चिमी क्षेत्र मध्यदेश और पूर्वी प्रदेश थे। इस धारणा के अनुसार भ ध्वनि का विकास केन्द्र प्राचीन मगध और उसका पड़ोसी क्षेत्र रहा होगा। संस्कृत में प्रकाश सूचक अनेक शब्द भ ध्वनि वाले हैं। अस के समानान्तर अत्यन्त व्यवहृत होने वाली भू क्रिया में यही व्यंजन है। संस्कृत शब्दों की रूप रचना में भ्याम, भिस आदि भ मूलक प्रत्यय महत्वपूर्ण है। पारिवारिक शब्दावली में भ्राता शब्द इसी श्रेणी का है। वैदिक भाषा में ऐसे शब्दों का महत्त्व इतना स्पष्ट है कि लोग सहज ही आपत्ति कर सकते हैं कि आर्य लोग तो अभी पंजाब में थे, उन पर इतनी दूर से मगध की भाषा का प्रभाव कैसे पड़ गया? ऐसी आपत्ति करने वाले आसानी से मान लेते हैं कि आर्य लोग भारत में आने से पहले घ ध भ ध्वनियों का विकास कर चुके थे। किसी कारणवश इन ध्वनियों का व्यवहार सिंधु नदी के उस पार नहीं होता, न किसी प्राचीन भाषा में और न किसी आधुनिक भाषा में। इनका व्यवहार केवल भारत में होता है प्राचीन भाषाओं में होता था, आधुनिक भाषाओं में होता है। वैदिक भाषा और लौकिक संस्कृत में इन ध्वनियों के व्यवहार के प्रमाण हैं। ऐसी आपत्ति करने वालों के लिए आदि इण्डोयूरोपियन भाषा का कल्पित ध्वनितंत्र अनेक गण भाषाओं के संयोग से विकसित नहीं हुआ वरन् पूर्व विकसित इण्डोयूरोपियन भाषा के खण्डित होने से विभिन्न गण भाषाओं के ध्वनितंत्रों का निर्माण हुआ है। जो लोग इण्डोयूरोपियन भाषा की कल्पना

स्वीकार नही करते किन्तु वैसी ही कल्पना वदिक भाषा के बारे में करते है, व भी वैदिक भाषा की एक सुदीर्घ विकास परम्परा अस्वीकार करते है। उनके लिए वैदिक भाषा में श, ष, स् विभिन्न सकारो का जो समन्वय हुआ है उसका कोई महत्व नही है, मध्यदेश में केवल दन्त्य स का व्यवहार होता है और परिनिष्ठित बँगला में केवल तालव्य श् का, हरियाणा तक ण का क्षेत्र है और ब्रज से लेकर असम तक न् का, ऐसे तथ्यो का कोई ऐतिहासिक मूल्य नही है।

जिन ऋषियो ने वेद मन्त्रो की रचना की उन्होने उसी समय वैदिक भाषा की भी रचना न कर डाली थी। वह भाषा एक सुदीर्घ विकास परम्परा का परिणाम है। इस सम्बन्ध में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी का निम्नलिखित तर्क विचारणीय है "वेदो की भाषा का प्राकृत रूप क्या था, यह जानने के लिए निराधार कल्पना की जरूरत नही। वेदो की जो भाषा है, उससे मिलती जुलती ही वह 'प्राकृत-भाषा' होगी, जिसे हम 'भारतीय मूल भाषा' कह सकते है। उस मूल भाषा को 'पहली प्राकृत' भाषा समझिए। 'प्राकृत भाषा' का मतलब है 'जनभाषा'। जब वेदो की रचना हुई, उससे पहले ही भाषा का वैसा पूर्ण विकास हो चुका होगा। तभी तो वेद जैसे साहित्य को वह वहन कर सकी। भाषा के इस विकास में कितना समय लगा होगा! फिर, वेद जैसा उत्कृष्ट साहित्य तो देखिए! क्या उस मूल भाषा या पहली प्राकृत की पहली रचना ही वेद है? सम्भव नही! इससे पहले छोटा मोटा और हल्का भारी न जाने कितना साहित्य बना होगा, तब वेदो का नम्बर आया होगा सो, वेदो की रचना के समय तक वह मूल भाषा पूरी तरह विकसित हो चुकी होगी और देश-भेद से या प्रदेश-भेद से उसके रूप भेद भी हो गये होंगे। उन प्रादेशिक भेदो में से जो कुछ साहित्यिक रूप प्राप्त कर चुका होगा, उसी में वेदो की रचना हुई होगी, परन्तु अन्य प्रादेशिक रूपो के भी शब्द प्रयोग गृहीत हुए होगे। सभी साहित्यिक भाषाओ की यही स्थिति है। बङ्गाल भर में जो भाषा चलती है—'बँगला'—वह कितने क्षेत्रीय रूपो में विभक्त है? बङ्गाल भर के लोग बँगला में साहित्य रचना करते है, परन्तु वे अपने क्षेत्र की 'बोली' से प्रभावित होते है। यो विभिन्न बोलियो के कुछ शब्द प्रयोग साहित्यिक भाषा में आ जाते हैं यद्यपि उसका कलेवर किसी एक ही क्षेत्रीय बोली से बनता है।" (भारतीय भाषाविज्ञान, पृष्ठ ११३ ११४)।

यहा वाजपेयी जी ने उस भाषा के अस्तित्व पर बल दिया है जो वेदो की रचना से पहले विकसित होती आई थी। वेदो से पहले भी बहुत सा साहित्य रचा गया होगा जो नष्ट हो गया उन्होने यह तर्कसम्मत धारणा प्रस्तुत की है। वैदिक भाषा के साथ अनेक प्रादेशिक भेद थे, इन प्रादेशिक रूपो से अनेक प्रकार की शब्द सम्पदा वैदिक भाषा में स्वीकार की गई उन्होने यह निर्भ्रान्त मत प्रतिपादित किया है। भाषा और साहित्य, दोनो ही उनके लिए एक अत्यन्त दीर्घकालीन विकासपरम्परा का परिणाम हैं। वाजपेयीजी की यह मान्यता रूढिवादी स्थापनाओ के विपरीत है। यदि उस भाषा के विभिन्न स्तरो पर लागू किया जाए तो बहुत कुछ वैसी ही विश्लेषण पद्धति विकसित होगी जैसी

यहाँ प्रतिपादित की गई है। जो लोग वैदिक भाषा को एक सुदीर्घ विकास-परम्परा का परिणाम नहीं मानते, वे इण्डो-यूरोपियनवादियों के समान तर्क करते हैं कि एक आदि भाषा विकास पथ पार किए बिना ही, अपने पूर्ण रूप में उत्पन्न हो गई। विकास प्रक्रिया का एक अनिवार्य पक्ष है प्रादेशिक भाषाओं से अनेक तत्व ग्रहण करना। जिन विद्वानों के लिए वहाँ कोई विकास-प्रक्रिया नहीं है उनके लिए कल्पित आदि भाषा के साथ प्रान्तिक भेद भी नहीं है। किंतु यदि वैदिक भाषा सुदीर्घ विकास परम्परा का परिणाम है तो यह विकास क्रम शब्द भण्डार, वाक्यतंत्र और इनके साथ ध्वनितंत्र में भी परिलक्षित होगा। मागधी समुदाय की कुछ विशेषताएँ परम्परागत उल्लेखों से प्राप्त हैं, उनकी पुष्टि पूर्वी आर्यभाषाओं की वर्तमान स्थिति से होती है। मान लीजिए, वैदिक भाषा का विकास एक हजार साल में हुआ। तब क्या एक क्षेत्र का गणसमाज इतने समय तक उसी में बंद रहा और अन्य गणसमाजों से उसका सम्पर्क ही न हुआ? मगध गण पहले पूर्व में रहता रहा हो चाहे उत्तर पश्चिम में, उसकी भाषा से कुछ गणसमाज का सम्पर्क हुआ, इसमें असम्भव कुछ नहीं है। जो लोग यह मानते हैं कि भारत ईरानी शाखा से टूट कर संस्कृत का विकास हुआ, वे वहीं इस 'विकास' का तर्कसम्मत विवेचन प्रस्तुत नहीं करते।

(ख) मगही शब्दतंत्र

भारतीय आर्यभाषाओं में लिङ्गभेद का विकास विषम रूप में हुआ है। इस विकास का केन्द्र उत्तर पश्चिम के गणसमाज रहे हैं। इन केन्द्रों से बंगाल सबसे दूर है और लिङ्गभेद से सर्वाधिक मुक्त है। द्रविड़ भाषाओं में यही स्थिति केरल की है। भाषा की अन्य विशेषताओं के समान लिङ्गभेद का अभाव मगध क्षेत्र से हटकर अब बङ्गाल में केन्द्रित है। कोसल, ब्रज और कुरु जनपदों का प्रभाव मगध और मिथिला पर जितना पड़ा है उतना बङ्गाल, उड़ीसा या असम पर नहीं। मगध की प्राचीन गण भाषा अवश्य लिङ्गभेद से मुक्त रही होगी। जिसे लोग पुरानी बँगला कहते हैं वह अनेक स्थानों पर लिङ्गभेद स्वीकार करती है। इस कारण कुछ भाषाविज्ञानी मानते हैं कि पुरानी बँगला में लिङ्गभेद था और आगे चलकर वह समाप्त हो गया। कभी-कभी वह इसका कारण भी बतलाते हैं। लिङ्गभेद के झमेले से भाषा के व्यवहार में कठिनाई होती थी, इसलिए उसे सरल, सुबोध बनाने के लिए वह झमेला दूर कर दिया गया। यह बात उतनी ही तर्कसंगत है जितनी तत्सम संस्कृत अकार को हटाकर उसके स्थान पर वृत्ताकार उच्चारण का चलन कर देने की बात है। अन्तर इतना ही है कि वृत्ताकार उच्चारण चालू करने से कौन सा झमेला दूर हुआ, यह किसी भाषाविज्ञानी ने नहीं बताया। वास्तव में मागध भाषा समुदाय में न तो पहले संस्कृत अकार का चलन था, न उसमें लिङ्गभेद था। जिसे पुरानी बंगला कहते हैं वह या तो पुरानी मैथिली है या मैथिली का अनुकरण है। भोजपुरी, मैथिली और मगही में अवधी, ब्रज और बांगरू की अपेक्षा लिङ्गभेद निर्बल है। पूर्वी क्षेत्रों के शिक्षित जनों की भी परिनिष्ठित हिन्दी का

व्यवहार करते समय स्त्री या लिङ्ग निर्णय करने में कठिनाई होती है। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि पूर्वी क्षेत्र की भाषाएं परम्परा लिङ्गभेद से मुक्त थीं।

मगही में अब कुछ शब्द ऐसे हैं जिनमें लिङ्गभेद करना आवश्यक होता है। छोटका छोटकी, नन्हका नन्हकी पियरा, पियरी मुतहा, मुतही आदि विशेषण लिङ्ग-भेद सूचित करते हैं। (सम्पत्ति अर्याणी ने मगही व्याकरण कोश में ऐसे शब्दों की सूची दी है।) इसी प्रकार सम्बन्ध कारक में कुछ सर्वनाम लिङ्गभेद जताने के लिए, रूप बदलते हैं। **मोरा सामी (मेरा स्वामी) मोरी बिटिया।** अर्याणी ने इन रूपों का व्यवहार लोकगीतों में होता बताया है और इससे भिन्न **हम्मर बेटा हम्मर बेटी** के प्रयोग की ओर ध्यान दिलाया है जो लिङ्गभेद से मुक्त है। इससे विदित होता है कि कोसल का प्रभाव एक समय मगध पर इतना अधिक पड़ा कि वह लोकगीतों में प्रति बिम्बित है। सम्बन्ध कारक के प्रत्यय **केरा** और **केरी** में वैसा ही भेद दिखायी देता है। अर्याणी ने दो रोचक उदाहरण दिए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि लिङ्गयुक्त और लिङ्ग-मुक्त दोनों तरह के रूप मगही में स्वीकृत हैं (१) **ऊ गाँव केरी जनी सब कांदते चल गेलथीन,** (२) **ऊ गाँव के मेहररुन कांदते चल गेलथीन** (उस गाँव की स्त्रियाँ रोती हुई गईं)। भूतकालिक कृदन्तों में हिन्दी के प्रभाव से पूर्वी भाषाएँ जहाँ-तहाँ लिङ्गभेद सूचित करती है। हिन्दी की तुलना में यह भेद बहुत कम है।

अनेक भाषाविज्ञानियों ने लिखा है कि संस्कृत में शब्द के बहुवचन रूपों का चलन था, हिन्दी में द्रविड़ प्रभाव से शब्द का एक ही रूप एकवचन और बहुवचन में काम आता है। मगही में संज्ञा शब्द के बाद न प्रत्यय जोड़कर बहुवचन रूप वैसे ही बनाए जाते हैं जैसे अवधी में यथा **बल—बलन घर—घरन।** अवधी में बहुवचन के अन्य रूप भी होते हैं। कर्त्ताकारक एकवचन में **घरु** रूप होगा (यही स्थिति कर्मकारक एकवचन में है) **घर** रूप कर्त्ताकारक के बहुवचन में प्रयुक्त होगा। करण आदि कारकों में बहुवचन रूप **घरन** होगा।

मगही का शब्दतंत्र अन्य पश्चिमी आर्यभाषाओं के शब्दतंत्र से मिलता जुलता है। कुछ तथ्य इस संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं। **मोरा** रूप सम्बन्धकारक में ही नहीं, कर्त्ताकारक में भी प्रयुक्त होता है (अर्याणी उप० पृष्ठ २०)। आधुनिक आर्यभाषाओं के विकास में एक मंजिल वह है जिसमें कुछ सर्वनाम, अपने कारक चिह्न के साथ, आधारभूत सर्वनाम मान लिए गए हैं। **मोरा** का आधार **मो** है किन्तु **मो** का स्वतंत्र व्यवहार न अवधी में होता है न मगही में। **मोरा** को आधार मानकर **मोरा के मोरा से मोरा से** आदि रूपों का व्यवहार होता है। मूल सर्वनाम **मध** से एक रूप **मो** बना, दूसरा **मै, म।** वास्तव में **मध – मह** से **मो** रूप का निर्माण मागध प्रवृत्ति का ही परिणाम है किन्तु यह रूप कर्त्ता पद से विस्थापित कर दिया गया है, अब केवल **मोर मोरा** रूप में ही वह प्रतिष्ठित है। इससे संस्कृत कर्त्तारूप **अहम** तथा सम्बन्धकारक रूप **मम** की तुलना की जा सकती है। **मम** का आधार वही म सर्वनाम मूल है जो **मो** और **मैं** का है। **अहम** ने उसे कर्त्तापद से हटा दिया। वैसे ही **मैं** ने **मो** को कर्त्तापद से हटाया। म वाले रूप पूर्वी

मगही म प्रयुक्त होता है। म के आधार पर मके (मुझको) मर (मेरा) आदि लित है। मोरा के समानान्तर एकवचन मे हम का प्रयोग होता है। इस हम रूप हमनी बनता है। यह नी सम्बन्धकारक का प्रत्यय है जिसका मूल क्षेत्र पर्नी और रा दानो सम्बन्धकारक मे प्रयुक्त होते है, नी का व्यवहार सिन्धी, होता है, रा का व्यवहार राजस्थानी मे। बहुवचन और सम्बन्धकारक के चिह्न का प्रयोग होता है। अनेक इडोयूरोपियन भाषाओ म इसी प्रकार व्यवहार बहुवचन तथा सम्बन्धकारक के लिए होता है। मगही, मोरा के समान, आधार रूप मान लेती है और हमनी के अतिरिक्त हमरनी रूप का भी व्यवहार आधार रूप हम, उससे बहुत्वसूचक, सम्बन्धसूचक हमर, पुन उसमे इन्ही सूचक नी का योग। मध्यमपुरुष सवनाम म तू, तोरा, तोहनी जैसे रूप स्वीकृत मे पूर्वी पश्चिमी दोनो तरह की ध्वनिप्रवृत्तियाँ मिलती है, इसलिए उसमे हि सवनाम के प्रतिरूप को तथा के दोनो हैं। इनके साथ कौन भी चलता है। मध कध से को, के रूपो का विकास हुआ। मगही मे कॅह रूप का व्यवहार भी होता समानान्तर जॅह, तह, यध तध मूल रूपो स विकसित है। बहुवचन म जिन्ह, कि आदि का विकास उन मूल रूपो म हुआ है जिनम सवनाम मूल के बाद ध का य था। तिन्ह तसा जैसे रूप अब कम प्रयुक्त होत है। तैसा की जगह वैसा, जगह उन का व्यवहार अधिक होता है। सस्कृत मे एकवचन पुल्लिग, कर्तारूप नाम का व्यवहार होता है। अवधी म, और परिनिष्ठित हिन्दी म भी, स के मार सो का चलन है कि तु मगही म जे और के रूपो के समान कौरवी से का चलन है अन्य पुरुष सवनाम हे इसका वैकल्पिक रूप से है और एकवचन तथा बहुवचन प्रयुक्त होता है। ठीक सस्कृत के समान इसका प्रयोग कर्ताकारक तक सीमित है सस्कृत के विपरीत इसका व्यवहार बहुवचन मे भी हो सकता है। यही कौरवी से मे भी प्रयुक्त होता है। हिन्दी यह वह निकट और दूर की वस्तुओ के लिए प्रयुक्त वाले सवनाम है। इनके मूल रूप इध-उध थे। इनमे एक ओर ऍह ओह रूप ब जहाँ इ उ को विवत रूप दिया गया है दूसरी ओर ई, ऊ रूप बनत हैं जहा अन्तिम का स्वर लुप्त हुआ है और महाप्राण ध्वनि न पूव स्वर को दीघ किया है। भिन्न प्रवृत्तियो के मेल के कारण मगही म केऊ और कोई दोनो रूप स्वीकृत हैं। जो लोग का विकास कोपि से मानते है, उन्हे केऊ का विकास केपु से मानना चाहिए। कि यह है कि अपि के साथ अपु जैसे रूप का प्रयोग नही मिलता। केऊ के साथ मगह केहू रूप भी है। इस केपु स सिद्ध करना कठिन होगा। हिन्दी क्या के लिए मगही म को के अलावा एक रूप कउची भी है। इन सब रूपो म क आधारभूत है, उसम सूचक विभिन्न प्रत्यय जोडे जाते रहे है। यह क सवनाम पहले प्रश्नवाचक न होकर वस्तु या व्यक्ति की ओर सकेत करने वाला सामान्य सवनाम था इसलिए कोई केऊ प्रश्नसूचक और सामान्य सकेतक दोनो प्रकार का अथ देते हैं। के सवनाम सम्बन्धकारक म केकर केकरा आदि रूप बनते ह जहा कर सम्बन्धकारक का चिन्ह है।

मगही के कारक
मिलते हैं, कही कहीं अव
समानता है। अधिकरण
अपने मे, अँह मे, इन्ह मे
पर यह सम्बन्धसूचक प्र
मध-मह से **मा** रूप बना
के समान मगही मे सम्प्र
हमराला हमनीला, तोर
निक आयभाषाओ म स
भिन्न सम्प्रदान का अ
हमराके, हमनीके तथा
देखें। अनेक विद्वान् मा
सामान्य रूप और उसक
करना चाहिए कि जब
सम्प्रदान का नया भेद
शब्दो के सम्प्रदान रूपा
लिए नही। और **घोडा**
है, कर्त्ता के अलावा क
हिन्दी मे **घोडे से, घोडे**
इसका यह अथ नही कि
वचन रूप बनाने के लि
बँगला म होता है वरन
दिया जाता है। इस प्रक
अवधी मे घरन रूप कत्त
बातन आदि रूपा को क
का विकास एक से नियम
उपलब्ध सामग्री के आध

मगही सवनाम
मे प्रयुक्त नही होता,
अँह ई का तियक रूप ह
न कहा जाय ? और **मम**
अनेक तियक रूप क्या न
सवत्र एकवचन मे अपरि
विदित होता है कि अनक
व्यवहार की पद्धति मगह

। चिह्न अवधी और परिनिष्ठित हिन्दी के कारक चिह्ना से
धी की अपेक्षा परिनिष्ठित हिन्दी के कारक चिह्ना से अधिक
कारक जताने के लिए **मे** का व्यवहार होता है **मोरा मे, तोर मे,**
। अवधी म सवत्र **मा** का व्यवहार होगा। मध सवनाम के आधार
यय बना है। अवधी म जैसे **छह** का उच्चारण **छा** है वैसे ही
है। **मे** रूप उत्तर पश्चिमी है। एक रोचक तथ्य यह है कि **बघेली**
दान कारक के लिए **ला** प्रत्यय का व्यवहार होता है—**मोराला,**
राला, अपनेला, अँहला इत्यादि। जो लोग समझते है कि आधु
प्रदान कारक का लोप हो गया और द्रविड भाषाओ मे कम से
त्तत्व बना हुआ है वे मगही मे कमकारक के लिए **मोराके,**
सम्प्रदान कारक के लिए **मोराला हमराला, हमनीला** का भेद
ते है कि अपभ्रंश मे कारक भेद मिट गया केवल सज्ञा का
। तियक् रूप, ये दो रूप रह गये। इन विद्वाना को विचार
मागधी अपभ्रंश से मगही का जन्म हुआ, तब यह कम और
कैसे उत्पन्न हो गया। सज्ञा और सवनाम, दोनो तरह के नाम
म **ला** प्रत्यय का व्यवहार होता है कम या किसी अन्य कारक के
का तियक रूप क्या है ? एकवचन रूपा मे सवत्र **घोडा** ही रहता
रण सम्प्रदान अधिकरण आदि म **घोडा** रूप ही चलता है। यदि
पर आदि रूप होते ह जो कत्ता के एकवचन रूप से भिन्न है, तो
आधुनिक आयभाषाओ मे सवत्र एसा होना है। **घोडा** का बहु-
ए कोई बहुत्वसूचक शब्द जोडा नही जाता जसे कि बहुधा
अतिम वण के दीघ स्वर को ह्रस्व करन के बाद **न** प्रत्यय जोड
र **घोडा** का बहुवचन **घोडन** जम घर का बहुवचन घरन।
कारक म प्रयुक्त न होगा, अर्याणी ने **घरन, राजन, पोथिन,**
साकारक मे दिखाया है। स्पष्ट है कि आधुनिक आयभाषाओ
ा के अनुसार समतल भूमि पर नही हुआ और अपभ्रंश की
र पर इनके विकास की व्याख्या नही की जा सकती।
ई—जो हिन्दी यह का प्रतिरूप है—कर्त्ता स भिन्न अन्य कारका
एकवचन रूपा म **अँह** का व्यवहार होता है। कह सकते है कि
। (इस प्रकार संस्कृत **मम** के **म** को **अहम** का तियक रूप क्या
के अतिरिक्त **वयम् न** आदि को ध्यान म रखें तो **अहम के**
मान जायँ ?) **मोरा हमनी,** कत्ता स लेकर अधिकरण तक,
वर्तित रहते हैं। यही स्थिति **अपने** सवनाम की है। इसम यह
कारका मे तियक' और 'अतियक' दोनो तरह के रूपो के
ो मे है।

(ग) मगही क्रियापद रचना

मगही आर मैथिली दोनों मागधी अपभ्रंश स उ
इनसे बँगला का सम्ब्न्ध जोडत है उनका ध्यान मबसे पहले
है। यह महत्वपूण बात है कि इस क्रिया का व्यवहार मगही
क्रिया क बदले ह मूलक क्रिया का व्यवहार होना है। म त
प्रसाद न ध्यान दिया ह। मगही सस्कार गीत (पटना, १६
विशेषताओ की चर्चा करत हुए लिखा ह 'मगही की वत
सहायक क्रिया का रूप 'ह है, जो मागधी समुदाय की अन्य
या 'बाटे आर अछि', छै' म भिन्न हिन्दी है' के अनुरूप ह
एक्कर ई कारन हे ई बुझा हे हमनीके हे बनावल जाह—
भारत यूरोपीय अम मे व्युत्पन्न ह जबकि भोजपुरी—'बाट
√वत—वनत स तथा उडिया 'अछ मथिली अछि' 'छै'
मागधी समुदाय की तीन महत्वपूण भाषाओ—मगही
एक ही अथ वाली क्रिया के तीन रूप है। यह क्रिया भी एसी ह
म सर्वाधिक होना है। वास्तव म एक क्रिया के तीन रूप न ह।
जिनका प्रयोग एक स सदर्भो मे होता ह। डा० विश्वनाथ
बतलाए ह। य तीन स्रोत सही हो चाहे न हो पर ये तीन है
ह, इसम सदह नही। यह इस बात का अतिरिक्त प्रमाण ह कि
की भाषाए कहत ह उनका जन्म किसी कल्पित मागधी अ

मगही म एक क्रिया हथ ह। डा० विश्वनाथ प्रसाद न
माना ह। कहोहथिन अज्ञात कहते है। हथिन का पनिरूप हथुन
और एकरूप हखुन भी है। हथिन हथुन हखुन स ही छुट्टी नहीं।
प्रसाद ने लिखा है "केवल पटना जिले म मगही के क्रम मे
है।' (उप० पृष्ठ १८)। किन्तु कुछ विद्वानो का विचार है कि
ही रूप का चलन है। डा० उदयनारायण तिवारी भोजपुरी भाषा
१९५४) मे कहत ह "आधुनिक मगही का क्षेत्र वही नही ह जो
यह गया के शेष भाग तथा हजारीबाग जिल की वाली है। इसके
के पश्चिमी भाग तथा पूरब म मुगेर आर भागलपुर जिला के
है। इस समस्त क्षेत्र म मगही का रूप एक ही है और इसमे कहीं
केवल पटना के आस पास उदू भाषी मुसलमानो के प्रभाव के
में अवश्य कुछ अतर आ गया है।' (पृष्ठ २१७)। प्रश्न
नही है, प्रश्न भाषा की सरचना क्रियापदा की रचना, मूल
रूपता वाली धारणा का खण्डन करत हुए डा० विश्वनाथ प्रसाद
बोलियों के समान मगही के भी अनक रूप ह। यह समझना भूल ह

कि मगही के उत्तम और मध्यम पुरुषों में भविष्यकाल के ऐसे वैकल्पिक रूप हैं जिनमें ब का व्यवहार होता ही नहीं है। इसका अर्थ यह है कि ब चिह्न के बिना मगही में भविष्यकाल सूचक क्रियारूपों का व्यवहार हो सकता है। सम्भव है कि किसी समय मगही के सभी भविष्य सूचक क्रियारूपों में ब का व्यवहार होता हो किन्तु कोसल के प्रभाव से यह व्यवहार सीमित हो गया हो। उत्तम पुरुष के होब, होबई आदि रूपों के साथ **होअम** रूप का भी चलन है। ऐसा लगता है कि इस रूप की रचना ठीक **पठामि** के ढंग पर हुई है। **हो** क्रिया के बाद कर्त्ता सर्वनाम **हम** जोड़ा गया है। हम के आदि वर्ण की महाप्राणता का क्षय होने पर **होअम** रूप बना। **अम** या **हम** का कोई विशेष सम्बन्ध भविष्यकाल से नहीं है। ब का सम्बन्ध भी भविष्य से हो, ऐसा नहीं है। *हम हिवऽ अर्थात मैं हूँ, वर्तमान काल का रूप है। भविष्यकाल के मध्यम पुरुष रूपों* में होब होबी के साथ **होमही** रूप है। निःसन्देह **मही** प्राचीन सर्वनाम है और संस्कृत के **महे** का जोड़ीदार है। संस्कृत में **महे** क्रियारूपों के साथ उत्तम पुरुष का बोध कराता है मगही में **मही** मध्यम पुरुष का। **होमही** एकवचन रूप है, बहुवचन में होमहू रूप होगा। भविष्यकाल के अन्यपुरुष बहुवचन रूप **होथ, होथिन, होथुन् होखिन** इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं कि वे स मूलक अन्य पुरुष सर्वनाम रूप की ओर सकेत करते हैं। यह **स थ और ख** में परिवर्तित होता है। भूतकालीन रूपों में होलथिन, होलखिन और होलहिन तीनों प्रकार के रूप हैं। ऐसी ध्वनि जो ख, थ ह तीन ध्वनिरूप ग्रहण करती हो, स ही हो सकती है। संस्कृत में सिम सर्वनाम का सिन प्रतिरूप रहा होगा उससे मगही के ये रूप सम्बद्ध हैं।

मगही के क्रियारूप, कर्त्ता के अतिरिक्त कर्म की ओर भी सकेत करते हैं, और इन दो के अलावा, श्रोता के सामाजिक स्तर के अनुरूप आदर या अनादर का भाव भी व्यक्त करते हैं। इस कारण मगही की क्रियापद रचना, बँगला या भोजपुरी से भिन्न, बहुत पचीदा है। ऐसे रूपभेद कृदन्त क्रियापदों में मिलते हैं वे कृदन्तों के तिङन्तीकरण के उदाहरण हैं। इन रूपों का विकास बाद में हुआ। हिन्दी प्रदेश की अन्य भाषाओं के समान मागधी समुदाय में भी क्रियापद रचना पहले क्रिया की अवस्था सूचित करती थी, कालभेद नहीं। कालभेद के लिए कृदन्त रूपों का सहारा लिया गया। कृदन्त प्रधान वाक्य रचना कौरवी समुदाय की विशेषता थी। मागधी समुदाय ने जब कृदन्त पद्धति अपनाई तब कृदन्तों का व्यवहार लिंगभेद युक्त विशेषणवत न करके तिङन्तवत पुरुषभेद सहित किया। अवधी की अपेक्षा मगही में कृदन्तों का व्यवहार अधिक होता है। अन्य बातों के साथ इससे भी मागधी-कौरवी के पुराने सम्बन्धों का ज्ञान होता है। यद्यपि कोसल क्षेत्र कुरुक्षेत्र के अधिक समीप है, मगध बहुत दूर है, फिर भी अधिक साम्य कौरवी और मागधी में है। भाषाओं की वर्तमान भौगोलिक स्थिति से भ्रम में पड़कर यह न सोचना चाहिए कि इनके बीच सदा ऐसी दूरी रही होगी।

आदर और अनादर सूचक क्रियापद कृदन्तरूपों के आधार पर ज्यादा बने हैं।

स्वभावत भूतकालिक कृदन्त का व्यवहार अधिक होता है। उदाहरण के लिए देखल—यह मूल कृदन्त रूप बना। अब उत्तम पुरुष के एकवचन मे देखलिक—अर्थात मैंने उसे देखा—रूप बना। इसका वैकल्पिक रूप देखलिअइ है। इन दोना रूपो मे जो कुछ जोडा गया है, वह मूल कृदन्त के बाद प्रत्ययवत है उसमे पहले उपसर्गवत नही। ये दोना रूप उत्तम पुरुष सर्वनाम के साथ ही प्रयुक्त होगे। पठामि शब्द जैसे पूरा वाक्य है, वैसे ही ये रूप पूरे वाक्य हैं। कर्त्ता सर्वनाम का बोध क्रियापद से हो जाता है, कर्त्ता-बोधक तत्व क्रिया मे पहले नही, बाद को आता है। यह पुरानी मध्यदेशीय विन्यास पद्धति है। मगही की विशेषता यह है कि उक्त रूपा से कर्म के सामाजिक स्तर का बोध भी होता है। जो कुछ देखा वह क्षुद्र है तब इन रूपा का व्यवहार होगा। जो देखा वह गौरवपूर्ण है, तब क्रियारूप होंगे— देखलिन देखलिअइन। स्पष्ट ही न और क से कर्म के सामाजिक स्तर का भेद व्यक्त किया गया है। मगही मे इस तरह का भेद सम्भव इसलिए है कि क्रियापद रचना की पुरानी परम्परा मे कर्त्ता और कर्म क्रिया के बाद आते थे। जब कौरवी प्रभाव से यह पद्धति उलट गई, तब भी मगही म पुरानी पद्धति जीवित रही। कर्म के अलावा जब श्रोता की क्षुद्रता सूचित करनी हो तब देखलिक काफी न होगा, उसकी जगह देखलुक रूप का व्यवहार होगा। इसी प्रकार देखलिअइ के बदले देखलिअउ का प्रयोग होगा। इ, उ के भेद से श्रोता के सामाजिक स्तर का भेद व्यजित हुआ। यदि कर्म गौरवपूर्ण हो और श्रोता क्षुद्र हो तो देखलिअउन रूप चलेगा। यदि कर्म और श्रोता दोनो गौरवपूर्ण हो तो देखलियो रूप प्रयुक्त होगा। यदि श्रोता गौरवपूर्ण हो और कर्म क्षुद्र हो, तो क्रियारूप देखलिवऽ रूप का व्यवहार होगा। (जो लोग समझते हैं कि मागधी भाषाओ म व् का अस्तित्व है ही नही, वे इस क्रियारूप मे व के प्रयोग पर ध्यान दें।)

कुछ लोग मैथिली मगही भाषाओ के सर्वनामो और वाक्यतत्र पर कोल भाषाओ का प्रभाव देखते है। सर्वनामो का गहरा सम्बन्ध क्रियापद रचना से है अत उनकी मान्यता यह भी हुई कि मगही की क्रियापद रचना कोल भाषाओ से प्रभावित है। यहा पहली बात देखने की यह है कि मगही मे मूल क्रिया के बाद प्रत्ययो का सीधा सयोग नही होता, कृदन्त रूप के बाद प्रत्यय जोडे जाते है। इसके अतिरिक्त कर्म और श्रोता के स्तरभेद का ज्ञापन उस समाज के लिए आवश्यक होता है जिसमे सामन्ती सम्बन्ध काफी पुराने और रूढ हो चुके हो। जिस समय मगही मे ऐसे रूपो का विकास हुआ उस समय कोल भाषाएँ बोलने वाले समाज प्राक्सामन्ती गणव्यवस्था म जीवन बिता रह थे। इसलिए उनकी भाषाओ म ऐसे स्तरभेद सूचित करने के लिए अब भी क्रिया रूप नही हैं न उनकी आवश्यकता है। मगध और मिथिला प्राचीन काल से पूर्व म सामन्ती सम्बन्धो के मुख्य प्रसार केन्द्र रहे हैं। इनके बाद कोसल, शूरसेन और कुरु जनपद आते हैं। यह स्थिति भाषा के कुछ स्तरो पर प्रतिबिम्बित होती है।

यद्यपि कर्म और श्रोता के स्तरभेद भूतकालीन क्रियारूपो म अधिक व्यजित होते हैं किन्तु अन्यकाल सूचित करने वाले क्रियारूपो म उनका नितान्त अभाव नही है।

यथा मध्यम पुरुष के हे, है, हही रूप वक्ता की साधारण स्थिति सूचित करते हैं। इसके विपरीत हहु, हहिन आदि उसके गौरव की सूचना देते हैं। पर ये भेद एकवचन और बहुवचन के भेद हैं—तू है तुम हो के भेद के अनुरूप। ऐसे भेद भूतकाल, भविष्य काल, वतमानकाल सभी म हैं। वक्ता और श्रोता के स्तर की भिन्नता पूरी तरह भूतकालीन रूपो मे ही व्यक्त होती है।

कुछ क्रियारूप मध्यम पुरुष और अन्यपुरुष मे मिलते जुलते है। ह क्रियामूल से वतमानकाल मे मध्यम और अन्य पुरुषों का एकवचन रूप हे बनता है। मध्यम पुरुष का एकवचन रूप हहि और अन्यपुरुष का एकवचन रूप हइ मूलत एक हैं। इसी हइ का रूपांतर मध्यम पुरुष एकवचन है भी है। हहि जैसे रूप स इन सबका विकास हुआ है। ध्यान देने की बात यह है कि हइ रूप मगही और अवधी की मूल ध्वनि प्रकृति के अनुरूप है। है रूप वतमान परिनिष्ठित हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप है और अवधी म प्रयुक्त है किन्तु हे हिन्दी प्रदेश का ठेठ पछाही रूप है जैसा कि वह बुन्देलखंड और उसके पश्चिम मे सुनने को मिलता है। हे जैसा क्रियारूप अवधी मे सम्भव नही है न मध्यम पुरुष मे न अन्य पुरुष मे। इससे विदित होगा कि मगही पर पश्चिमी प्रभाव यथेष्ट है।

आधुनिक अवधी और परिनिष्ठित हिन्दी के समान मगही म क्रिया के वतमान कालीन रूप कृदन्त के आधार पर बनते हैं। देखइत हो—अर्थात देख रहा हूँ, देखऽ ही अर्थात देखता हूँ। इस दूसरे रूप मे ख के बाद अकार सकेत कृदन्त रूप की व्यजना करता है। इसलिए खाहइ—इस क्रियापद को तिङन्त न समझना चाहिए। खाता है के है के समान हइ स्वतन्त्र क्रिया है। उसके पहले अन्य क्रिया खा है। किन्तु लोकगीतो मे तिङन्त क्रियारूप मिलते हैं और ये रूप अवधी ही नहा, पुरानी हिन्दी (खडी बोली) के रूपो मे भी मिलते हैं। डा० विश्वनाथ प्रसाद के मगही सस्कार गीत सग्रह मे इस तरह के उदाहरण है

१ कउन बन उपजे हे नरियर, कउन बन उपजे अनार ह।
 ललन, कउन वन उपजे गुलाब तो चुनरी रँगायव ह। (पृष्ठ ८)
२ हम ताही पूछही दुलारी धनी, अउरी अलारी धनी ह।
 ललन कउन कउन रँग तोरा भावे, तकहिके सुनावहु हे। (पृष्ठ २३)
३ मलिया के बाग मे बेलिया फूले हे फुलवा, चमेलिया फूल हे फुलवा।
 तहँवा हे कवन सुगन्ध झारे लामी केसिया। (पृष्ठ १९६)
४ कोइ सखि माथा नहाव कोइ सखि उबटन हे।
 कोइ सखि चीर सम्हार कोइ रे समुझावत हे। (पृष्ठ २३२)

दूसरे उदाहरण मे पूछही क्रिया विशुद्ध पुराना तिङन्त रूप है। इसका व्यवहार उत्तम पुरुष के साथ हुआ है किन्तु ऐसे ही रूप से अन्य पुरुष के लिए पूछइ, पूछ पूछे रूपो का विकास हुआ है। इस उदाहरण की दूसरी पक्ति मे सुनावहु रूप म इसी प्रकार सुनावउ सुनावो रूपो का विकास हुआ है भावे क्रियापद भावइ और भावहि के आधार पर रचा गया है। अवधी मे भाव जैसे रूपो का व्यवहार होगा, एकार वाला

भावे रूप पश्चिमी प्रभाव का परिणाम है। पहले उदाहरण में उपजे है क्रियापद मे उपजे और है दोनो एकारान्त रूप है। पहली पंक्ति मे उपजेहे पूरी क्रिया है, दूसरी पंक्ति मे केवल उपजे रूप है जिसके साथ पहले कभी हे या है जैसी क्रिया लगाना आवश्यक नही था। तीसरे उदाहरण मे फूलेहे पूरी क्रिया है, झारे अर्थात् झारती है रूप का प्रयोग भी है। चौथे उदाहरण म बन्हावे (बँधावे), सम्हारे वतमानकाल में अन्य पुरुष के एकवचन तिङन्त क्रियारूप है। जैसा कि विदित है, ऐसे प्रयोग अवधी की अपेक्षा पुरानी हिन्दी म अधिक है।

इस प्रसग म इस बात का उल्लख करना उचित होगा कि मगही क्षेत्र के लोक-गीतो म मगही के साथ खडी बोली के रूप बहुत जगह घुलमिल गए है।

आँगन म बतास लुटा दूगी, आँगन म।
सासुजी अन्हइ, चरआ चढइह।
भला उनरो चुनरिया पन्हा दूगी, आगन म। (पृष्ठ ८८)

इस उदाहरण म दूगी क्रियारूप शुद्ध खडी बोली का रूप है किन्तु अइहे, चढइहें मगही रूप है। अवधी मे ,चढइहैं, अइहैं रूप हाग। एकार पश्चिमी प्रभाव से मगही मे एकार हो गया। ऐसे लोकगीत मगही, अवधी और खडी बोली के क्रियारूपा को घुलते मिलते दिखाते है और ऐसी मिश्रण प्रक्रिया काफी पुरानी है। भाषा तत्व ही नही, लोकगीत एक जनपद स दूसर जनपद म पहुँचत रह हैं। कुछ गीत ऐसे हैं जिनम खडी बोली का ही प्रयोग है पर वे मगध म गाए जात रह है, इसलिए मगही सस्कार गीता म उन्हे स्थान मिला है।

रँगीला टोना दुलह को लगेगा छबीला टोना दुलहे को लगेगा। (पृष्ठ २५७)
तरे दुलह ने लाया साहाग सोहागिन तरे लिए। (पृष्ठ २६०)

दूसर उदाहरण मे दुलहे ने सोहाग लाया, ऐसी वाक्यरचना उन्ही के लिए सम्भव थी जिनके लिए ने का व्यवहार अपेक्षाकृत अपरिचित और नया था। इस तरह खडी बोली के रूपा का मिश्रण अन्य जनपदा म भी देखा जाता है।

मगही भाषा, विशेष रूप से उसकी क्रियापद रचना, के बारे मे डा० विश्वनाथ प्रसाद न मगही सस्कार गीत की भूमिका म कुछ महत्त्वपूण बातें कही है। इनम एक बात कृदन्ता के व्यवहार के बारे म है। मगही के साथ मैथिली भोजपुरी को ध्यान मे रखते हुए उन्होने लिखा है "बिहारी भाषाआ मे भूत, भविष्यत् वतमान सम्भाव्य भूत और सम्भाव्य वतमान य पाच काल ऐसे है, जो कृदन्तीय रूप से बनते है। हिन्दी म केवल सम्भाव्य वतमान तथा उसी का एक भेद विधि के रूप म मिलता है, जो कृदन्तीय है और जिसम 'गा जोडकर भविष्यत का रूप बनता है।' (पष्ठ १२)। यह बात महत्व-पूण है क्योकि इसमे मगही क्रियारूपा म कृदन्ता की भूमिका पर बल दिया गया है। हिन्दी म क्रियारूपा का आधार कृदन्त किस सीमा तक है, इसका ज्ञान आचाय किशोरीदास वाजपेयी के इस कथन से होगा "हिन्दी मे कृदन्त क्रियाएँ ही अधिक हैं। वतमान काल की सबकी सब क्रियाएँ कृदन्त है, सहायक क्रिया केवल 'है' ही तिङन्त है—

'लडका पढता है,' 'लडकी पढती है'। भूतकाल की भी सब क्रियाएँ कृदन्त हैं—'लडका गया और 'लडकी गई'।" (हिन्दी शब्दानुशासन, पृष्ठ ४२०)। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि कृदन्तो का मूल क्षेत्र कुरु जनपद ही है, वहीं से इनका व्यवहार मगध की ओर फैला है।

डा० विश्वनाथ प्रसाद ने कर्तरि-कर्मणि प्रयोगो के बारे में लिखा है "हिन्दी मे जहा सकर्मक क्रियाओ के लिङ्ग और वचन कर्त्ता के अनुसार बदलते हैं, वहाँ बिहारी में बँगला, उडिया के समान सर्वत्र कर्तरि प्रयोग ही चलते है, कर्मणि प्रयोग नही।" (पृष्ठ १२)। *कर्मणि प्रयोग कहीं कहीं पश्चिमी प्रभाव से प्रचलित हो गए है।* डा० विश्वनाथ प्रसाद ने सिंहभूम का जो भाषा सर्वेक्षण किया था, उसमें मगही से एक उदाहरण यह दिया है। **छौंडा कहलकव**—लडके ने कहा, **छौंडी कहलकइ**—लडकी ने कहा। यहा छौडा और छौडी मे तो लिङ्गभेद है ही, क्रियारूप मे भी अकार इकार का भेद है। स्पष्ट ही यह भेद लिङ्ग के आधार पर किया गया है। इस तरह के रूप भोजपुरी मे भी प्रचलित है। डा० उदयनारायण तिवारी ने **भोजपुरी भाषा और साहित्य** पुस्तक मे क्रियारूपो के जो उदाहरण दिये है, उनमें कुछ केवल स्त्रीलिङ्ग के लिए आरक्षित हैं। मध्यम पुरुष के, आदररहित तथा साधारण, बहुवचन-रूप **देखबु सहि, देखबू** केवल स्त्रिया द्वारा प्रयुक्त होते है। इसी प्रकार **देखलुसहि, देखलू** रूप हैं जो स्त्रियो के लिए सुरक्षित हैं। इनके अतिरिक्त भूतकालीन कृदन्तो में भी पश्चिमी प्रभाव से जहा तहा लिङ्गभेद होता है।

इसका कारण यह है कि बँगला की अपेक्षा मगही, और मगही की अपेक्षा भोजपुरी पर अवधी तथा अन्य पश्चिमी भाषाओ का प्रभाव अधिक है। ऊपर डा० विश्वनाथ प्रसाद की भाषा सर्वेक्षण पुस्तक मे मगही के जो दो वाक्य उद्धृत किए गए हैं, उनके बँगला प्रतिरूप इस प्रकार है **छेलेटा बोललो, मेयेटी बोललो**। यहा क्रियारूप में कोई परिवर्तन नहीं होता, मूल संज्ञाशब्द प्राकृतिक लिङ्गभेद सूचित करते हैं। किन्तु पश्चिमी प्रभाव से व्याकरणगत लिङ्गभेद **टा टी** के भेद द्वारा व्यक्त किया गया है। मूल संज्ञा शब्द के साथ प्रयुक्त होने वाले इस प्रत्यय में लिङ्गभेद किया जाय, यह आवश्यक नहीं था। पर पश्चिमी प्रभाव से भाषा की प्रकृति में थोडा सा परिवर्तन हुआ है। यहा यह कहना भी उचित होगा कि यह भेद अभी अस्थिर है। बँगला के उक्त उदाहरण के साथ डा० विश्वनाथ प्रसाद ने इसी भाषा के तीन उदाहरण और दिए हैं। इनमें **मेयेटी** तो सर्वत्र इसी रूप मे है किन्तु **छेलेटा** का उदाहरणो में **छेलेटि** है। *श्र इ वाला* लिङ्गभेद पूरी तरह स्थापित नहीं हुआ। सिंहभूम की कुर्माली भाषा में, मगही और बँगला, दोनो की अपेक्षा लिङ्गभेद अधिक स्पष्ट है। **छोग्राटा ग्रावइसाही**—लडका आता है, **छोग्राटी ग्रावती**—लडकी आती है, **छोग्राटा ग्राइलाक**—लडका आया, **छोग्राटी ग्राइलीनो**—लडकी आई। **छोग्राटा ग्रावताक**—लडका आएगा, **छोग्राटी ग्रावती**—लडकी जाएगी। इन उदाहरणो में मूल संज्ञा रूप, बँगला से भिन्न, एक ही है किन्तु टा-टी प्रत्ययो द्वारा लिङ्गभेद सूचित किया गया है। इसके अतिरिक्त तीनो वाक्यो

में क्रियारूप लिङ्गभेद सूचित करते है। कुर्मानी के लिए डा० विश्वनाथ प्रसाद ने अपने उक्त ग्रंथ मे लिखा है कि वह मगही का ही एक रूप है (पृष्ठ १६)। उनकी यह बात मानी जाय तो कहना होगा कि मगही का एक रूप क्रियापदो मे हिंदी के समान लिङ्ग-भेद सूचित करता है। न मानी जाय तो यह तथ्य स्वीकार करना होगा कि मगही के भाषाई परिवेश में लिङ्गभेद भलीभाति प्रतिष्ठित हो चुका है। इसमें आश्चर्य की बात नही क्योकि बिहार मे अवधी बोलने वाले भी काफी है और डा० विश्वनाथ प्रसाद ने सिंहभूम के मयूरभंज मे ही इस भाषा के उदाहरण दिए है। इन उदाहरणों में उन्होने खडी बोली के रूपो के मिश्रण की ओर भी सकेत किया है। इसके अलावा गावो से उन्होने खडी बोली हिंदी के नमूने इकट्ठे किए है। **एक आदमी के चार लडिका रहैं**—यह अवधी का नमूना हुआ। **एक आदमी के चार लडके थे**—यह गाव की हिंदी है जो मानक हिंदी से भिन्न नही है। **एक लोग के चार बेटे थे**—यहा थोडी सी भिन्नता है। **एक आदमी को चारि लडका था** यहाँ भिन्नता और अधिक है। **एक आदमी के चार लडका छिलो**—यहा आधारभूत भाषा हिंदी को बँगला प्रभावित कर रही है। ये सब नमूने गाँवो से एकत्र किए गए हैं और इन्हे देखने से विदित होता है कि खडी बोली हिंदी शहरो तक सीमित न रहकर बिहार के गावो में प्रवेश कर चुकी है। जो आज हमारी आखो के सामने होता दिखाई दे रहा है, उससे मिलती-जुलती प्रक्रिया पूर्वकाल में घटित हो चुकी है। अन्तर यह है कि आज यदि मगही पश्चिमी प्रभाव अधिक ग्रहण करती दिखाई देती है, तो पूर्वकाल में मागधी समुदाय की भाषाओं ने पश्चिमी भाषाओं को भी प्रभावित किया था।

हिंदी प्रदेश की जनपदीय भाषाओं के आन्तरिक साम्य के बारे मे डा० विश्वनाथ प्रसाद का यह कथन बिलकुल सही है "विचार किया जाय तो बिहारी बोलियो का व्याकरण तथा उनकी रूपरचना के अनेक मौलिक तत्व हिंदी के एकरूपी न होते हुए भी समरूपी है। अभी हिंदी के परिनिष्ठित व्यापक रूपो के साथ उनके विभिन्न स्थानीय रूपो का सम्बन्ध निर्दिष्ट किया जा सकता है। पारस्परिक सुबोधता का सम्बन्ध हिंदी तथा हिंदी क्षेत्र की अन्याय बोलियो से उनका इतना अधिक है कि एक दूसरे की जनपदीय बोली को न जानते हुए भी आसानी से समझ जाते है। यही बात बँगला, असमिया या उडिया के सम्बन्ध मे नही कही जा सकती। इसी पारस्परिक सुबोधता के कारण सूर तुलसी, मीरा कबीर, विद्यापति इन सबकी रचनाएँ एक समान रुचि और अवबोध के साथ बिहारी क्षेत्र में पढी जाती है।' (**मगही संस्कार गीत**, पृष्ठ १५)। मगही का ऐतिहासिक विवेचन हिंदी प्रदेश की पछाही बोलियो को छोडकर नही किया जा सकता। न केवल मगही मैथिली और भोजपुरी, वरन् बँगला, उडिया और असमिया का भी ऐतिहासिक विवेचन करते हुए उक्त बोलियो को ध्यान में रखना चाहिए।

प्राचीन मागधी नाम की कोई मानक भाषा नही थी जिससे आधुनिक मागधी समुदाय की सभी भाषाओं का जन्म हुआ हो यह ऐतिहासिक तथ्य मगही के विवेचन

से स्पष्ट होता है। प्राचीन मागधी भाषाएँ ओकार-औकारवादी थीं, उनमें संस्कृत अकार के मानक उच्चारण का अभाव था, यह बात भी मगही और उसकी पडोसी भाषाओं की वर्तमान स्थिति से ज्ञात होती है। मगही आधुनिक काल में—यानी पिछले पाच सौ वर्षों में—पछाहीं भाषाओं से बहुत प्रभावित हुई है, उसके ध्वनितंत्र के अनेक प्राचीन तत्व अब बँगला में सुरक्षित है। मगही के शब्दतंत्र में म, स जैसे सवनाम मूल हिंदी की अपेक्षा अधिक सुरक्षित है, मागधी समुदाय की अन्य सभी भाषाओं से भिन्न इसमें ह क्रियामूल का व्यवहार उसे अवधी तथा उत्तर-पश्चिमी भाषाओं से जोडता है। ऐतिहासिक दृष्टि से मगही की क्रियापद रचना बहुत महत्वपूर्ण है। वह एक ओर भोजपुरी और दूसरी ओर बँगला की क्रियापद रचना से भिन्न है। उसमे प्राचीन सवनामी पद्धति सुरक्षित ही नहीं है वरन् उत्तर सामन्तकाल में वह और पल्लवित हुई है। क्रियापद पुरुषभेद व्यक्त करता है, कर्ता और कर्म की ओर संकेत करता है और कर्ता-कर्म की सामाजिक स्थिति भी व्यंजित करता है। कृदन्तों का तिङन्तीकरण कैसे होता है, इसका विशद प्रक्रिया मगही में परिलक्षित है।

यद्यपि मिथिला जनपद वेदान्त के लिए प्रसिद्ध रहा है और मगध जनपद कट्टर ब्राह्मणों के लिए त्याज्य रहा है, फिर भी समग्र मागधी समुदाय में मगध और मिथिला की भाषाएँ ही, सरचना की दृष्टि से, परस्पर सर्वाधिक समीप है। मगही के बाद मैथिली की कुछ विशेषताओं पर ध्यान देना उचित होगा।

२ मिथिला

(क) मागधी समुदाय और मैथिली

पूर्वी अचल की एक महत्वपूर्ण भाषा मैथिली है। मगही और मैथिली के क्षेत्रों के बीच गंगा बहती है किन्तु विभाजित करने के बदले वह इन क्षेत्रों की भाषाओं को एक दूसरे के निकट लाई है। मगही और मैथिली मे जितनी समानता है उतनी मगही भोजपुरी या मैथिली भोजपुरी में नहीं है। डा० सुभद्र झा ने मैथिली भाषा के निर्माण पर अपने ग्रन्थ **दि फॉर्मेशन ऑफ दि मैथिली लग्वेज** मे मगही को मैथिली की बोलियों के अन्तर्गत गिना है, साथ ही मगही को भिन्न मानने वाले विद्वानों के मत का आदर करते हुए उन्होंने मैथिली के अन्तर्गत मगही का विवेचन करना उचित नहीं समझा। उन्होंने मगही और मैथिली की समानताओं का उल्लेख करने के बाद ग्रियर्सन का यह मत उद्धृत किया है कि मगही को अलग बोली न मानकर उसे मैथिली की बोली मज़े से कहा जा सकता है।

मगही और मैथिली में एक महत्वपूर्ण भेद छि क्रियारूप को लेकर है। मगही में ह मूलक रूपों का चलन है। डा० सुभद्र झा ने लिखा है कि होना क्रिया के मैथिली रूपों में जहा छ है वहा ह कर दिया जाय तो मगही के रूप बन जाएँगे। इसका अर्थ यह हुआ कि रूपतन्त्र के विचार से दोनों की क्रियापद रचना में बहुत बडी समानता है भेद ध्वनितन्त्र को लेकर है। बँगला और मैथिली की क्रियापद रचना मे रूपात्मक

से नहीं हुआ। उस प्रभाव से ऐसा परिवर्तन होता तो स का स्थान अल्पप्राण च ध्वनि ही लेती। हम यह मानना होगा कि प्राचीन आर्य भाषाओं में एक वर्ग ऐसा था जिसमें स ध्वनि का अभाव था पड़ोसी भाषाओं से स ध्वनि वाले शब्दों को वह छ रूप में ग्रहण करता था। साथ ही उसने च वर्गीय ध्वनियों का विकास किया था और इसीलिए ऐसा रूपान्तर उसके लिए स्वाभाविक था। आर्य द्रविड भाषाओं में च वर्गीय ध्वनियों की स्थिति पर विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इन ध्वनियों के विकास केन्द्र उत्तर पश्चिमी प्रदेशों में थे। यह छ ध्वनि जनपदीय भाषाओं के अंतस्तल में ऐसी व्यापी है कि बच्चे स का उच्चारण न कर पाने पर छ बोलते हैं। डा० सुभद्र झा ने मिथिला के बच्चों में इस प्रवृत्ति को लक्ष्य किया है पर वह प्रवृत्ति हिन्दी प्रदेश के प्राय सभी जनपदों में पाई जाती है। बच्चों के अलावा जहाँ वयस्कजन स की जगह छ बोलते हैं, वहाँ वे उच्चारण की एक प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हैं। गुजराती, राजस्थानी, बँगला मैथिली, पहाड़ी भाषाएँ मध्यदेश को घेरे हुए हैं। च वर्गीय ध्वनियाँ उन आर्य भाषाओं की देन हैं जो मध्यदेश के परिवेश में बोली जाती हैं।

डा० सुभद्र झा ने श ष स के छ में बदलने के जो उदाहरण दिए हैं, उनमें अनेक ऐसे हैं जो अवधी के क्षेत्र में नहीं सुने जाते। सप्तपर्ण से छतवन, शौच से छौंच शावक से छौंडा, सूतक से छुतका श्रम से छरम। इस प्रवृत्ति ने हिन्दी प्रदेश की जनपदीय भाषाओं को कितना प्रभावित किया है उसका प्रमाण यह है कि संस्कृत षष का छ वाला रूपान्तरण सर्वत्र प्रचलित है और हिन्दी प्रदेश से बाहर बँगला आदि में छ वाले रूपों का चलन है। इस प्रसंग में क्ष (क+ष) के रूपान्तर भी दर्शनीय हैं। मागधी भाषाओं की यह विशेषता है कि संस्कृत के जिन शब्दों में क्ष है उनके तद्भव रूपों में ख या क्ख बोला जाता है। यह प्रवृत्ति सर्वाधिक संगत रूप में बंगला में पाई जाती है। संस्कृत क्षेत्र के तद्भव रूप खेत का जो व्यापक व्यवहार होता है, वह पश्चिमी भाषाओं पर मागधी प्रभाव का पुष्ट प्रमाण है। मैथिली और बँगला में यह अन्तर है कि मैथिली में बहुत जगह क्ष ध्वनि, अवधी के समान छ रूप में ग्रहण की जाती है। डा० सुभद्र झा ने लिखा है कि मैथिली के तद्भव शब्दों में तो क्ष के स्थान पर ख प्रतिष्ठित हुआ है किन्तु अर्ध-तत्सम शब्दों में उसकी जगह छ का व्यवहार होता है। इस प्रकार क्षेत्र का तद्भव रूप तो हुआ खेत किन्तु उसका अर्ध तत्सम रूप हुआ छेत्र। तद्भव रूप पुराने हैं, वे मूल मागधी प्रकृति की ओर संकेत करते हैं। अर्ध तत्सम रूपों का व्यवहार वे लोग करते हैं जो संस्कृत उच्चारण के और समीप पहुँचना चाहते हैं किन्तु भाषा की ध्वनि प्रकृति से विवश होकर अर्ध तत्सम अवस्था में रह जाते हैं। पक्ष से पच्छ, वक्ष से बिरिछ रक्षपाल से रछपाल अर्धतत्सम रूप कहे गए हैं। इसी प्रकार छमा, रच्छा आदि शब्द हैं। अवधी में ये सब शुद्ध तद्भव रूप माने जाएँगे। अशुद्ध अर्ध तत्सम रूप वे हैं जहाँ पंडित जी इच्छा को इक्षा, और आगरे के बहुत से विद्यार्थी छात्र शब्द को बोलते तो छात्र ही हैं पर लिखते हैं क्षात्र।

क्ष दो ध्वनियों का संयुक्त रूप है। क और ष में दूसरी ध्वनि ख में बदलती है।

इसीलिए क्ष् के स्थान मे क्ख् का भी व्यवहार होता है। हिन्दी भाषा समुदाय म व्यजन द्वित्व हटाकर बहुधा एक व्यजन स काम लिया जाता है। जहा क्ष नही है, केवल ष् हे, वहा भी ख का व्यवहार मागधी प्रवृत्ति का परिणाम है। इस प्रकार भाषा के लिए भाखा का व्यापक व्यवहार हुआ, भाछा जैसे रूप का चलन कही दिखाई नही दता। सख्यासूचक छह शब्द का व्यवहार ष् छ समीकरण का अन्यतम उदाहरण ह।

मगही और मैथिली मे मुख्य भेद हे और छि क्रियारूपो को लेकर हे। दोनो ही रूप मूल मागधी प्रवृत्ति से बाहर के है। जैसे क्ष स क्ख, ष से ख्, वैसे ही यदि दन्त्य स को बदलना है तो उसकी जगह ख छ या फिर उससे मिलती जुलती ध्वनि श् का व्यवहार होना चाहिए। तब प्राचीन मागधी के ध्वनितन्त्र की आन्तरिक सगति प्रमाणित होगी। एसा परिवतन असमिया भाषा म होता है। जो लोग ह ध्वनि का व्यवहार करने के आदी हैं, उन्हें स् ध्वनि वाले सस्कृत शब्दो के असमिया रूपो म ह सुनाइ दगा। डा० सुभद्र झा ने असमिया के लिए लिखा है कि उसमे स् ध्वनि सवत्र ह् मे बदल जाती है, पर *असमिया म स के स्थान पर सघर्षी ख का व्यवहार होता ह जो ह से भिन्न है।* सभव है मूल मागधी प्रवृत्ति स् को ख् म बदलन की हो, पश्चिमी प्रभाव म स्पश ख न सघर्षी ख् का स्थान लिया हो। इतना ध्यान रखना ह कि असमिया मे तालव्य श् का अभाव है पर यह ध्वनि प्राचीन मागधी म अवश्य थी। पुन हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्राचीन मागधी भाषा-समुदाय म एक वग श ध्वनि वाला था, दूसर म इस ध्वनि का अभाव था, एक वग किसी शब्द म स सुन कर उस श बना लेता था, दूसरा वग उसे ख बोलता था।

मैथिली म छ क्रिया के बदले ह क्रिया का व्यवहार भी होता ह यह तथ्य महत्वपूर्ण है। डा० सुभद्र झा ने लिखा है कि बोलियो के स्तर पर मैथिली म ह वाले क्रियारूप मिलते है यद्यपि वे बिल्कुल मगही रूपो जैसे नही होते। यह बात उन्होने होना क्रिया के प्रसग मे कही है। ह क्रिया का व्यवहार मैथिली म मगही प्रभाव का परिणाम है। बंगला मे इस क्रिया का व्यवहार नही होता। यह भी उल्लेखनीय है कि मगही म स क्रिया सवत्र ह रूप म विद्यमान नही है। इसका एक रूपान्तर थ ह। उडिया और बँगला म इस क्रिया का व्यवहार अधिक होता ह। डा० सुभद्र झा न दक्षिणी भागलपुर दक्षिणी मुगर की छिका-छिकी बोली के बारे मे लिखा है कि इसमे मानक भाषा का थीक रूप छीक, छिका आदि बोला जाता है। छीक और थीक दोनो रूपो का आधार सीक है। जैसे स ध्वनि का एक रूपान्तर महाप्राण तालव्य छ है, वैसे ही दूसरा दन्त्य रूपान्तर थ् भी महाप्राण है। जैसे द्रविड भाषाएँ स को च रूप म ग्रहण करती हैं वैसे ही व स को त् रूप में भी ग्रहण करती हैं। दोनो रूपान्तर अल्पप्राण हैं। इसलिए थ वाला रूपान्तर भी द्रविड नही है। स ध्वनि को आयभाषाओ का एक वग छ रूप म, दूसरा ख रूप मे, तीसरा ह रूप मे, चौथा थ् रूप म ग्रहण करता है। इन सभी रूपान्तरो म महाप्राणता विद्यमान है। इसका कारण यह है कि आयभाषाओ के विभिन्न वर्गों की सामान्य विशेषता है महाप्राणता। सभी रूपान्तरो म महाप्राणता का होना और द्रविड भाषाओ म इन वर्गों को अलग करना है और इस

कारण हम इन पाचीन भापाआ को आय समुदाय के अतर्गत मानते है।

यहा ह् ध्वनि के बारे मे कुछ देर और विचार करना चाहिए। यद्यपि इडो यूरोपियन परिवार की बहुत सी प्राचीन और नवीन भाषाओ म इस ध्वनि का व्यवहार होता है, फिर भी ऐतिहासिक भापाविज्ञान मे इसे आदि इडोयूरोपियन भाषा की मूल ध्वनि नही माना गया। इसका एक कारण यह हो सकता है कि सस्कृत के जिन शब्दो म इस ध्वनि का व्यवहार होता है, वह बहुधा किसी अय मूल ध्वनि का परिवर्तित रूप सिद्ध होती है। घ ध भ स ध्वनिया सर्वाधिक ह म बदलती है, विशेप रूप से जब व दो स्वरो के बीच म प्रयुक्त होती हैं। यह व्यजना के स्पश तत्व को लोप करन और उसे सघर्षी रूप दन का परिणाम है। यह प्रवृत्ति कुछ द्रविड भापाआ म भी है और हो सकता है इसका कारण नागभापाआ का प्रभाव हो। किन्तु जब कोई भाषा किसी इतर ध्वनि को अपनाती है तो उसका रूप परिवतन अपनी ध्वनि प्रकृति के अनुकूल करती है। यह असम्भव है कि जो प्राचीन आयभाषाएँ घ ध भ स् को ह म बदलती रही है, उनके ध्वनि तत्र की एक मूलभूत ध्वनि ह् न रही हो। व स को ह म इसलिए बदलती थी कि ह् उनके लिए सुगम ध्वनि थी, इन भापाआ के बोलन वाले ह् ध्वनि क उच्चारण के अभ्यस्त थे। यह सम्भव है कि मध्य देश की जिस भापा के आधार पर सस्कृत का निमाण हुआ है उसके ध्वनि तत्र म मूलत ह् ध्वनि न रही हो। किन्तु अवस्ता की भाषा म जो ह की भरमार है, ग्रीक, लैटिन, जमन आदि म जो ह का व्यवहार होता है, और बहुधा मूल स ध्वनि के स्थान पर होता है, उससे इडोयूरोपियन परिवार म ह के प्राचीन और व्यापक प्रसार क बारे म सन्देह नही रह जाता। राजस्थान, पजाब, कश्मीर, गुजरात आदि प्रदेशो की अनेक बोलिया म बहुत से शब्द ऐसे है जिनम स् की जगह ह बोला जाता है। यह आर्येतर भापाओ के प्रभाव का परिणाम है यह मानने का कोई कारण नही है। द्रविड, कोल और नागभापाओ म ह् ध्वनि का सीमित व्यवहार होता है और विश्लेपण से विदित होता है कि उनम इस ध्वनि का प्रवश आयभापाओ के प्रभाव के कारण हुआ है। सस्कृत तथा आधुनिक आयभापाआ म जहा ह् ध्वनि का लोप होता है वहा इसका कारण आर्येतर प्रभाव है, ऐसा जरूर माना जा सकता है।

बँगला और मथिली मगही म एक महत्वपूर्ण भेद महाप्राणता को लेकर है। ह के अतिरिक्त अनेक स्थितिया म सघोप या अघोप महाप्राण ध्वनियो की महाप्राणता का लोप हो जाता है। इसका कारण मिथिला-मगध की अपक्षा बगाल पर द्रविड प्रभाव की अधिकता है। इसम सन्देह नही कि प्राचीन मागधी मे महाप्राण ध्वनिया अय आय भापाओ के समान ही थी। बँगला न मागधी की कुछ विशेपताओ की रक्षा की है तो कुछ वहा लुप्त हो गई है। मध्यवर्ती ड हिन्दी म उत्क्षिप्त बोला जाता है। यही स्थिति बँगला की है। मैथिली की अपक्षा अवधी म इसका व्यवहार कम होता है। डा०सुभद्र झा न कड़ाही फाडब, बाडी, बड (बरगद) कपडा, गाडा को मैथिली शब्दावली म गिना है। ये रूप परिनिष्ठित हिन्दी की प्रकृति के अधिक अनुकूल है, अवधी म इन सभी शब्दो के ड के स्थान पर र का व्यवहार होगा। ड ध्वनि अवधी शब्दो म प्रयुक्त होती है किन्तु

मानक हिन्दी की अपेक्षा कम होती है। इस संदर्भ में बँगला, अवधी की अपेक्षा, मानक हिन्दी से अधिक मिलती जुलती है। ड़ के समान मध्यवर्ती ढ़ भी मानक हिन्दी, अवधी और मैथिली में उत्क्षिप्त बोला जाता है किन्तु बँगला में उसकी महाप्राणता का लोप हो जाता है। यथा **पढना** क्रिया का ढ़ बँगला में ड़ बोला जाता है। डा० सुभद्र झा ने **पढब, गढ़ब, काढब, काढा, बाढी, दाढ, कोढी, साढे** आदि रूप मैथिली शब्दावली में गिनाए है। ये सभी शब्द मानक हिन्दी और अवधी आदि जनपदीय उपभाषाओं में बोले जाते है। **पढ़ब** की जगह मानक हिन्दी में **पढना** होगा, इतना ही अन्तर है, क्रियामूल **पढ** का ढ़ ज्यों का त्यों रहता है। पर ये रूप बँगला में नहीं मिलते। इसका कारण यही है कि महाप्राणता के मूल केन्द्रों से बँगला का क्षेत्र दूर है। डा० सुभद्र झा ने उचित लिखा है कि बँगला मराठी, गुजराती, असमिया और नेपाली की तुलना में महाप्राणता का लोप मैथिली में कम हुआ है। मैथिली **माँझ**(मध्य), बँगला **मेजो** मैथिली **साँझ** गुजराती **सांज**, मैथिली **बूझ**, नेपाली **बुजवु**, मैथिली **चीखब** (चखना), असमिया **चाके**। जिन भाषाओं में महा-प्राणता का लोप दिखाई देता है वे सब हिन्दी परिवृत्त की भाषाएँ है उनमें महाप्राणता के लोप का कारण यह है कि हिन्दी प्रदेश द्रविड मण्डल से घिरा हुआ है और हिन्दी परिवृत्त पर इस मण्डल का प्रभाव है।

अवधी की अपेक्षा मैथिली में महाप्राणता क्षीण होती है और कुछ शब्द इस तरह बोले जाते है जिस तरह उनका उच्चारण मानक हिन्दी के पछाहीं रूपों में होता है। **हाथ** को **हात** कहना मैथिली और इन पछाहीं रूपों में सामान्य वृत्ति का परिचायक है। डा० सुभद्र झा ने **हेठा, हाथी** जैसे शब्दों को मैथिली में **हेट, हाती** रूप में बोला जाता माना है। उनका कहना है कि आधुनिक मैथिली में शब्द के अन्तिम वर्ण की महाप्राण ध्वनि को त्यागने की प्रवृत्ति बढ रही है किन्तु वह बहुत सीमित है। ऐसी प्रवृत्ति हिन्दी के पछाँही रूपों तथा बुन्देलखडी आदि पश्चिमी जनपदीय उपभाषाओं में भी दिखाई देती है।

मैथिली भाषा के ध्वनितन्त्र के बारे में डा० सुभद्र झा ने एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया है। इसका सम्बन्ध कुछ शब्दों में ध्वनियों के स्वच्छन्द सचरण से है। ऐसा कुछ ही शब्दों में होता है पर यह उस युग की प्रवृत्ति का अवशेष है जब विभिन्न केन्द्रों में विभिन्न ध्वनियों का विकास हो रहा था और इनका अर्थविच्छेदक व्यवहार अभी निश्चित न हुआ था। उन्होंने उदाहरणरूप जो शब्द दिए है, उनमें ऐसा स्वच्छन्द विनिमय ओष्ठ्य और कण्ठ्य ध्वनियों के बीच होता है जैसे एक रूप **उबरा** दूसरा रूप **उगरा**। दोनों का एक ही अर्थ है—उर्वर। मैथिली रूपों का मूलाधार **उवर** शब्द माना गया है। व का ब् में परिणत होना सहज है किन्तु **ब** के स्थान पर **ग** का व्यवहार आश्चर्यजनक है। इसका कारण यह हो सकता है कि मैथिली भाषा समवाय में एक बोली ऐसी शामिल है जिसका सम्बन्ध कण्ठ्य ध्वनियों के विकास केन्द्र से था। इस कारण पुराने तद्भव रूपों में ही नहीं, उधार लिए हुए कुछ नये शब्दों में भी ओष्ठ्य ध्वनि के बदले कण्ठ्य ध्वनि का व्यवहार होता है यथा **मजबूत** के बदले **मजगूत** रूप का व्यवहार। इस **मजगूत** रूप को यह कहकर टाला जा सकता है कि गाँव के लोगों ने

मूल शब्द का सही उच्चारण सुना न होगा, उसका अनुकरण न कर पाए होंगे। किन्तु यह परम्परा काफी पुरानी है। डा० झा ने संस्कृत **वक** के गौथिक प्रतिरूप **वल्फोस** (अंग्रेजी **वुल्फ**) का उल्लेख उचित ही किया है। भाषाशास्त्री वाकरनागल के आधार पर उन्होंने एक ही भाषा—संस्कृत—में स्वच्छन्द संचरण के उदाहरण दिए हैं: **कुलिका—पुलिका** (एक चिड़िया), **ककर्दु—कपर्द** (एक जलचर)। इस संदर्भ में **स्तम्भ** और **स्कम्भ** का उदाहरण भी स्मरण करें जिसने ब्रुगमान के लिए यह समस्या खड़ी की थी कि इनमें मूलरूप किसे माना जाय। इस प्रकार **मजबूत** और **मजगूत** की समस्या देहातियों के अज्ञान का सहारा लेकर टाली नहीं जा सकती। उसका एक ही समाधान समझ में आता है और वह यह कि विभिन्न ध्वनियों का विकास विभिन्न केन्द्रों में हुआ, इन केन्द्रों के परस्पर सम्पर्क से आगे चल कर भाषाओं ने इस ध्वनितन्त्र का निर्माण हुआ जिनमें विभिन्न केन्द्रों के कण्ठ्य, ओष्ठ्य, दन्त्य तथा महाप्राण, अल्पप्राण, सघोष, अघोष, ध्वनिरूप समेट लिए गए। मैथिली के उदाहरणों से ऐसा लगता है कि पहले जो भेद स्थापित किया गया वह दन्त्य और अदन्त्य ध्वनियों के बीच था। इसी कारण क वर्गीय और प वर्गीय ध्वनियाँ स्वच्छन्द संचरण की स्थिति में दिखाई देती हैं किन्तु त वर्गीय ध्वनियाँ इस व्यापार से बाहर रहती हैं। उधर संस्कृत के **स्कम्भ** और **स्तम्भ** रूपों को देखें तो **त वर्गीय** और **क वर्गीय** ध्वनियाँ स्वच्छन्द संचरण में हैं, प वर्गीय ध्वनियाँ इस व्यापार से बाहर हैं। किन्तु संस्कृत में ही **स्कम्भ** के साथ **स्कन्ध** रूप भी है और मूलतः दोनों का अर्थ एक ही है। **स्तम्भ** के साथ **स्तब्ध** रूप भी यहाँ कभी प्रचलित था। खड़े होने के लिये अंग्रेजी क्रिया स्टैण्ड उसी **स्तब्ध** का प्रतिरूप है जैसे **स्तम्भ** का अंग्रेजी प्रतिरूप **स्टम्प** है। इसलिए यह मानना होगा कि कण्ठ्य, ओष्ठ्य और दन्त्य तीनों वर्गों की ध्वनियों में स्वच्छन्द संचरण की अवस्था कभी थी। उनका विकास भिन्न केन्द्रों में हुआ, क्रमशः एक ही ध्वनितन्त्र में उनका अर्थविच्छेदक व्यवहार होने लगा।

मैथिली के कुछ और उदाहरण देखें। संस्कृत **स्खलयति** से **खोलब** और **फोलब**, **उद्वहति** से **उघब** और **उभब**, **उद्घटते** से **उघरब** और **उभरब**, संस्कृत में ही **उत्कटति** और **उत्पटति**, दो रूपों से मैथिली में **उकटब** और **उपटब**, **उत्खनति** से **उखरब** और **उफरब**, **उद्वर्तन** से **उबटन**, **उकटन**। इनके अतिरिक्त **ढेप** (ढेर) **ढेकुरी** (ढेरी), **चेकी चेपी** (स्तूप), **उभी उघी**, (छेदवाला बाम)। जैसा कि अन्य प्रसंगों में बताया गया है, ध्वनियों का ऐसा स्वच्छन्द संचरण उन भाषाओं में सबसे अधिक पाया जाता है जिन्हें मानक रूप प्राप्त नहीं हुआ या मानक रूप में जिनका व्यवहार कम हुआ अथवा जो अन्य मानक भाषाओं से कम प्रभावित हुई। ध्वनियों के स्वच्छन्द संचरण का तथ्य ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की शास्त्रीय रूढ़ियों का खंडन करता है। किसी आदि भाषा के विकसित और पूर्ण प्रतिष्ठित ध्वनितन्त्र से उसकी शाखाओं प्रशाखाओं के ध्वनितन्त्रों का निर्माण नहीं हुआ। ध्वनियों के स्वच्छन्द संचरण का तथ्य भाषाओं की विकास प्रक्रिया समझने में सहायक होता है। अनेक केन्द्रों में विकसित होने वाली ध्वनियाँ, विभिन्न गण समाजों के परस्पर सम्पर्क में आने पर मिलेजुले ध्वनितन्त्रों का निर्माण

करती है। ध्वनितंत्र के विकास की उस आदिम अवस्था की झलक मथिली म विद्यमान है।

क-स प वर्गों की भाषाओं को आगे चलकर च वग केंद्रित भाषाओं ने प्रभावित किया। इस कारण मैथिली म कुछ एसे शब्द मिलते हैं जिनम झ ध्वनि प्रयुक्त है किन्तु इन शब्दों के मूल संस्कृत रूप नहीं मिलत, केवल प्राकृत रूप मिलत है। सामान्यत यह माना जाता है कि आधुनिक आयभाषाओं मे जहाँ झ ध्वनि है, वहाँ मूलरूप म घ ध्वनि थी। संस्कृत मे ही कुछ शब्द झ ध्वनि वाले हैं जिनके मूल घ वाले रूप नहीं मिलते। यदि आधुनिक आयभाषाओं म झ ध्वनि वाले शब्द गिन जाएँ और उनम इसी कोटि के स्थान सूचक नाम भी जोड़ लिए जायँ तो राग झिंझोटी म लेकर झाँसी और झीझक तक देशज शब्दों की एक स्वतन्त्र लम्बी नाम माला तयार हो जाएगी। अन्य वर्गों की ध्वनियो के समान च वर्गीय ध्वनियो का विकास भी कुछ विशेष केन्द्रों म हुआ। इण्डोयूरोपियन भाषाओं के विकास काल म ये केन्द्र विद्यमान थे यह निश्चित है भले ही कल्पित आदि इण्डोयूरोपियन भाषा के ध्वनितंत्र म च वर्गीय ध्वनियो को स्थान न मिले। डा०सुभद्र झा ने कुछ शब्दों के उदाहरण दिए हैं जो प्राकृत और मथिली म हं किंतु संस्कृत म जिनके पूवरूप नहीं हैं प्राकृत झोलीम झुटठ झिङ्गुर के मथिली प्रतिरूप झोडी झूठ, झिङ्गुर हैं। मथिली का गहरा सम्बन्ध च वर्गीय केन्द्रों मे रहा है। इसीलिए घ ध्वनि झ म बदलती है, स ध्वनि छ रूप म ग्रहण की जाती है, संयुक्त ध्वनि क्ष को इस ध्वनि के अनुसार छ या च्छ रूप म ग्रहण करना स्वाभाविक ह। भ का एक स्रोत घ भी है, इसका उल्लेख पहले हो चुका है।

मैथिली और बँगला म एक महत्वपूर्ण भेद यह है कि मथिली शब्द अजन्त होते है जबकि बँगला मे हलन्त रूप काफी हैं। एसा भेद भोजपुरी और मथिली म भी है। डा० सुभद्र झा ने लिखा है कि मैथिली शब्दों के अन्त म व्यंजन नहीं आता किन्तु भोजपुरी शब्दो के अन्त म स्वर और व्यंजन दोनों आते है। भोजपुरी और मथिली दोनों म हम कहब (मैं कहूँगा)—इस वाक्य का व्यवहार हो सकता है किन्तु मथिली म दोनों शब्दों के अन्त म, हल्का अकार सुनाई देगा भोजपुरी म म और ब हलन्त होंगे। शब्दों के अजन्त रूपों का चलन मैथिली को अवधी से मिलाता है हलन्त रूपों का चलन भोजपुरी को पश्चिमी आय भाषाओं से मिलाता है।

मैथिली और बँगला मे एक महत्वपूर्ण भेद बलाघात को लेकर है। जैसा कि डा० सुभद्र झा ने लिखा है, सामान्यत बँगला शब्दों मे बलाघात पहले वण पर होता है, मथिली म भिन्न वर्णों पर। डा०झा ने यह भी ठीक लिखा है कि बलाघात के मामले मे मथिली और अवधी एक दूसरे से मिलती जुलती है। डा० झा ने मथिली के अन्तगत जो शब्द दिए है, उनम अकास, रजपूत, नरायन, बखान आदि हैं। इनके मूल रूपों मे बलाघात आदि वण पर था पर मैथिली रूपों मे वहाँ से हटकर वह दूसरे वर्णों पर आ गया है। परिणाम यह कि आदि वण का दीघ स्वर ह्रस्व हो गया है। ये सारे रूप अवधी म स्वीकृत हैं। मथिली म बलाघात की अनेक प्रवृत्तियो का मिश्रण दिखाई देता है।

सर्वनाम हम या एक रूप हाम, दूसरा रूप हमा भी मिथिला की बोलियों में प्रचलित है। डा० सुभद्र झा के दिए हुए हम, हाम, हमा, ये तीन रूप तभी सम्भव हैं जब बलाघात भिन्न वर्णों पर हो। बलाघात से स्वर की लघुता और गुरुता का कितना गहरा सम्बन्ध है, यहाँ देखा जा सकता है। अधिकांश भाषाविज्ञानी मानते हैं कि प्राकृत और अपभ्रंश में व्यंजन द्वित्व की प्रवृत्ति थी, आधुनिक आर्यभाषाओं में उसका सरलीकरण हुआ। वे देखें कि मैथिली में हम का एक प्रतिरूप हम्म भी है। महाप्राणता के लोप की प्रवृत्ति जैसे विषम है, वैसे ही बलाघात की प्रवृत्ति भी एक सी नहीं है। एक रूप हुन्ह, दूसरा रूप हुन, तीसरा रूप उन। ये तीनों रूप एक ही क्षेत्र की बोलियों में हैं। उन पश्चिमी हिन्दी का रूप है, हुन्ह अपनी महाप्राणता से प्राचीनता का परिचय देता है। इसी प्रकार कारक चिह्नों में लइ, लै ले और कइ, क, के तीन तीन रूप हैं। के और ले सीधे पश्चिमी ध्वनि वृत्ति के अनुकूल हैं, लइ और कइ कोसली और मागधी वृत्ति के अनुरूप हैं, ल और क व्रज प्रवृत्ति के अनुरूप हैं। जिस प्रदेश की उर्वर भूमि में अनेक गणसमाज सिमट आएँगे वहां उनकी बोलियों के अवशेष कहीं न कहीं मिलेंगे ही। इसीलिए परिनिष्ठित भाषा के लिखित मानक रूप के आधार पर भाषाओं के विकास का विश्लेषण एकांगी होता है।

(ख) मैथिली शब्दतंत्र

शब्दतंत्र का अध्ययन करते समय सबसे पहले सर्वनामों पर विचार करें। ऊपर हुन्ह और उन के उदाहरण में महाप्राण और अल्पप्राण ध्वनियों के भेद से वैकल्पिक रूप बने हैं। आधुनिक मैथिली या बँगला में जहां महाप्राण ध्वनि न हो वहां यह न मान लेना चाहिए कि वैसा रूप सदा ही अल्पप्राण ध्वनि वाला रहा होगा। आधुनिक मैथिली में ओ, ऊ, ई, संकेतक सर्वनामों का व्यवहार होता है। ये सभी रूप पहले महाप्राण ध्वनियों से युक्त थे। पुरानी मैथिली के लिए डा० झा ने लिखा है कि कर्त्ता रूप में से सर्वनाम का व्यवहार होता था। जैसा कि विदित है यह सर्वनाम बँगला में अब भी प्रयुक्त होता है और उसका प्रतिरूप सो हिन्दी प्रदेश की बोलियों में प्रयुक्त होता है। पुरानी और आधुनिक मैथिली का ओ इसी सो का विकास है। डा० झा ने पुरानी मैथिली के से सर्वनाम को दूर की वस्तु का संकेतक कहा है। इसके बाद ओ को भी पुरानी मैथिली में दूर का संकेतक बताया है। इस ओ सर्वनाम के भी हुन्हि, हुनि, हुन, उन जैसे रूप प्राचीन मैथिली में मिलते हैं। इससे यह धारणा पुष्ट होती है कि से के समान एक दूसरे सर्वनाम रूप सो का भी चलन था। स का परिवर्तन ह ध्वनि में हुआ तब हो रूप बना और महाप्राणता के लोप से ओ रूप रह गया। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि आधुनिक मैथिली में सामान्य रूप के साथ कभी-कभी नियक भाव में महाप्राण ध्वनि वाला रूप मिलता है यथा ओ सर्वनाम के साथ हुन रूप का व्यवहार होता है। निकटवर्ती व्यक्ति सूचक सर्वनाम के लिए पुरानी मैथिली में हिंनि, हिन, रूप हैं। आधुनिक मैथिली में ई रूप है किन्तु तिर्यक रूप हिन का व्यवहार भी होता है। मिथिला क्षेत्र की बोलियों में कहीं

सवनाम हम का एक रूप हाम, दूसरा रूप हमा भी मिथिला की बोलियो म प्रचलित है। डा० सुभद्र झा के दिए हुए हम, हाम हमा, ये तीन रूप तभी सम्भव हैं जब बलाघात भिन्न वर्णो पर हो। बलाघात म स्वर की लघुता और गुरुता का कितना गहरा सम्बन्ध है, यहा देखा जा सकता है। अधिकाश भाषाविज्ञानी मानते है कि प्राकृत और अपभ्रश मे व्यजन द्वित्व की प्रवत्ति थी, आधुनिक आयभाषाओ म उसका सरलीकरण हुआ। व देखें कि मैथिली मे हम का एक प्रतिरूप हम्म भी है। महाप्राणता के लोप की प्रवत्ति जैसे विषम है, वैसे ही बलाघात की प्रवत्ति भी एक सी नही है। एक रूप हुन्ह दूसरा रूप हुन, तीसरा रूप उन। ये तीना रूप एक ही क्षेत्र की बोलियो म है। उन पश्चिमी हिन्दी का रूप है, हुन्ह अपनी महाप्राणता स प्राचीनता का परिचय देता है। इसी प्रकार कारक चिह्नो मे लइ, ल ले आर कइ, क के तीन तीन रूप हैं। के और ले सीधे पश्चिमी ध्वनि वृत्ति के अनुकूल हैं, लइ और कइ कोसली और मागधी वृत्ति के अनुरूप है, ल और क व्रज प्रवृत्ति के अनुरूप हैं। जिस प्रदश की उवर भूमि मे अनेक गणसमाज सिमट आएँगे, वहाँ उनकी बोलियो के अवशेष कहीं न कहीं मिलेंगे ही। इसीलिए परिनिष्ठित भाषा के लिखित मानक रूप के आधार पर भाषाओ के विकास का विश्लेषण एकागी होता है।

(ख) मैथिली शब्दतन्त्र

शब्दतन्त्र का अध्ययन करत समय सबसे पहले सवनामो पर विचार करें। ऊपर हुन्ह और उन के उदाहरण मे महाप्राण और अल्पप्राण ध्वनियो के भेद से वैकल्पिक रूप बने हैं। आधुनिक मैथिली या बँगला मे जहा महाप्राण ध्वनि न हो वहाँ यह न मान लेना चाहिए कि वैसा रूप सदा ही अल्पप्राण ध्वनि वाला रहा होगा। आधुनिक मैथिली मे श्रो, ऊ, ई, सकेतक सवनामो का व्यवहार होता है। ये सभी रूप पहले महाप्राण ध्वनियो से युक्त थे। पुरानी मैथिली के लिए डा० झा न लिखा है कि कत्ता रूप मे से सवनाम का व्यवहार होता था। जसा कि विदित ह यह सवनाम बँगला मे अब भी प्रयुक्त होता है और उसका प्रतिरूप सो हिन्दी प्रदेश की बोलियो म प्रयुक्त होता है। पुरानी और आधुनिक मैथिली का श्रो इसी सो का विकास है। डा० झा न पुरानी मैथिली के से सवनाम को दूर की वस्तु का सकेतक कहा है। इसके बाद श्रो को भी पुरानी मैथिली म दूर का सकेतक बताया है। इस श्रो सवनाम के भी हुहि, हुनि, हुन, उन जैसे रूप प्राचीन मैथिली मे मिलते है। इससे यह धारणा पुष्ट होती है कि से के समान एक दूसरे सवनाम रूप सो का भी चलन था। स का परिवतन ह ध्वनि म हुआ तब हो रूप बना और महाप्राणता के लोप से श्रो रूप रह गया। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि आधुनिक मैथिली मे सामान्य रूप के साथ कभी-कभी तियक भाव म महाप्राण ध्वनि वाला रूप मिलता है यथा श्रो सवनाम के साथ हुन रूप का व्यवहार होता है। निकटवर्ती व्यक्ति सूचक सवनाम के लिए पुरानी मैथिली मे हिनि, हिन, रूप हैं। आधुनिक मथिली म ई रूप है किन्तु तियक रूप हिन का व्यवहार भी होता है। मिथिला क्षेत्र की बोलियो मे कही

वही महाप्राण और अल्पप्राण रूप एक साथ चलते हैं। छिकाछिकी बोली मे उनी अं
हुनी, ऊ और हुउ—दोनो तरह के रूप दूर सकेतक सवनाम के सामान्य रूप हैं। इ
प्रकार इस बोली म तियक रूप हु ह, हुन, उ ह, उन, सभी वैकल्पिक रूप विद्यमान है
ये रूप मानक हिन्दी म उनको, उन्हें जैसे रूपो के विकास को समझने म सहायता देते है
इसी प्रकार निकट सकेतक के सामान्य रूप छिकाछिकी मे इनी और हिनी हैं, तिय
भाव मे हिह, हिन, इन रूप है। हिन्दी के इनको और इन्हें जसे रूपा का गहरा सम्ब
मथिली के इन सवनाम रूपो से है। पूर्वी अचल की भाषाओ न पश्चिमी आय भाषाओ
की अपेक्षा महाप्राण ध्वनियो की रक्षा अधिक की है। मिथिला के आगे पूव म मह
प्राणता का लोप होने लगता है। मिथिला के भीतर जहा मानक मैथिली मे महाप्रा
ध्वनि नही है, वहा कही न कही उसकी किसी बोली म महाप्राण ध्वनि वाला रूप मि
जाएगा।

महाप्राण ध्वनिया वाले इन रूपा का महत्व यह है कि उनसे प्राचीन सवना
मूलो को पहचानने मे मदद मिलती है। कोल भाषाआ तथा मैथिली के सवनामा
बडी समानता है। यह समानता देखकर भाषाविज्ञानी तुरत इस नतीजे पर पहुँचता
कि मैथिली पर कोल भाषाआ का प्रभाव है। जैसी समानता मैथिली और कोल भाषाअ
के कुछ सवनामा मे है, वैसी समानता यूरप की अनेक भाषाओ और भारतीय को
भाषाआ के सवनामा मे भी है, इस बात की ओर उसका ध्यान नही जाता। भाषाशास्त्र
कुइपर को भेंट किए हुए ग्रथ प्रतिदानम मे के द ब्रीज ने कोल भाषाआ के सवनाम
पर एक लेख लिखा है—मुन्डा प्रोनाउन्स इन न्यू इन्डोएयन। इसमे उन्होने यह म
प्रकट किया है कि भारतीय आय भाषाआ के आधार पर मैथिली की अपनी विशेषताअ
का उल्लेख नही हो सकता। सवनामो के प्रसग म उन्होने दूरी तथा समीपता के सकेत
सवनामो को लिया है। इनके साथ भोजपुरी, मगही, बँगला और उडिया के सवनाम
को भी उन्होने लिया है। इनके साथ सथाली के हिनि, इनि, हुनि, उनि और सथाली
अलावा मुडारी आदि अन्य कोल भाषाओ से भी सवनाम रूप लिए है। इन रूपा
एक बात लक्ष्य करन की यह है कि जहा महाप्राण ध्वनि है, वहा वह केवल प्रथम वण
मे है। कोल भाषाएँ कभी महाप्राण ध्वनियो के प्रसार का केन्द्र नही रही। इसके विपरीत
उनमे अल्पप्राणता के लिए आग्रह है। इसलिए कोल भाषाओ मे ह मूलक सवनाम देख
कर पहले ही सतक हो जाना चाहिए कि महाप्राण ध्वनि के आधार पर सवनामो क
विकास इन भाषाओ मे हुआ कैसे। इसके अतिरिक्त मैथिली हु ह, हि ह जसे रूपा
दूसरे वण की महाप्राण ध्वनि पर ध्यान देना चाहिए। ब्रीज ने उक्त लेख मे भोजपुरी
हुहि, हिहि आदि रूप दिए है। कोल भाषाआ मे उन्हें कोई ऐसा रूप नही मिला जिसके
दूसरे वण मे ह ध्वनि हो। यदि मथिली और भाजपुरी ने कोल भाषाआ के सवनाम
लिए है तो मानना होगा कि या तो कोल भाषाओ मे मूल रूप रह नही और दूसरे वण
की महाप्राणता लुप्त हो गई या फिर मैथिली और भोजपुरी ने हिन, हुन रूप लेकर दूस
वण मे महाप्राणता अपनी ओर स जोड दी। यह वाले रूप ह सवनाम के आधार पर

बने हैं, इसका प्रमाण संस्कृत स से लेकर आधुनिक आर्य भाषाओं के से और सो सर्वनामों तक विद्यमान है। सें, सो, सी, सु, आदि के ही प्रतिरूप हे, हो, ही, हु आदि हैं और महाप्राणता का लोप होने पर ए, ओ, ई ऊ रूप बने हैं। स ध्वनि ह और त दो भिन्न रूपों में ग्रहण की जा रही है। डा० चाटुर्ज्या ने हिनि और तिनि जैसे रूपों का सम्बन्ध सिनि से जोड़ा था। यहाँ मूलरूप सिनि होगा जिससे तिनि और हिनि का विकास हुआ। किन्तु सिनि से हिन्हि रूप नहीं बन सकता।

सर्वनाम मूल स, सि, सु आदि के साथ व्यक्ति वस्तु-देश-काल सूचक ध चिह्न जोड़ा जाता था। स, सु आदि का विकास ह, हु, अ, उ आदि रूपों में हुआ पर ध का विकास एक ओर ह रूप में हुआ और दूसरी ओर महाप्राणता के लोप से द और त रूपों में। आर्य द्रविड भाषाएँ बहुत जगह एक अतिरिक्त नासिक्य ध्वनि का निवेश करती रही हैं यथा पथ के प्रतिरूप पंथ, समुद्र के प्रतिरूप समुंदर में। उसी तरह सर्वनामों में इध, उध के समानान्तर इंध, उंध रूप भी प्रचलित हुए। स्थानसूचक विशेषकों यहाँ वहाँ के बाँगरू प्रतिरूपों इंघे उंघे में यही प्रक्रिया दिखाई देती है। यहाँ व्यक्ति-वस्तु सूचक ध प्रत्यय है, ग्रीज ने अपने लेख में बँगला बोलियों से इंध, उंधे रूप दिए हैं। इन्हीं के अनुरूप सदनि नाम की कोल भाषा से हिंदे, हुंदे रूप दिए हैं। ये रूप देकर ग्रीज ने समस्या का समाधान ही प्रस्तुत कर दिया है। सघोष महाप्राण स्पर्श ध्वनि ध कोल भाषाओं के क्षेत्र से बाहर की ध्वनि है। ऐसी ध्वनियाँ केवल भारतीय आर्य भाषाओं में है। इसलिए बँगला के इंधे उंध का विकास सदनि के हिंदे हुंदे से नहीं हो सकता वरन् हिंदे हुंदे का विकास हिंधे हुंधे जैसे रूपों से हुआ है। हिंह हुंह के पूर्वरूप हिंध और हुंध हैं। इनके मूलरूप सिंध और सुंध हैं। देशकाल संकेतक शब्दों और सर्वनामों में गहरा सम्बन्ध है। सथाली के हिनि, हिन, हुनि सर्वनामों के साथ हेंते (इधर), होंते (उधर) रूप स्मरणीय हैं। जहाँ द का मूर्धन्यीकरण हुआ है वहाँ हेंडे, एंडे जैसे रूप भी प्रचलित हैं। त, द, ड, ह, एक ही मूल ध्वनि ध् का विकास हैं। इन सबमें आदिस्थानीय सर्वनाम-मूल स के अवशेष हैं। जैसा कि मगही के विवेचन में हमने देखा है, यह स ध्वनि छ और थ् में भी बदलती है। छ और थ वाले रूप कोल भाषाओं में नहीं हैं किन्तु मिथिला और मगध की बोलियों में हैं। इससे स मूलक सर्वनाम की सत्ता सिद्ध होती है।

यह मानने का कोई कारण नहीं है कि मैथिली तथा अन्य आर्य भाषाओं में सर्वनाम रूप कोल भाषाओं से आए हैं। ग्रीज ने ह-मूलक कोल भाषाओं के सर्वनाम दिए हैं और उनसे इंडोयरोपियन भाषाओं के सर्वनामों का सम्बन्ध नहीं देखा। इसलिए यहाँ नौर्वे और स्वीडन की भाषाओं के सर्वनामों पर दृष्टिपात करना उचित होगा। स्वीडन की भाषा में अन्य पुरुष सर्वनाम हन (पुंलिंग, एकवचन) और होन (स्त्रीलिंग, एकवचन) है। नौर्वे की भाषा में इनके प्रतिरूप हन और हुन हैं।

अन्य मागधी भाषाओं के समान मैथिली में भी लिङ्गभेद का प्रसार पश्चिमी भाषाओं के प्रभाव से सीमित रूप में हुआ है। अन्य मागधी भाषाओं की अपेक्षा मैथिली का पुराना लिखित साहित्य अधिक उपलब्ध है। ब्रजभाषा से प्रभावित होने के कारण

साहित्य की इस भाषा म बहुत जगह लिङ्गभेद है किन्तु समानान्तर रूपों म आधुनिक काल की मैथिली मे वैसा भेद नही है। यह देखकर स्वभावत भाषाविज्ञानी सोचते हैं कि मैथिली म पहले लिङ्गभेद था, आगे चलकर वह पूरी तरह तो नही मिटा किन्तु क्षीण अवश्य हो गया। अनेक बँगला भाषी विद्वान् उस भाषा को पुरानी बँगला कहते है जिसे मैथिली भाषी विद्वान पुरानी मैथिली कहते हैं। बँगला मे लिङ्गभेद शून्यवत है, इसलिए बँगला भाषी विद्वानो का यह सोचना और भी स्वाभाविक है कि पहले किसी समय बँगला मे लिङ्गभेद प्रचलित था आगे चलकर वह मिट गया। बँगला से मिलती-जुलती स्थिति मलयालम की है और मैथिली मे मिलती-जुलती स्थिति तमिल की है। किसी ने मलयालम के लिए यह दावा नही किया कि पुरानी मलयालम मे लिङ्गभेद वतमान था, आगे चलकर वह मिट गया। भारत के दो छोरो पर आयभाषा बँगला और द्रविड भाषा मलयालम लिङ्गभेदशून्य है। भारत को भाषायी क्षेत्र मान कर विभिन्न भाषा परिवारो की विशेषता पर एक साथ विचार करने म लाभ यह है कि बँगला और मलयालम जैसी आय द्रविड भाषाओ मे लिङ्गभेद की समस्या प्रादेशिक न रहकर अखिल भारतीय हो जाती है। लिङ्गभेद का प्रसार आय और द्रविड दोनो भाषा परिवारो मे समान केन्द्रो से हुआ है। ये केन्द्र उत्तर पश्चिमी भारत मे थे। इन केन्द्रो के समीप रहनेवाली गुजराती और मराठी भाषाओ म तीन लिङ्गो के भेद की विशेषता आज भी विद्यमान है। मूलत मानवीय और मानवेतर वस्तु जगत् मे भेद किया गया। ऐसा भेद द्रविड भाषाओ मे अब भी है। इसके अवशेष बँगला और मथिली मे जहाँ-तहाँ मिलत है। इस मूलभेद के आधार पर स्त्री, पुरुष और नपुसक, इन तीन तरह के लिङ्गो का भेद स्थापित हुआ। सस्कृत तथा आधुनिक आय भाषाओ मे लिङ्गभेद अशत प्राकृतिक है और अशत व्याकरणिक। नाम शब्दो से बाहर यह क्रियापदो को भी प्रभावित करने लगा। सस्कृत मे जहा यह भेद नही भी था, वहाँ हिन्दी ने उसे कायम किया। हिन्दी क्रियापदो मे **जाता है, जाती है जायगा जायगी, गया था, गई थी**, इसी विकास के परिणाम हैं। कही-कही हिन्दी उन रूपो म लिङ्गभेद नही करती जिनमे सस्कृत के लिए ऐसा भेद आवश्यक था। **सुन्दर लडका, सुन्दर लडकी**, यहाँ सुन्दर विशेषण मे लिङ्गभेद करना आवश्यक नही है पर **अच्छा लडका, अच्छी लडकी**, यहाँ लिङ्गभेद किया जाएगा।

डा० सुभद्र झा ने मथिली के सदभ म लिखा है कि मध्य भारतीय आय भाषा, अर्थात प्राकृतो, मे लिङ्गभेद अत्यन्त निबल हो गया था। इसके अतिरिक्त ध्वनितात्त्विक विकास ऐसा हुआ कि पुल्लिग और स्त्रीलिङ्ग रूपो का भेद क्रमश मिट गया। यदि प्राकृता से केवल बँगला मैथिली आदि भाषाओ का विकास हुआ हो, तो यह स्थापना मान्य होगी कि प्राकृतो मे लिङ्गभेद के निबल हो जाने से आधुनिक आय भाषाओ मे वह भेद नष्ट हो गया। किन्तु डा० झा जहाँ उक्त स्थापना प्रस्तुत करते हैं वहाँ मराठी, गुजराती और सिंहली भाषाओ का भी उल्लेख करत हैं जिनम तीनो लिङ्गो के भेद विद्यमान हैं। यह कमे हुआ कि उन्ही प्राकृतो मे मराठी और गुजराती का उद्भव हुआ,

उन्ही से बँगला और मैथिली का, और लिङ्गभेद की स्थिति दोना समुदायो मे नितान्त भिन्न है ? प्राकृतो मे लिङ्गभेद को लेकर कही वैसा अन्तर नही है जैसा आधुनिक आर्य भाषाओ के इन दो वर्गों मे पाया जाता है। आधुनिक आर्य भाषाओ म जहाँ भी संस्कृत से भिन्नता दिखाई दे, वहाँ भाषाविज्ञानी किसी आर्येतर प्रभाव की कल्पना कर लेते है। बँगला और मैथिली आदि मे लिङ्गभेद नही है तो यह तिब्बती-बर्मी भाषाओ का प्रभाव होगा, बिहार की भाषाओ पर संथाली का प्रभाव होगा। लिङ्गभेद की दृष्टि मे अंग्रेजी की स्थिति बँगला से मिलती-जुलती है और जर्मन की स्थिति मराठी जैसी है। मानना चाहिए कि जर्मन समुदाय की एक भाषा अंग्रेजी पर तिब्बती-बर्मी अथवा कोल प्रभाव इतना पडा कि उसमे लिङ्गभेद मिट गया।

हिन्दी के समान मैथिली मे अनेक विशेषण शब्द लिङ्गभेद सूचित करते हैं। स्त्री लिङ्ग, पुल्लिङ्ग का भेद जीव, निर्जीव, मानव, मानवेतर, सभी प्रपचो पर लागू होता है। डा० सुभद्र झा ने उदाहरण दिये हैं **छोटा काका, छोटी काकी, करिक्का** (काला) घोडा, **करिक्की घोडी, छोटकी थारी बडका थार**। जो कृदन्त विशेषण का काम करते हैं, उनमे यह भेद दिखाई देता है **सूतल श्रादमी, सूतलि मउगी**, सोता हुआ पुरुष, सोती हुई स्त्री, ठीक हिन्दी की तरह। जहा कृदन्त क्रियारूप मे व्यवहृत होते हैं, वहा भी यह भेद दिखाई देता है। **ओ श्राश्रोंत**—वह आएगा, **श्रो श्राश्राति**—वह आएगी, **श्रो गेलाह्**—वह गया, **श्रो गेलीह्**—वह गई। **हमर माश्रें सूतलि**—मेरी मा सोती थी, **हमर चाकर सूतल**—मेरा नौकर सोता था। ऐसे उदाहरण देने के बाद डा० सुभद्र झा कहते हैं कि आधुनिक मैथिली मे लिङ्गभेद की उपेक्षा करने की प्रवृत्ति है, **हमर माश्रें श्राश्रातु हमर माश्रें श्राश्रोंल**। उनकी इस बात पर विश्वास करना कठिन है क्योंकि मैथिली पर पश्चिमी भाषाओ का प्रभाव बढ रहा है घट नही रहा है। यह सम्भव है कि कुछ क्रिया रूपो मे लिङ्गभेद वैकल्पिक हो किन्तु कुल मिलाकर लिङ्गभेद का प्रभाव बढ रहा है, इसका प्रमाण बोलचाल के रूपो के वे उदाहरण हैं जो डा० सुभद्र झा ने ही दिए हैं। व्यक्तिवाचक सर्वनामो के सम्बन्धकारक रूप लिङ्गभेद व्यक्त करते हैं। **तोरी बेटी, तकरी नानी, श्राँकरी माश्रें**। ये सब उदाहरण उन्होंने बोलचाल की भाषा से दिए हैं। बोलचाल भाषा की सही प्रवृत्ति व्यक्त करती है। यह प्रवृत्ति लिङ्गभेद पर बल देने की है।

डा० चाटुर्ज्या ने इस बात पर ध्यान दिया था कि जीव, निर्जीव का भेद कही-कही कारक प्रयोगो मे देखा जाता है। मैथिली म **हम राम के देखल**—मैंने राम को देखा, यहा राम के बाद **क** विभक्ति चिह्न लगा है **हम रोटी देखल**—मैंने रोटी देखी, यहा **के** अनावश्यक है। हिन्दी मे भी **मैंने रोटी को देखा**, अस्वाभाविक वाक्यरचना है। लिखित हिन्दी मे ऐसी अस्वाभाविक वाक्यरचना के बहुत से उदाहरण मिल जाएगे। डा० सुभद्र झा ने मैथिली मे मानवेतर जीव के साथ **के** विभक्ति का प्रयोग वहा होना दिखाया है जहाँ वह जीव किसी मानव मे सम्बद्ध हो गया है। **तोहार बरद के देखल**—यहा बरद (बैल) के साथ कारक चिह्न लगने मे सकेत निश्चयात्मक हो गया।

(ग) मैथिली कारक रचना

मथिली मे कारक रचना अवधी से मिलती-जुलती है। आधुनिक आयभाषाओ म सामाय और तियक्, दो शब्दरूपो की कल्पना की गई है। सामाय रूप कर्ता और कम कारको मे प्रयुक्त होता है, तियक् रूप अय कारको म। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका तियक् रूप नही होता जैसे घर। घर मे, घर से, घर का, यहा मूल घर रूप अपरिवर्तित रहता है। डा० सुभद्र झा ने लिखा है कि आधुनिक मैथिली मे सम्बधकारक छोडकर शेष कारको मे शब्द का तियक् रूप सामाय से भिन नही होता। इससे इतना तो सिद्ध ही होता है कि तियक् रूपो का व्यवहार अपवाद है, नियम नही। अपभ्रश के आधार पर आधुनिक आय भाषाओ का विकास मानने वाले लोग सामाय और तियक् रूपो का जो भेद करते हैं, उस पर पुर्नविचार आवश्यक है।

अब मैथिली के सम्बधकारक मे सामाय और तियक् रूपो का भेद देखें। गाछ (पड), माटि, साहु—ये तीनो रूप तब सामाय है जब इनका अतिम स्वर लघुतर होता है। जब वह केवल लघु होता है तब तियक् रूप बन जाता है। तियक् रूप कारक चिह्न से अलग प्रयुक्त नही होता। गाछ और गाछक (गाछ का), इन दो रूपो मे छ के अकार की लघुता म सूक्ष्म अतर मथिली की वण-रचना पद्धति के कारण है। केवल गाछ कहने पर बल पहले वण पर रहता है और दूसरे वण का स्वर हलका पडता है। जब तीन वर्णों का शब्द होगा, तब प्रथम वण का बल किंचित हट कर दूसरे वण पर आ जाएगा। ऐसा लघु और लघुतर का भेद व्याकरण की दृष्टि से नगण्य है। यह बात कुछ अय शब्दरूपो से पुष्ट होती है। जैस भाग्रॅ शब्द है। इसका तियक रूप भी यही हो सकता है, केवल विकल्प से भाइ रूप होगा। इस प्रकार भाग्रॅक और भाइक (भाई का) दोनो रूप सही हैं। ऐसे शब्दो के उदाहरण डा० सुभद्र झा न ही दिए हैं। यहा भाग्रॅ रूप तियक् और सामाय दोना है अर्थात मूलरूप मे कोई परिवतन नही होता। वैकल्पिक रूप भाइ मे अन्तिम स्वर का सवत उच्चारण है और इसका कारण भी प्रथम वण से बलाघात का किंचित हटना है।

कुछ अय शब्द है जिनम स्वर परिवतन होता है। सम्बध कारक मे इन शब्दो का इ, अ स्वर उ म बदल जाता है। आज, साभ, राति, दीन (दिन) के सम्बधकारक रूप इस प्रकार होंगे आजुक, साँभुक, रातुक, दीनुक। यहा अवधी की उकारात रूपरचना का प्रभाव है, लिङ्गभेद महत्वपूर्ण नही है अत आजु और दिनु के वजन पर रातु और साभु रूप बनाये गये और सबध कारक म प्रयुक्त हुए। देखब चलब, कहल आदि क्रियार्थी सज्ञारूपो के तियक रूप देखवा, चलबा कहला होत है। फिर भी कुछ बोलियाँ ऐसी है जिनमे चलब, कहल स ही काम चलता हैं बहुत से बहुत अतिम वण मे लघु और लघुतर स्वर का उच्चारण भेद है। मैथिली म सामाय तियक् रूपो का मौलिक भेद नही है।

डा० सुभद्र झा न क्रियाओ के बारे म एक रोचक बात लिखी है। इनमें बहुत्व-

सूचक प्रत्यय लगते है किन्तु उनका बहुत्व वाला अर्थ अब नष्ट हो गया है। वे अब गौरव और सामान्य सम्बोधन का भेद व्यक्त करते हैं। **कहलिअइन्हि**—हमनेउससे कहा (गौरव पूर्ण सम्बोधन), **कहलिअइ**—मन उससे कहा (सामान्य सम्बोधन), **कहबहुह**—आप उससे कहेंगे, **कहबहक**—तुम उससे कहोगे। इन रूपो का विश्लेषण करते हुए डा० झा ने लिखा है कि कर्मकारक मे गौरव भाव न्हि और न्ह प्रत्ययो से व्यक्त होता है जो मूलत बहुत्वसूचक प्रत्यय थे। इसी प्रकार **ओ गेलाह**—वे गए (गौरवपूर्ण सम्बोधन), **ओ गेल** (सामान्य सदर्भ)। **आह**, डा० झा के अनुसार, बहुत्वसूचक प्रत्यय था। फिर कहते है, यह भी सम्भव है कि क्रियापदो के व्यक्तिवाचक प्रत्ययो से सज्ञारूपो के बहुत्व सूचक प्रत्ययो का मूल सम्बन्ध न रहा हो वरन् दोनो का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ हो। वास्तव म जिन्ह डा०झा बहुत्वसूचक प्रत्यय कहते हैं उनका गहरा सम्बन्ध सर्वनाम रूपो से है। जिन्हे वह क्रियापदो का व्यक्तिवाचक प्रत्यय कहते हैं, उनका गहरा सम्बन्ध भी सर्वनामों से है। सस्कृत मे लेकर मैथिली तक क्रिया और सज्ञा दोनो तरह के शब्दो की रूपरचना मे सर्वनामो की भूमिका महत्वपूर्ण है, यह तथ्य ध्यान मे रखना उचित है।

डा० सुभद्र झा ने मैथिली भाषा की कारक रचना के बारे मे लिखा है कि पुरानी मैथिली मे सश्लिष्ट कारक-रचना होती थी, साथ ही प्रत्यक शब्द किसी कारक चिन्ह के बिना वाक्य म प्रयुक्त हो सकता था। यदि इस दूसरी प्रवृत्ति को देखे तो लगेगा कि आधुनिक मैथिली मे कारक रचना पहले की अपेक्षा विकसित हुई है। यदि पहली प्रवृत्ति पर ध्यान दें तो लगेगा कि कारक रचना क्षीण हुई है। डा० झा के अनुसार आधुनिक मैथिली मे कर्ता, कर्म और अधिकरण, य ही तीन सश्लिष्ट कारक रचना म आते हैं। उन्होने सभवत कारक चिन्हो को मूल शब्द से हटाकर लिखने वाली पद्धति ध्यान मे रखकर ऐसा कहा है। किन्तु जैसा कि आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने कहा है, मुख्य बात यह है कि हम बोलते क्या हैं, लिखने म मिलाकर लिखो या हटाकर लिखो, इससे कोई अन्तर नही पडता। दक्षिणी मैथिली म मगही की तरह सम्प्रदानकारक के लिए **ला** प्रत्यय का व्यवहार होता है। इस **ला** का कोई स्वतत्र अर्थ नहीं है लाना वाली क्रिया मे उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है। अत उसे कारक चिन्ह ही मानना चाहिए। मगही के समान दक्षिणी मैथिली भी ला के प्रयोग द्वारा, कर्म से भिन्न सम्प्रदान का अलग अस्तित्व ज्ञापित करती है। यहा कारक रचना पुष्ट है, क्षीण नही हुई। यह उल्लेखनीय है कि अधिकरणकारक के लिए मैथिली का मानक रूप मे है जो पश्चिमी भाषा-समुदाय की प्रवृत्ति के अनुरूप है, पश्चिमी मैथिली इसके स्थान पर **मा** रूप का व्यवहार करती है। **घर मे**—हिन्दी की तरह मानक मैथिली का रूप है, **घरमा**—अवधी के समान यह पश्चिमी मथिली का रूप है। एक ही क्षेत्र मे भिन्न ध्वनि प्रवृत्तियो के मिश्रण से ऐसे वैकल्पिक रूपो का चलन हुआ है।

मगही के समान मैथिली की क्रियापद रचना एतिहासिक और तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। भाषाविद द ब्रीज ने आधुनिक आर्यभाषाओ पर कोल सर्वनामो के प्रभाव की चर्चा करते हुए अपने पूर्वोक्त लेख मे ग्रियर्सन की इस स्थापना

का हवाला दिया है कि मैथिली क्रियारूपों की रचना ऊपर से देखने मे आर्य है, सैद्धान्तिक दृष्टि से वह मुण्डा भाषाओ के अनुरूप है। सिद्धान्त यह है कि मैथिली भाषा मे क्रिया पहले आती है, उसके बाद जो प्रत्यय लगते है, उनमे कर्त्ता, कर्म आदि का निर्देश होता है। इस तरह की रूपरचना उन भाषाओं के लिए स्वाभाविक है जिनके वाक्यतत्र मे क्रिया पहले आती थी, कर्ता बाद को। यह प्रवृत्ति इण्डोयूरोपियन परिवार मे व्यापक रूप से रही है। कोल परिवार के लिए यह कल्पना की गई है कि उसमे किसी समय वाक्यतत्र ऐसा था कि सज्ञा शब्द भी, कर्ताकारक म, क्रिया के बाद आता था। स्काटलैण्ड, वेल्स आदि की केल्त भाषाओं मे यह स्थिति अभी तक है। इसलिए विधेय पहले, उद्देश्य बाद को, ऐसा वाक्यतत्र इण्डोयूरोपियन परिवार मे व्यापक रूप से प्रचलित था, यह मानना होगा। इस सदर्भ मे डा० सुभद्र झा ने कुछ रोचक बाते कही हैं। उन्होने लिखा है कि व्यक्तिवाचक प्रत्ययो का उपयोग बहुत पुराना है, इण्डोयूरोपियन आदि भाषा मे भी वाक्यतत्र मे क्रिया पहले होती थी और व्यक्तिवाचक सर्वनाम उसके बाद आता था, क्रिया विधेय होती थी और कर्ता सर्वनाम उद्देश्य होता था। ब्रुगमन का हवाला देते हुए डा० झा कहते है कि समय बीतने पर उद्देश्य और विधेय एक दूसरे से सयुक्त हो गए, इस प्रकार उन क्रियारूपो की रचना हुई जिनमे क्रिया के बाद व्यक्तिवाचक प्रत्यय लगते थे, और ये प्रत्यय पुराने सर्वनामो के सक्षिप्त रूप मात्र थे।

इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कृत आदि भाषाओं मे क्रियापदरचना पहले विधेय फिर उद्देश्य, इस क्रम वाले वाक्यतत्र के आधार पर हुई। आगे चलकर जब ऐसे क्रियापद के पहले कर्ता प्रयुक्त होने लगा, तब पुराने वाक्यतत्र पर पहले उद्देश्य फिर विधेय यह नये क्रम वाला वाक्यतत्र प्रतिष्ठित हुआ। इस नये वाक्यतत्र का मूल क्षेत्र उत्तर-पश्चिमी भारत था।

डा० झा ने कश्मीरी और सिन्धी भाषाओं मे व्यक्तिवाचक प्रत्ययो (सर्वनाम चिन्हो) के व्यवहार को याद करते हुए लिखा है कि सिन्धी मे व्यक्तिवाचक प्रत्यय क्रिया के बाद ही नही सज्ञा के बाद भी प्रयुक्त होते है। यह स्थिति मध्य एशिया के अन्य भाषा परिवारो मे भी है। इस प्रवृत्ति का उद्भव केन्द्र कहा है, इसकी जानकारी सर्वनाम रूपो के विश्लेषण से हो सकती है। डा० झा ने ग्रियर्सन का यह मत उद्धृत किया है "सर्वनाम प्रत्ययो की, बहुत कुछ सम्पूर्ण, एक श्रृंखला अनेक आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं मे मिलती है। संस्कृत मे जो पुराने भारतीय सर्वनाम मिलते है, उनसे उक्त सर्वनाम चिन्हो और प्रत्ययो का विकास हुआ है।' यह बात सही है। ग्रियर्सन ने यह बात कश्मीरी के सर्वनाम प्रत्ययो की चर्चा करते हुए कही थी। ग्रियर्सन मानते थे कि कश्मीरी दरद भाषा समुदाय मे है। तब मानना होगा कि दरद भाषाओं मे वही सर्वनाम प्रत्यय प्रयुक्त हुए हैं जो संस्कृत मे सुरक्षित हैं। डा० सुभद्र झा कहते हैं कि आदि इण्डोयूरोपियन भाषा के सर्वनाम प्रत्यय संस्कृत तथा प्राकृतो मे सुरक्षित रहे और उन्हे मागधी और दरद भाषाओं ने विरासत मे पाया। एक छोर पर मागधी भाषाएँ, दूसरे छोर पर दरद भाषाएँ, बीच का भाषा समुदाय उस विरासत मे क्या वचित रह गया? बीच के भाषासमुदाय पर

कौरवी भाषा केंद्र का गहरा प्रभाव पड़ा, इसलिए पुरानी क्रियापद-रचना के अवशेष यहा रह गए, पुराने वाक्यतत्र के अवशेष सीमान्त भाषाओ मे अधिक सुरक्षित रहे। गुजराती बँगला से सिन्धी-कश्मीरी लहँदा की तुलना करते हुए डा० झा कहते है कि बँगला गुजराती म व्यक्तिवाचक प्रत्यय केवल कर्ता की ओर सकेत करते है किन्तु सिन्धी, कश्मीरी, लहँदा मे व्यक्तिवाचक प्रत्यय कर्ता के सिवा अन्य कारको की ओर भी सकेत करते है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस वाक्यतत्र मे क्रिया के बाद कर्ता ही नही, कर्म भी आता था, अन्य कारक भी क्रिया के बाद आते थे, उसकी विशेषताएँ गुजराती और बँगला की अपेक्षा सिन्धी, कश्मीरी और लहँदा मे अधिक सुरक्षित है। ये विशेषताएँ मैथिली मे भी हैं। किन्तु ऐसी विशेषताओ को प्राचीन न मानकर डा० सुभद्र झा उन्हे आधुनिक विकास मानते है। ऐसी धारणा इसलिए बनती है कि मैथिली आदि भाषाओ के विकास की व्याख्या सस्कृत प्राकृत-अपभ्रश विकासक्रम के आधार पर की जाती है। जो विशेषताएँ इस विकासक्रम म नही दिखाई देती, वे सब नयी सृष्टि मान ली जाती हैं। सस्कृत कौरवी भाषा केन्द्र स प्रभावित है, वह सभी आर्य भाषा-केन्द्रो की सभी विशेषताएँ अपने भीतर समान रूप स समाहित नही किए है।

मान लीजिए, मागधी भाषाओ म यह नया विकासक्रम ह, पर क्या यह आश्चर्य की बात नही ह कि दरद भाषाओ मे भी वैसा ही विकास हुआ ह? डा० सुभद्र झा ने लिखा है कि आधुनिक आर्य भाषाओ को कर्ता वाले व्यक्तिवाचक प्रत्यय विरासत मे मिले हैं, किन्तु जहा ऐसे प्रत्यय अन्य कारको की ओर भी सकेत करते हैं, वहा उनका चलन आधुनिक भाषायी विकास का परिणाम है, ऐसे प्रत्यय प्राकृतो म भी नही हैं, फिर पुरानी मैथिली म उनका न मिलना स्वाभाविक है। चर्यापदो की भाषा को पुरानी मैथिली मानते हुए वह कहते है कि केवल एक क्रियारूप ऐसा है जहा कर्ता से भिन्न अन्य कारक की ओर सकेत है। जा न जउवण मोर भइलेंसि पूरा—यहा सि प्रत्यय मध्यम पुरुष का सूचक है किन्तु उसका प्रयोग अन्य पुरुष के कर्ता के साथ हुआ ह। डा० झा के अनुसार इसका कारण सम्भवत यह उद्देश्य था कि जिस व्यक्ति को सम्बोधित किया गया है, उसकी ओर क्रियारूप म भी सकेत किया जाए जैसा कि आधुनिक मैथिली मे होता है। किन्तु डा० झा ने जिसे मध्यम पुरुष का प्रत्यय माना ह वह अवधी का (अन्यपुरुष-कर्ता एकवचन) प्रत्यय ह। उसमे श्रोता का कोई सम्बन्ध नही है। प्राकृतो तथा चर्यापदो के आधार पर मैथिली के पुराने रूपो की व्याख्या नही की जा सकती। किन्तु इस प्रसग मे डा० झा ने आधुनिक मैथिली स जो उदाहरण दिए हैं, वे अवधी का विकास समझने म सहायक होते है। हम जाएब—मैं जाऊँगा, मैथिली के इस वाक्य म क्रिया अपने साधारण रूप म ही ह। हम जएबइ—मैं जाऊँगा, मैथिली के इस वाक्य म क्रियारूप बदल गया ह और वह वक्ता की एक विशेषता सूचित करता ह। विशेषता यह है कि किसी अन्य पुरुष से वक्ता का कुछ सम्बन्ध है। क्रियारूप म एक नया प्रत्यय जुड़ गया जो वक्ता से अन्य पुरुष का सम्बन्ध सूचित करता ह। परिनिष्ठित हिन्दी मे ऐसे क्रियारूप नही होते। अवधी म हम जाब और हम जइबे, ये दोनो तरह के वाक्य बोले

वक्ता से वाक्य म निर्देशित व्यक्ति का सम्बन्ध है या नही, यह क्रियारूप से विदित होता है। देखलिअइ—मैंने उसे देखा। जिसे देखा, उससे वक्ता या श्रोता का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। देखलिअहु—मैंने उस देखा जो 'तुम' से सम्बद्ध ह। कम के समान श्रोता की सामाजिक स्थिनि भी क्षुद्र है। देखलिअइहि—मैंने उसे देखा जो उन सज्जन से सम्बद्ध है। इस वाक्य मे कम की स्थिनि साधारण है कितु उसका सम्बन्ध आदरास्पद व्यक्ति से है। ककर धोती थीक—किमकी धोती है, यह सामान्य वाक्य है जहा धोती से किसी के मम्बन्ध पर विशेष बल नही ह। ककर धोती थिकइक—इस वाक्य का अथ वही है, किन्तु धोती स किसी के सम्बन्ध पर बल है।

मगही के समान मैथिली म क्रिया के बाद सवनाम चिन्ह लगाने की प्रवृत्ति प्रबल है। जब उसमे कृदन्तरूपा का चलन हुआ, तब उनम भी, तिडन्त क्रियाओ के समान, सवनाम चिन्ह जोडे जाने लगे। हिन्दी के समान मैथिली मे भी विभिन्न काला के लिए क्रियारूपा की रचना कृदन्ता के आधार पर होनी है। वतमान काल के लिए आधुनिक मैथिली, देख निया स, देखइत कृदन्त रूप बनाती है। किन्तु मैथिली की कुछ बोलियो म तिडन्त रूपा का ही चलन है। मध्य क्षेत्र की बोलिया मे डा० झा के अनुसार, क्रिया म त प्रत्यय नही लगता। द—देना से दइ जीव—जीना से जिबइ, खा—खाना क्रिया से खाइ रूप बनत है जो मूलत वतमान कालीन तिडन्त रूप ह। ठीक ऐसी ही स्थिति जाता है के समानान्तर जाय है पश्चिमी हिन्दी के रूपा म दिखाई देती है। ऐस प्रयोग, मगही के समान, मैथिली के लोकगीतो म अधिक है। अथतत्व की दृष्टि से मथिली क्रियापद रचना म पुरानी पद्धति पर चलती ह और उसका विकास करती है, रूपतत्व की दृष्टि से वह पश्चिम से आते हुए कृदन्ता को क्रियापद-रचना का आधार बनाती है। मगही के समान मैथिली मे भी कृदन्ता का तिडन्तीकरण होता ह।

, अगमोर फरकइ, केसिया मोरा मुइया लोटइ हो (तजनारायणलाल मथिली लोकगीतों का अध्ययन, आगरा, १९६२ पृष्ठ २६४)—लोकगीत की इस पक्ति म फरकइ, लोटइ रूप तिडन्त है। फरकहि लोटहि पूवरूपो के अन्तिम वण की महाप्राणता का लोप होन पर य रूप बन हैं। खडी वाली मे यही फरके लोटे जैसे रूपो म प्रयुक्त होत हैं। डा० सुभद्र झा ने कृदन्त का एक रूप देखने दिया है। यह हिन्दी देखना का ही प्रतिरूप है। देखने छि—मैंन दखा है, देखने छल—उसन देखा था। ऐस पयोग हिन्दी मे नही होत किन्तु न वाला कृदन्त रूप है पश्चिमी समुदाय का।

(ङ) वर्ण-रत्नाकर की मैथिली

मैथिली भापा के सबस पुरान नमून चौदहवीं सदी के है। मिथिला के ज्योतिरीश्वर ठाकुर न वणरत्नाकर नाम की पुस्तक मैथिली भापा मे लिखी थी। दांतक शोभा देखि तालिवे हृदय धीदीण कएल। अधरक शोभा देखि प्रवाल द्विपान्तर गेल। कांनक शोभा देखि बौद्ध ध्यान स्थित भेल। कण्ठक शोभा देखि कम्बु समुद्र प्रवेश कएल। स्तनक शोभा देखि चक्रवाक उद्छन्न भेल। इस तरह की भापा कवि ज्योतिरीश्वर ठाकुर

ने लिखी थी। यह पुस्तक पद्य में नहीं गद्य मे है, यह उसका युगान्तरकारी महत्व है। बङ्गाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी ने डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या की भूमिका सहित इसे १९४० मे कलकत्ते से प्रकाशित किया। मैथिली मे एक भूमिका बबुआ मिश्र की है जिसमे उन्होने लिखा है "प्रेस कापी तैयार करयक काल श्री सुनीतिबाबू हमरा सँ बहुत शब्दक अर्थ पूछथि, परन्तु सभ शब्दक अर्थ कहि सकब हमरा साध्य सँ बाहर छल।" इससे विदित होगा कि वर्ण-रत्नाकर की भाषा पुरानी मैथिली है जिसकी शब्दावली जहां-तहां आधुनिक मैथिली की शब्दावली से भिन्न है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर संस्कृत के कवि थे। दरबारी कवि थे और संस्कृत की रीतिवादी काव्यधारा से प्रभावित थे। उन्होने मैथिली मे यह पुस्तक उन लोगो के लिए लिखी है जो नायिकाओ का वर्णन, ऋतुवर्णन, नगरवर्णन, श्मशानवर्णन करना चाहते है। यद्यपि उनके वर्णनो मे काव्य के परम्परागत उपादान गिनाए गए है, फिर भी अनेक स्थल ऐसे है जिनसे तत्कालीन सामाजिक जीवन की जानकारी होती है। **वर्णरत्नाकर** चौदहवी सदी की रचना है, पन्द्रहवी सदी मे विद्यापति ने मैथिली पदो के अलावा अवहट्ट मे **कीर्तिलता** पुस्तक लिखी। जो लोग अवहट्ट यानी अपभ्रंश को पुरानी मैथिली कहते है, वे **वर्णरत्नाकर** के लेखक के प्रति अन्याय करते हैं। साहित्य मे जिस समय अपभ्रंश मे कविता लिखने की रूढि दृढता से जमी हुई थी, उस समय मैथिली जैसी भाषाओ का अस्तित्व था, वे पूर्ण विकसित भी हो चुकी थी। तेरहवी सदी मे हेमचन्द्र अपभ्रंश का व्याकरण लिख रहे थे। उस अपभ्रंश को कुछ लोग पुरानी गुजराती कहते है। यदि गुजराती मे कोई ज्योतिरीश्वर ठाकुर हुए होते तो उनके ग्रन्थ की गुजराती अपभ्रंश से वैसे ही भिन्न होती जैसे **वर्ण रत्नाकर** की मैथिली अवहट्ट से भिन्न है।

प्राकृतो के ध्वनितत्र का अनुसरण करते हुए अपभ्रंश ने मूर्धन्य नासिक्य ध्वनि का अनवरत और अनावश्यक व्यवहार किया। विद्यापति न केवल अवहट्ट के तद्भव रूपो मे इस ध्वनि का व्यवहार करते है वरन तुर्की फारसी आदि विदेशी भाषाओ के शब्दो मे जहा न् है, वहा उसे ण् कर देते है। **वर्णरत्नाकर** के लेखक संस्कृत से प्रभावित हैं किन्तु प्राकृत अपभ्रंश परम्परा के णकारवाद से उन्होने स्वयम् को मुक्त रखा है। **प्रणाम, करुणा, चूडामणि** आदि तत्सम रूपो मे वे मूर्धन्य नासिक्य लिखते हैं किन्तु **उच्चाटन, स्तम्भन, मोहन** आदि के न को ण् नही कर देते, **मारण** को भी **मारन** लिखते हैं। **वर्ण रत्नाकर** की भाषा का निर्माण चौदहवी सदी से पहले हुआ। तब तक मिथिला और पश्चिमी जनपदो के बीच आदानप्रदान इतना बढ चुका था कि व्याकरणगत लिङ्गभेद मैथिली मे प्रतिष्ठित हो गया था। डा० चाटुर्ज्या ने अपनी भूमिका मे लिखा है कि **वर्णरत्नाकर** की भाषा मे सामान्यत व्याकरणिक लिङ्गभेद का चलन है। विशेषण लिङ्गभेद सूचित करते है। **कर** वाले सम्बन्धकारक रूपो मे यह भेद दिखाई देता है। यही स्थिति विशेषण की तरह प्रयुक्त होने वाले भूतकालिक कृदन्त की है। **तकरि पताका**—उसकी पताका, **कइसनि नायिका**—कैसी नायिका, **काजरक भीति तेलेसिचलि अइसनि राम्री**—काजल की भीति तेल से सीची हुई, ऐसी रात (यह उपमान रूढिगत नहीं है),

इन रूपो का चलन बन्द हो गया। लकारान्त कृदन्तरूपों में लिङ्गभेद व्यक्त होता है
र व कह, भउ जैसे रूपों से भिन्न है। भमर पुष्पोद्देसे चलल किन्तु कुलस्त्री सलज्ज
ल। चलल और भेलि लिंगभेद बता रहे हैं।

वर्णरत्नाकर की भाषा में अनेक ऐसे शब्द या शब्दरूप हैं जो पुरानी जनपदीय
षाओं के आपसी सम्बन्धों की जानकारी देते हैं। वर्णरत्नाकर में एक क्रिया है हल
सका अर्थ है चलना। हलु अर्थात् गया, उकारान्त तिङन्त रूप है। हलुप्रह उसी का
वचन रूप है। डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि यह शब्द सिन्धी में प्रचलित है मैथिली
अब उसका व्यवहार नहीं होता। हिन्दी में हलचल और हालचाल में वही क्रिया विद्य-
है। हलचल कामकाज की तरह है, एक ही अर्थ वाले दो शब्दों का जोड़ा है। हलचल
ति की अधिकता सूचित की गई है उसका हिलने से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी तरह
चाल के हाल का अरबी फारसी के हाल से कोई सम्बन्ध नहीं है। पश्चिमी क्षेत्र की
या में चलने के लिए चाल क्रिया का व्यवहार अब भी होता है। मानक रूप चल है
हिन्दी, बँगला आदि में प्रयुक्त होता है। इसका मूल रूप संस्कृत की सर् क्रिया है।
ी वृत्ति से र् ल में परिवर्तित हुआ। स च और छ ध्वनियों में बदलता रहा है।
ा चाहिए था छल किन्तु संस्कृत के बहुत से शब्दों में जैसे महाप्राणता का लोप हुआ
वैसे ही यहां भी छल के प्रतिरूप चल का ही व्यवहार मानक रूप में हुआ। दूसरी
र स ध्वनि ह में परिवर्तित हुई, तब हल रूप बना। सिन्धी और मैथिली दूर के दो
त्रों की भाषाओं में गतिसूचक एक ही क्रियारूप मिलता है, यह तथ्य जनपदीय
भाषाओं के [illegible] सम्पर्क का प्रमाण है [illegible] ति के समय तक मैथिली में हल क्रिया
का चलन [illegible] ा।

[illegible] में ऊकारान्त रूपों का उल्लेख
क्रिया है। [illegible] के लिए बनाए गए हैं पर
बहुत जगह [illegible] गद्य लिख रहे थे,
और [illegible] । ह्रस्व उ वाले
शब्द तो [illegible] शब्दों
का प्रयोग भी [illegible] की
छोड़ दें, तो भी [illegible] ।
[illegible] हुए
सूची से
मैं

यद्यपि

से इन रूपो का चलन बन्द हो गया। लकारात कृदन्तरूपो मे लिङ्गभेद व्यक्त होता है और वे करु, भउ जैसे रूपो से भिन्न है। भमर पुष्पोद्देशे चलल किन्तु कुलस्त्री सलज्ज मेलि। चलल और मेलि लिंगभेद बता रहे है।

वणरत्नाकर की भाषा म अनेक ऐसे शब्द या शब्दरूप है जो पुरानी जनपदीय भाषाओ के आपसी सम्बन्धो की जानकारी देते हैं। वणरत्नाकर मे एक क्रिया है हल जिसका अर्थ है चलना। हलु अर्थात् गया, उकारान्त तिडन्त रूप है। हलुग्रह उसी का वहुवचन रूप है। डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि यह शब्द सिन्धी मे प्रचलित है मैथिली मे अब उसका व्यवहार नही होता। हिन्दी मे हलचल और हालचाल मे वही क्रिया विद्यमान है। हलचल कामकाज की तरह है एक ही अर्थ वाले दो शब्दो का जोडा है। हलचल मे गति की अधिकता सूचित की गई है, उसका हिलन से कोई सम्बन्ध नही है। इसी तरह हालचाल के हाल का अरबी फारसी के हाल मे कोई सम्बन्ध नही है। पश्चिमी क्षेत्र की बोलिया मे चलन के लिए चाल क्रिया का व्यवहार अब भी होता है। मानक रूप चल है जो हिन्दी, वँगला आदि मे प्रयुक्त होता है। इसका मूल रूप सस्कृत की सर क्रिया है। मागधी वृत्ति से र् ल म परिवर्तित हुआ। स च और छ ध्वनिया म बदलता रहा है। होना चाहिए था छल किन्तु सस्कृत के बहुत से शब्दो मे जैसे महाप्राणता का लोप हुआ है, वैसे ही यहा भी छल के प्रतिरूप चल का ही व्यवहार मानक रूप मे हुआ। दूसरी ओर स ध्वनि ह मे परिवर्तित हुई, तब हल रूप बना। सिन्धी और मथिली दूर के दो छोरो की भाषाओ मे गतिसूचक एक ही क्रियारूप मिलता है यह तथ्य जनपदीय भाषाओ के परस्पर सम्पर्क का प्रमाण है। विद्यापति के समय तक मैथिली म हल क्रिया का चलन था। बाद म चल ने उसे अपदस्थ कर दिया।

डा० चाटुर्ज्या ने वणरत्नाकर के काहू, किरतू जसे ऊकारान्त रूपो का उल्लेख किया है। ऊपर से देखने मे लगता है कि ऐसे रूप अन्त्यानुप्रास के लिए बनाए गए है पर बहुत जगह अन्त्यानुप्रास का प्रश्न नही है। वणरत्नाकर के लेखक गद्य लिख रहे थे, और ऐसे ऊकारान्त रूपो के लिए कोई सगत कारण प्रतीत नही होता। ह्रस्व उ वाले शब्द तो अवधी मे अब भी प्रयुक्त होते हैं सम्भव है सोलहवी सदी मे दीर्घ ऊ वाले शब्दो का प्रयोग भी होता रहा हो। वणरत्नाकर म उकारान्त शब्द काफी है। तत्सम रूपो को छोड दें, तो भी आधुनिक मथिली को देखते वणरत्नाकर म इनकी सख्या काफी होगी। अउनगउ, अखलु अनुनु, अवरु, अागु आठहु, आरहु आदि रूप शब्दसूची म दिए हुए है। पूरी सूची से इस तरह के सारे शब्द एकत्र किए जायँ तो एक परिणाम यह निकलेगा कि पुरानी मथिली मे उकारान्त रूपो का व्यवहार अधिक होता था। इस दृष्टि से अवधी और मथिली एक दूसरे के बहुत समीप थी। यह समीपता कितनी पुरानी थी? चौदहवी सदी स कुछ शताब्दिया पहले ऐसी समीपता कायम हुई होगी, चौदहवी सदी स कई शताब्दिया पहले मैथिली का विकास हो चुका था। यही नही, मथिली मे कोई पुरानी साहित्य परम्परा भी रही होगी, यह परम्परा पद्य की ही नहीं गद्य की भी रही होगी। यद्यपि वणरत्नाकर म अधिकाश वणन रूग्नित हैं, फिर भी कही-कही उसका गद्य ऐसा

जुडा। कथ रूप से एक ओर वह और दूसरी ओर वद— वर आदि रूप बन।
सम्ब धकारक चिह्न का अवधा भी प्रवत्ति क अनुसार बना है, मैथिली म उसी का पूर्व रूप है, कर उससे पुराना रूप है। मथिली म कइ रूप का व्यवहार भी होता है। वण रत्नाकर मे रात्रि कइ क्षीणता, व्याध कइ माया जसी शब्दावली है। अवधी म कइ प्राय केवल स्त्रीलिङ्ग के साथ प्रयुक्त होगी। वणरत्नाकर मे किन्नरकइ गीत जसा प्रयोग भी है।

प्रसिद्ध है कि अपभ्रंश म सम्प्रदान और कमकारक एक ... के लिए कोई चिह्न भाषा का विवेचन करते हुए डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि कमकारक ... यह है कि कम नही लगता किन्तु सम्प्रदान मे कइ, कम्रँ, कें चिह्न लगते है। इसका ... दान का अस्ति निक मैथिली और मगही के समान वणरत्नाकर म कम से अलग सम्प्र ... उनका विन सूचित किया जाता है। अपभ्रंश स मैथिली मगही का सम्बन्ध जोडकर ... समझने म सहायता नही मिलती।

वतमान कालीन क्रियारूपो म अन्य पुरुष एकवचन रूप करइ, धरइ ... य पुरानी अवधी के करहि, धरहि है जो अब करे, धरे बोले जाते हैं। डा० ... कल्पना की है कि करइ कोई क्रियार्थी सनारूप है जो अछ क्रिया के साथ वतमान मे प्रयुक्त होता है। करता है क्रियारूप म जैसे करता कृदन्त है वैसे ही करे है कृदन्त होना चाहिए। वास्तव मे करइ, करे तिङन्त करहि का रूपान्तर हैं। कृदन्ती करण के प्रभाव मे तिङन्त रूप को, कृदन्त के समान, अपूण मानकर, उसके साथ ... है, मैथिली अछ क्रियाओ का प्रयोग होने लगा। एक ओर कृदन्तो का तिङन्तीकरण हुआ तो दूसरी ओर तिङन्तो का कृदन्तीकरण भी हुआ। होइतें अछ, करइतें आह जसे रूपो मे त प्रत्यय वाला कृदन्त रूप स्पष्ट है। डा० चाटुर्ज्या न मैथिली के क्रियारूप होथि को होंति जैसे रूप का विकास माना है। यह अन्य पुरुष का वतमानकालीन बहुवचन रूप है। समस्या यह है कि अल्पप्राण त मथिली म थ कैसे हो गया। न का लोप क्या हो गया, यह भी समस्या होनी चाहिए। हो क्रिया क बाद सवनाम चिह्न थि जोडा गया। होथि का एक वैकल्पिक रूप होंथि बना। दोनो म पहले वचनभेद नही था। इसीलिए मैथिली होथि बहुवचन के लिए प्रयुक्त होता है। अवधी म होहि और होंहि एकवचन बहुवचन के लिए अलग कर लिए गए। सस्कृत म भवति और भवन्ति रूपो का विकास भवथि और भवंथि के आधार पर हुआ है।

वणरत्नाकर म भूतकाल के लिए करु भउ जैसे क्रियारूपो का व्यवहार हुआ है। बाद की मैथिली म एस रूप नही मिलते। डा० चाटुर्ज्या ने कल्पना की है कि य मागधी भाषाओ के अपने क्रियारूप नही है, य पश्चिमी अपभ्रंश के रूप हैं जो मैथिली म जड नही जमा पाये। गत म गउ रूप बना वैसे ही य रूप बन। उल्लखनीय है कि करु, भउ आदि, भूतकालीन कृदन्तो क समान, लिङ्गभेद सूचित नही करत। गत से गउ रूप बना तो भउ का मूल रूप क्या भत था ? और करु का मूलरूप क्या था ? करु, भउ का अविकारी रूप दखकर उन्हे तिङन्त क्रियारूप मानना चाहिए। कृदन्त पद्धति क प्रभाव

से इन रूपो का चलन ब द हो गया। उकारा त कृद तरूपो म लिङ्गभेद व्यक्त होता है और वे करु, भउ जैसे रूपो से भिन्न है। **भमर पुष्पोद्देशे चलल** कि तु **कुलस्त्री सलज्ज भेलि**। **चलल** और **भेलि** लिंगभेद बता रहे हैं।

वणरत्नाकर की भाषा मे अनेक ऐसे शब्द या श ब्दरूप हैं जो पुरानी जनपदीय भाषाओ के आपसी सम्ब धो की जानकारी देते हैं। **वणरत्नाकर** म एक क्रिया है **हल** जिसका अथ है **चलना**। **हलु** अर्थात गया, उकारा त तिङ त रूप है। **हलुग्रह** उसी का बहुवचन रूप है। डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि यह शब्द सि धी मे प्रचलित है, मैथिली मे अब उसका व्यवहार नहीं होता। हि दी म **हलचल** और **हालचाल** में वही क्रिया विद्य मान है। **हलचल कामकाज** की तरह है,एक ही अथ वाले दो शब्दा का जोडा है। **हलचल** मे गति की अधिकता सूचित की गई है, उसका हिलने से कोई सम्ब ध नहीं है। इसी तरह **हालचाल** के **हाल** का अरबी फारसी के हाल स कोई सम्ब ध नहीं है। पश्चिमी क्षेत्र की बोलिया मे चलने के लिए **चाल** क्रिया का व्यवहार अब भी होता है। मानक रूप **चल** है जो हिन्दी, बँगला आदि मे प्रयुक्त होता है। इसका मूल रूप सस्कृत की **सर** क्रिया है। मागधी वृत्ति से र ल मे परिवर्तित हुआ। **स च** और **छ** ध्वनिया म बदलता रहा है। होना चाहिए था **छल** कि तु सस्कृत के बहुत से शब्दा म जैसे महाप्राणता का लोप हुआ है, वसे ही यहा भी **छल** के प्रतिरूप **चल** का ही व्यवहार मानक रूप मे हुआ। दूसरी ओर **स** ध्वनि **ह** म परिवर्तित हुई तब **हल** रूप बना। सि धी और मथिली दूर के दो छोरा की भाषाओ मे गतिसूचक एक ही क्रियारूप मिलता है, यह तथ्य जनपदीय भाषाओ के परस्पर सम्पक का प्रमाण है। विद्यापति के समय तक मैथिली मे **हल** त्रिया का चलन था। बाद म **चल** न उसे अपदस्थ कर दिया।

डा० चाटुर्ज्या ने **वणरत्नाकर** के **काहू, किरतू** जसे ऊकारा त रूपा का उल्लेख किया है। ऊपर से देखने म लगता है कि ऐसे रूप अ त्यानुप्रास के लिए बनाए गए है पर बहुत जगह अ त्यानुप्रास का प्रश्न नही है। **वणरत्नाकर** के लेखक गद्य लिख रहे थे, और ऐसे ऊकारा त रूपो के लिए कोई सगत कारण प्रतीत नही होता। ह्रस्व **उ** वाले शब्द तो अवधी मे अब भी प्रयुक्त होते है सम्भव है सोलहवी सदी मे दीघ **ऊ** वाले शब्दा का प्रयोग भी होता रहा हो। **वणरत्नाकर** म उकारान्त शब्द काफी है। तत्सम रूपा को छोड दें, तो भी आधुनिक मथिली को देखत **वणरत्नाकर** म इनकी सख्या काफी होगी। **भ्रउनगउ, भ्रललु, भ्रनुनु भ्रवरु, भ्रागु भ्राठहु, भ्रारहु** आदि रूप शब्दसूची म दिए हुए हैं। पूरी सूची से इस तरह के सारे शब्द एकत्र किए जायँ तो एक परिणाम यह निकलेगा कि पुरानी मैथिली मे उकारा त रूपा का व्यवहार अधिक होता था। इस दष्टि स अवधी और मैथिली एक दूसरे के बहुत समीप थी। यह समीपता कितनी पुरानी थी ? चौदहवी सदी स कुछ शताब्दियाँ पहले ऐसी समीपता कायम हुई होगी चौदहवी सदी म कई शताब्दियाँ पहले मैथिली का विकास हो चुका था। यही नही, मथिली म कोई पुरानी साहित्य परम्परा भी रही होगी, यह परम्परा पद्य की ही नही गद्य की भी रही होगी। यद्यपि **वणरत्नाकर** मे अधिकाश वणन रूढिगत हैं, फिर भी कही-कहा उसका गद्य एसा

पुष्ट है और मौलिक भी है कि यह कल्पना करना होता है कि इससे पहले गद्य-लेखन म प्रयोग अवश्य किए गए हाग। वर्षा की रात्रि का वणन इस पुस्तक के उत्कृष्ट स्थला मे है

काजरक भीति तेलें मिचलि अइसनि रात्रि। पछेवाका बेगे काजरक मोट फुजल अइसन मेघ। निबिल मासल अधकार देपु। मेघपुरित आकाश भए गेल अछ। विद्युल्ल ताक तरग म पथदिशज्ञान होत अछ। लोकनक व्यापार निष्फल होइतें छ। य रात्रि पातक शब्दे तरुज्ञान। दद्दुरक शब्दे जलाशयज्ञान। चटकक शब्दे वनज्ञान। झिक्करआक शब्दे पृथ्वीज्ञान। मेघकशब्दे आकाशज्ञान। मनुष्यक शब्दे गृहज्ञान। अग्निक द्योतें पुर-ज्ञान। चरणकशब्दे पथज्ञान। वचनकशब्दे परापरज्ञान। बिज्ञजनहु दिगभ्रम ज रात्रि।

वास्तव मे जिसे अपभ्रशकाल कहते हैं, वह आधुनिक जनपदीय भाषाओ का अभ्युदयकाल है। पहले सस्कृत, फिर प्राकृत और अपभ्रश की परम्पराओ के कारण साहित्य म इन जनपदीय भाषाओ की प्रतिष्ठा विलम्ब से होती है। इसका यह अथ नही है कि वर्णरत्नाकर के रचनाकाल से पहले मैथिली का अस्तित्व नही था। अपभ्रश मे जनपदीय भाषाओ की झलक भर मिलती है, उनकी पूरी छवि उस सत साहित्य मे है जो अपभ्रश की सामती, रूढिवादी परपरा का ध्वस करके लोक सस्कृति के आधार पर जनमानस मे प्रतिष्ठित हुआ।

३ भोजपुरी क्षेत्र

हिन्दी क्षेत्र की एक महत्वपूण उपभाषा भोजपुरी है। यह मागधी समुदाय की भाषाओ मे है। इस समुदाय म अनेक प्राचीन भाषाएँ थी और वे ध्वनितत्र, रूपतत्र आदि की दृष्टि से काफी भिन्न थी। इसी कारण, सरचना की दृष्टि से, भोजपुरी और मगही म यथेष्ट अन्तर है। भोजपुरी की कारक रचना क्रियापद रचना बहुत जगह अवधी तथा हिन्दी क्षेत्र की अन्य पश्चिमी भाषाओ से प्रभावित है। डा० उदयनारायण तिवारी ने अनेक स्थला पर यह प्रभाव स्वीकार किया है। **भोजपुरी भाषा और साहित्य** म उन्होंने, अकमक और सकमक क्रियाओ के प्रसग म, लिखा है कि भोजपुरी म मूल धातु के स्वर को दीघ करके सकमक रूप बना लिया जाना है जैसे **कट से काट, पसर स पसार, मर से मार**। भोजपुरी और बँगला के भेद पर प्रकाश डालते हुए कहा है "बगला म अकमक धातुआ म आ प्रत्यय लगा कर सकमक बनाया जाता है और मूल धातु के स्वर को दीघ नही किया जाता। किन्तु इस सम्बन्ध म भोजपुरी अन्य बिहारी भाषाओ के साथ खडी बोली (हिन्दी) मे अधिक मिलती है।' (पृष्ठ २५५-२८६)। भोजपुरी ही नही, बिहार की अन्य भाषाएँ भी इसी प्रकार अकमक स सकमक (अथवा सकमक स अकमक रूप बनाती हैं।) क्रियापद रचना का आधार धातु रूप हैं और य धातुरूप ऐसे हैं जो मागधी समुदाय की भाषाआ के एक वग को दूसरे स अलग करते हैं। बँगला आदि एक वग की भाषाआ मे क्रियापद और विशेषण लिंगभेद व्यक्त नही करते। पहले भोज-पुरी मे भी यह प्रवृत्ति रही होगी पर अवधी, ब्रजभाषा और खडी बोली म भोजपुरी का

ऐसा गहरा सम्ब ध रहा है कि अब **घर जरि गइल और पोथी जरि गइलि** बोला जाता है। डा० उदय नारायण तिवारी के अनुसार "भोजपुरी क्रियापदो मे लिंग का पार्थक्य खडी बोली के ही प्रभाव मे आया है।' (पृष्ठ १८५)। क्रियापदो के अलावा कभी कभी विशेषणो मे भी भेद किया जाता है यथा **बड घोडा, बडि घोडी**। क्रिया के भविष्य कालीन रूपो म **ब** प्रत्यय का व्यवहार मागधी भाषाओ की विशेषता है। भोजपुरी मे **ब** वाले रूप अन्य पुरुष के लिए प्रयुक्त नही होते। मध्यम पुरुष मे **ब** और ह वाले दोनो तरह के रूप हैं, अन्य पुरुष म केवल ह वाले रूप है। डा० उदय नारायण तिवारी ने इस ह का सम्बन्ध पश्चिमी पजाबी, राजस्थानी, गुजराती, ब्रजभाषा, कनौजी, बुन्देली, अवधी, बघेली और छत्तीसगढी मे जोडा है। यह भी लिखा है कि "**स्स** या **स** का ह मे परिवर्तन वस्तुत पश्चिमी भाषाओ एव बोलियो की विशेषता है किन्तु इसकी छाप पूरब की भाषाओ एव बोलियो पर स्पष्ट रूप से दीख पडती है।" (पृष्ठ २६६)। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि जो भाषाएँ भोजपुरी क्षेत्र के पश्चिम मे है, उन्हे छोडकर उसका विवेचन नही हो सकता। मागधी भाषाओ की एक विशेषता अतीत काल के क्रियारूपो मे ल प्रत्यय का व्यवहार है "किन्तु पश्चिमी अपभ्रंश के प्रभाव के कारण इनमे ल रहित रूप भी आ गये है। (पृष्ठ २६७)। यदि ऐसे रूप पुरानी बँगला म भी है तो उनका कारण भी पश्चिमी प्रभाव है।

भोजपुरी म करणकारक के लिए **एँ** प्रत्यय का व्यवहार भी होता है। **बेगे चलि आवहु**—बेग से चले आओ, **कधिएँ मनावो**—किससे मनाऊँ। इसके बारे म तिवारी जी ने लिखा है "यह दामोदर पण्डित के 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' की प्राचीन कोसली (अवधी) है यथा—**दुर्वे सबइ तज**, दुख से सबको छोड दे, पृष्ठ ४७ तथा तुलसीदास की अवधी म भी वर्तमान है।" (पृष्ठ १८६)। भोजपुरी के अधिकरणकारक मे भी इसी **एँ** प्रत्यय का व्यवहार होता है। इसके लिये डा०तिवारी ने लिखा है 'यह विकारी प्रत्यय (कर्म, करण, सम्प्रदान तथा अधिकरण) के रूप म पश्चिमी हिन्दी तथा 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण की प्राचीन कोसली (अवधी) एव तुलसीदास मे भी मिलता है यथा—**थाहें नाव उलल**, थाह म नाव चलती है, **उक्ति व्यक्ति प्रकरण**, पृष्ठ ८६।" (पृष्ठ १६०)। बँगला और भोजपुरी मे एक महत्वपूर्ण अन्तर सम्बन्धकारक चिह्न को लेकर है। **र** प्रत्यय हिन्दी के समान भोजपुरी के सर्वनाम रूपो मे तो मिलता है किन्तु सज्ञा के साथ उसका व्यवहार नही होता। बँगला म **र** प्रत्यय सज्ञा रूपो के साथ भी लगता है किन्तु ऐसा हिन्दी क्षेत्र की भाषाओ म नही होता। इस दृष्टि से बिहार की सभी भाषाएँ बँगला से भिन्न है। पश्चिमी **क** प्रत्यय का प्रसार बगाल की कुछ बोलियो म भी हुआ है, वह अलग बात है। सम्प्रदान कारक के बारे मे बीम्स का मत था कि **कक्ष** से "कोसली (अवधी) के कह, कहँ कहु, कहुँ एव सिन्धी के खे परसर्गो की उत्पत्ति हुई है। (पृष्ठ १६३)। **के** का सम्बन्ध कह से है। उसका मूल रूप **कक्ष** नही **कच** होगा। अधिकरणकारक मे भोजपुरी **मे** सम्बन्धक का व्यवहार करती है। इसका सम्बन्ध **मध्य** से जोडते हुए डा० तिवारी ने लिखा है "पुरानी हिन्दी म यह **माँहि** रूप म मिलता है।

पुष्ट है और मौलिक भी है कि यह कल्पना करना होता है कि इससे पहले गद्य-लेखन म प्रयोग अवश्य किए गए होगे। वर्षा की रात्रि का वणन इस पुस्तक के उत्कृष्ट स्थला मे है

काजरक भीति तेलें सिचलि अइसनि रात्रि। पछेवाका बेगे काजरक मोट फुजल अइसन मेघ। निविल मासल अन्धकार देपु। मेघपुरित आकाश भए गेल अछ। विद्युल्ल ताक तरग म पथदिशज्ञान हात अछ। लोचनक व्यापार निष्फल होइतें छ। य रात्रि पातक शब्दे तरज्ञान। दद्दु रक शब्दे जलाशयज्ञान। चटकन शब्दे वनज्ञान। भिकरआक शब्दे पृथ्वीज्ञान। मेघकशब्दे आकाशज्ञान। मनुष्यक शब्द गहज्ञान। अग्निक धोतें पुरज्ञान। चरणकशब्दे पथज्ञान। वचनकशब्दे परापरज्ञान। विज्ञजनहु दिगभ्रम ज रात्रि।

वास्तव मे जिसे अपभ्रशकाल कहते हैं, वह आधुनिक जनपदीय भाषाओ का अभ्युदयकाल है। पहले सस्कृत, फिर प्राकृत और अपभ्रश की परम्पराओ के कारण साहित्य मे इन जनपदीय भाषाओ की प्रतिष्ठा विलम्ब से होती है। इसका यह अथ नही है कि वणरत्नाकर के रचनाकाल से पहले मैथिली का अस्तित्व नही था। अपभ्रश मे जनपदीय भाषाओ की झलक भर मिलती है, उनकी पूरी छवि उस सत साहित्य मे है जो अपभ्रश की सामन्ती, रूढिवादी परपरा का ध्वस करके लोक सस्कृति के आधार पर जनमानम मे प्रतिष्ठित हुआ।

३ भोजपुरी क्षेत्र

हिन्दी क्षेत्र की एक महत्वपूण उपभाषा भोजपुरी है। यह मागधी समुदाय की भाषाओ मे है। इस समुदाय मे अनेक प्राचीन भाषाएँ थी और वे ध्वनितत्र, रूपतत्र आदि की दष्टि से काफी भिन्न थी। इसी कारण मरचना की दष्टि से, भोजपुरी और मगही म यथेष्ट अन्तर है। भोजपुरी की कारक-रचना क्रियापद रचना बहुत जगह अवधी तथा हिन्दी क्षेत्र की अन्य पश्चिमी भाषाओ से प्रभावित ह। डा० उदयनारायण तिवारी न अनक स्थला पर यह प्रभाव स्वीकार किया है। **भोजपुरी भाषा और साहित्य** म उन्होंने, अकमक और सकमक क्रियाओ के प्रसग म लिखा है कि भोजपुरी म मूल धातु के स्वर को दीघ करके सकमक रूप बना लिया जाता है जैसे **कट** से **काट**, **पसर** से **पसार**, **मर** से **मार**। भोजपुरी और बँगला के भेद पर प्रकाश डालते हुए कहा है "बगला म अकमक धातुओ म आ प्रत्यय लगा कर सकमक बनाया जाता है और मूल धातु के स्वर को दीघ नही किया जाता। किन्तु इस सम्बन्ध म भोजपुरी अन्य विहारी भाषाओ के साथ खडी बोली (हिन्दी) से अधिक मिलती है। (पष्ठ २५५-२५६)। भोजपुरी ही नही, विहार की अन्य भाषाएँ भी इसी प्रकार अकमक स सकमक (अथवा सकमक से अकमक रूप बनाती हैं।) क्रियापद रचना का आधार धातु रूप हैं और य धातुरूप एम हैं जो मागधी समुदाय की भाषाओ के एक वग को दूसरे स अलग करते हैं। बँगला आदि एक वग की भाषाओ म क्रियापद और विशेषण लिंगभेद व्यक्त नही करते। पहले भोजपुरी म भी यह प्रवत्ति रही होगी पर अवधी, ब्रजभाषा और खडी बोली म भोजपुरी का

ऐसा गहरा मम्र ध रहा है कि अब घर जरि गइल और पोथी जरि गइलि बोला जाना है। डा० उदय नारायण तिवारी के अनुसार "भोजपुरी क्रियापदो मे लिंग का पार्थक्य खडी बोली के ही प्रभाव से आया है। (पृष्ठ १८५)। क्रियापदो के अलावा कभी-कभी विशेषणो म भी भेद किया जाता है यथा बड घोड़ा, बड़ि घोड़ी। क्रिया के भविष्य कालीन रूपो म ब प्रत्यय का व्यवहार मागधी भाषाओ की विशेषता है। भोजपुरी म ब वाले रूप अन्य पुरुष के लिए प्रयुक्त नही होते। मध्यम पुरुष म ब और ह वाले दोनो तरह के रूप हैं, अन्य पुरुष म केवल ह वाले रूप हैं। डा० उदय नारायण तिवारी ने इस ह का सम्बन्ध पश्चिमी पजाबी राजस्थानी, गुजराती, ब्रजभाषा, कनौजी, बुन्देली, अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी से जोड़ा है। यह भी लिखा है कि "स्स या स का ह म परिवर्तन वस्तुत पश्चिमी भाषाओ एव बोलियो की विशेषता है किन्तु इसकी छाप पूरब की भाषाओ एव बोलियो पर स्पष्ट रूप म दीख पड़ती है। (पृष्ठ २६६)। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि जो भाषाए भोजपुरी क्षेत्र के पश्चिम म है, उन्हे छोड़कर उनका विवेचन नही हो सकता। मागधी भाषाओ की एक विशेषता अतीत काल के क्रियारूपो मे ल प्रत्यय का व्यवहार है किन्तु पश्चिमी अपभ्रंश के प्रभाव के कारण इनमे ल रहित रूप भी आ गये हैं।' (पृष्ठ २६७)। यदि ऐसे रूप पुरानी बँगला म भी हैं तो उनका कारण भी पश्चिमी प्रभाव है।

भोजपुरी म करणकारक के लिए ऐं प्रत्यय का व्यवहार भी होता है। बेगें चलि आवहु—वेग स चल आओ, कथिऍं मनावौं—किसस मनाऊँ। इसके बारे मे तिवारी जी ने लिखा है 'यह दामोदर पण्डित के 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' की प्राचीन कोसली (अवधी) है यथा—दुखें सवइ तजा, दुख स सबको छोड द, पृष्ठ ४७, तथा तुलसीदास की अवधी म भी वर्तमान है।' (पृष्ठ १८६)। भोजपुरी के अधिकरणकारक मे भी इसी ऐं प्रत्यय का व्यवहार होता है। इसके लिये डा०तिवारी न लिखा है 'यह विकारी प्रत्यय (कम, करण सम्प्रदान तथा अधिकरण) के रूप म पश्चिमी हिन्दी तथा 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' की प्राचीन कोसली (अवधी) एव तुलसीदास म भी मिलता है यथा—थाहें नाव उखल, थाह मे नाव चलती है, उक्ति व्यक्ति प्रकरण, पृष्ठ ८६।" (पृष्ठ १६०)। बँगला और भोजपुरी म एक महत्वपूर्ण अन्तर सम्बन्धकारक चिह्न को लेकर है। र प्रत्यय हिन्दी के समान भोजपुरी के सर्वनाम रूपो म तो मिलता है किन्तु सज्ञा के साथ उसका व्यवहार नही होता। बँगला म र प्रत्यय सज्ञा रूपो के साथ भी लगता है किन्तु ऐसा हिन्दी क्षेत्र की भाषाओ म नही होता। इस दृष्टि से बिहार की सभी भाषाएँ बँगला स भिन्न हैं। पश्चिमी क प्रत्यय का प्रसार बगाल की कुछ बोलियो मे भी हुआ है वह अलग बात है। सम्प्रदान कारक के बारे मे बीम्स का मत था कि कक्ष से "कोसली (अवधी) के कह, कहँ, कहु, कहुँ एव सिन्धी के खे परसर्गों की उत्पत्ति हुई है। (पृष्ठ १६३)। के का सम्बन्ध कह से है। उसका मूल रूप कक्ष नही कथ होगा। अधिकरणकारक म भोजपुरी मे सम्बन्धक का व्यवहार करता है। इसका सम्बन्ध मध्य स जोड़ते हुए डा० तिवारी ने लिखा है "पुरानी हिन्दी मे यह माँहि रूप म मिलता है।

पुष्ट है और मौलिक भी है कि यह कल्पना करना होता है कि इससे पहले गद्य-लेखन में प्रयोग अवश्य किए गए होंगे। वर्षा की रात्रि का वर्णन इस पुस्तक के उत्कृष्ट स्थलों में है

काजरक भीति तेले सिचलि अइसनि रात्रि। पछेवाका बेगे काजरक मोट फुजल अइसन मेघ। निबिल मासल अन्धकार देपु। मेघपुरित आकाश भए गेल अछ। विद्युल्लताक तरग मे पथदिशज्ञान हात अछ। लोचनक व्यापार निष्फल होइतें छ। य रात्रि पातक शब्दे तरुज्ञान। दद्‌ुरक शब्दे जलाशयज्ञान। चटकक शब्दे बनज्ञान। भिकिरआक शब्दे पृथ्वीज्ञान। मेघक शब्दे आकाशज्ञान। मनुष्यक शब्दे गृहज्ञान। अग्निक द्योतें पुरज्ञान। चरणक शब्दे पथज्ञान। वचनक शब्दे परापरज्ञान। विज्ञजनहु दिगभ्रम ज रात्रि।

वास्तव मे जिसे अपभ्रशकाल कहते हैं, वह आधुनिक जनपदीय भाषाओं का अभ्युदयकाल है। पहले सस्कृत, फिर प्राकृत और अपभ्रश की परम्पराओं के कारण साहित्य मे इन जनपदीय भाषाओं की प्रतिष्ठा विलम्ब से होती है। इसका यह अर्थ नही है कि **वर्णरत्नाकर** के रचनाकाल से पहले मैथिली का अस्तित्व नही था। अपभ्रश में जनपदीय भाषाओं की झलक भर मिलती है, उनकी पूरी छवि उस सत साहित्य मे है जो अपभ्रश की सामन्ती, रूढिवादी परपरा का ध्वस करके लोक सस्कृति के आधार पर जनमानस मे प्रतिष्ठित हुआ।

३ भोजपुरी क्षेत्र

हिन्दी क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण उपभाषा भोजपुरी है। यह मागधी समुदाय की भाषाओं में है। इस समुदाय में अनेक प्राचीन भाषाएँ थी और वे ध्वनितत्र, रूपतत्र आदि की दृष्टि से काफी भिन्न थी। इसी कारण, सरचना की दृष्टि से, भोजपुरी और मगही मे यथेष्ट अन्तर है। भोजपुरी की कारक रचना क्रियापद रचना बहुत जगह अवधी तथा हिन्दी क्षेत्र की अन्य पश्चिमी भाषाओं से प्रभावित है। डा० उदयनारायण तिवारी ने अनेक स्थलों पर यह प्रभाव स्वीकार किया है। **भोजपुरी भाषा और साहित्य** में उन्होंने अकर्मक और सकर्मक क्रियाओं के प्रसग में, लिखा है कि भोजपुरी में मूल धातु के स्वर को दीर्घ करके सकर्मक रूप बना लिया जाता है जैसे **कट से काट, पसर से पसार, मर से मार**। भोजपुरी और बँगला के भेद पर प्रकाश डालते हुए कहा है "बगला में अकर्मक धातुओं में आ प्रत्यय लगा कर सकर्मक बनाया जाता है और मूल धातु के स्वर को दीर्घ नही किया जाता। किन्तु इस सम्बन्ध में भोजपुरी अन्य बिहारी भाषाओं के साथ खडी बोली (हिन्दी) से अधिक मिलती है।" (पृष्ठ २८८-२५६)। भोजपुरी ही नहीं, बिहार की अन्य भाषाएँ भी इसी प्रकार अकर्मक से सकर्मक (अथवा सकर्मक से अकर्मक रूप बनाती हैं।) क्रियापद रचना का आधार धातु रूप हैं और ये धातुरूप ऐसे हैं जो मागधी समुदाय की भाषाओं के एक वर्ग को दूसरे से अलग करते हैं। बँगला आदि एक वर्ग की भाषाओं मे क्रियापद और विशेषण लिंगभेद व्यक्त नहीं करते। पहले भोजपुरी में भी यह प्रवृत्ति रही होगी पर अवधी, व्रजभाषा और खडी बोली में भोजपुरी का

ऐसा गहरा सम्ब ध रहा है कि अब **घर जरि गइल और पोथी जरि गइलि** बोला जाता है। डा० उदय नारायण तिवारी के अनुसार "भोजपुरी क्रियापदो म लिंग का पार्थक्य खडी बोली के ही प्रभाव मे आया ह।' (पृष्ठ १८५)। क्रियापदा के अलावा कभी-कभी विशेषणा मे भी भेद किया जाता है यथा **बड घोडा, बडि घोडी**। क्रिया के भविष्य कालीन रूपा म **ब** प्रत्यय का व्यवहार मागधी भाषाओ की विशेषता है। भोजपुरी म **ब** वाले रूप अ य पुरुष के लिए प्रयुक्त नही होने। मध्यम पुरुष मे **ब** और **ह** वाले दोना तरह के रूप है, अ य पुरुष मे केवल **ह** वाले रूप है। डा० उदय नारायण तिवारी ने इस **ह** का सम्ब ध पश्चिमी पजाबी, राजस्थानी, गुजराती, ब्रजभाषा, कनौजी, बुन्देली, अवधी, बघेली और छत्तीसगढी से जोडा है। यह भी लिखा है कि "**स्स** या **स** का **ह** म परिवतन वस्तुत पश्चिमी भाषाओ एव बोलियो की विशेषता ह किन्तु इसकी छाप पूरब की भाषाओ एव बोलियो पर स्पष्ट रूप से दीख पडती है। (पृष्ठ २६६)। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि जो भाषाएँ भोजपुरी क्षेत्र के पश्चिम मे ह, उन्ह छोडकर उसका विवेचन नही हो सकता। मागधी भाषाओ की एक विशेषता अतीत काल के क्रियारूपा मे **ल** प्रत्यय का व्यवहार है 'किन्तु पश्चिमी अपभ्रश के प्रभाव के कारण इनमे **ल** रहित रूप भी आ गये है।" (पष्ठ २६७)। यदि ऐसे रूप पुरानी बँगला मे भी है तो उनका कारण भी पश्चिमी प्रभाव है।

भोजपुरी म करणकारक के लिए **एँ** प्रत्यय का व्यवहार भी होता है। **बेगे चलि आवहु**—वेग से चले जाओ, **कथिएँ मनावो**—किससे मनाऊँ। इसके बारे म तिवारी जी ने लिखा ह "यह दामोदर पण्डित के 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' की प्राचीन कोसली (अवधी) है यथा—**दुखें सबइ तज**, दुख से सबको छोड दे, पष्ठ ४७ तथा तुलसीदास की अवधी म भी वतमान है। (पष्ठ १८६)। भोजपुरी के अधिकरणकारक मे भी इसी **एँ** प्रत्यय का व्यवहार होता है। इसके लिये डा०तिवारी न लिखा है 'यह विकारी प्रत्यय (कम, करण, सम्प्रदान तथा अधिकरण) के रूप मे पश्चिमी हिन्दी तथा 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' की प्राचीन कोसली (अवधी) एव तुलसीदास म भी मिलता है यथा—**थाहे नाव उखल**, थाह म नाव चलती है, **उक्ति व्यक्ति प्रकरण**, पृष्ठ ४६।" (पृष्ठ १६०)। बँगला और भोजपुरी म एक महत्वपूण अन्तर सम्ब धकारक चिन्ह को लेकर ह। **र** प्रत्यय हिन्दी के समान भोजपुरी के सवनाम रूपो मे तो मिलता ह किन्तु सज्ञा के साथ उसका व्यवहार नही होता। बँगला म **र** प्रत्यय सज्ञा रूपा के साथ भी लगता है किन्तु ऐसा हिन्दी क्षेत्र की भाषाओ मे नही होता। इस दृष्टि से बिहार की सभी भाषाएँ बँगला से भिन्न है। पश्चिमी **क** प्रत्यय का प्रसार बगाल की कुछ बोलियो मे भी हुआ है वह अलग बात है। सम्प्रदान कारक के बारे म बीम्स का मत था कि **कक्ष** से 'कोसली (अवधी) के **कह, कहँ कहु, कहुँ** एव सिन्धी के **खे** परसर्गों की उत्पत्ति" हुई है। (पष्ठ १६३)। **के** का सम्ब ध **कह** से है। उसका मूल रूप **कक्ष** नही **कघ** होगा। अधिकरणकारक मे भोजपुरी मे सम्ब धक का व्यवहार करती है। इसका सम्ब ध **मध्य** स जोडते हुए डा० तिवारी न लिखा ह "पुरानी हिन्दी मे यह **माहि** रूप म मिलता है।

भोजपुरी के सौ वर्ष के पुराने कागजपत्रों में भी यह मांहि वर्तमान है और कदाचित यह पश्चिमी हिन्दी से आया है।" (पृष्ठ १६१)। यहां पश्चिमी हिन्दी का अर्थ है अवधी। आगे बाबूराम सक्सेना का हवाला देते हुए कहते हैं कि 'परसर्ग के रूप में कोसली (अवधी) का महं, महुँ इस बात को सिद्ध करता है कि अर्ध तत्सम प्रत्यय मध' भी प्रचलित था और इस सदर्भ में अवेस्ता के मद रूप का भी स्मरण करते हैं। (पृष्ठ १६१)। आवश्यक नहीं कि अवेस्ता का रूप अर्ध तत्सम हो। मध से जैसे महं बना, वैसे ही कध से कहं बना। जैसे महं से मे बना, वैसे ही कहं से के बना। मध का मूल रूप मध्य था, यह मानना आवश्यक नहीं है जैसे कध का पूर्वरूप कध्य था, यह मानना आवश्यक नहीं है। वस्तुसूचक ध के साथ सर्वनाम म, क आदि का योग होने पर ऐसे सम्बन्धक रूप बनते हैं। कारक रचना में इन्हीं से काम लिया जाता है।

ग्रियर्सन भोजपुरी को हिन्दी की अपेक्षा बँगला के अधिक निकट मानते थे पर उन्होंने यह भी कहा था कि ऐतिहासिक रूप से बिहार का सम्बन्ध पश्चिमोत्तर हिन्दी क्षेत्र से अधिक रहा है और भोजपुरिया के पारिवारिक सबंध भी संयुक्त प्रांत में होते रहे हैं। परिनिष्ठित बँगला में केवल तालव्य श का व्यवहार होता है, दन्त्य सकार का पूर्ण बहिष्कार है। भोजपुरी में स्थिति इससे ठीक उलटी है। ग्रियर्सन ने लिखा था कि बँगला से भिन्न, किन्तु पूर्वी हिन्दी के अनुरूप यहां केवल दन्त्य स का व्यवहार होता है। सो आदि कारक चिह्नों (या सम्बन्धकों) के बारे में लिखा था कि वे पूर्वी हिन्दी के समान हैं। उन्होंने इस बात पर भी ध्यान दिया था कि बिहार में अवधी बोलने वाले काफी लोग हैं। उन्होंने अपने सर्वेक्षण ग्रन्थ में लिखा था कि मुजफ्फरपुर और चम्पारन के मुसलमान जो भाषा बोलते हैं वह अवधी से बहुत मिलती जुलती है। इस कारण अवधी और भोजपुरी में निकट सम्बन्ध होना स्वाभाविक था। उनका विचार था कि मागधी समुदाय की भोजपुरी, बँगला आदि समस्त भाषाओं का एक ही व्याकरण लिखा जा सकता है पर मैथिली और मगही की क्रियापद रचना पर विचार करते हुए उन्होंने स्वीकार किया कि वह बहुत पेचीदा है, और उसकी तुलना में भोजपुरी की क्रियापद रचना बहुत सरल है। उन्होंने बताया कि मगही और मैथिली में क्रियारूप कर्म की ओर भी संकेत करता है किन्तु भोजपुरी में क्रियारूप कर्ता की ओर ही संकेत करता है। इस प्रकार समस्त पूर्वी भाषाओं की बात तो दूर मगही और भोजपुरी के व्याकरण में ही काफी भिन्नता है।

भोजपुरी की क्रियापद रचना में तिङन्त रूप केवल वर्तमान काल में प्रयुक्त होते हैं। ये रूप पुरुष और वचनभेद तो सूचित करते हैं किन्तु लिंगभेद सूचित नहीं करते। भूत और भविष्य के रूप कृदन्तों के आधार पर बनते हैं, मगही के समान उनका निर्माण होता है और मध्यम पुरुष में वे लिंगभेद भी सूचित करते हैं। मागधी समुदाय की मूल प्रवृत्ति लिंगभेद सूचित करने की नहीं है किन्तु भोजपुरी पर पश्चिमी प्रभाव इतना अधिक है कि अवधी भी जहां लिंगभेद सूचित नहीं करती, वहाँ भोजपुरी के रूप ऐसा भेद व्यक्त करते हैं।

वर्तमान काल में उत्तम पुरुष के एकवचन और बहुवचन क्रियापद में चलौं रूप का व्यवहार होता है किन्तु डा० तिवारी का कहना है कि प्राचीन भोजपुरी में उत्तम पुरुष एकवचन रूप चलों भी प्रचलित था। गुजराती के चालु का उल्लेख करने के बाद प्राचीन बँगला के चलों का हवाला दिया है, फिर कहा है, "इसी प्रकार असमिया तथा कोसली में भी चलों का प्रयोग मिलता है।' (पृष्ठ २६३)। वास्तव में अवधी का पुराना रूप चलहुँ है इसी से चलउँ और चलौं का विकास हुआ। प्राचीन भोजपुरी और प्राचीन बँगला में अवधी का यही रूप मिलता है। चलहु के आधार पर ही मानक हिन्दी का चलू विकसित हुआ है और गुजराती का चालु वैकल्पिक रूप चालहुँ का रूपान्तर है। पर मागधी प्राकृत में उत्पन्न भोजपुरी में ये रूप कैसे आ गये जो अवधी ही नहीं, गुजराती में भी हैं? यदि आधुनिक आर्यभाषाओं की क्रियापद रचना पर विचार किया जाय तो विदित होगा कि जितनी समानता यहाँ तिङन्त रूपों में है, उतनी कृदन्त रूपों में नहीं है। (ये तिङन्त रूप उस काल की सूचना देते हैं जो वर्तमान है।) इससे यह संकेत मिलता है कि तिङन्त रूप अधिक प्राचीन हैं किन्तु इससे यह निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि वर्तमान काल के रूपों का ही चलन अधिक था, भविष्य और भूतकाल के रूप नहीं थे। वास्तव में पुराने क्रियारूप क्रिया की अवस्था व्यक्त करते थे, काल भेद नहीं। डा० तिवारी ने लिखा है "साधारण वर्तमान के अर्थ में मूलात्मक काल का आधुनिक भोजपुरी में लोप हो गया है, किन्तु इसके उदाहरण मुहावरा तथा गीता में मिलते हैं।' (पृष्ठ २६३)। यह तथाकथित मूलात्मक काल पहले वर्तमान काल सूचित न करता था, अतः उसके अर्थ के लोप का प्रश्न नहीं है। अतीत और भविष्य से वैषम्य व्यक्त करते हुए अब इसने वर्तमान काल का अर्थ अर्जित कर लिया है।

उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष के बहुवचन रूपों में कोई अन्तर नहीं है। दोनों जगह चलौं है। मेरी समझ में चलहिं से यह रूप बना है। चलो अन्य पुरुष का एकवचन रूप है, चलहु का रूपान्तर है। अन्य पुरुष का एक रूप, एकवचन में ही, चलसु भी है। तिङन्त रूपों की रचना सर्वनाम चिह्न जोड़ कर हुई है। चलसु का सु अन्य पुरुष सूचक सर्वनाम है। हु उसी का रूपान्तर है। भोजपुरी में आदर रहित, साधारण और आदरार्थक, अन्य पुरुष के लिए क्रिया के तीन रूप हैं। चलसु और चलो में भेद करके चलो को आदररहित और चलसु को साधारण रूप बनाया गया। चलो अन्य पुरुष साधारण का बहुवचन रूप भी है। अन्य पुरुष का आदरसूचक चलौं रूप एकवचन और बहुवचन दोनों में प्रयुक्त होता है। इन तीन तरह के रूप मध्यम पुरुष में भी होते हैं। आदररहित एकवचन रूप चलु अवधी के समान है। मध्यम पुरुष का साधारण एकवचन चल हिन्दी से मिलता जुलता है केवल भोजपुरी के चल में दूसरे वर्ण पर बलाघात है और चल का उच्चारण चला जैसा लगता है। मध्यम पुरुष साधारण का बहुवचन रूप भी ऐसा ही होता है। मध्यम पुरुष के आदरसूचक एकवचन, बहुवचन रूप एक ही है, उत्तम पुरुष के एकवचन बहुवचन चलौं का व्यवहार यहाँ भी होता है। मध्यम और अन्य पुरुषों के आदररहित बहुवचन रूप एक से हैं और ये बहुत दिलचस्प हैं। उदाहरणों के

लिए चल क्रिया को आधार मानकर डा० तिवारी ने ये रूप दिये हैं चलसहि, चलसन, चलस, चलस। अंतिम दोनों रूपों में स पर बलाघात है जिससे स्वर दीर्घ सुनाई देगा। प्रश्न यह है कि सहि, सन, सँ, स परस्पर सम्बद्ध है या नहीं। दूसरा प्रश्न है ये सर्वनाम हैं या नहीं। डा० तिवारी का मत है कि ये परस्पर सम्बद्ध है, लिखा है "वस्तुत चलसन, चलसँ तथा चलस रूप चलसहि के ही संक्षिप्त रूप हैं।" (पृ० २६५)। मुझे यह बात सही जान पड़ती है। चलसहि रूप पुराना है। ह का लोप होने पर केवल न रह गया और इस व्यंजन का लोप हुआ तो पूर्व स्वर अनुनासिक हुआ, फिर इस अनुनासिकता का भी लोप हुआ। चलस रूप संस्कृत के मध्यम पुरुष बहुवचन चलथ से मिलता जुलता है। एकवचन रूप संस्कृत में चलसि है इसलिए चलस और चलथ एक दूसरे से नितान्त असम्बद्ध नहीं हैं। किन्तु सहि सर्वनाम है, यह बात बहुतों के लिये कल्पनातीत होगी। डा० तिवारी ने चलसहि में चलसि या चलसु को आधार रूप मानकर उसमें अहि जोड़ा है। अहि के बारे में लिखा है 'यह सम्बन्धकारक बहुवचन का प्रत्यय है। यथा घोड़हि, घोड़े। बहुवचन प्रत्यय के रूप में अहि (लोगहि) का व्यवहार गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस में भी मिलता है।" (पृष्ठ २६८)।

पहली बात तो यह है कि चलसहि की व्याख्या चलसि या चलसु में अहि जोड़कर नहीं की जा सकती, यह सहि और बहुत से रूपों में जोड़ा जाता है जिनके आसपास कहीं चलसु जैसे रूपों का स है ही नहीं। भविष्य के लिये चलिह सहि देखब सहि अतीत के लिये देखुअ सहि देखल सहि प्रमाण हैं। ये सभी मध्यम पुरुष के आदररहित बहुवचन रूप हैं। यहाँ अहि से काम न चलेगा, सहि का स्वतंत्र अस्तित्व मानना होगा। अहि के पहले किसी क्रियारूप के सकार का योग होने से सहि बना, यह धारणा व्यर्थ है। सहि निस्सन्देह सहि का रूपान्तर हो सकता है। वह बहुवचन का प्रत्यय है, सम्बन्धकारक से उसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। सम्बन्धकारक के प्रसंग में डा० तिवारी ने इसका उल्लेख भी नहीं किया किन्तु बहुवचन ज्ञापक शब्दावली के प्रसंग में उदाहरण लिखा है कि भोजपुरी में घरहि घरन्, घरहि घरनि रूप बोले जाते हैं। इस लिये अहि का सम्बन्ध बहुवचन से असंदिग्ध है। मानक हिन्दी के घरों लोगों आदि का पूर्वरूप घरन, लोगन है। अहि से संस्कृत ज्ञानानि जैसे बहुवचन रूपों के आनि की तुलना करना चाहिए। अहि का कोई सम्बन्ध करण या सम्बन्धकारक के चिह्नों से नहीं है। मागधी भाषाओं में बहुवचन समूह सूचक शब्दों की सहायता से बनते हैं यह कहने के बाद डा० तिवारी भोजपुरी के बहुवचन चिह्नों का सम्बन्ध संस्कृत से स्थापित करते हैं "संस्कृत बहुवचन के रूप तथा बहुवचन सम्बन्धी कतिपय सहायक शब्द प्राकृत भाषा काल में ही आ गये थे। ये रूप तथा शब्द मागधी एवं अन्य आधुनिक आर्यभाषाओं में आज भी मिलते हैं। इस प्रकार संस्कृत बहुवचन के कतिपय रूप भोजपुरी में भी मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप भोजपुरी में बहुवचन अन, अनि, अह अहि, ह हि, न, नि प्रत्ययों की सहायता से बनते हैं। ये वास्तव में सम्बन्ध के बहुवचन प्रत्यय एवं सम्बन्ध तथा करण के बहुवचन प्रत्ययों के सम्मिश्रण हैं और आज भोजपुरी के कर्ताकारक

बहुवचन में इनका प्रयोग होता है।" (पृष्ठ १८७)। यह प्रसग अभी यही छोडते है। आगे भोजपुरी के सवनामो की चर्चा करेंगे, तब इस सहि पर फिर विचार करेंगे।

भोजपुरी म ब युक्त और ब विहीन दोना तरह के भविष्यकालिक रूप है इसी तरह ल युक्त और ल विहीन दोनो तरह के भूतकालीन रूप है। इन रूपा का आधार कृदन्त हैं इसका प्रमाण यह है कि मध्यम पुरुष म स्त्रीलिंग रूप अलग होते है। आय परिवार की सभी भाषाआ म कृदन्ता का व्यवहार सबसे अधिक भूतकालिक रूपा म होता ह। भोजपुरी मे भी यही स्थिति है। ह वाले भविष्य कालिक रूपो म लिंगभेद नही है किन्तु ब वाल रूपा मे ह। **देखब** और **देखबू** मध्यम पुरुष साधारण के एकवचन रूप है, पहला पुल्लिग ह, दूसरा स्त्रीलिंग। यहा ब प्रत्यय वसे ही लिंगभेद सूचित करता ह जैसे मानक हिन्दी का गा। **तू देखेगा—तु देखब, तू देखेगी—तु देखबू**। अवधी म **एव देखिहै**, स्त्री और पुरुष दोनो के लिय प्रयुक्त होगा। अवधी को दरकिनार करत हुए यहा खडी बोली का सीधा प्रभाव भोजपुरी पर पडा है। ल विहीन अतीतकालीन, मध्यमपुरुष, साधारण, एकवचन रूप म एसा ही भेद है। **तु देखुअ—**तून (पुरुष न) देखा, **तु देखुऊ** तू न (स्त्री ने) देखा। हिन्दी और भोजपुरी म यहा अन्तर यह है कि भोजपुरी की सकमक क्रिया, कम क अनुसार, लिंगभेद सूचित नही करती, वरन् कर्ता के अनुसार सूचित करती ह। इससे यह सिद्ध नही होता कि भोजपुरी की लिंगभेद सूचक क्रियापद रचना हिन्दी से प्रभावित नही है, सिद्ध यह होता है कि भोजपुरी मे कतृ वाच्य प्रवत्ति शक्तिशाली है इस कारण भूतकालिक सकमक कतृवाच्य रूपा म भी, जहा हिन्दी म लिंगभेद नही है, वहा भोजपुरी मे वसा भेद है। कमवाच्य प्रयोगा के बारे म डा० चाटुर्ज्या का हवाला देते हुए डा० तिवारी ने लिखा है "आधुनिक भारतीय आयभाषाओ के इतिहास के प्रारम्भिक युग स ही कमवाच्य का भाव विश्लेषणात्मक रीति से प्रकट किया जाने लगा तथा प्रत्यय के सयोग स कमवाच्य बनाने की विधि का लोप होने लगा। पश्चिम की भाषाआ एव बोलिया म प्रत्यय क सयोग स निर्मित कमवाच्य पद मिलते हैं, किन्तु मध्यदेश, दक्षिण तथा पूरब की भाषाआ मे इनका लोप हो गया है और केवल पुरानी भाषाआ मे इसके कही-कही उदाहरण मिलत है।' (पृष्ठ २९८)। पश्चिमी भाषाओ म सिन्धी, राजस्थानी, नेपाली और पजाबी गिनाइ गयी है। पजाबी पढिये, राजस्थानी पढीज, प्रत्यय जोडकर, कमवाच्य बनान के उदाहरण बताये गय ह पर हिन्दी म उनका अभाव माना गया है। इसके बाद ही **रामचरित मानस** से ***सोचिय बिप्र जो बेद बिहीना*** उदाहरण दिया है। *एक एक उदाहरण विद्यापति और* **वणरत्नाकर** स भी हैं। एसे रूप मूलत व्रजभाषा के ह और उसके प्रभाव स वे अवधी तथा मागधी भाषाओ म आये हैं। आगे डा० तिवारी कहते है "भोजपुरी साहित्यिक भाषा नही है। यही कारण ह कि इसम प्रत्यय सयोगी-कमवाच्य के उदाहरण नही मिलत।' (पृष्ठ २५६)। भोजपुरी के साहित्यिक या असाहित्यिक होन स **सोचिये**, **चाहिये** जस रूपा का कोई सम्बन्ध नही है। अवधी के समान भोजपुरी कतृवाच्य प्रधान भाषा है। जिन भाषाआ म कृदन्ता का व्यवहार अधिक है, उनम कमवाच्य की प्रवत्ति

भी अधिक शक्तिशाली देखी जाती है। **हमरा घर से ओकर घर देखल जाला**—मेरे घर से उसका घर देखा जाता है, **दूध मे भेंइ के रोटी खाइल जाला**—दूध में भिगोकर रोटी खाई जाती है (पृष्ठ २६०), इन उदाहरणो म कम क अनुसार कृदन्ता का रूप नही बदलता। जो रूप पुल्लिंग के लिय है, वही स्त्रीलिंग क लिये। किन्तु कम के अनुसार क्रिया में लिंगभेद न भी दिखाकर भोजपुरी कर्ता के अनुसार लिंगभेद सूचित करती है **तु देखल**—तू न (पुरुष ने) देखा, **तू देखलू**—तू न (स्त्री न) देखा।

बँगला और भोजपुरी मे एक भेद यह है कि छ क्रिया बँगला मे प्रचलित है इसके विपरीत भोजपुरी म हू क्रिया का व्यवहार होता ह। भोजपुरी न लिंगभेद की रीति किस सीमा तक विकसित की है उसका प्रमाण हू क्रिया के रूप ह। **तु हउअ**—तू है (पुल्लिंग), **तू हयू** (स्त्रीलिंग)। **हउएँ**—वह है (पुल्लिंग), हउइ (स्त्रीलिंग) (पष्ठ २७७)। हिन्दी, अवधी आदि म हू क्रिया इस प्रकार लिंगभेद सूचित नहीं करती।

भोजपुरी की एक विशेष क्रिया **होख** है। इसका अथ वही है जो **हो** क्रिया का है। **हो** की उत्पत्ति **भू** से और **खो** की उत्पत्ति खलु स हुइ है, यह धारणा अमान्य करत हुए डा० तिवारी न और कोई सुझाव नही दिया। माना है कि **होख** की व्युत्पत्ति दना कठिन है। **गुरु ग्रंथ साहिब** के पदो मे तथा पजाब म लिखे हुए पुरान हिन्दी गद्य म जो **होग** और **होगु** रूप मिलत है व **होख** की समस्या शायद हल कर सकें। **होग** का **ग** कृदन्त प्रत्यय है जो तमिल म भी कृदन्त रूप बनान के काम आता है। जस तमिल क्रिया **पो** (जाना) से **पोग**, वैसे ही **हो** क्रिया से पजाब की हिन्दी म **होग**। **ग** प्रत्यय मूलत **घ** था, उससे ग और ख रूपो का विकास स्वाभाविक है।

भोजपुरी की एक विशिष्ट क्रिया **नइखे** है। इसकी व्युत्पत्ति वैस ही रहस्यमय है जैसे होख की। नकारात्मक क्रियाओ का व्यवहार द्रविड भाषाओ की विशेषता ह। सम्भव है, नइ किसी नसि, नहि जस रूप का विकास हो। उसम घ कृदन्त प्रत्यय लगा और वह अघोष **ख** रूप म बोला जान लगा।

हिन्दी तथा अन्य भाषाओ के समान भोजपुरी की एक क्रिया **रह** है। यह मराठी स बगला तक और हिन्दी स कश्मीरी तक प्रयुक्त होती है। एस व्यापक रूप म प्रयुक्त होन वाली क्रिया न भाषाविज्ञानियो के लिय कठिनाई उत्पन्न कर दी क्योकि उसका व्यवहार सस्कृत मे नहीं है। "इस धातु की व्युत्पत्ति अज्ञात है।" (पृष्ठ २७८)। जब तक अज्ञात व्युत्पत्ति का पता न चले तब तक इस आयभाषा परिवार की एसी पुरानी क्रिया मान लेना चाहिए जिसका व्यवहार सस्कृत म नही हुआ।

भोजपुरी के सवनाम रूप अत्यत रोचक हैं। उत्तम पुरुष का कर्ताकारक एक वचन रूप **मे** ठेठ पश्चिमी ह। डा० तिवारी के अनुसार आधुनिक भोजपुरी म इसका प्राय लोप हो गया है, केवल स्त्रिया कभी-कभी इसका प्रयोग करती है। अब एकवचन **हम** का व्यवहार होता है। इसका विकारी रूप **हमरा** ह किन्तु **हम** का व्यवहार भी होता है। डा० तिवारी का कहना ह कि 'एकवचन विकारी रूप में **हम** का व्यवहार भोजपुरी म वस्तुत हिन्दी क प्रभाव क कारण होता है। (पष्ठ २१२)। **हम** रूप एकवचन

मिलता है।(पृष्ठ २१८)। से को आधार रूप सध मानना चाहिए। से ठेठ कौरवी रूप है, सो मागधी रूप है किन्तु वह मागधी क्षेत्र से बाहर प्रयुक्त होता है। जे और से पंजाब में लिखे हुए पुराने हिन्दी गद्य में मिलते हैं। स आधारित सर्वनाम का निकटवर्ती रूप सि या सिध है। भोजपुरी में एकवचन के ई, इ हि हिन्दी यह और इन से मिलते हैं। रोचक रूप हैं हई (आदर रहित), हिहि (साधारण)। ये रोचक इसलिए हैं कि इनसे निकटवर्ती और दूरस्थ वस्तुओं के संकेतक उन सर्वनामों के मूल रूपों का पता चलता है जो आर्य भाषा परिवार के अतिरिक्त द्रविड परिवार में भी प्रयुक्त होते हैं। मूल रूपों में सकार है। मागधी क्षेत्र में स् बड़े पैमाने पर ह में परिवर्तित हुआ है। ऐसा परिवर्तन केवल पश्चिमी भाषाओं की विशेषता नहीं है। फिर इस ह का भी लोप होता है। मूल रूपों में ह् जोड़ा गया है, यह मानने का कोई कारण नहीं है। इ हि और हिहि में दूसरा रूप पुराना है। सम्बन्धकारक में एकर का प्रतिरूप हेकर पुराना है। बहुवचन में इन्हनका, इन्हनिका के साथ हिन्हनका, हिन्हनीका भी है। द्रविड परिवार के अतिरिक्त गोल भाषाओं के सर्वनामों से तथा इण्डोयूरोपियन परिवार में नार्वे और स्वीडन जैसे देशों की भाषाओं के सर्वनामों से तुलना करने पर इन ह वाले रूपों की व्यापकता और प्राचीनता का बोध होगा।

निकटवर्ती संकेतक सर्वनाम का मूल चिह्न सि है, वैसे ही दूरवर्ती संकेतक का चिह्न सु है। भोजपुरी में उ, उन्हि हुन्हि, तीनों रूप सु के आधार पर बने हैं। हऊ रूप का आधार स है। ये सब रूप अविकारी हैं। इनके बहुवचन रूपों में उन्हन, हुन्हन आदि उसी सु के आधार पर बने हैं। सम्बन्धकारक के ओकर और होकर का आधार सो है।

पश्चिमी भोजपुरी के ओन्हन् और ओनहन बहुवचन रूप विचारणीय हैं। ये चलिहसन्, चलिहसन्हि क्रियारूपों के सन् और सन्हि की याद दिलाते हैं। हन् का पूर्व रूप सन् है, सन का पूर्वरूप सन्हि है और सन्हि का पूर्वरूप सन्धि है। सध के वैकल्पिक रूप होंगे सधि सन्धि। ये सारे रूप संकेतक सर्वनाम हैं जो सर्वनाम मूलों में वस्तुवाचक ध चिह्न जोड़कर बनाये गये हैं। हन् का उपयोग सर्वनामों के बहुवचन के लिए किया गया, सन्हि, सन् का उपयोग क्रिया के साथ बहुत्वभाव की सूचना के लिए किया गया।

सम्बन्धवाचक सर्वनामों में जे के साथ जेह और जिहि रूप ध्यान देने योग्य हैं। अन्य सर्वनामों के समान यहाँ भी सर्वनाम मूल में ध चिह्न जोड़ने पर ये रूप बने हैं। यध से कौरवी जे, मागधी जो बनेंगे। जेह, जिहि जैसे रूपों में ह ध्वनि अस्थिर मूल रूप के ध की ओर संकेत करता है। इस यध के दूसरे वर्ण की महाप्राणता का लोप होने पर संस्कृत का यद रूप बनता है। जे के समान से और ते के साथ भी ह वाले रूप हैं। एकवचन में से के साथ तेह और तिहि रूप हैं। बहुवचन में से के साथ सेह् भी है। सम्बन्धकारक में तेकर और सकर के साथ तेहकर और सेहकर रूप भी हैं। सम्भवतः भोजपुरी एकमात्र भाषा है जो से और ते के साथ ह् जोड़कर सेह और तेह रूपों का व्यवहार करती है। इससे यह धारणा पुष्ट होती है कि म, स, त आदि सर्वनाम मूलों में वस्तु स्थान व्यक्तिसूचक ध चिह्न जोड़कर मध, तध, सध, जध रूप बनाये गये थे। स्वाभाविक

है कि जे और जेह के समान भोजपुरी म के के साथ केह रूप भी हो। कौन हिन्दी का मानक रूप ह, भोजपुरी म भी प्रयुक्त होता है। पुरानी हिन्दी म कवन रूप अक्सर मिलता है। भोजपुरी म कवन के साथ कँवन रूप भी है। यदि मूल रूप कथ मानें तो इसम के, को रूप तो मिलेंगे ही, इसम बहुत्वसूचक न चिन्ह जोडने पर कवन रूप भी मिलेगा। मालवी म जैसे लुहार का रूपान्तर लुवार है, वैसे ही कहन का रूपान्तर कवन होगा विशेष रूप म तब जब प्रथम वर्ण के अकार का उच्चारण किंचित वृत्ताकार हो। निर्जीव पदार्थों के लिए केथी रूप ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण ह। यहा मूल रूप का घ चिन्ह ह के बदले थ म परिवर्तित हुआ है, ठीक वैसे ही जैसे कथम् मे सस्कृत कथम बना। डा० तिवारी न सम्प्र घकारक के लिए दो रूप दिए है, काहे के और केथी के। फिर टिप्पणी की है "करण का रूप कॅथिएँ केवल प्राचीन भोजपुरी के लोकगीतो म मिलता है।' (पृ० २३१)। गोरखपुर की भोजपुरी म निर्जीव पदार्थों के लिए प्रयुक्त होने वाले तीन रूप है, के, केह केथी। तीनो का आधार एक है। आजमगढ की भोजपुरी म केयुआ के साथ क्युआ रूप भी है। अनिश्चयवाचक सवनाम म केऊ के साथ केउ और केहू रूप भी है। सस्कृत कोऽपि स कोई, कोऊ सिद्ध करन के बदले केंघ या कोघ स इनका सम्बन्ध जोडना अधिक युक्तिसगत होगा।

भोजपुरी तथा पश्चिमी भाषाओ के परस्पर सम्बन्ध का एक प्रमाण राउर शब्द है। डा० तिवारी ने बताया ह कि राजस्थान की बोलियो म रावरो का प्रयोग पति के अथ मे होता है। राजस्थान और भोजपुरी क्षेत्र का सम्बन्ध तो राउर स सिद्ध ही हुआ, इसने व्रजभाषा को भी उसी सम्बन्ध सूत्र से बाध लिया ह। डा० उदय नारायण तिवारी ने लिखा है "भोजपुरी का राउर सवनाम इतना प्रसिद्ध है कि व्रजभाषा के कवियो—सूरदास (१४८३ स १५६३ ई०) स जगन्नाथदास रत्नाकर (१८६६ से १९३२ ई०) तक—ने स्वतत्रतापूवक इसका प्रयोग किया ह। (पृष्ठ २३७)। फिर भी तिवारी जी कहते हैं कि भोजपुरी साहित्यिक भाषा नही है! न लिखा हो भोजपुरी मे किसी ने सूरसागर, पर सूरसागर म तो भोजपुरी का शब्द ह। यह क्या भोजपुरी के साहित्यिक वचस्व का प्रमाण नही ह?

राउर की व्युत्पत्ति बताइ ह सस्कृत रूप राजकुल या राजकुल्य होगा, प्राकृत म लाउल रूप है। पश्चिम म इसका रूप रावल हुआ। भोजपुरी म रवरा रउरॉ, रउआ रउवाँ रूप प्रयुक्त होते है। तिवारी जी ने लिखा है "रउआँ या रउवाँ वस्तुत राउ के विस्तृत रूप है। मूल शब्द राज है।" (पृष्ठ २३७)। अत राज और राजकुल म चुनाव करना ह। किसी व्यक्ति को सम्मान मे राजा कहा जाय, यह बात समझ म आती है किन्तु उस राजकुल कहा जाय, यह बात असगत लगती है। राजकुल्य और भी सदिग्ध है। राव या राउ मे बहुत्वसूचक र य ल जोडने स राउर या रावल जैसे रूप बनेंगे। प्राकृत म लाउल वास्तव म राउर की नकल है। यह मानकर कि मगधी समुदाय के सभी लोग र की जगह ल ही बोलत है, राउर का लाउल किया गया था।

ऊपर सन को सवनाम मानकर जो कुछ कहा गया है, उस याद करते हुए भोज-

पुरी के **अइसन, जइसन** रूपो पर विचार करना चाहिए। **अइसन** का सम्बन्ध **एतादृश** से और **जइसन्** का सम्बन्ध **यादृश** से जोडा गया है। इन सस्कृत रूपो मे न कही है नही, इसलिये **एतादृशन** और **यादशन** रूपो की कल्पना की गई। वास्तव मे **ऐसन, जैसन** और हिंदी के **ऐसा, जसा** आदि का सम्बन्ध **दृश** वाले रूपो से नही है। भोजपुरी **सन** सस्कृत **सम** का रूपातर है। इस विशेषक मे सवनाम मूल जोडकर एमे रूपो की रचना हुई है। **रामचरित मानस** म सम्बन्धक **सन** का बहुत प्रयोग है। वह भी **सम** का रूपातर है। इसी **सन** से ब्रजभाषा क **सो, सें** रूप बने है। भोजपुरी की विशेषता यह है कि वह नासिक्य व्यजन को सुरक्षित किय ह। **अइसन जइसन** रूप अवधी मे भी है।

भोजपुरी के परिमाण और सख्यासूचक विशेषक बहुत रोचक हैं। **अतेक, एतेक** के साथ **हतेक** आर **हेनेक** रूप है। **ओतेक** के साथ **होतेक** रूप है। अतहत—हतहत, एतहत—हेतहत, **ओतहत—होतहत, अतना—हतना, एतना—हेतना, ओतना – होतना** जैसे युग्म भोजपुरी की विशेषता है। **अ** क साथ **ए** और **ओ** वाले रूप भी है। अकार वाले रूप कोमली प्रवृत्ति क अनुरूप ह, एकार वाल रूप कौरवी प्रवत्ति के और ओकार वाले मागधी प्रवत्ति के। कही इनमे अथभेद होता है, कही नही होता। **अइसन ऐसन** और **एइसन** का अथ है इस प्रकार किन्तु **ओइसन** का अथ है उस प्रकार। **हतना होतना** आदि मे महाप्राणता अनावश्यक रूप मे जोडी नही गई, इसका प्रमाण ह बँगला और उडिया के **एते, केते, जेते** के साथ **सेते** रूप। उससे स्पष्ट है कि ऐसे रूप स सवनाममूल के आधार पर बने थे। **सेते** का रूपान्तर **हेते, एते, सतना, सोतना** क रूपातर **हतना, होतना, ओतना।** किन्तु डा० तिवारी ने ह को स का रूपातर न मानकर ह को जोडा हुआ माना है। लिखा है कि **हतेक** आदि रूपो म "वास्तव म ह का आदि म आगमन हुआ है।' (पृष्ठ २३६)। इसी तरह **अतहत एतहत** ओतहत जैसे रूपो म उन्होंने ह को जोडा हुआ माना ह। **एत** और **अत** के बीच म आ गया ह और रूप बन **एतहत**!

सवनाममूलक, कालसूचक विशेषको म से का रूपातर ह और भी स्पष्ट है। **हेबेरां हेजुन**—इसी समय। इसी प्रकार **होजुन**—उस समय, **जेहजुन**—जब, स्थान वाचक विशेषको म **यहाँ** क लिय **हिहवा वहा** के लिय **हुहवा** अथवा **हिँहा, हुँहा** आदि। दिशासूचक शब्दो म **हेने**—इस ओर, **होने**—उस आर भी अवलोकनीय हैं। **होहर**—उस आर जैसे रूपो म ह की बहुलता आकस्मिक नही है। **होहर** मे **हो** तो **सो** का रूपातर है और **हर घर** का। तिवारी जी न भोजपुरी के **हर** वाले रूपो की तुलना हिन्दी क **इधर, उधर** म बिलकुल ठीक की है। उन्होंने **हर** की उत्पत्ति **घर** स मानी है (पृष्ठ २४२) जो एकदम ठीक है। जसे **हर** म **ह** अलग से नही जोडा गया वैसे ही **हो, हे, ह** आदि म आरम्भ होन वाले सवनाम रूपो म ह अलग स नही जोडा गया। वह **सो से, स** आदि क **स** का रूपातर है।

मागधी समुदाय की अन्य भाषाओ की अपेक्षा भोजपुरी न अपने पुराने सवनाम रूपो की रक्षा अधिक की ह। जहाँ **ह** ध्वनि का बाहुल्य हो वहा द्रविड प्रभाव नियत होगा यही मानना चाहिए। अन्य जनपदीय भाषाओ की तरह भोजपुरी की विशेषताओ

स भी—उसके सवनाम रूपा, त्रियापद रचना आदि की विलक्षणताआ के अध्ययन से—समस्त आय भाषाओं के विकास को समझने म सहायता मिलती है।

इन समस्त आय भापाआ म सम्कृत भी शामिल है। मागधी क्षेत्र पर कौल सवनामा का प्रभाव है, एसा निणय करने से पहले भोजपुरी की सवनाम सरचना का विश्लेषण कर लेना चाहिए।

४ कोसल

(क) प्राचीन सपर्क भापा—कोसली

क्या उत्तर भारत के विशाल क्षेत्र म सस्कृत, प्राकृत, पालि, अपभ्रश के अलावा प्राचीन काल मे किसी अय भापा का व्यवहार होता था ? पालि साहित्य के पडित और बौद्धकालीन भारत के इतिहास विशेषज्ञ रिस् डेविडस न इस प्रश्न का विश्वासपूवक उत्तर दिया है कि बौद्धकाल म समूचे उत्तर भारत म कोसल की भापा सम्पक भाषा के रूप म प्रयुक्त होती थी और यह भाषा सस्कृत ही नही, पालि स भी भिन्न थी। बुधिस्ट इंडिया पुस्तक मे उन्होंने प्राचीन काल की भाषायी स्थिति क बारे म लिखा है "सबस पहले तो यह स्पष्ट है कि भाषाआ की भिन्नता से परस्पर आदानप्रदान म कोई रुकावट न पैदा हुई थी। दैनिक जीवन की सामाय बाता को लेकर जो सामाय बातचीत होती थी, उसमे कोई रुकावट न थी। यही नही, सूक्ष्म और उच्चस्तरीय दाशनिक, धार्मिक चर्चा मे कोई कठिनाई न थी। पश्चिम म कुरु प्रदश स लेकर पूव म मगध तक, उत्तर म नेपाली पवत माला मे सावत्थी और कुसीनारा तथा दक्षिण म उज्जैन तक, जो सामाय भापा व्यापक रूप स समझी जाती थी, वह सस्कृत न हो सकती थी। साहित्यिक सस्कृत का अभी अस्तित्व न था। ब्राह्मण-ग्रथा म जिस भापा का प्रयोग हुआ है उस ब्राह्मणा के दूर दूर तक बिखरे हुए समुदाया के बाहर बहुत कम लोग जानत थे न वह भाषा एसी थी कि उसका उपयोग वादविवाद के लिए किया जा सक। एक ही तकसगत सम्भावना सामने आती है कि परिव्राजक-गण ऐसी भापा का व्यवहार करत थे जो शिष्टवर्गों (प्रशासनिक कमचारिया, कुलीनजनो, व्यापारिया) आदि म प्रचलित थी। इसका स्थानीय बोलिया से बहुत कुछ वैसा ही सम्बध था जैसा शेक्सपियर के समय मे सोमरसेट शायर, यौर्कशायर और एसेक्स की बोलिया से लदन की अग्रेजी का था। इस तरह की भाषा का विकास ठीक उसी समय सम्भव हुआ था। यदि यह भापा कोसल के विशाल राज्य के प्रसार का प्रत्यक्ष परिणाम नही थी तो वह उसस बहुत अधिक सवधित अवश्य हुई थी। बौद्ध धम के अभ्युदय से ठीक पहले इस कोसल राज्य म वतमान सयुक्त प्रात का सारा प्रदेश ही नही था, कुछ और क्षेत्र भी था। अपने विशाल क्षेत्र म एक छोर से दूसरे छोर तक, राजनीय और व्यापारिक शान्तिमय आदानप्रदान के लिए, इस राज्य ने अवसर और सुविधा जुटाई। इन राजनीतिक परिस्थितिया से ही परिव्राजका की रीतिनीति का विकास तीव्र गति से हुआ। कोसल राज्यसत्ता की स्थापना से पहले इनके बारे मे कोई जानकारी नही मिलती। इन्हाने निस्स देह सामाय भाषा के उच्चतर बौद्धिक पक्ष के

विकास म बडा योगदान किया। कोसल राज्य की शान्तिपूर्ण व्यवस्था मे सुरक्षित रह कर इस भाषा को सवर्धित होन का अवसर मिला।" (पृष्ठ ६०)।

इसके बाद संस्कृत नाटको म प्राकृतो का व्यवहार देखकर यूरप क विद्वानो को जो भ्रान्ति हुई कि वे लोक भाषाएँ है, उसके बारे म लेखक ने आग कहा है 'यह सम्भव है कि नाटको के लेखन-काल मे भी सामा य जीवन म हर व्यक्ति यथाथत न संस्कृत बोलता था न प्राकृत वरन सीधे लोक भाषाएँ बोलता था। जब संस्कृत सवप्रधान साहित्यिक भाषा बन गई तब शिष्ट जनसमुदाय के लिए नाटककारो ने संस्कृत म, तथा उतनी ही अयथाथ साहित्यिक प्राकृतो म सवादो को विभाजित करना उचित समझा।' (पृ० ६१)। हिस् डेविडस अन्य इतिहासकारो के समान मानत है कि आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया और उस समय व जो भाषा बोलत थ, वह वैदिक भाषा थी। बौद्धकाल से पहले यहा विभिन्न जनपद थ, मगध से लेकर कुरु और ग धार जनपदो तक भाषाओ मे काफी विभिनता थी, यह धारणा उनकी कल्पना स परे है। वह समझत हैं कि कोसल के अभ्युदय के बाद ही एक विशाल प्रदेश म सम्पक भाषा का प्रसार हुआ। इससे बहुत पहल गणसमाजो के युग म—साम ती व्यवस्था के अभ्युदय और प्रसार स पहले—गण भाषाओ म परस्पर सम्पक काफी बढ चुका था। वैदिक भाषा ऐसे ही सम्पक का परिणाम थी। वैदिक भाषा की इसी परम्परा क आधार पर संस्कृत का विकास हुआ। यद्यपि पालि और प्राकृतो म जहा तहा संस्कृत स इतर तत्व भी मिलत ह, फिर भी उनका विकास संस्कृत क आधार पर हुआ ह वदिक भाषा या किसी अन्य भाषा के आधार पर नही। पालि भाषा का बौद्ध धम म गहरा सम्ब ध ह और प्राकृतो का जैन धम से। पर इन दोनो धर्मों के अभ्युदय के बहुत दिन बाद इन भाषाओ का विकास हुआ। इससे पहले संस्कृत अपना साहित्यिक रूप प्राप्त कर चुकी थी। किन्तु जिस समय वदिक भाषा सम्पक भाषा थी, उस समय कोसल और मगध की अपनी भाषाएँ लुप्त न हो गई थी। जिस समय साहित्य, धम और दशन क क्षत्रो म संस्कृत, पालि और प्राकृतो का व्यवहार होता था, उस समय पुरानी गणभाषाओ क आधार पर निर्मित होन वाली जनपदीय भाषाएँ रगमच पर आ चुकी थी। हिस डेविडस न कोसल की भाषा क बारे म जो कुछ लिखा है उसका महत्व यह ह कि उन्होने एक जनपदीय भाषा का अस्तित्व स्वीकार किया ह जो संस्कृत और प्राकृतो स भिन्न ह। यह बोलचाल की भाषा थी और एक बहुत बडे प्रदेश म सम्पक भाषा थी। इस उन्होन सामान्य बोलचाल की भाषा कहा है। उनकी धारणा है कि इस भाषा के आधार पर पालि का विकास हुआ और पालि न कोसल की भाषा क उस रूप को अपनाया जो उज्जैन म प्रचलित था। यह धारणा विवादास्पद है। उज्जैन मालव जनपद का प्रधान केन्द्र रहा ह। पश्चिमी गणसमाजो क समान मालवगण की भाषा भी णकार बहुला थी किन्तु पालि म इस मूध य नासिक्य की गणन कम ह। दन्त्य स की प्रधानता उस मध्यदेश म जाती है। कोसल की भाषा पालि का आधार भले रही हो पर वह पालि से भिन्न थी, हिस् डविड्स यह मानत हैं। आधुनिक आयभाषाओ म कोसल की भाषा के इतर तत्व मिलत ह पूर्वी और पश्चिमी दोनो ओर की आयभाषाओ म

मिलते हैं। ये तत्व पुरानी और आधुनिक अवधी दोनों में है। यह सिलसिला बहुत पुराना है। कोसल आर्यभाषाओं के केन्द्र में स्थित है। वह पड़ोसी भाषाओं से अनेक तत्व ग्रहण करता रहा है, साथ ही वह अनेक भाषातत्वों का प्रसार केन्द्र भी रहा है। हिन्दी प्रदेश की जनपदीय भाषाओं तथा आधुनिक आर्यभाषाओं के परस्पर सम्पर्क की छानबीन करने पर यह धारणा सत्य मालूम होती है कि कोसल राज्य का विस्तार होने पर जनपदों में सम्पर्क बढ़ा था और जिस सम्पर्क भाषा का व्यवहार सर्वाधिक किया जाता था, वह कोसल की भाषा थी। रिस डेविड्स का कथन है 'एक बोलचाल की भाषा कोसल के राज-कर्मचारियों, व्यापारियों और शिष्टवर्गों में सामान्य रूप से प्रचलित थी। सम्भवतः उसका आधार कोसल की राजधानी सावत्थी की बोली थी। इस भाषा का व्यवहार समूचे कोसल राज्य में ही न होता था वरन पूरब और पच्छिम में, दिल्ली से पटना तक और उत्तर दक्खिन में सावत्थी से अवन्ति तक उसका व्यवहार होता था।' (पृष्ठ ६५)। मेरी समझ में रिस डेविड्स का यह अनुमान सही है।

प्राचीन काल में कुरु, कोसल और मगध, ये तीन गणसमाज अत्यन्त शक्तिशाली थे। मगध की भाषा ने संस्कृत और उससे पहले वैदिक भाषा के निर्माण में योगदान किया। जो भाषा वैदिक भाषा बनी वह मूलतः मध्यदेश की भाषा थी। मध्यदेश में *जो अनेक गणभाषाएँ बोली जाती थीं, उनमें कोसल की भाषा प्रमुख थी।* इस भाषा को कुरुगण की भाषा ने प्रभावित किया और तब उसने अपना वैदिक रूप धारण किया। भारत के सामाजिक सांस्कृतिक इतिहास में शक्ति के केन्द्र बदलते रहे हैं पर इन बदलते हुए केन्द्रों से उक्त तीनों जनपदों का सम्बन्ध कभी न कभी अवश्य रहा है। संस्कृत साहित्य के उत्तर काल में हर्ष के समय तक कोसल का प्रधान भूमिका बनी हुई थी। जिस साम्राज्य का केन्द्र कनौज था, उसके विघटित होने पर इस प्रदेश से बहुत से लोग बङ्गाल, गुजरात सुदूर प्रान्तों में चले गए। कोसल तथा अन्य प्रदेशों की भाषाओं के लिए ये लोग सम्पर्क का ठोस आधार बने। बारहवीं सदी में काशी के दामोदर पण्डित कनौज के राज्य से सम्बद्ध थे। उस राज्य में अवधी का इतना व्यवहार होता था कि बनारस के दामोदर पण्डित ने अवधी जानने वालों को संस्कृत सिखाने के लिए **उक्ति व्यक्ति प्रकरण** ग्रन्थ रचा। साहित्य में जो अपभ्रंश की परम्परा चली उसमें अवधी भाषा के अनेक तत्व मिलते हैं। आगे चलकर ब्रजभाषा तथा परिनिष्ठित हिन्दी के विकास में भी अवधी का योगदान है। प्राचीन कोसल की भाषा की कौनसी विशेषताएँ पहचान में आती हैं, इनका उल्लेख प्रसंगतः जहाँ तहाँ पहले हो चुका है। यहाँ कुछ बातें अपभ्रंश के बारे में कहना है।

(ख) देशी भाषाएँ और प्राकृत

जैसे अनेक विद्वान् प्राकृतों को लोकभाषा मानते हैं वैसे ही वे अपभ्रंश को भी लोकभाषा तथा आधुनिक लोकभाषाओं की जननी मानते हैं। जैसे प्राकृतें अनेक हैं पर रूपतन्त्र और शब्द भण्डार की दृष्टि से उनमें बहुत कम भेद है वैसे ही अपभ्रंशों में अनेक

भेद किए गए है पर इनमे तात्विक भेद बहुत कम है। सस्कृत और प्राकृता म मुख्य अतर ध्वनितत्र को लेकर है। आधुनिक आयभाषाओ मे ध्वनितत्र की जो अलग-अलग विशेषताएँ दिखाई देती है, उनका आभास प्राकृता म बहुत कम है। यहा पालि को भी प्राकृता मे गिने लेते है। अपभ्रश और प्राकृता म अतर यह है कि प्राकृता की अपक्षा अपभ्रश मे देशी तत्व बहुत अधिक है। जो तत्व सस्कृत मे नही है प्राकृता म नही है बाहर से आया हुआ नही हे वह देशी कहलाया। प्राकृत ग्रथा मे देशी भाषाओ का उल्लेख बार-बार किया गया है और उन्हे सस्कृत तथा प्राकृता से अलग माना गया है। **कुवलयमाला** मे अठारह देशी भाषाएँ गिनाई गइ है और लेखक ने उनके कुछ शब्द भी दिए हैं। इनमे आय और द्रविड, दोना परिवारो की भाषाएँ है। ये देशी भाषाएँ अप भ्रश से भिन्न थी यह स्मरण रखना चाहिए। डा० रामसिंह तोमर ने अनेक पुराने ग्रथा मे देशी भाषाओ के उल्लेख की चचा करत हुए बहुत सही लिखा है कि "अत्यन्त प्राचीन समय से प्रदश विशेष की बोलिया के लिए देशभाषा शब्द का प्रयोग मिलता है, देश-भाषा से उनका तात्पय अपभ्रश कदापि नही था। (**प्राकृत और अपभ्रश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव** पृष्ठ ६३)।

जिस समय साहित्य मे अपभ्रश का व्यवहार होता था, उस समय देशी भाषाओ का अस्तित्व था। अपभ्रश ने, सस्कृत स भिन्न, प्राकृत का ध्वनितत्र अपनाया था। व्यजन द्वित्व और णकार बहुलता इस ध्वनितत्र के मोटे लक्षण हैं। रूपतत्र म सस्कृत और प्राकृत की रूढियो का अनुसरण करत हुए अपभ्रश ने वास्तविक लोकभाषाओ के कुछ तत्वा का मिश्रण किया। ये तत्व अनक जनपदीय भाषाओ के है और सबसे ज्यादा अवधी के है। इसलिए आधुनिक आय भाषाओ के विकास को समझने म अपभ्रश से बहुत थोडी सहायता मिलती है उसे आधुनिक भाषाओ की जननी या इनका पूवरूप नही कहा जा सकता। जातीय भावना के प्रसार से यह आग्रह उत्पन्न हुआ कि अनक विद्वान अपभ्रश को पुरानी बँगला पुरानी हिन्दी पुरानी गुजराती आदि कहने लग। अपभ्रश कवियो की एक रूढ भाषा थी। हमचन्द्र के समय म भी इसे ग्राम्य भाषाओ से अलग माना गया था। अपभ्रश म देशी भाषाओ के जो तत्व आए, उनका विकास साहित्य म अपभ्रश की प्रतिष्ठा से पहले हो चुका था।

उक्त तथ्य का एक प्रमाण उन प्राकृत म मिलता है जिसके दस्तावेज खरोष्ठी लिपि मे हैं। ये दस्तावेज तीसरी शताब्दी ईसवी के है। इन्हे सर औरेल स्टाइन ने प्राप्त किया था। बरो ने अपनी पुस्तक **द लग्वेज ग्रोफ द खरोष्ठी डोक्यूमेन्टस फ्रोम चाइनीज तुर्किस्तान** (१९३७) म इन दस्तावेजो की भाषा का अध्ययन किया था। इस भाषा का व्यवहार भारत से बाहर मध्य एशिया म होता था। भाषा वह भारत की है किन्तु वह अन्य प्राकृता म इस बात म भिन्न है कि उसका रूपतत्र अनक बाता म आधुनिक आय भाषाओ के रूपतत्र स मिलता जुलता है। इस प्राकृत म कना और कम कारका म अलग अलग चिह्ना द्वारा भेद नही किया जाता। सभी सज्ञा शब्दा का रूपरचना के लिए अ-पथ म रखन की प्रवृत्ति है। स्त्रीलिंग शब्द ई कि इ द्वारा सूचित किए जाते हैं। ये

किन्तु अपभ्रंश में देशी भाषाओं के तत्व हैं, यह बात सही है। इन देशी भाषाओं में एक भाषा अवधी है, यह बात भी सही है। रूप के बाद ही साहित्य में अपभ्रंश प्रतिष्ठित होती है। कान्यकुब्ज साम्राज्य में अवधी बोलने वाले बहुत से कवि थे, विशेषतः इस साम्राज्य के केन्द्र कन्नौज में। तुर्क आक्रमण से पहले, जब पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में इस साम्राज्य पर आक्रमण होने लगे तब यहां के कवि बिखरने लगे। तुर्क-आक्रमण से यह प्रक्रिया और भी तीव्र हुई। कोसल से अनेक वर्गों के लोग विभिन्न दिशाओं में गए, यह तथ्य इतिहास सम्मत है। उत्तर के कवि कर्णाटक में भी जाकर बसते हैं और अपभ्रंश में काव्य रचते हैं, यह बात स्वयम्भू के उदाहरण से स्पष्ट है। अपभ्रंश मुख्यतः काव्यभाषा थी। प्राकृत में बहुत सा गद्य लिखा गया, पालि में भी बहुत सा गद्य है, अपभ्रंश में बहुत ढूंढने पर गद्य के कुछ वाक्य जहां तहां मिलेंगे। अपभ्रंश एक विशेष प्रकार के कवियों की भाषा थी। इन कवियों का एक वर्ग दरबारों से सम्बद्ध था, दूसरा वर्ग धार्मिक भावना से सम्बद्ध था। धार्मिक साधना का कोई भी मत हो, उस समय तन्त्रवाद से प्रभावित था। दरबारी कविता और तान्त्रिक साधना, दोनों में नारी प्रमुख आलम्बन थी और कविता में चमत्कारवाद व्यापक रूप में प्रदर्शित था। इसमें भिन्न धाराएँ अपभ्रंश काव्य में अत्यन्त क्षीण हैं। ह्रासकालीन सामन्ती व्यवस्था में इस तरह के चमत्कारवादी धार्मिक और शृंगारी साहित्य का सृजन हुआ। साहित्य में वास्तविक लोकभाषाओं की प्रतिष्ठा भक्ति आन्दोलन ने की। यह आन्दोलन दरबारी चमत्कारवाद तान्त्रिक साधना के विरोध में आगे बढ़ा। उपमानों को लेकर जैसे कवि चमत्कार उत्पन्न करते थे, वैसे ही अपभ्रंश द्वारा वे भाषा का चमत्कार दिखाते थे। नायिका भेद और वाममार्गी धार्मिक साधना में बहुत अन्तर नहीं है। इन दोनों के विरोध में भक्त कवियों ने मानवप्रेम के आधार पर लोक धर्म की प्रतिष्ठा की। लोकभाषाओं का पूरा रूप इनकी काव्यभाषा में दिखाई देता है। अपभ्रंश में देशी भाषाओं के तत्वों की मिलावट भर थी। इसे देखकर विद्वान् कहते हैं ये तत्व बाद की काव्यभाषा में हैं, इससे सिद्ध हुआ कि यह काव्यभाषा अपभ्रंश से उत्पन्न हुई है। वास्तविकता यह है कि अपभ्रंश अत्यन्त अल्पमात्रा में देशी भाषाओं के तत्व ग्रहण करती है। वे भाषाएँ, प्राकृत से भिन्न, विद्यमान हैं। प्राकृत का ढांचा लेकर उसमें कुछ देशी भाषाओं के तत्व मिलाए गए। दक्षिण भारत में जैसे मणिप्रवालम शैली में संस्कृत और मलयालम को मिलाया गया वैसे ही प्राकृत और देशी भाषातत्वों को मिलाकर अपभ्रंश भाषा शैली रची गई। मणिप्रवालम् से मलयालम का जन्म नहीं हुआ, इसी प्रकार अपभ्रंश से अवधी या अन्य किसी भाषा का जन्म नहीं हुआ। मणिप्रवालम संस्कृत के क्रमिक विकास का परिणाम नहीं है, न अपभ्रंश प्राकृत के क्रमिक विकास का परिणाम है।

अपभ्रंश के जो काव्य मिलते हैं, उनकी भाषा के लिए कहा जाता है कि वह मूलतः शौरसेनी अपभ्रंश है या उससे प्रभावित है। शूरसेन जनपद ब्रज का पुराना नाम है। स्वभावतः ब्रजभाषा का उद्भव इसी शौरसेनी अपभ्रंश से माना गया है। किन्तु इस तथाकथित शौरसेनी अपभ्रंश में ब्रजभाषा की अपेक्षा अवधी तत्व अधिक हैं। जहां तक

मुझे ज्ञात है, सबसे पहले राहुल जी ने अपभ्रंश मे अवधी तत्वों की ओर संकेत किया था। उन्होंने दोहाकोश सन् १९५७ म प्रकाशित कराया था। इसकी भूमिका मे उन्होंने लिखा था "अपभ्रंश का भूतकालिक प्रयोग अवधी के सबसे नजदीक है। इसके लिए इल अल प्रत्यय का प्रयोग भोजपुरी आदि मे पीछे होने लगा सरह की भाषा और स्वयम्भू आदि की अपभ्रंश ने अतीतकाल के सम्बन्ध मे प्राकृत आदि से अपना सम्बन्ध बिलकुल तोड दिया, और उसका अनुसरण आज भी हमारी भाषाएँ कर रही है। भेद इतना है कि जहाँ भोजपुरी, बँगला, मैथिली आदि ने इउ का इल, अल कर दिया, वहाँ अवधी ने पहिले ही की तरह अउ, इउ, एउ को कायम रक्खा।' (पृष्ठ ५७)।

राहुल जी ने हिन्दी काव्यधारा की भूमिका मे लिखा 'स्वयम्भू की भाषा की क्रियाओं और कितने ही कुंजी के शब्दों को देखने से वह अवधी के सबसे नजदीक मालूम होती है। यद्यपि ऐसा कहने से बहुत दिनों से चली आई इस धारणा के हम खिलाफ जा रहे हैं कि अपभ्रंश साहित्य शौरसेनी और महाराष्ट्री अपभ्रंशों मे ही लिखा गया। लेकिन, जो सामग्री हमारे सामने मौजूद है, वह हमे वही कहने के लिए मजबूर करती है।' अपभ्रंश म कर्ता और कर्म म बहुत से शब्द उकारान्त है। यह प्रवृत्ति अवधी म भी है। इनके बारे मे राहुल जी ने दोहाकोश की भूमिका मे लिखा है "प्रथमा एकवचन का यह उकार गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस की पुरानी प्रतियों मे काफी मिलता है और रुहेलखण्ड म अब भी बहुत से कवि और वक्ता इसका प्रयोग करते हैं।" अपभ्रंश म वर्तमान काल के अन्य पुरुष एकवचन रूप भणइ भावइ आदि अवधी तथा हिन्दी प्रदेश की अन्य बोलियों म मिलते है। ये भणहिं, भावहिं आदि के रूपान्तर है। पुरानी अवधी म और बघेलखण्डी मे अब भी हि वाले रूपों का चलन है। राहुल जी ने दोहाकोश की भूमिका म इनका सम्बन्ध पश्चिमी बोलियों से जोडा था, 'कौरवी म पढै जाव—जैसे प्रयोग देखे जाते हैं और है का अनिवार्य रूप मे प्रयुक्त भी नही किया जाता। पुरानी उर्दू कविताओं म—पढे है, जाव है—जैसे प्रयोग कमी थे, लेकिन उन्हे त्याज्य कर दिया गया।' (पृष्ठ ५८)।

हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण म अपभ्रंश के जो उदाहरण दिए हैं, उनमे अनेक रूप रामचरित मानस मे मिल जाते हैं। कर्ता और कर्मकारक म उकारान्त रूपों का व्यवहार होता है। हेमचन्द्र प्रिगिएँ उण्हउ होइ जगु। यहाँ जगु कर्ता रूप है। इसी प्रकार मानस म नामु सकल कलि कलुष निकंदन। इसी तरह कर्मकारक म। हेमचन्द्र मा कुरु दीहा माणु, मानस नामु सप्रेम जपत अनयासा। करणकारक म बहुधा एँ चिन्ह का प्रयोग होता है। हेमचन्द्र सहरें प्रहरु न पत्तु, मानस इच्छित फल बिनु सिव अवरार्धे। लहिय न कोटि जोग जप सार्धे। करण के लिए कभी केवल अनुस्वार का प्रयोग होता है। हेमचन्द्र जो पुणु मणि सीअला, मानस सुरतरु सरिस सुभायँ सुहाए। सम्बन्धकारक म सु चिन्ह का प्रयोग होता है। हेमचन्द्र कन्तु महारउ हलि सहिए निच्छइँ रूसइ जासु मानस जासु हृदय आगार बर्साहि राम सरचापधर। अधिकरणकारक के लिए हिं चिन्ह का व्यवहार होता था। हेमचन्द्र हउँ कि न जुत्तउ दुहुँ दिसिहिं, मानस बिसरी देह

तर्पाट् मनु लागा।

इसी तरह की समानता क्रियाओं की रूपरचना में देखी जाती है। वर्तमान काल के अन्यपुरुष एकवचन रूप का उदाहरण हेमचन्द्र के व्याकरण में **दडवड होइ विहाण,** मानस में **जो सुमिरत सिधि होइ।** वर्तमान काल के अन्यपुरुष बहुवचन रूप में हि चिह्न का व्यवहार होता है। हेमचन्द्र **जिवँ जिवँ वड्डत्तणु लहहि तिवँ तिवँ णवहि सिरेण,** मानस **जथा नवहि बुध बिद्या पाएँ।** वर्तमान काल के उत्तमपुरुष एकवचन रूप में उँ चिह्न का प्रयोग होता था। हेमचन्द्र **तोहउँ जावउँ एहो हरि,** मानस **जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई।** भूतकाल के अन्यपुरुष एकवचन रूप में उकारान्त कृदन्त का व्यवहार होता था। हेमचन्द्र **गयउ सु केसरि पिअहु जलु,** मानस **राउ गयउ सुरधाम।** आज्ञा रूप में हु चिह्न का प्रयोग हेमचन्द्र में **करहु म अप्पहो घाउ,** मानस में **सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा।** हु चिह्न के बिना आज्ञा के लिए क्रिया के उकारान्त रूप का व्यवहार हेमचन्द्र की अपभ्रंश में इस प्रकार है **अरि खल मेह म गज्जु,** और मानस में **मागु मागु पै कहहु पिय।** क्रिया का सम्भावना द्योतक रूप हेमचन्द्र के उदाहरण में **जं भाइ त होउ,** मानस में **न त कन्या बरु रहउ कुआरी।** पूर्वकालिक रूप इस प्रकार है, हेमचन्द्र **मारइ हियइ पइट्ठि** मानस **निज तन प्रगटि प्रीति उर छाई।**

ठीक ऐसे ही उदाहरण चर्यागीता में मिल जाएँगे। चर्यागीतों की भाषा पूर्वी अपभ्रंश कही जाती है। भोजपुरी, मैथिली आदि के लकारान्त भूतकालिक कृदन्त यहाँ अवश्य हैं। जैसे हेमचन्द्र की अपभ्रंश में अवधी के साथ कुछ रूप पश्चिमी भाषाओं के हैं, वैसे ही चर्यागीता की भाषा में अवधी के साथ कुछ रूप पश्चिमी भाषाओं के भी हैं। इससे प्रमाणित होता है कि पूर्व, पश्चिम और इनके मध्य, जहाँ भी अपभ्रंश लिखी गई है उसमें अधिकतर मिलावट अवधी भाषातत्वों की है।

चर्यागीतों का एक संग्रह **चर्यागीतिकोश** नाम से १९५६ में शान्ति निकेतन से छपा था। इसका सम्पादन प्रबोधचन्द्र बागची तथा शान्ति भिक्षु शास्त्री ने किया था। सम्पादकों को जगह जगह अवधी के रूप याद आते हैं। चर्यागीता में एक शब्द **चीअण** है इस पर उन्होंने टिप्पणी की है कि इसका मूल रूप **चीक्न** होगा जो अवधी का शब्द है बँगला रूप चिक्न होगा। कवि ने अवधी शब्द का प्राकृत रूप दिया है। **गराहक** हिन्दी **गाहक** में अधिक मिलता है, बँगला रूप होगा **गराक।** **अँक्वाली** शब्द हिन्दी **अँकवार** का प्रतिरूप है। एक पंक्ति है **सासु घरे घालि कोञ्चा ताल** बँगला में **घाल** क्रिया का अर्थ है मारना हिन्दी में मारने के अलावा, सम्पादकों के अनुसार, उसका अर्थ रखना भी है। ताला-कुंजी घालि द—इस तरह के मुहाविरे का प्रयोग यहाँ हुआ है। एक पंक्ति है— **गेला जाम बाहुडइ कइसें।** यहाँ हिन्दी की **बहुरना** क्रिया का प्रयोग **बाहुडइ** रूप में हुआ है। सम्पादकों ने अवधी कहावतिया के अन्त में आनेवाला वाक्य उद्धृत किया है **जइस उनके दिन बहुरे तइस सबके दिन बहुरइँ।** **बुडइ, बुडिलो** रूपों में **बुड** क्रिया का प्रयोग हुआ है। मानक हिन्दी के **डूब** के समान बँगला में इसका रूप **डुब** है। **बूड** रूप अवधी का है। सम्पादकों ने यहाँ रामचरित मानस से यह सोरठा उद्धृत किया है **सकर चापु जहाजु**

की भाषा मे जिन देशी भाषाओ के तत्वो का मिश्रण हुआ है, उनमे अवधी के तत्व मुख्य हैं।

(घ) उक्ति-व्यक्ति प्रकरण

बारहवी सदी मे दामोदर पण्डित जिस तरह की अवधी के उदाहरण देते है, उनमे इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है कि अपभ्रश मे अवधी के तत्व शामिल किए जा रहे थे या अपभ्रश से अवधी का जन्म हो रहा था। डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने उक्ति व्यक्ति प्रकरण की अपनी भूमिका के आरम्भ मे अवधी को कोसली का पुराना रूप कहा है। फिर भूमिका के अन्त में उन्होने लिखा है कि बारहवी सदी के मध्य में सम्बद्ध क्षेत्र की भाषा लगभग पूरे विकास की उस मजिल तक पहुँच गई थी जहा उसे हम इस समय पाते हैं। अर्थात् बारहवी सदी की अवधी और आधुनिक अवधी मे बहुत अन्तर नही है। यदि आठ सौ साल मे—इतनी उथलपुथल होने पर भी—अवधी मे कोई विशेष अन्तर नही आया तो यह माना जा सकता है कि उससे आठ सौ साल पहले भी, कम से कम बीज रूप मे, अवधी विद्यमान रही होगी। यही बात उत्तर भारत की अन्य जनपदीय भाषाओ के बारे मे कही जा सकती है। हिन्दी, मराठी, बँगला आदि आधुनिक मानक भाषाएँ बाद को विकसित होती हैं किन्तु जनपदीय भाषाएँ बहुत पुरानी है। दामोदर पण्डित के समय मे अवधी का व्यवहार एक बहुत बडे क्षेत्र में होता था। डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि ग्रन्थकार कनौज और प्रयाग से परिचित है, बनारस से वह सुपरिचित है। वह गया और वहा यात्रियो को बटोरने वाले गयावाल ब्राह्मणो को जानता है। उसका कार्यक्षेत्र पूरब में है, अर्थ और संस्कृति के केन्द्र कनौज से वह जुडा हुआ है। इसलिए उसकी अवधी पर अनेक क्षेत्रो का प्रभाव है। उसकी भाषा को मिर्जापुरी अवधी, सीतापुरी अवधी या बैंसवाडी की सज्ञा नही दी जा सकती। दामोदर पण्डित विद्वान है, सस्कृत प्राकृत-अपभ्रश परम्परा से परिचित हैं। उन्होने अवधी जानने वाला को सस्कृत सिखाने के लिए पुस्तक सस्कृत में लिखी है। थोडे हेरफेर से अवधी का रूपान्तर सस्कृत मे हो सकता है, यह दिखाने के लिए उन्होने अवधी का विवरण प्रस्तुत किया है। सस्कृत से आधुनिक आर्यभाषाओ का सबन्ध किस प्रकार का है, इस समस्या का विवेचन उक्ति व्यक्ति प्रकरण से आरम्भ होता है।

ग्रन्थ की प्रति उनके हाथ की लिखी नही है किसी अन्य व्यक्ति ने प्रतिलिपि की है। डा० चाटुर्ज्या का मत है कि प्रतिलिपिकार भी उसी क्षेत्र का था क्योकि लिपि की पद्धति मध्यदेश और पूर्वी क्षेत्र की है।

उक्ति व्यक्ति प्रकरण की प्रति अपूर्ण और खण्डित है। पूरी प्रति में पाँच प्रकरण थे। पहले दो प्रकरण क्रिया और कारक से सम्बन्धित थे, शेष तीन उक्तिभेद, लेख निमन्त्रण विधि, व्यावहारिक पत्र निमन्त्रण से सम्बन्धित थे। मुनि जिनविजय ने अपनी भूमिका में बताया है कि ग्रन्थ की मूल सूत्रात्मक कारिकाएँ ग्रन्थ के आरम्भ में स्वतन्त्र रूप से लिख दी गई हैं। उनसे इन प्रकरणो का ज्ञान होता है। दामोदर पण्डित की योजना

यह थी कि व्याकरण के अतिरिक्त भाषा व्यवहार के विभिन्न सदर्भों का परिचय भी दे। जिन व्यापक सदर्भों म अवधी का प्रयोग होता था, उन सब पर ध्यान देत हुए उन्हे अवधीभाषियो को सस्कृत सिखानी थी। इस पुस्तक मे जिस तरह की अवधी के नमूने दिए गए हैं, उन्हे देखन से अपभ्रश सम्ब धी मिथ्या धारणाएँ निर्मूल हो जानी चाहिए। उनम से कुछ नमूने यहा देत हैं

गाग न्हाए धर्मु हो, पापु जा—गगा मे नहाने स धम होता है, पाप जाता है, **धर्मु होइह पापु जाइह**—धम होगा पाप जाएगा, **जसजस धर्मु बाढ तसतस पापु घाट**—जैसे जस धम बढता है, वैसे वैसे पाप घटता है, **जाहा जाहा धर्मु नाद ताहां ताहां पापु माद**—जहा जहा धम की बढती होती है, वहा वहा पाप घटता है, **छूट बाछा भमि भमि कूद**—छूटा हुआ बछडा घूम घूम कर कूदता है, **अँधारीं राति चोर ढक**—अँधेरी रात मे चोर आता है, **आगि लागें बास फूट**—आग लगन पर बास फूटता है। **जो फुड [फुर] बोल सो गाग हा**—जो सच बोलता है वह गगा नहाता है, **जब पूतु पाउ पखारु, तब पितरन्हु सर्गु देखाल**—जब पुत्र पाप दूर करता है तब पितरो को स्वग दिखाता है, **जेत जेत पराधनु चोराम्र, तेत तेत आपण पूनु हराव**—जितना जितना परधन चुराता है, आदमी उतना उतना अपना पुण्य नष्ट करता है, **मेघु नदी बढाव**—मेघ नदी को बढाता है, **मध्यस्थ होइ विचार**—मध्यस्थ होकर विचारता है, **चौकु पूर**—चौक पूरता है, **कन्या वर**—कन्या वरता है, **घर छाअ**—घर छाता है, **लेख बाच**—लेख वाँचता है, **मीठ जेवण मांग**—मीठा खाना मागता है, **जूठ खा**—जूठा खाता है, **दूजण सबहि नींद**—दुजन सबकी निन्दा करता है, **कुपुतु कुलु लाछ**—कुपूत कुल लाछित करता है, **दूजण सबहि संताव**—दुर्जन सभी को सताता है, **पीठ चाप**—पीठ चापता है, **जमाइ चूब**—जमाई को चूमता है, **अनाजु जेंव, पाणि अचम**—अन्न खाता है, पानी पीता है, **देवहि नम**—देवता को नमस्कार करता है, **मुअ्र जीव**—मुर्दा जीता है, **चूचीं देइ जिआव**—चूची देकर जिलाती है, **जीभें चाख**—जीभ से खाता है, **सूघत आछ**—सूघता है, **अक्वालि दे**—अँकवार देता है, **मूतत आछ**—मूतता है **हगत आछ**—हगता है, **चूतड तलें देइ बइस**—चूतड के बल बैठता है, **पाक किएसि/पएसि**—खाना पकाया, **भोजन कीएसि/जेंवेसि**—भोजन किया, **जइ देउ वृष्टि करत तव अन्न होंते**—यदि दैव वृष्टि करेगा, तो अन्न होगा, **भोजन करिह/जेंविह**—भोजन करेगा, **हउँ पब्वतउ टालउँ**—मैं पवत भी हटाता हूँ, **सर्बहि भूतें दया करु**—सब प्राणियो पर दया करो, **कोवु छाडि क्षमा भजु**—कोप छोडकर क्षमा करो, **ससारु अनित्यु देखउ**—ससार को अनित्य माना, **सो पूत जाणि जाम जो निर्गुणु हो**—वह पुत्र न जन्मे जो निगुण हो, **ते गुणें जाणि उपजति जे सर्बहि न उपकरति**—वे गुण न उत्पन्न हो जो सबका उपकार न करें, **बहुतु राजा एपु मुइँ भय**—बहुत से राजा यहाँ पृथ्वी पर हुए, **सोंम्ररि सोंम्ररि रोवा**—बिसूर बिसूर कर रोता है, **पढन आव**—पढ़ने आता है, **ग्राम गमन कर/ गाउँ जा**—गाँव जा, **दुहाव गाइ दूधु गुआलें गोसावि**—गोस्वामी ग्वाले से गाय दुहाता है, **पढाव छात्रहि शास्त्र ओझा**—गुरु छात्र को शास्त्र पढाता है, **गाँव हुँत आव**—गाँव

स जाता है, **ओझा पास वीदा ले**—गुरु से विद्या लेता है, **सिंहासण आछ राजा**—राजा सिंहासन पर है, **जो किछु कीज**—जो कुछ किया जाय, **इधणे भातु रा ध ब्राह्मणु**—इधन मे ब्राह्मण भात पकाता हे, **मणुसु जम**—मनुष्य भोजन करता है, **दुइ अच्छति**—दो है, **बहुतु पूत भए**—बहुत म बटे हुए, **दुई बेटीं भई**—दो लडकिया हुइ, **हौं करजों**—मैं करता हूँ, **अम्हे दुइ करहु**—हम दो करत है, **लहुडा कवण**—लहुरा कौन, **काह इँहा तू करसि**—तू यहा क्या करता ह, **पढिहउँ**—पढूँगा, **काह करत आछी हसि**—तू क्या कर रहा है **को ए सोअ**—यह कौन सोता है, **को ताहँ जेंवत आछ**—वहा खान खा रहा है, **इँहा को पढिह**—यहा कौन पढेगा, **मोर क्षेम को करिह**—मेरी रक्षा कौन करेगा, **ए कहार काह सपाडति**—ये कहार क्या कर रह ह, **बेटा काहा गा**—बटा क्या गया **को म भोजन मागव**—मैं किससे भोजन मागू (का मया भोजन याचितव्य)।

इन वाक्या को देखने स विदित होगा कि सब त्र यह गाव की अवधी नही ह। इसमे **क्षेम** जैस शब्द है जिन्ह गाव का आदमी न बोलेगा। कहा जा सकता ह कि **क्षेम** लिखित रूप ह, उच्चारण **खेम** म होगा। किन्तु कहार क्या सम्पादित करत ह यह वाक्य रचना नगर के लोगो क लिए भी अस्वाभाविक ह। **सम्पादति** का प्राकृत रूप **सपाडति** कर देन म वाक्य स्वाभाविक नहीं हो जाता। एक जगह उन्होन सस्कृत म वाक्य लिखा है—**छात्रेण ग्रामो गम्यते** अर्थात छात्र द्वारा गाव को गमन किया जाता ह। इसका अवधी रूप है—**छात्रें गाउ जाइअ**। अवधी और सस्कृत दोनो भाषाओ क वाक्य व्याकरण का एक रूप दिखान के लिए लिखे गए है, इनम यह न समझना चाहिए कि ऐस वाक्य स्वाभाविक थ। अनक शब्दो म मूर्धन्य नासिक्य का व्यवहार हुआ ह। सस्कृत म जहाँ दत्य **न्** है वहा उस भी बदल कर **ण** किया है यथा **घन धण, मानुव मणुसु सिंहासन-सिंहासण, जन जण**। किन्तु इसम कोइ नियम नहीं ह। दामोदर पण्डित दत्य न का व्यवहार भी खूब करत ह। डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या न यह मत प्रकट किया है कि पुरानी कोसली म **ण** का व्यवहार होता था, आग चलकर ब्रज स बङ्गाल तक उसका व्यवहार बन्द हो गया। यह धारणा सही नहीं ह। दामोदर पण्डित की लिखित अवधी पर सस्कृत प्राकृत-अपभ्रंश परपरा की छाप ह।

अवधी भाषा क जो नमून दिए गए है उनम वर्तनिक रूप अनक हैं। डा० चाटुर्ज्या न कमराज्य क उदाहरणो म मुहँ, मुहु मेत खेतु शास्त्र शास्त्रु दोनो तरह क रूप दिए है। उनका कारण यह ह कि अपनी भाषा को भी ज्यो का त्यो लिखना सरल काम नहीं ह। कभी-कभी प्रमादवश लिखन म भिन्न रूप आ जात ह और इसका भी अधिक होना यह ह कि बोलत समय हम स्वयम एक ही प्रकार क मानक रूपो का प्रयोग नहीं करत। सम्भव ह दामोदर पण्डित न जहाँ **लहुडा** लिखा ह वहाँ यथार्थ जीवन म **लहुरा** ही बोलत हो। कुछ लोग अरवा जरा को जरा फिर जरवा। जडा करक बोलत है। डा० चाटुर्ज्या न इस बात की ओर ठीक ध्यान दिलाया ह कि जहाँ **ड** और **ड** दो स्वरो के बीच म आए है, वहाँ उनका उच्चारण **ड**, ह था। इस तरह की बातो का ध्यान म रखत हुए **उचित ध्वनि प्रकरण** का भाषा का अध्ययन किया सहित करना चाहिए।

जिस बोली को दामोदर पण्डित ने अपना मुख्य आधार बनाया है उसमें दो स्वरों के बीच में आने वाली ह ध्वनि का लोप हो रहा है। इसीलिए किएसि जैसे क्रियारूप में ह का अभाव है। पर किहेसि जैसा रूप जायसी और तुलसीदास की रचनाओं में ही नहीं है, वह अवधी के अनेक क्षेत्रों में अब भी बोला जाता है। यह न समझना चाहिए कि पुरानी अवधी में किएसि रूप था और आगे चलकर उससे किहेसि रूप का विकास हुआ। साथ ही अम्ह, तुम्ह जैसे रूपों में ह विद्यमान है। आधुनिक हिन्दी का तुम सम्बन्धकारक रूप तुम्हारा में अपना पुराना रूप बनाए हुए है। जायसी और तुलसीदास के अलावा उन्नीसवीं सदी के अनेक हिन्दी लेखक तुम्ह लिखते थे। अम्ह वर्ण विपर्यय से हम बना, ह स्थानान्तरित हुआ किन्तु बना रहा। पुरानी अवधी की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यहाँ यह है कि प्रत्येक शब्द अजन्त है। डा० चाटुर्ज्या ने इस विशेषता की ओर ध्यान दिलाया है। अभी पश्चिमी प्रभाव इतना नहीं पड़ा कि शब्द के अन्तिम वर्ण का स्वर लुप्त होने लगे। डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि श, ष स में केवल दन्त्य सकार रह गया था। यह बात बोलचाल की अवधी के लिए अवश्य सही है किन्तु दामोदर पण्डित ने शास्त्र जैसे तालव्य श वाले शब्दों का प्रयोग किया है। क्षेम शब्द का सही उच्चारण वह कर लेते थे, यह न मानने का कोई कारण नहीं है।

उकारान्त रूपों के लिए डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि यहाँ उ ओ का विकास है। उनकी समझ में उकारान्त रूप कोसली के नहीं हैं वरन पश्चिमी अपभ्रंश और व्रज भाषा के प्रभाव से कोसली में आ गए हैं। अवधी को अर्धमागधी की सन्तान माना जाता है। अर्धमागधी में रूप एकारान्त होते हैं। ए ह्रस्व होकर इ हो सकता है उ नहीं। अर्धमागधी वाला इकार कहाँ गया ? शब्द के एकारान्त रूप कौरवी परंपरा की देन है। आकारान्त रूप मागधी परंपरा के, उकारान्त रूप कोसली परंपरा के। उकारान्त रूप दूर दूर की भाषाओं में मिलते हैं जिनमें एक कश्मीरी भी है। परम्परागत भाषाविज्ञान के अनुसार संस्कृत शब्दों का ष् तद्भव रूपों में ख हो जाता है किन्तु कुछ रूप ऐसे हैं जो यह नियम नहीं मानते। अवधी में चुह क्रिया ख के बदले ह का व्यवहार करती है। हिन्दी चूसना में दन्त्य स है। व्रज प्रदेश में चोंख क्रियारूप का व्यवहार होता है जहाँ अपेक्षित ख ध्वनि है। यह सम्भव है कि संस्कृत चुष चोष का ष पहले स रहा हो, यह भी सम्भव है कि ष को ख में बदलने की प्रवृत्ति मूलतः मागधी भाषाओं की है कोसली प्रवृत्ति के अनुसार वह स में बदल जाएगा जैसा कि अनेक प्राकृतों में भी देखा जाता है।

अवधी में संज्ञा शब्दों के बहुवचन रूपों में न्ह चिह्न दिखाई देता है यथा सोसन्ह, बम्हणन्ह। न्ह में न ध्वनि तो संस्कृत के सम्बन्धकारक चिह्न आनाम का अवशेष मानी गयी है और ह तत्व करणकारक के भिस से प्राप्त बताया गया है। डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि आनाम का न प्राकृतों में ण हुआ, बङ्गाल से पंजाब तक बहुवचन रूपों में न चिन्ह अब भी प्रयुक्त होता है, तिर्यक रूप के हि हिं चिन्ह से वह प्रभावित हुआ और न्ह बन गया, जब करणकारक का बहुवचन रूप जीवित था, तब उसके चिन्ह अहिं ने ह के ह को पुष्ट किया, सम्बन्धकारक के अलावा वह कर्म, सम्प्रदान और कर्ता के लिए भी

प्रयुक्त होने लगा। इस सार ऊहापोह के बदले -ह स न का विकास मानना अधिक युक्ति सगत है। मैथिली के सदम मे हम देख चुके है कि -ह चिन्ह क्रियापदा के स.थ भी लगता है। इसका कारण यह है कि कारका और क्रियारूपा, दोना मे सवनाम चिह्न प्रयुक्त होत थे।

कहा जाता ह कि अपभ्रश तथा आधुनिक आयभापाआ म कारक भेद समाप्त होने लगता है, विशेपत कता, कम, कम और सम्प्रदान का भेद मिट जाता है। इस सदम म सवनाम रूप दशनीय है। उत्तम पुरुप का एकवचन **हउँ** रूप केवल कर्ताकारक मे प्रयुक्त होता ह। कमकारक म **मोहिं**, सम्बन्धकारक म **मोर** रूप है। कारकभेद स्पष्ट है। इसी प्रकार मध्यम पुरुप का एकवचन तु रूप ह। कमकारक म **तोहि** सम्बन्धकारक मे **तोर** रूप है। करणकारक के लिए डा० चाटुर्ज्या न **तइँ** रूप दिया है। अन्य पुरुप क लिए **सो** सवनाम अभी खूब प्रयुक्त हो रहा है। सस्कृत के समान इसका बहुवचन रूप ते है। अन्य कारका के एकवचन रूपा म **ताहि, ताकर** आदि त् वाले रूप ही प्रयुक्त होत हैं। प्रश्नवाचक **को** सम्प्रदान अपादान आदि म **का** रूप म प्रयुक्त होता है। डा० चाटुर्ज्या न इसका कमकारक रूप **को** दिया है और सम्प्रदानकारक क **काहि काहि** रूप दिए है।

अवधी क सम्बन्धकारक चिह्न **कर** स डा० चाटुर्ज्या न बँगला आदि के **एर** का सम्बन्ध ठीक जोडा ह। अवधी भापा क व्यापक प्रभाव का प्रमाण इस **कर** स प्राप्त हाता है। डा० चाटुर्ज्या न लिखा है "**कर** प्रत्यय विशेपण ह जा मूल सना शब्द के साथ जोड दिया जाता ह। यह प्रत्यय कासल स लकर सुदूर असम और उडीसा तक जोरा स चालू था। पूर्वी मागध भापाआ के सम्बन्ध प्रत्यय **अर** का वह आधार है, मध्य और पश्चिमी मागध भापाआ (मैथिली और मगही, तथा भोजपुरी) म वह सव नामा के सम्बन्ध प्रत्यय का आधार है। मध्य कासली म, यथा तुलसीदास मे, उसका काफी व्यवहार हाना है। आग चलकर इम क न विस्थापित कर दिया।' यदि बँगला, उडिया, असमिया क **अर एर** का आधार अवधी प्रत्यय **कर केर** है, तो इससे कोसली भापा के व्यापक प्रभाव की पुष्टि होती ह। मैथिली, मगही और भोजपुरी के अलावा ब्रजभापा और हिन्दी म भी उत्तम, मध्यम पुरुपा क सवनाम रूपा म र प्रत्यय लगता है। राजस्थानी मे वह सना रूपा क लिए भी सामान्य सम्बन्ध प्रत्यय है। उधर गुजराती मे भी कुछ सवनामा क साथ यह प्रत्यय लगता है यथा अन्य पुरुप सवनाम रूप त्यार म।

इस सदम म डा० चाटुर्ज्या न सस्कृत **अस्य** आर प्राकृत **अस्स** क व्यापक व्यवहार का उल्लेख करन क बाद लिखा है "किन्तु यह भी नितान्त सम्भव है कि बोल चाल की भापाआ म अन्य सम्बन्ध प्रत्यय भी व्यापक रूप म प्रयुक्त होत रह हा, यद्यपि सस्कृत (और उसस पहले वैदिक भापा) न उनकी आर ध्यान न दिया हो और बाद की प्राकृता न उनकी आर किंचित दृष्टिपात ही किया हा। यहाँ जो महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सामन आता है, वह यह कि सस्कृत क, और उसस पहल पश्चिमी भापा क समानान्तर अन्य आय भापाएँ बाली जाती थी, उनक सभी रूप सस्कृत या प्राकृता म नहा आ गय। यह सिद्धान्त आय भापाआ के विकास का अध्ययन करत समय सदा ध्यान म रखना

चाहिए। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने इसकी ओर, जोर देकर, बार-बार, और बहुत स्पष्ट रूप में ध्यान आकर्षित किया है। डा० चाटुर्ज्या ने भी उसकी ओर संकेत किया है।

डा० चाटुर्ज्या क प्रत्यय का सम्बन्ध संस्कृत के विशेषक प्रत्यय क, उससे विकसित **क्क**, तथा संस्कृत **कृत**, और उससे विकसित प्राकृत **कस्र किस्र** से जोडते है। यह सब कठिन प्रयास अनावश्यक है। **कध** कह स का, **को** आदि रूप विकसित हुए है, **कध** **कद** से **कर** का विकास हुआ है। **कह** या **कर** का संक्षिप्त रूप **क** है।

प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के हि,हिं प्रत्यय के बारे में डा० चाटुर्ज्या ने लिखा है कि इसका उद्भव अधिकरणकारक चिन्ह से हुआ है। मूल रूप के लिए उन्होंने प्राचीन आर्य प्रत्यय **धि** की कल्पना की है और लिखा है कि ग्रीक भाषा में इसका प्रतिरूप **थि** विद्यमान है यथा **पोथि** (कहाँ), इसी से **कधि** जैसा रूप बना होगा जिससे प्राकृत में **कहिं** बंगला में **कइ** रूप बने। डा० चाटुर्ज्या की यह कल्पना सार्थक है। **अधिकरण** शब्द का **अधि** इसी **कधि** के गोत्र का है। डा० चाटुर्ज्या ने पालि **इध** और संस्कृत **इह** का उचित उल्लेख किया है। यह **ध** व्यक्ति वस्तु देश काल वाचक ध्वनि संकेत था, उसके आधार पर देशकाल-सूचक विशेषकों, निर्देशक सर्वनामों विभिन्न कारकों के प्रत्ययों और तथाकथित परसर्गों की रचना हुई है।

डा० चाटुर्ज्या ने **प्रछ**, **पाछ** क्रियारूपों का सम्बन्ध **प्रस** धातु से ठीक जोडा है किन्तु उनका विचार है कि पुराना **प्रच्छति** रूप आदि इण्डोयूरोपियन **एस स्के ति** रूप से बना होगा। उन्हें यह कल्पना इसलिए करनी पडी कि बहुत से संस्कृत रूपों में छ च्छ को आदि इण्डोयूरोपियन **स्क** का विकास माना जाता है। संस्कृत शब्द **छाया** का मूल रूप इण्डोयूरोपियन **स्किग्र** था, यह कहते समय अंग्रेजी **शेड** (छाया) की व्युत्पत्ति—छाया का अर्थ देने वाली **शै** क्रिया से—ध्यान में रखनी चाहिए। डा० चाटुर्ज्या का मत है कि **प्रस** धातु के साथ **छ** या **च्छ** विकरण का संयोग है। यह विकरण अनावश्यक है। **प्रश्न** संज्ञा रूप में **प्रश** क्रिया देखी जा सकती है। इसी से **पच्छति** आदि रूप बनते हैं। **प्रस** धातु से **प्रह** और **अछ** दो रूप विकसित होते हैं जिनका व्यापक व्यवहार आर्य भाषाओं में होता है।

पुरानी अवधी में क्रिया के वर्तमान काल वाले रूप दो तरह के हैं एक में **अइ**, ऐ आता है, दूसरे के अन्त में केवल **अ** रहता है। **उक्ति व्यक्ति प्रकरण** में **रहइ**, **मानइ**, **चलइ** आदि रूप है, पर इससे भी अधिक अकारान्त **रह**, **चल** आदि रूप हैं। **रह**, **चल** रूप आज्ञार्थी नहीं है, रहता है, चलता है के अर्थ में उनका प्रयोग होता है। डा० चाटुर्ज्या ने इन रूपों के **अ** को **अइ** ऐ का रूपान्तर माना है, और ये **अइ ऐ** संस्कृत **अति**, **अयति** का विकास है। वह जायसी और तुलसीदास की रचनाओं में प्राप्त **अ** और **अइ** वाले दोनों तरह के रूपों का उल्लेख करते हैं। **अइ** के समानान्तर **अहि** वाले क्रिया रूप भी है इसकी जानकारी डा० चाटुर्ज्या को है किन्तु **अहि** को वह **अइ** का पूर्वरूप नहीं मानते। उनके लिए पूर्वरूप **अइ** है, ह् ध्वनि उसमें सौन्दर्यभाव के कारण जोड दी गई

है। इस ध्वनि प्रसाधन की कल्पना का कारण यह है कि संस्कृत के चलति आदि रूपों में ति है। ति बदल कर हि रूप धारण कर नहीं सकती। इसलिए चल् धातु के साथ जो अति जुड़ा, वह पहले अइ हुआ, फिर हकार प्रेम के कारण अहि बन गया। बहुवचन रूप में अंहि का प्रयोग और भी अधिक होता है। इसलिए यहां समस्या फिर खड़ी होती है कि चलन्ति का अन्ति अंहि कैसे बन गया। संज्ञा शब्दों के बहुवचन रूपों में न और ह दो तरह के चिह्न मिलते हैं। वैसी ही समस्या अइ और अहि रूपों की है। अधि अंधि, धि धि प्रत्ययों की कल्पना करने से ये सब कठिनाइयां दूर हो जाती हैं। न का पूर्व रूप न्ह है, चलइ का पूर्वरूप चलहि है। अब समस्या रह जाती है चलइ से इ का लोप होने पर चल रूप बनने की।

चलइ और चल दो भिन्न क्रियारूप हैं, दो भिन्न प्रक्रियाओं द्वारा भाषा में उनकी प्रतिष्ठा हुई है।

चलइ तिङन्त रूप है, उसमें क्रिया व्यक्तिवाचक सर्वनाम चिह्न लगाये हैं। चल सर्वनाम चिह्न मुक्त क्रियारूप है, कारक-चिह्न मुक्त नाम शब्द के समान। जायसी और तुलसीदास की तुलना में ऐसे अनिङन्त क्रियारूपों का व्यवहार दामोदर पण्डित के यहाँ अधिक है।

डा० चाटुर्ज्या ने उक्ति व्यक्ति प्रकरण की भूमिका में रह, चल, कर आदि रूपों के बारे में आगे लिखा है कि ये बाली विशेष के रूप थे, अइ वाला भरापूरा रूप भी व्यवहार में आता था अतः बाद की कोसली में अ की अपेक्षा अइ ऐ वाले रूप अधिक हैं। इस कथन का आशय यह है कि मानक रूप तो अइ वाला था, अवधी क्षेत्र की जिस बोली से दामोदर पण्डित अधिक परिचित थे, उसमें इ का लोप होने से अ बच रहा था। यदि यह कल्पना सही है तो मानना होगा कि दामोदर पण्डित की उस बोली विशेष से तुलसीदास और जायसी भी परिचित थे क्योंकि वैसे रूप पदमावत और रामचरित मानस में भी हैं। वाक्यतंत्र की दो पद्धतियां हैं, उन्हीं के अनुरूप कारक रचना और क्रियापद रचना की दो पद्धतियां हैं। यह भेद वैदिक काल से चला आ रहा है।

उक्ति व्यक्ति प्रकरण में क्रिया का एक वर्तमान कालीन बहुवचन रूप करति है। यहाँ दो कठिनाइयां हैं, पहली यह कि ति के स्थान पर इ नहीं है दूसरी यह कि संस्कृत में बहुवचन रूप कुर्वन्ति है हिन्दी करति में न गायब है। कुर की जगह कर की समस्या इस तरह हल की गई है कि कुर्वन्ति के समानान्तर एक रूप करन्ति भी रहा होगा। अवश्य रहा होगा क्योंकि क्रिया मूल कर... बार उसका मागधी रूप ... कौरवी में ओकार बदल कर उकार हुआ कार का रूपान्तर कुर हुआ। अधि और अंधि ... सर्वनाम रूप थे जिनमें अंधि का प्रयोग बहुवचन के लिए ... करधि और करंधि में करहि और करंहि रूप ... । अधि ... समान अति और अन्ति बने। अधि और अंधि में मूलतः ... था, ... बहुवचन के लिए भी ... प्रयुक्त होता था। ... कुर्वन्ति में ... स्वतन्त्र निर्मित ...

रूप प्रथ और ग्रन्थ भी प्रचलित थे। इनसे कृदन्ता के लिए न्त और अन्त प्रत्ययों का विकास हुआ। डा० चाटुर्ज्या ने कल्पना की है कि पुरानी अवधी के करत, पढ़त जैसे रूप कुर्वन्त पठन्त जैसे रूपों के आधार पर बने हैं। जैसे कुर्वा न्त का एक वैकल्पिक रूप करन्ति माना, वैसे ही कुर्वन्त का एक वैकल्पिक रूप करन्त माना। अन्तर यह है कि संस्कृत रूपों के अन्त में व्यंजन है और हिन्दी रूपों के अन्त में स्वर है। यह कोई बड़ा भेद नहीं है। जैसे उक्ति व्यक्ति प्रकरण की भाषा के शब्द अजन्त हैं, वैसे ही प्राचीन रूप पठन्त, कुर्वन्त थे, अन्तिम वर्ण का हलन्त उच्चारण कारवी ध्वनि प्रकृति का परिणाम है। पठन्त से पढ़त का विकास देखना आवश्यक नहीं है। एक प्राचीन रूप पठत भी था जिससे संस्कृत में पठत पठन रूप बने। डा० चाटुर्ज्या ने कुर्वत् के समानान्तर जो करन्त रूप माना है उसमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह कल्पित प्राचीन रूप अजन्त है। यह कल्पना इस तथ्य की स्वीकृति है कि प्राचीन काल में हलन्त रूप कुर्वन्त के साथ अजन्त रूप करन्त भी प्रचलित था। ये अजन्त रूप बारहवीं सदी की अवधी में विद्यमान थे। ये अजन्त रूप कामरू की प्राचीन गणभाषा के हैं, कारवी में इनका हलन्तीकरण हुआ है।

भविष्यत्कालीन रूपों में, आधुनिक अवधी के समान क्रिया में ह और ब, दोनों प्रत्यय लगते हैं। डा० चाटुर्ज्या ने ब वाले रूपों को मूलतः कर्मवाच्य मान कर लिखा है कि इनके साथ व्यक्तिसूचक प्रत्यय नहीं लगते। व्यक्तिसूचक प्रत्यय बारहवीं सदी में नहीं लगे क्योंकि ये ब वाले रूप मागधी प्रभाव से आए हैं और अवधी के लिए अभी नये हैं। अवधी के मूल भविष्यत्काल रूप ह वाले हैं। पश्चिमी अवधी से उत्तर की ओर कनौजी में ब वाले रूपों का प्रवेश अभी तक नहीं हुआ, केवल ह वाले रूपों का चलन है। मुख्य बात यह है कि ब वाले कृदन्त रूप भविष्यत्काल के लिए अभी आरक्षित नहीं हुए। उक्ति व्यक्ति प्रकरण में ऐसे रूपों का व्यवहार भूतकाल के लिए भी हुआ है। डा० चाटुर्ज्या ने उदाहरण दिया है कोइँ ताहा जेंउब—किसने वहाँ भोजन किया। पुस्तक में संस्कृत रूपान्तर दिया हुआ है कस तत्र बुभुजे अजिवद् वा। इस रूपान्तर से भ्रम की गुंजाइश नहीं रहती। तिङन्त क्रियारूपों के समान पहले कृदन्त क्रियारूप भी काल निरपेक्ष थे। क्रमशः पूर्वी क्षेत्र की भाषाएँ उनमें व्यक्तिवाचक प्रत्यय लगाने लगीं, ब वाले रूप भविष्यत्काल के लिए सुनिश्चित हुए।

बारहवीं सदी में किसी संज्ञा शब्द के साथ करना क्रिया जोड़कर नयी क्रिया बनाने की पद्धति जोर पकड़ती जा रही थी। दामोदर पण्डित ने भोजन कर, गमन कर, दर्शन कर, श्रवण कर, घ्राण कर आदि जो उदाहरण दिये हैं, वे सम्भवतः पण्डित वर्ग में प्रचलित थे जो देख की अपेक्षा दर्शन कर कहना शिष्टता का चिह्न मानता था। अब लोग मन्दिर में देवता को देखने नहीं जाते, उसके दर्शन करने जाते हैं। दर्शन करना प्रयोग रूढ़ हो गया और देखना क्रिया से भिन्न अर्थ देने लगा। दामोदर पण्डित के समय में भोजन करेगा, इस वाक्य को दो तरह से कह सकते थे, भोजन करिहि, और जेविह्। अब दूसरे रूप की क्रिया मानक हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होती यद्यपि जनपदीय

भाषाओं में दूर-दूर तक उसका व्यवहार होता है। हिन्दी क्रियार्थी संज्ञा का ना प्रत्यय पुरानी अवधी के न का प्रतिरूप है। **उक्ति व्यक्ति प्रकरण** में **करण चाह** अर्थात करना चाहता है, इस वाक्य में अवधी का पुराना क्रियार्थी संज्ञा रूप विद्यमान है। अवधी में अब मागधी प्रभाव से **ब** वाले रूप का अधिक चलन है, **न** वाला रूप कनौजी में सुरक्षित है।

उक्ति व्यक्ति प्रकरण में दो-तीन वाक्य ऐसे आए हैं जो विन्यास की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। **दुहाव गाइ दूधु गुआलें गोसांवि** गोस्वामी ग्वाले से गाय दुहाता है। इसका संस्कृत रूपान्तर इस प्रकार है **दोहयति गां दुग्धं गोपालेन गोस्वामी।** अवधी और संस्कृत, दोनों रूपों में वाक्य की विशेषता यह है कि विधेय पहले है, उद्देश्य बाद में। **पढाव छात्रहि शास्त्र ओझा**, संस्कृत रूपान्तर **पाठयति छात्रम् शास्त्रं उपाध्याय**। यहाँ भी विधेय पहले और उद्देश्य बाद को है। कुछ आगे चलकर तीसरा वाक्य है *सिंहासण आछ राजा—सिंहासने तिष्ठति राजा*। ऐसे वाक्य पद्य में नहीं गद्य में लिखे गए हैं। जायसी और तुलसीदास में ऐसे वाक्य भरे पड़े हैं। इनसे उदाहरणों से इस धारणा की पुष्टि होती है कि पुराने वाक्यतंत्र में पहले विधेय फिर उद्देश्य, यही क्रम रहता था।

(ङ) पुरानी साहित्यिक अवधी

सन १३७९ में डलमऊ, जिला रायबरेली के कवि दाऊद ने अवधी में **चांदायन** काव्य लिखा। *जिस समय ज्योतिरीश्वर ठाकुर मैथिली में गद्य लिख रहे थे, लगभग* उसी समय दाऊद अवधी में पद्य लिख रहे थे। यदि दाऊद का यह काव्य ही प्राप्त होता और **उक्ति व्यक्ति प्रकरण** सुलभ न होता तो विद्वान कहते कि अवधी भाषा का जन्म चौदहवीं सदी में हुआ। पर उससे पहले बारहवीं सदी का वह ग्रंथ सुलभ है और उसकी भाषा के साँचे और **चांदायन** की भाषा के साँचे में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है। **चांदायन** से तीन सौ साल पहले लगभग वैसी ही अवधी बोली जाती थी। अब मान लीजिए कि **उक्ति-व्यक्ति प्रकरण** से तीन सौ साल पहले भी, जब महाकवि भवभूति *कान्यकुब्ज सम्राट के यहाँ* **मालती माधवम्** *और* **उत्तररामचरितम्** *लिख रहे थे* लगभग वैसी ही अवधी बोली जाती थी जैसी दामोदर पण्डित बोलते थे। **चांदायन** की भूमिका में डा० माताप्रसाद गुप्त ने **उक्ति-व्यक्ति प्रकरण** की भाषा से इस काव्य की भाषा की तुलना विस्तार से की है। भूमिका के अन्त में उनका निष्कर्ष इस प्रकार दिया हुआ है "इस प्रकार ऊपर दिए हुए कुछ सौ रूपों में से चार छः रूपों में ही रचना की भाषा उक्ति की भाषा से भिन्न दिखाई पड़ती है अन्यथा वह उसके समान अथवा उससे विकसित प्रमाणित होती है। जायसी की भाषा में वह मिलती जुलती होते हुए भी किंचित पूर्व की स्थिति का आभास देती है। भाषा धीरे धीरे इसी प्रकार बदलती है। दो सौ साल पहले की भाषा किंचित पूर्व का आभास देती है यह किंचित् बहुत बहुत पर्याप्त हो जाता है इतना कि भाषा में गुणात्मक परिवर्तन दिखाई देने लगते हैं।

पर भवभूति के समय मे अवधी बोली जाती थी, यह सत्य है।

डा०चाटुर्ज्या स भिन्न डा०माताप्रसाद न उक्ति व्यक्ति प्रकरण मे कवण जैस रूपा मे मूध य नासिक्य के व्यवहार को प्राकृत प्रभावज य माना है, ण् को अवधी की ध्वनि नही माना। उनकी यह धारणा सही है। उक्ति व्यक्ति प्रकरण म क्रिया के वतमान कालिक एकवचन रूप इ वाले तो है, हि वाले नही है। यह एक महत्वपूण भेद है। दामोदर पडित का सपक उस अवधी म है जिसम हकार के लोप की प्रवत्ति अधिक प्रबल है। दाऊद की अवधी उस क्षेत्र की है जिसम ह का उच्चारण अधिक स्पष्ट होता था। एक पक्ति है **श्रो जस सुना कहत तस ग्रावइ,** यहा क्रिया का इ वाला रूप है। इसके बाद ही लिखा है **सो पढति जाको ति पढावहि,** यहा हि वाला रूप है। ऐसी प्रकार **दिन दिन पहिरहि चीर धोवाई।** पढति रूप म न इ ह न हि वरन ति है। दाऊद के समय तक साहित्यिक भाषा म ऐस रूपा का व्यापक चलन हो गया था।

उक्ति-व्यक्ति प्रकरण के समान **चादायन** म भी क्रिया सवनाम चि हा स स्वतत्र प्रयुक्त हुई है। **राति जु बइसइ चौकी कु त खरग रह छाइ**—यहा सदभ स पता चलेगा कि **रह** क्रियारूप किस काल के लिए है और उसका कर्ता किस पुरुष मे है। इसके बाद की पक्ति मे क्रियारूप **फिर** है **पाखर सहस साठ फिर चाटहि सँवरि न जाइ**—यहाँ भी क्रियारूप काल-पुरुष भेद सूचित नही करता। एमे रूप अ य पुरुष के साथ ही प्रयुक्त होते है उत्तम मध्यम पुरुषा के साथ नही इससे सिद्ध होता है कि य रूप काव्य म छद की आवश्यकता के कारण प्रयुक्त नही हुए तिड त रूपो के समाना तर ऐसे पूण विश्लिष्ट पद्धति वाले क्रियारूपो का भी व्यापक व्यवहार होता था। **उक्ति-व्यक्ति प्रकरण** क गद्य मे एस रूप बहुत है।

दामोदर पडित स लेकर मुल्ला दाऊद के समय तक काफी सामाजिक परिवतन हो चुका था, व्यापार के द्रो की बढती के साथ जनपदा का अलगाव टूट रहा था। फलत अवधी मे पश्चिमी जनपदा के अनेक भाषा-तत्व सिमट कर आ रहे थे। **चादायन** की दूसरी ही पक्ति है **जिमि सिरज्या यह देस दिखारू।** यहा **सिरज्या** रूप बागरू भाषा का है, बाद मे अवधी क्रिया **सिरजसि** (सिरजसि) का बार-बार प्रयोग हुआ है।

चादायन मे भव या भय (सस्कृत भू) के पश्चिमी रूप **भयउ भयो** है, अवधी म एकवचन रूप **भवा, भया, भा** है। **चादायन** मे **भएउ भयो भा** तीनो तरह के प्रयोग है। साहित्य की भाषा मे विभिन्न जनपदा के रूप घुलमिल रहे है। हिन्दी **लीजिए, दीजिए** के अनुरूप **लीजा, दीजा** रूप है **रासि गनित कर नाउँ न लीजा, दइ (दइय) श्रानि बिधि बेटी दीजा।** इसी प्रकार **पाइए रहिए** आदि की तरह **श्रति श्रवगाहु न पाइश्र थाहा, केहुँ न पाइश्र बाट।** कहा, रहा, देखा जसे खडी बोली के कृदत रूप **चादायन** म बिखरे हुए है **भाम नगारी कोइचरित हम देखा होइ श्रपार, हाँ रयर श्राइ देसकर रहा, काग रह (रूक) बहु भाषा कहा।** इसी प्रकार भूतकालीन कृदन्ता के कमवाच्य प्रयोग बढ रहे है **गाँउँ तीस भल दइजे पाए, घोर पचास श्रानि किए ठाढे।** सबसे आश्चय-जनक, किया की जगह, **कीत** रूप का प्रयोग है **भानु मश्रान न कीत पियारू।**

कीत अवश्य ही पछाही प्रयोग है। किध से किह, किय रूप बने और कीध या किद्ध स कीत।

वाक्यतत्र की दृष्टि से **चादायन** का प्रारम्भिक अंश जायसी तथा अन्य कवियों के लिए एक आदर्श बन गया है। **सिरजसि धरती औरु अगासू, सिरजसि मेर मदर कबिलासू।** और इस तरह काफी दूर तक यह सिलसिला चलता रहता है। इसी तरह पदमावत में **कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कलासू।** और यह कीन्हसि का सिलसिला भी काफी दूर तक चलता है। अवश्य ही दाऊद और जायसी किसी साहित्यिक परम्परा से बँधे हुए ऐसी वाक्य रचना कर रहे थे और यह सम्भव है कि अवधी की यह काव्य परम्परा दाऊद से पहले की हो। वाक्यतत्र की विशेषता यहाँ यह है कि वाक्य क्रिया से आरम्भ होता है, वाक्य का शेष अंश क्रिया के बाद आता है।

मृगावती की रचना १५०३ में हुई। **चादायन** के **कीत** की तरह यहाँ कृदत रूप **लीता** का प्रयोग हुआ है **उतर न देइ पेम गहि लीता।** इसमे भी आश्चर्यजनक प्रयोग **दीतहि है सब कहँ परोहन दीतिन्हि आनी।** अवधी रूप होगा दीहेनि, इसका आधुनिक विकास है दी हनि। दी ह और दीत दोनों कृदन्त रूप है। कुतुबन ने अवधी की प्रकृति के अनुसार कृदन्त रूप को फिर तिङन्त बनाया है। पर ये अपवाद रूप प्रयोग है, ये केवल यह सूचित करते हैं कि जनपदों के बीच बड़े पैमाने पर भाषातत्वों का विनिमय हो रहा है। कमवाच्य प्रयोग **चादायन** की तरह **मृगावती** में भी हैं **चितमहँ गडि सो पिरम कहानी एक एक कहँ पछा वाता देस लोर कह पठई पाती।** कही कही पश्चिम के वदत पूरब के प्रयोग भी लिए गए है जैसे नकारवाला भूत कृदन्त **पिउ कत गेला अवर न बोलें।** एक आश्चयजनक प्रयोग सम्प्रदानकारक में ला प्रत्यय का है **मन मह कहेसि निपर होइ धरों, हाथ न आव ता एहिला मरों।** एहिला अर्थात इसके लिए। डा० मानाप्रसाद गुप्त ने कल्पना की है कि ला के बाद इ वर्ण छूट गया है पर यह कल्पना अनावश्यक है। बघेलखण्डी में इस कारक चिह्न ला का प्रयोग अब भी होता है और उसी तरह उधर पूरब में मगही में होता है। हाथ न आव—यहाँ आव क्रिया का अनिश्चित निर्देश रूप है हाथ न आइ या हाथ न आए ऐसा आशय है। इसी प्रकार **निसि अँधियारि तिहि पुनि लाग सेज न भाव रैनि सब जागै।** यहाँ लागै जागै के समानान्तर भाव रूप का व्यवहार हुआ है। भाव के स्थान पर भाव काफी है। कहा देखा आदि पश्चिमी रूपो के समान **मृगावती** में भी कन्नौजी प्रयोग है **राजइँ नेगि ह कहा बुलाई।** अवधी रूप होगा **कहेसि** सम्मान दिखाना हो तो कहहि या कहेनि रूप होगा। इसी प्रकार **धाइहि अस क नीर बिआवा।** बना धाइहि है, पियाएहि की जगह पियावा रूप का प्रयोग है। अवधी का अपना रूप इस प्रकार है **धाएन्हि बहुत पसाउ।** कहीं-कहीं वर्तमानकालीन कृदन्त का प्रयोग क्रिया के निश्चयरूप के स्थान पर हुआ है यथा **लेखत मवइ अहेरा जहाँ।** लेखत क्रियारूप नहीं है लेखहि की जगह लेखत का प्रयोग हुआ है। आधुनिक अवधी में जात है आवत है और हिन्दी के जाता है आता है कृदन्त क्रियारूपों के लिए जमीन तयार हो रही है। निश्चय रूप रचना की कृदन्तमूल भी प्रयुक्त होते हैं। पछिहि

प्राइ पढावहि लागे—पण्डित आकर पढाने लगे। पढ़ावहि का एक अर्थ पढाता है भी होगा। आधुनिक अवधी में कहेंगे—पढाव लागि, यहाँ पढ़ावै कृदन्त रूप है, वह तिङन्त पढावहि का रूपान्तर है। इसी प्रकार सब देखहि आवहि ओहि ठाऊ—यहाँ देखहि वर्तमानकाल में अन्यपुरुष का एकवचन रूप है और क्रियार्थी संज्ञा का काम कर रहा है। जैसे तिङन्त रूप में बहुधा ह का लोप होता है वैसे ही कृदन्तीय व्यवहार में महाप्राण ध्वनि का लोप होता है। हनइ लाग निकसइ नहिं चाहा—निकसहि के स्थान पर निकसइ रूप है। हनइ लाग संयुक्त क्रिया है जिसमें हनइ का प्रयोग कृदन्तवत है।

पढावहि लागे—संयुक्त क्रियापद है। ऐसी क्रियापद रचना उत्तर-पश्चिमी भाषाओं की विशेषता है, अवधी की नहीं क्योंकि संयुक्त क्रियापद में पहला क्रियारूप कृदन्त होगा। कृदन्त और तिङन्त दो तरह की क्रियापद रचना के मेल से ऐसी संयुक्त क्रियापद रचना संभव हुई। अवधी कृदन्तहीन क्षेत्र की भाषा है। वह जब संयुक्त क्रियापद रचना से प्रभावित होती है तब अपने तिङन्त रूप को ही कृदन्त की तरह काम में लाती है। पढावहि देखहि आदि वर्तमानकालिक अन्यपुरुष के एकवचन रूप हैं। लागे क्रिया के पहले ये कृदन्तवत प्रयुक्त हुए। आधुनिक अवधी में पढाव देख जैसे क्रियार्थी संज्ञा रूप वास्तव में वर्तमानकालिक तिङन्त रूप हैं। मजे की बात है कि खडी बोली के पढावेगा देखेगा रूपों का आधार भी यही पढावहि देखहि तिङन्त रूप हैं (टकसाली हिंदी में पढायेगा देखेगा रूप होंगे)। कौरव का तिङन्त रूप कुरु जनपद में पहुँचकर, साधारण नियामूल की तरह कृदन्त प्रत्यय से संयुक्त हो रहा है, उधर कृदन्तों का कौरवी व्यवहार अवधी में संयुक्त क्रियापद रचना को प्रेरित कर रहा है। ऐसा है जनपदीय भाषाओं का संपर्क जिससे इन भाषाओं में नये नये रूपों का उदभव और विकास हुआ।

पढावहि पढाव, देखहि देख रूप जब कृदन्तों का काम देने लगे, तब उनका व्यवहार संयुक्त क्रियापदों तक सीमित न रहा। वे संज्ञारूपों के समान कारकों में प्रयुक्त होने लगे। अवधी के तिङन्त क्रिया रूप संज्ञा बन जायें इसका कारण अवधी पर कौरवी समुदाय की भाषाओं का बहुत गहरा प्रभाव ही हो सकता है।

अवधी की अनेक विशेषताओं के बारे में जायसी की भाषा का विवेचन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अनेक महत्वपूर्ण बातें जायसी ग्रंथावली की भूमिका में कही हैं। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का अध्ययन करने वालों को भी इस विवेचन पर ध्यान देना चाहिए। उक्त क्रियार्थी संज्ञा के संदर्भ में खडी बोली और ब्रजभाषा से अवधी का भेद बतलाते हुए शुक्ल जी ने लिखा है : "ठेठ अवधी की एक बडी भारी विशेषता को सदा ध्यान में रखना चाहिए। खडी बोली और ब्रजभाषा दोनों में कारक चिह्न सदा क्रिया के साधारण रूप में लगते हैं जैसे—'करने का', 'करन को' या 'करिबे को'। पर ठेठ या पूरबी अवधी में कारक चिह्न प्रथम पुरुष एकवचन की वर्तमानकालिक क्रिया के रूप में लगता है जैसे—जाव कहँ, खायमा, बठैकर—।" इसके बाद शुक्ल जी ने जायसी से उदाहरण दिए हैं। ये उदाहरण दो तरह के हैं। पहली तरह के उदाहरणों में कारक

साहित्यिक भाषा-परम्परा का अग है और पश्चिमी प्रभाव से उसमें कर्मवाच्य प्रयोग काफी हैं। इस सन्दर्भ में शुक्ल जी ने बहुत स्पष्ट लिखा है "ऊपर जो पूरबी अवधी के रूप दिखाए गए, उनसे यह न समझना चाहिए कि जायसी ने सर्वत्र पूरबी अवधी ही के व्याकरण का अनुसरण किया है। कवि ने तुलसीदास जी के समान सकर्मक भूतकालिक क्रिया के लिङ्ग वचन अधिकतर पच्छिमी हिन्दी के ढग पर कर्म के अनुसार ही रखे हैं, जैसे—**बसिठन्ह आइ कही अस बाता।**" शुक्लजी ने यहा अवधी पर पच्छिमी हिन्दी के प्रभाव का उल्लेख किया है। यह प्रभाव साहित्यिक भाषा के स्तर पर अधिक था, बोल चाल की भाषा के स्तर पर कम। इसीलिए जहा भूतकालिक क्रिया लिंगभेद सूचित करती है, वहा शुक्लजी उसे अवधी व्याकरण के अनुरूप प्रयोग नही मानते। शुक्लजी की स्थापना उन सब भाषाविज्ञानियों के लिए ध्यान देने योग्य है जो जायसी या तुलसीदास की भाषा में सर्वत्र पुरानी अवधी के रूप देखते हैं। वे साहित्यिक भाषा की निर्माण प्रक्रिया भुला देते हैं। जायसी की अपेक्षा पच्छिमी हिन्दी के ढँग पर कर्मवाच्य प्रयोग **रामचरितमानस** म और भी अधिक हैं। इसका कारण यह है कि साहित्यिक भाषा की वह परम्परा **रामचरितमानस** मे पूर्णत विकसित हो चुकी है।

तिडन्त क्रियारूपो की विशेषता है पुरुषभेद की सूचना, इस विशेषता का आधार है वह वाक्यतत्र जिसमें कर्ता क्रिया के बाद आता था। कृदन्त रूपो की विशेषता है, पुरुषभेद का अभाव, और इस विशेषता का आधार है वह वाक्यतत्र जिसमे कर्ता पहले आता है और क्रिया वाक्य के अन्त मे। अवधी का वाक्यतत्र मूलत क्रियाप्रधान है, सस्कृत का वाक्यतत्र अपने मूलरूप म इसी पद्धति का अनुसरण करता था। किन्तु जैसे जैसे कृदन्तरूपो का व्यवहार बढता गया वैसे वैसे तिडन्त रूप कम होते गए और क्रिया रूप पुरुषभेद से मुक्त होते गए। पूरब की आर्यभाषाएँ तिडन्त पद्धति का गढ रही हैं इसीलिए इनमे बहुधा कृदन्तो का व्यवहार भी तिडन्तवत होता है। कृदन्त पद्धति के साथ जिस उद्देश्य-विधेय क्रम वाले वाक्यतत्र का चलन हुआ, उसका प्रभाव अब सभी आर्यभाषाओ पर तो है ही, द्रविड, कोल और नाग भाषाएँ भी वाक्य कर्ता से आरम्भ करती हैं और क्रिया स उसका अन्त करती है। शुक्ल जी न भूतकालिक क्रिया के लिंगभेद वाले रूप का उदाहरण देन के बाद अवधी पर पश्चिमी प्रभाव को ध्यान म रखते हुए आगे लिखा है "इसी प्रकार भूतकालिक क्रिया का पुरुष भेद शून्य पश्चिमी रूप भी प्राय मिलता है, जैसे **तुम तौ खेलि मँदिर महँ आई।**" तुम आई, व आई, अरमक क्रिया के भूतकाल रूप म पुरुषभेद से कोई परिवर्तन न हुआ। पश्चिमी हिन्दी का प्रभाव भूतकालिक क्रियारूपो पर अन्य प्रकार भी देखा जा सकता है। शुक्लजी ने लिखा है "पश्चिमी हिन्दी की सकर्मक भूतकालिक क्रिया म पुरुष भेद नहीं रहता—जैसे **मैंने किया, तुमने किया, उसने किया।** ठेठ अवधी के ऊपर लिखे रूपो के अतिरिक्त जायसी और तुलसी दोनो एक सामान्य आकारान्त रूप भी रखते हैं जिसका प्रयोग तीनो पुरुषो, दोनो लिंगो और दोनो वचनो म समान रूप स करते हैं जैसे—

उत्तम पु० (१) का मैं बोआ जनम ओहि भूजी ?
(२) हम तो तोहि देखावा पीऊ।
मध्यम पु० (३) तुइ सिरजा यह समुद अपारा।
(४) अब तुम आइ अँतर पट साजा।
प्रथम पु० (५) भूलि चकोर दिस्टि तहँ लावा।
(६) तिन्ह पावा उत्तिम कैलासू।"

एक तरह से यहा क्रिया का शुद्ध रूप है विशेषण के समान उसम लिंग भेद नही है। मानक हिन्दी मे ने चिह्न के साथ **मैंने बोया, हमने दिखाया** आदि प्रयोग हागे। **मैंने बोया** वाक्य के लिए भाषाविज्ञानी कहगे कि यह वाक्य कमवाच्य है, मैंने का अथ है मेरे द्वारा। उन्हे मानना चाहिए कि कर्ता वाच्य **हम** भी करण कारक म है, **हमने** का अथ है हमारे द्वारा। ने चिह्न लगे चाहे न लगे, कर्ता (या करण) कारक का सम्बन्ध क्रिया के साथ वैसा ही बना रहता है। भले ही **बोआ, दिखावा** आदि क्रियारूप कमवाच्य रहे हा पर जायसी उनका प्रयोग कतवाच्यवत् कर रहे है। मुख्य बात यह है कि ऐसे रूपो म भाषा की विशिष्ट पद्धति फिर झलकती है, उनमे पुरुषभेद का अभाव है यद्यपि कालभेद का अभाव नहा है।

अवधी मे क्रियार्थी सज्ञारूप न प्रत्यय जोडकर बनते थे। ऐसे रूप **उक्ति-व्यक्ति प्रकरण** मे है। एसे न वाले रूप जायसी और तुलसीदास की रचनाआ म भी हैं। ऐसे रूप पूरबी की अपेक्षा पच्छिमी अवधी म अधिक रहे है और अब कनौजी मे मिलत हैं। व्रजभाषा मे इनका अभाव है। कनौजी मे न वाले रूपा को ध्यान म रखत हुए शुक्लजी ने लिखा है "इसके अतिरिक्त पश्चिमी साधारण क्रिया (Infinitive) के 'न' वर्णान्त रूप का प्रयोग भी कही-कही देखा जाता है जैसे—**कित श्रावन पुनि अपने हाथा।**" यहाँ **श्रावन** पश्चिमी अवधी का क्रियार्थी सज्ञारूप है और तुलसीदास के अतिरिक्त प्रताप नारायण मिश्र की अवधी मे भी उसका प्रयोग हुआ है।

शुक्लजी ने अवधी के ध्वनि तत्र के बारे म एक महत्वपूण बात कही है। **होई** और **होइहि**, एक ही अथ देने वाले भविष्यकालीन इन दो क्रियारूपा मे वह **हि** वाले रूप को पुराना मानत है। लिखा है " होइहि पुराना रूप हे। 'ह' के घिस जान से आजकल 'होई' (=होगा) बोलत है।' अनेक भाषाविज्ञानी अन्य पुरुष एकवचन क्रियारूपा म जहाँ **हि** देखत हैं, वहा वे उसे मूलरूप इ का विकास मानत है। वास्तव मे पश्चिमी जनपदा के प्रभाव से महाप्राण ध्वनि का लोप होता है, अतिरिक्त ह व्यजन जोडा नही जाता। ऐसे रूप जिनमे पहले ह ध्वनि थी पर आगे चलकर उसका लोप हो गया, बगाल तक पहुँचे है। दो चीजा की तुलना करते हुए बँगला म **चेये** शब्द का प्रयोग होता है। यह **चेये** शब्द अवधी के **चाहि** क्रिया का रूपान्तर है। शुक्लजी ने इस सन्दभ म लिखा है ' जायसी और तुलसी ने कुछ पुराने शब्दा का व्यवहार किया है। इनम से कई एक एस है जो अब प्रसिद्ध नही हैं। उदाहरण के लिए 'चाहि' और 'बाज' इन दो शब्दा को लीजिए। **चाहि** का अथ है अपेक्षाकृत अधिक, बढकर—(क) **मेघहु चाहि अधिक वे कारे।**

(ख) एक सौं एक चाहि रुपमनी। (ग) कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि—तुलसी। यह 'चाहि' शायद संस्कृत 'चापि' से निकला हो। बँगला मे यह 'चेये' इस रूप मे बोला जाता है।" चाह क्रिया का अर्थ है देखना। मेघहु चाहि अधिक व कारे—अर्थात मेघ को भी देखने से अधिक काले है। तुलना के लिए देखते शब्द का इस तरह प्रयोग अब भी होता है, खास तौर से पूरब के लोग मानक हिंदी बोलते हुए उसका प्रयोग करते है। पूर्वकालिक रूप चाहि मे बँगला चेये का विकास हुआ। देखने के अर्थ मे चाह क्रिया का प्रयोग जायसी और तुलसीदास तथा अन्य कवियो की भाषा मे तथा आधुनिक बँगला मे भी देखा जाता है। तुलसीदास ने देखने के अर्थ मे चाह क्रिया का प्रयोग बाल काण्ड के आरभ मे इस प्रकार किया है अस मानस मानस चख चाही। भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही। इसी तरह बालकाण्ड के अतिम अश मे सखी सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही। चाह क्रिया का प्रयोग बँगला से हिंदी म आया होगा, उस समय इसकी कोई सम्भावना न थी। यह क्रिया उन भाषा-तत्त्वो म है जो अब अवधी से लुप्त हो गए हैं किन्तु बँगला म सुरक्षित हैं। इसी तरह थाक क्रिया है जो पहले अवधी म प्रयुक्त होती थी। रहने, स्थित होने के अर्थ म जायसी ने पदमावत के जोगी खण्ड मे लिखा है हनुवँत बेर सुनब पुनि हाँका, दहुँ को पार होइ को थाका। यह क्रिया बँगला म खूब प्रयुक्त होती है। इसी तरह आछ क्रिया पुरानी अवधी म खूब चलती थी पर अब मैथिली और बँगला मे उसका व्यवहार होता है। शुक्लजी ने इसके बारे मे लिखा है "यह अस धातु से निकली जान पडती है जिसके रूप पालि म 'अच्छति', 'अच्छन्ति' आदि होते हैं। अब हिंदी म तो उसका वर्तमान कृदत रूप 'अछत' या 'आछत' ही बोलचाल म है पर बँगला म इसके और रूप प्रचलित हैं।" मेरी समझ म शुक्लजी ने आछ क्रिया का सम्बन्ध अस से ठीक जोडा है। इसी तरह उन्होंने अह क्रिया का सम्बन्ध भी अस धातु से जोडा है और जायसी ग्रंथावली की भूमिका म लिखा है "यह सत्तार्थक क्रिया 'भू' धातु से न निकलकर 'अस' धातु से निकली जान पडती है।" इस प्रकार शुक्लजी अस क्रिया के दो रूपान्तर मानते हैं, एक अह (या आह), दूसरा आछ (या आछ)। अछत और आछत रूप अब मानक हिंदी म नहीं हैं सम्भव है अवधी के किसी क्षेत्रीय रूप म उनका चलन हो।

एक अन्य क्रिया पार, समर्थ होने के भाव म, पहले अवधी म प्रयुक्त होती थी, अब यह बँगला म प्रयुक्त होती है, हिंदी प्रदेश म इसका लोप हो गया है। शुक्लजी ने इसके बारे मे लिखा है "[illegible] मे [illegible] ही म सुनाई पडते हैं। पर जायसी और तुलसी के समय [illegible] म भी रहा हो, क्योंकि इनके पहले के कबीर साहब [illegible] रहे, जायसी और तुलसी दोनो ने इस 'पारना' ([illegible] है,—(क)

परीनाथ कोउ छुवै न पारा।—[illegible]

तुलसी।" [illegible] क्रिया [illegible]

होती थी, [illegible]

पहले मगध मे थी, बाद को वैसी प्रधानता मगध से हटकर बंगाल म सुरक्षित रही। जैसे-जैसे मध्यदेश और पूर्वी क्षेत्रो की बोलियो पर पश्चिमी भाषाओ का प्रभाव बढा, वैसे-वसे अवधी, मगही आदि के अनेक भाषातत्व अपनी मूल भूमि छोडकर बँगला मे सिमट आए। पूर्वी क्षेत्रो के अलावा मराठी जैसी पश्चिमी भाषा म भी पुरानी अवधी के कुछ रूप अभी विद्यमान है। अह या आह क्रिया का आहे (है) रूप मराठी मे प्रचलित है। जायसी ने लिखा था **का राजा हौं बरनौं तासू, सिंघल दीप आहि कलासू।** यह आहि शब्द महाप्राणता के लोप के बाद अवधी और बुन्देलखण्डी मे अब भी बोला जाता है। **को आय** या **कु आय** का अर्थ है, कौन है। **को अयम** से इसका कोई सम्बन्ध नही है। इसके बहुवचन रूप **आहिन** का प्रयोग अवधी म अब भी होता है और उसम महाप्राण ध्वनि बनी हुई है। **हम आहिन** अर्थात हम है, **वी आहीं** अर्थात वे है। बहुधा देखा जाता है कि एकवचन रूप मे **ह** का लोप पहले होता ह, बहुवचन म कम होता है या विलम्ब से होता है। जायसी और तुलसीदास की भाषा मे **करहि** जैसे रूप कम और **करइ** जैसे रूप ज्यादा हैं किन्तु **करहिं** जसे रूप खूब प्रयुक्त होत है। इसी तरह **आहि** का रूपान्तर **आय** है, **आहिन, आहीं** मे ह् सुरक्षित है।

तुलसीदास की भाषा म पश्चिमी प्रयाग और भी अधिक है। **मानस** अवधी भाषा का लोकप्रिय श्रेष्ठ ग्रन्थ है, इसलिए उसके बारे म विशेष सावधान रहना चाहिए कि उसकी भाषा के हर प्रयोग को हम पुरानी अवधी न समझ लें। वह परम्परा जिसमे पच्छिमी प्रयोग अवधी म मिलने लगे है, तुलसी से पहले जायसी मे आरम्भ हो चुकी है। **कीजिए पाइए**, आधुनिक हिन्दी के इन क्रियारूपा से मिलते-जुलते रूप **पदमावत** मे है। नागमती सुवा सम्वादखण्ड मे जायसी न लिखा था **जेहिं रिस क मरिए रस जीज। सो रस तजि रिस कबहुँ न कीज। कन्त सोहाग कि पाइय साधा। पावइ सोइ जो उहिं चित बाँधा।** यहाँ **जीजै, कीजै, मरिए, पाइय** आदि पच्छिमी प्रयोग है। तुलसीदास न **मानस** के अरण्यकाण्ड म लिखा **तासो तात बयरु नहिं कीजै। मारें मरिअ जिआए जीज।** आधुनिक अवधी के विपरीत तुलसीदास की साहित्यिक अवधी म कर्मवाच्य प्रयोग, जायसी की अपेक्षा, अधिक है। बालकाण्ड के आरम्भ में उन्होंने लिखा **मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत। समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत। तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।** यहा लगातार कर्मवाच्य प्रयोग हुए हैं। कथा सुनी, कथा समझी नही, गुरु बारहिंबार कथा कही, तब कछु समुझि परी। इस तरह के कृदन्तीय प्रयोग ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी आदि मे प्रचलित है, अवधी मे नही। सुन्दरकाण्ड म तुलसीदास ने लिखा था **नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना, राखे सकल कपिन्ह के प्राना।** यहा राखे क्रिया का बहुवचन रूप कर्म प्रान के अनुरूप है। **चलत मोहि चूडामनि दीन्ही। रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही।** यहा दीन्ही लीन्ही कृदन्त रूप कर्म चूडामनि के अनुरूप लिंगभेद सूचित करते हैं। **केहि अपराध नाथ हौं त्यागी**— यहाँ पुन कर्म सीता के अनुरूप **त्यागी** स्त्रीलिंग मे है। सुन्दरकाण्ड मे ही तुलसीदास ने लिखा **राम कपिन्ह जब आवत देखा,** यहाँ **देखा** आधुनिक हिन्दी के समान निष्ठ वचन

भेद में मुक्त शुद्ध कृदन्त रूप है। **राम ने देखा**, ने लगाकर कर्त्ता का अस्तित्व सूचित करना आवश्यक नहीं है। **देख** के अंतिम स्वर को दीर्घ करके **देखा** रूप नहीं बनाया गया। **पवनतनय के चरित सुहाये। जामवंत रघुपतिहिं सुनाये।** यहाँ सुनाए बहुवचन रूप कर्मकारक **पवनतनय के चरित** के अनुरूप है। अवधी का रूप होना चाहिए था **सुनाईं ह, जामवंत पवनतनय के चरित रघुपतिहिं सुनाएन्हि।** तुलसीदास इस तरह के प्रयोगों से अच्छी तरह परिचित हैं यथा लंकाकाण्ड में उन्होंने लिखा है **गहि कर पादप उपल पहारा। डारेन्हि तापर एकहिं बारा।** और **जय जय जय रघुबंसमनि धाए कपि दै हूह। एकहि बार तासु पर छाडेन्हि गिरि तरु जूह।** ऐसे कर्तृवाच्य प्रयोगों की तुलना में, मानस की भाषा में, कर्मवाच्य प्रयोग अधिक हैं। तुलसीदास की काव्य भाषा ब्रज, बुन्देलखण्डी और कनौजी के बहुत निकट है, यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए। कहीं-कहीं आधुनिक खड़ी बोली के पूर्वरूप तुलसीदास की क्रियापद रचना में मिलते हैं जैसे उन्होंने बालकाण्ड में लिखा **भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा।** यहाँ **पाओगे** का पूर्वरूप **पावहुगे** विद्यमान है। गा, गे आदि का व्यवहार ब्रज और बुन्देलखण्डी में होता है, अवधी में नहीं। किन्तु मानक हिन्दी का **पाओगे** रूप अवधी के आधार पर बना है, यह **पाओ** के पूर्वरूप **पावहु** से स्पष्ट है। इसी तरह किष्किन्धाकाण्ड में तुलसीदास ने लिखा **प्रथमहिं देवन्ह गिरिगुहा राखेउ रुचिर बनाइ। राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ।** यहाँ **करेंगे**, मानक हिन्दी के इस रूप की रचना कैसे हुई है, इसका ज्ञान **करहिंगे** देखकर होता है।

पुरानी अवधी में तिङन्त प्रयोगों का चलन था। वर्तमान काल के रूपों में जहाँ तहाँ कृदन्त प्रयोग होने लगे थे। जायसी ने **पदमावत** के राजा सुवा संवाद खण्ड में लिखा था **हीरामन हौं तेहिक परेवा। कंठा फूट करत तेहि सेवा।** यहाँ **करत** आधुनिक **करता है** का पूर्वरूप है। इसी तरह तुलसीदास ने किष्किन्धा काण्ड में लिखा **इहाँ साप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मन माहीं।** यहाँ **रहउँ** तो तिङन्त प्रयोग है **आवत** वर्तमान काल का कृदन्त रूप है। इस कृदन्त रूप संयुक्त क्रियाओं में भी प्रयुक्त होने लगे हैं। किष्किन्धा काण्ड में तुलसीदास ने लिखा **छन एक सोच मगन होइ रहे। पुनि अस बचन कहत सब भए।** यहाँ यथावाचकों का प्रसिद्ध **कहत भए**, अपने पूर्ण रूप में विद्यमान है। यह प्रयोग तुलसीदास ने सम्भवतः कथावाचकों से ही लिया होगा।

सर्वनाम रूपों में मानक हिन्दी **मेरा**, अवधी **मोर** रूप स्वीकार करती है। तुलसीदास दोनों का व्यवहार करते हैं। बालकाण्ड के आरम्भ में **भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहिं होई।** यहाँ तो उन्होंने अवधी का **मोर** रूप लिया पर इसके बाद ही लिखा **जस कछु बुधि बिबेक बल मेरें। तस कहिहउँ हियँ हरि के प्रेरें।** यहाँ उन्होंने पश्चिमी रूप **मेरे** ग्रहण किया। किसी को यह भ्रम न होना चाहिए कि पुरानी अवधी में **मोरे** के स्थान पर **मेरे** रूप का व्यवहार होता था। इसी प्रकार अनिश्चयसूचक सर्वनाम **कोई** का अवधी रूप **कोऊ** है। तुलसीदास दोनों रूपों का व्यवहार करते हैं। बालकाण्ड के आरम्भ में **परम स्वतंत्र न सिर पर कोई।** **भावइ मनहि करहु तुम्ह सोई।** अयोध्याकाण्ड में

कोउ किछु कहइ न कोइ किछु पूछा। प्रेम भरा मन निजगति छूछा। किछु रूप अब बँगला मे प्रयुक्त होता है। सवनाम रूप जो अवधी और हिन्दी दोनो मे प्रयुक्त होता है। जे रूप पूर्वी क्षेत्र की बोलियो मे प्रयुक्त होता है। तुलसीदास बहुधा इसी जे रूप का व्यवहार करते है यथा बालकाण्ड के आरभ मे **जे पर दूषन भूषन धारी**, और, **जे पर भनिति सुनत हरषाहीं**। इसी तरह हिन्दी **कौन** का प्रतिरूप **को** है। तुलसीदास **के** रूप का व्यवहार बहुधा करते है यथा अयोध्याकाण्ड मे **मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई**। पर यह सम्भव है कि **जे, के** रूप बोलचाल की पुरानी अवधी मे प्रयुक्त होते रहे हो और **जो, को** उसमे बाद म आए हो।

उत्तम पुरुष सवनाम का एकवचन रूप **हहूँ, हउँ, हौं, हूँ** पुराना है। इसका प्रमाण यह है कि यह सवनाम रूप क्रिया पदो के बाद प्रयुक्त होता है और वह मागधी **अम्भि, अम्हि आमि** से भिन्न है। मागधी मवनाम पश्चिम म सस्कृत म, और पूव मे बँगला मे, प्रयुक्त होता रहा है, **हौं** रूप मध्यदेशीय है। **पढूगा, करूगा** आदि मे इसका **ऊँ** चिह्न क्रिया रूप को उत्तम पुरुष स जोडता है। **मै, मो, मे** आदि रूप सस्कृत क **मम** वग के हैं और इनका उद्भव **मय** से है। अवधी म **मैं** रूप का चलन अब भी कम है। यदि जायसी और तुलसीदास की तुलना की जाय तो विदित होगा कि जायसी ने **हौं** रूप का अधिक प्रयोग किया है और तुलसीदास ने **मैं** का। **पदमावत** के आरम्भ मे **व मख दूम जगत के हौं ओहि घर क बाद, व सुगुरु हौं चेला नित बिनवौं भा चेर, हौं पडितन केर पछलगा**। जायसी **मैं** रूप का भी प्रयोग करते है जैसे **गुरु मोहदी खेवक मैं सेवा**, किन्तु इसकी आवृत्ति कम करते है। बालकाण्ड के आरम्भ मे **मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, किमि समुझौं मैं जीव जड, भाषाबद्ध करबि मैं सोई**। तुलसीदास ने भी **हौं** का प्रयोग किया है किन्तु कम। सम्भवत उनके समय तक **हौं** का प्रयोग व्रजभाषा मे अधिक होता था, अवधी मे कम। **हौं** क्रियारूप भी है। **जात हौं** अर्थात जाता हूँ, **हौं जात हौं** अथात् मैं जाता हूँ। सम्भव है, क्रिया-सवनाम की उलझन से बचने के लिए हौ का प्रयोग कम कर दिया गया हो। साहित्यिक व्रजभाषा मे इसका प्रयोग अधिक होता है किन्तु तुलसीदास **विनयपत्रिका** मे भी हौं के अतिरिक्त मै का निरतर प्रयोग करते हैं यथा **नाहिन कछु अवगुन तुम्हार अपराध मोर मैं माना, ज्ञान भवन तन दिएहु नाथ सोउ पाय न मै प्रभु जाना**। यहाँ मैं सवनाम ही नही, उसके साथ **माना जाना** क्रियारूपो का प्रयोग भी खडी बोली का है। **रामचरितमानस** मे **मैं** के अतिरिक्त **हौं** का प्रयोग भी है यथा सुन्दर काण्ड मे **बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी**। जो लोग समझते हैं कि कमवाच्य प्रयोग से मैं रूप का कोई विशेष सम्बन्ध है, व बिसारी के साथ **हौं** का प्रयोग यहाँ देखें।

एक सवनाम रूप **किसु** है। बालकाण्ड क आरम्भ म **नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेहु किसु गेह**। इसी क वजन का एक रूप **जिसु** ह। बालकाण्ड म ही **बदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू**। हिन्दी मे **जिस, किस** इसी के प्रतिरूप हैं। पुरानी उदू के **क्सि** का सम्बन्ध **किसु** रूप स है।

रामचरितमानस मे कहीं-कहीं ठेठ व्रजभाषा के प्रयोग दिखाई देते हैं। बाल

काण्ड के आरम्भ म सुनहि मातु मैं दीख ग्रस सपन सुनावहुँ तोहि। यहाँ सुनहि का अर्थ यह नही है कि माता सुनती है वरन् माता से सुनने के लिए कहा गया है। मध्यम पुरुष एकवचन आज्ञार्थी रूप सुनहु को ब्रजभाषा के अनुरूप सुनहि लिखा गया है। ब्रजभाषा की विशेषता रूप को इकारान्त करने मे है। सामान्य रूप होगा सुनि अवधी म होगा सुनु। उसी तरह सुनहि और सुनहु। गीतावली मे तुलसीदास न लिखा ऋषि नव सीस ठगौरी सी डारी अति सनेह कातर माता कहे, सुनि सखि! बचन दुखारी। गीतावली मे अन्य गीत है तू देखि देखि री! पथिक परम सुन्दर दोउ। और इसके साथ तुलसीदास सुनु, देखु आदि रूपो का व्यवहार भी अपनी ब्रजभाषा मे करते है। गीतावली म ही सहली सुनु सोहिलो रे, और—देखु कोउ परम सुन्दर सखि! बटोही। तुलसीदास क इकारान्त आज्ञार्थी रूपो से सूरदास के प्रयोग तुलनीय है। उनका एक पद या आरम्भ होता है तेरो तब तिहि दिन, को हितू हो हरि बिनु, और आगे कहते हैं— सुनि कृतधन, निसि दिन को सखा प्रापन, सूर सो सुहृद मानि, ईस्वर अन्तरजामि, सुनि सठ, झूठो हठ कपट न ठानि। उनका एक प्रसिद्ध पद है अब क नाथ मोहि उधारि। य साहित्यिक ब्रजभाषा क विशिष्ट रूप नहीं है वरन् बोलचाल की ब्रजभाषा क हैं। ब्रज की लोक कहानियां पुस्तक म एम उदाहरण अनक है "रानी बोली देखि राजा! छ महीना तक तौ तू मेरौ भइया और मैं तेरी बहन। ' वे बोले बताइ भइया, कोई अकलि ऐसी बताइ जाते बचि जाँइ" (पष्ठ ३५)। तुलसीदास के सुनहि क जोड का मानहि प्रयोग सूरसागर म इस प्रकार ह तू जननी अब दुख जनि मानहि।

तुलसीदास क भाषासंस्कार अवधी क ह। उनक समय तक काव्य मे ब्रजभाषा अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो चुकी ह। उसका गहरा प्रभाव उनके ऊपर ह। किन्तु जब वह ब्रजभाषा लिखत हैं तब अवधी क रूप जहा-तहा अपनी झलक दिखात है। जल को गए लक्खन हैं लरिका—यहा लरिका शब्द म कोई विशेष अवधीपन नहा ह किन्तु लरिकवा कहा जाय तो अवधीपन अवश्य आ जाएगा। तुलसीदास न दूसरा बहुवचन रूप लरिकनि गीतावली मे लिखा ह। गीत आरम्भ होता है कोसलराय के कुअँरोटा। आग की पक्ति है कहँ सिव चाप लरिकयनि बूझ बिहँसि चितइ तिरछौहे। इसी तरह गीतावली के एक गीत पूजि पारबती भले भाय पाय परिक म आग पक्ति ह अन्तरजामिनि भव भामिनि स्वामिनि सों हौं कही चाहौं बात मातु अन्तनो हौं लरिकै। लरिक तो हौं— यह शुद्ध अवधी की पदरचना होगी। हिन्दी की दूसरा क्रिया अवधी म ह्रस्व एकार क साथ आरम्भ होती है। जाको बर सुन्दर माई—गीतावली क इस पद म लिखा ह रहे घेरि राजीव उभय मनों चचरीक कछु हृदय डेराइ। मे क्रिया रूप का व्यवहार अवधी की विशेषता प्रकट करता ह। गीतावली म ऐसा अनक उदाहरण हैं। बूझत जनक नाथ ढोटा दोऊ काके हैं—इस पद म स्वारथ रहित परमारथी कहावत हैं, मे सनेह बिवस विदेहता बिचारैं हैं। मोर पूल चौके को गए फुलवाई हैं—इस गीत म सोरनि टिपार उपवीत पीतपट कटि दोना बाम करनि सलोने से सयाई हैं। साज सोरि साजि साजि—इस गीत म कुअँर चढ़ाई भौंह अब को बिलोकै सोहै जहँ तहँ भे अचल,

मे कबहुँक अब अवसर पाइ। मेरिओ सुधि द्याइबो कछु करुन कथा चलाइ। सुधि के अनुरूप द्याइबी रूप है। अयोध्याकाण्ड म मथरा कहती है हमहु कहबि अब ठकुर सोहाती। नाहि त मौन रहब दिनु राती। यहा ठकुर सोहाती के साथ तो कहबि है किन्तु मथरा के लिए मौन रहब है। लगता है, यह कृदन्त कम के अनुरूप लिंगभेद सूचित करता है, कर्ता से प्रभावित नही होता। किन्तु इसी के आगे मथरा कहती है कोउ नप होउ हमहि का हानी। चेरि छाँडि अब होब कि रानी। यहा रानी कम है और कता मथरा भी स्त्रीलिंग है किन्तु नियारूप होबि नही है, होब है। बालकाण्ड मे कपटमुनि कहता है नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार। मै तुम्हरे सकलप लगि दिनहि करबि जेवनार। यहाँ कर्ता और कम दोनो पुल्लिग है, फिर भी कृदन्त इकारान्त है। इसस सिद्ध हुआ कि करब ओर करबि वैकल्पिक रूप है, लिंगभेद से उनका कोई सम्बन्ध नही है। एक उदाहरण पदमावत म लें अबकी हमहि करिहि भोगिनी। हमहू साथ होब जोगिनी। यहा कम और कर्ता दोनो स्त्रीलिंग है किन्तु होब रूप अकारान्त है। पदमावत म एक दूसरा उदाहरण फागु खेलि पुनि दाहब होरी। सतब खेह उडाउब झोरी। यहाँ दाहब और उडाउब दोनो नियारूपो के कम स्त्रीलिंग मे है। इनके साथ सँतब भी लें तो तीनो का कर्ता स्त्रीलिंग म है। कर्ता और कम किसी के अनुरूप भी कृदन्त मे परिवतन नही होता। यही स्थिति रामचरितमानस मे इस क्रियारूप की है। भाषा की विशिष्ट प्रवृत्ति के अनुरूप यह कृदन्त लिंग वचन पुरुष भेद स मुक्त है।

तुलसीदास न ब वणवाले इस रूप का व्यवहार उत्तम, मध्यम और अन्य तीनो पुरुषो म किया है। बालकाण्ड म और एक तोहि कहउँ लखाऊ। मैं एहि बेष न आउब काऊ। लकाकाण्ड म तेहि बधब हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि। इसी प्रकार मध्यम पुरुष म इस रूप का व्यवहार होता है। अयोध्याकाण्ड म तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई और— जौं हठ करहु प्रेमबस बामा। तो तुम्ह दुख पाउब परिनामा। तुलसीदास बहुत जगह इसका व्यवहार अन्य पुरुष के साथ करते है। बालकाण्ड म असि प्रतीति सबके मनमाहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं। अयोध्याकाण्ड म सकल सखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू। करण कारक म इस रूप का कोई विशेष सम्बन्ध हो एसा प्रतीत नही होता। अयोध्याकाण्ड मे अन्य उदाहरण है सीय कि पिय सगु परिहरिहि लखन कि रहिहहि धाम। राजु कि भूजब भरत पुर नृप कि जिइहि बिनु राम। दूसरी पंक्ति मे तिङन्त और कृदन्त दोनो रूपो का प्रयोग एक साथ हुआ है। पूरे दोहे म तीन तिङन्त रूप हैं एक कृदन्त रूप है। रामचरितमानस म दोनो का अनुपात लगभग ऐसा ही है।

यह देखना रोचक होगा कि कृदन्त रूपो का व्यवहार तुलसीदास की ब्रजभाषा म अधिक है या उनकी अवधी म। कवितावली, विनयपत्रिका गीतावली सभी म मानस की अपेक्षा कृदन्त रूपो का व्यवहार अधिक है। गीतावली म आनद उमगन आजु बिबुध बिमान बिपुल बनाइब। गावत बजावत नटत हरषत सुमन बरषत पाइब। आधुनिक हिन्दी की विशेषता है वर्तमानकालिक रूपो म कृदन्त का प्रयोग। गावत, बजावत आदि

वैसे ही रूप है। समापिका क्रिया यहा नही है पर वैसी क्रिया के साथ भी तुलसीदास अनेक स्थलो पर पदरचना करते है यथा कवितावली म **बूडत जहाज बचेउ पथिक समाज मानों आजु जाये जानि सब अकमाल देत हैं। अगद मयद नल नील बलसील महा बालधी फिराव मुख नाना गति लेत हैं।** बूडत रूप विशेषण है देत क्रिया है। देत और लेत दोनो के साथ समापिका क्रिया लगी है। **फिराव** तिङन्त रूप भी है। फिरावै के साथ समापिका क्रिया लगा दी जाय तो ब्रज भाषा और खडी बोली के बोलचाल वाले क्रियारूप मिल जाएँगे जहा तिङन्त रूप कृदन्त के समान प्रयुक्त होता है। **विनयपत्रिका** म लिखा है **जानि पहिचानि म बिसारे हौं कृपानिधान एतो मानि ढीठ हौं उलटि देत खोरि हौं। गाडो के स्वान की नाई माया मोह की बडाई छिनहि तजत छिन भजत बहोरि हौं।** उत्तम पुरुष एकवचन रूप **उलटि दत हौं,** भजत हौं के आधुनिक हिन्दी रूप होंगे **उलट देता हूँ, भजता हूँ।** हौं और हूँ का एसा ही सम्बन्ध है। हौं यहा सवनाम नही है, यह **मै बिसारे हौ** से स्पष्ट है। आकारान्त कृदन्त रूप बागरू, पजाबी मानक हिन्दी की विशेषता है। त प्रत्यय वाले कृदन्त रूप का व्यवहार समापिका क्रिया के साथ तुलसीदास के समय मे खूब होन लगा था।

विनयपत्रिका के उक्त पद म भविष्य काल के तिङन्त रूप **निहोरिहौं, बोरिहौं** आदि हैं और इस पद के बाद ही भविष्य काल के ग वाले रूप है **रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरगी मेरी कहौं बलि बेद की न लोकु कहा कहैगो।** और इसी प्रकार **दहैगो, सहैगो रहैगो, लहैगो** रूप पद के अन्त तक चले गए है। **बिगरगी** और मानक हिन्दी के **बिगडेगी** प्रयोग म विशेष अन्तर नही है। **कहैगो** आदि आकारान्त रूप ब्रज भाषा की प्रवृत्ति के अनुसार है। मानक हिन्दी म, बागरू, पजाबी के समान, आकारान्त गा रूप होगा। **ग** कृदन्त प्रत्यय है, वह तिङन्त रूप **कहे, दहै** आदि के साथ जोडा जाता है। **कहेगा** जसा रूप तुलसीदास की ब्रज भाषा के बहुत समीप है। इसके बाद के पद म पहली पक्ति मे **साहिब उदास भए दास खास खोस होत मेरी कहा चली हौं बजाइ जाइ रह्यो हौं।** यहा **भए चली** रूप आधुनिक हिन्दी के भूतकालीन कृदन्तो के समान है। **जाइ रह्योहौं** का हिन्दी रूपान्तर होगा **जा रहा हू।** इस प्रकार ब्रज भाषा के रूप आधुनिक हिन्दी क्रियारूपो से बहुत मिलते जुलते है।

सूरसागर मे तिङन्त रूपो का व्यवहार अवधी के समान खूब होता है। कृदन्त रूप **पदमावत** या **रामचरितमानस** की अपेक्षा सूरसागर म अधिक हैं। इनम **ब** वाला कृदन्त रूप भविष्य काल के लिए प्रयुक्त नही होता, वह क्रियार्थी सज्ञा रूप म प्रयुक्त होता है। अवधी मे उसका व्यवहार कर्ता-कर्म कारको म ही होता है, ब्रज भाषा म एसा कोई बधन नहा है। **अपनो पिय ढूढनि फिरौं मोहि मिलिबे को चाव।** (नन्ददुलार वाजपेयी द्वारा सम्पादित, नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित **सूरसागर** म यहाँ पक्तियाँ उद्धृत की जा रही है, पृष्ठ ६८३)। **प्रति घटपटी दखिब चाहत अब लागे अकुलान** (पृष्ठ १३६५)। **ब** वाले कृदन्त रूप के अलावा न वाले कृदन्त रूपो का व्यवहार भी, अवधी के समान सूरदास की ब्रज भाषा म होता है। पद की प्रथम पक्ति म नयना

है और अशत देशी भाषाओं का। अन्य देशी भाषाओं से अवधी के तत्व उसमें अधिक हैं। कारक रचना की अपेक्षा क्रियापद रचना में अपभ्रंश अपनी संश्लिष्ट प्रकृति का परिचय अधिक देती है। विश्लिष्ट तंत्र का प्रभाव कारक रचना पर अधिक दिखाई देता है। यही बात जायसी और तुलसीदास की अवधी पर लागू होती है। इस अवधी में भाषा के बहुत से पुराने रूप हैं किन्तु उस समय एक व्यापक साहित्यिक भाषा का प्रसार हो रहा है जिसमें अनेक जनपदीय भाषाओं के तत्व हैं अतः सभी रूपों को अवधी के पुराने रूप न मान लेना चाहिए। क्रिया के कर्मवाच्य प्रयोग विशेष रूप में पश्चिमी भाषाओं के प्रभाव के कारण साहित्यिक अवधी में आये हैं बोलचाल की अवधी अब भी उनसे मुक्त है।

कोसल की जनपदीय भाषा उत्तर भारत में लगभग डेढ़ हजार साल तक सम्पर्क भाषा रही है। गौतम बुद्ध और श्रावस्ती के वैभवकाल में लेकर बारहवीं सदी में गाहड़वाल और दामोदर पंडित के समय तक अवधी (अथवा प्राचीन कोसली) यह भूमिका निबाहती रही थी। संस्कृत पालि प्राकृत का व्यवहार इस अवधी की अपेक्षा बहुत सीमित था ग्रंथ रचना में उनकी प्रधानता थी बोलचाल के स्तर पर अवधी का व्यवहार होता था। पुरानी अवधी के व्यापक व्यवहार का ही यह परिणाम था कि उसके रूप सुदूर पूरब और पश्चिम की भाषाओं में मिलते हैं उसके रूप खड़ी बोली और ब्रज भाषाओं में व्यापक रूप में विद्यमान हैं अवधी रूप पकड़ के बिना पकड़ना जैसी क्रियापद रचना संभव नहीं है और पाओंगे (या पावोगे) का पूर्वरूप पावहुगे है। अवधी स्वयं उत्तर पश्चिमी भाषाओं की क्रियापद-पद्धतियों से प्रभावित हुई है और अनेक तत्व उसने मागधी भाषाओं ने ग्रहण किये हैं। इन तत्वों से बघेली छत्तीसगढ़ी रूप मुक्त है। अवधी की निकटवर्ती उपभाषाओं—बुन्देलखण्डी और कनौजी—का ढाँचा अवधी का है इनके ध्वनितंत्र और रूपतंत्र पर उत्तर पश्चिमी भाषाओं का जितना प्रभाव है उतना अवधी पर नहीं है। कान्यकुब्ज साम्राज्य के विघटन के बाद सम्पर्क भाषा के रूप में अवधी की भूमिका समाप्त हुई किन्तु साहित्य में वह अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम बन कर पहली बार प्रतिष्ठित हुई। कान्यकुब्ज साम्राज्य का विघटन उत्तर भारत में सामन्ती व्यवस्था के विघटन का भी एक लक्षण था इस साम्राज्य का विघटन संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश के आधिपत्य का विघटन भी था। विघटन के साथ नव निर्माण की प्रक्रिया जारी थी। आधुनिक हिन्दी के अभ्युदय और प्रसार की परिस्थितियाँ तैयार हो रही थीं। आधुनिक हिन्दी की रूप निर्माण प्रक्रिया में ब्रजभाषा का योगदान महत्वपूर्ण था।

५ ब्रज

सूरदास की ब्रजभाषा और बाजार की आधुनिक ब्रजभाषा को देखने से ऐसा लगता है कि रूप अवधी और खड़ी बोली भाषा के बीच है और उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है विशेष रूप से क्रियापद रचना में उसे अवधी के रूपों से

चिह्न है, वहाँ बाँगरू का प्रभाव है, वर्तमान काल के तिङन्तरूप अवधी से आए हैं। कृदन्तों का व्यवहार उत्तरकालीन संस्कृत में अधिकाधिक होने लगा था और इनके प्रसार का मुख्य केन्द्र कुरु जनपद था जैसे तिङन्त रूपों का मुख्य केन्द्र कोसल जनपद था। कोसल और कुरु जनपदों के बीच में स्थित होने से ब्रजभाषा का दोनों ओर से अनेक तत्व ग्रहण करना स्वाभाविक था पर उसने अपनी मध्य स्थिति के कारण दोनों ओर की भाषाओं को प्रभावित भी किया है। पुरानी उर्दू समेत आधुनिक हिन्दी का विकास ब्रजभाषा के प्रभाव को ध्यान में रखे बिना समझ में नहीं आ सकता।

कोसल के पूर्व में भोजपुरी, मगही, मैथिली, बँगला, असमिया और उड़िया का एक मागधी भाषा समुदाय है, वैसे ही कोसल के पश्चिम में ब्रज, राजस्थान, गुजरात और सिन्धी का एक शूरसेनी भाषा-समुदाय है, और कोसल के उत्तर में हरियाणा, पंजाब, जम्मू और हिमाचल प्रदेश की भाषाओं का एक कौरवी समुदाय है। मगही और मैथिली में महत्वपूर्ण भेद है वैसे ही ब्रजभाषा और राजस्थानी में महत्वपूर्ण भेद है, बाँगरू और पंजाबी में भेद है। पूर्वी बंगाल की बँगला पश्चिमी बंगाल की बँगला की अपेक्षा, अवधी से अधिक दूर है, वैसे ही राजस्थानी की अपेक्षा सिन्धी ब्रजभाषा से अधिक दूर है और पूर्वी पंजाब की भाषा की अपेक्षा पश्चिमी पंजाब की भाषा बाँगरू से अधिक दूर है। बाँगरू का क्षेत्र आधुनिक हिन्दी का आधार क्षेत्र है, यह बात पंजाबी के बारे में नहीं कही जा सकती। ब्रजभाषा और अवधी का जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध है वैसा सम्बन्ध गुजराती और अवधी का नहीं है। बँगला का क्षेत्र अलग बन गया है, मगही, मैथिली और भोजपुरी के क्षेत्र साहित्यिक हिन्दी के प्रधान क्षेत्र रहे हैं। हिन्दी प्रदेश की जनपदीय भाषाओं को एक दूसरे के निकट लाने में, अवधी के बाद, ब्रजभाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, और इन दोनों के सहयोग से बाँगरू ने, आधुनिक हिन्दी के रूप में एक व्यापक जातीय भाषा की भूमिका निबाही है। वास्तविक या कल्पित अपभ्रंशों से ब्रज या भोजपुरी का सम्बन्ध जोड़कर हिन्दी प्रदेश के भाषायी विकास की व्याख्या नहीं की जा सकती। उसके लिए जनपदीय भाषाओं के विकासमान पारस्परिक सम्बन्धों को ध्यान में रखना होगा।

ब्रजभाषा की, अवधी और बाँगरू से भिन्न, राजस्थानी गुजराती से मिलाने वाली एक प्रवृत्ति बहुत स्पष्ट है वह है ओकारान्त रूपों का व्यवहार। बाँगरू में जहाँ आकारान्त रूप है, वहाँ बहुधा ब्रज भाषा में ओकारान्त रूप होते हैं जैसे **गया** और **गयो**, **मेरा** और **मेरो**। विद्वानों का कहना है कि संस्कृत में जहाँ विसर्ग होते थे, वहाँ ब्रज भाषा में ओकार हुआ, गतः से गयो रूप बना। इण्डोयूरोपियन भाषा परिवार के संदर्भ में इस प्रवृत्ति को देखें तो विदित होगा कि भारत के बाहर एक भाषा और है जिसमें यही प्रवृत्ति है। लैटिन से इतालवी भाषा का वैसा ही सम्बन्ध है जैसा ब्रज भाषा का संस्कृत से है। इतालवी भाषा में ओकारान्त रूप ब्रजभाषा से कुछ अधिक ही हैं। लैटिन के जिन शब्दों के अन्त में स है, वहाँ स को विसर्गों का प्रतिरूप मानकर कहा जा सकता है कि उस ध्वनि के कारण इतालवी रूप ओकारान्त हुए हैं। किंतु लैटिन में

ऐसे शब्द भी हैं जिनके अन्त में म है और उनके इतालवी रूप ओकारान्त हैं। इनके अतिरिक्त लैटिन के कुछ उकारान्त रूप हैं जिनके इतालवी प्रतिरूप ओकारान्त हैं। जैसे काशी से लेकर ढाका तक संस्कृत के अकार का उच्चारण गोलाकार होता है और यह प्रवृत्ति भारत के बाहर भी है, वैसे ही व्रजभाषा के ओकारान्त रूपों में झलकने वाली प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन है और भारत से बाहर भी है। इतालवी के रूपों को लैटिन से व्युत्पन्न सिद्ध करना कठिन है, वैसे ही मेरो को मम से व्युत्पन्न सिद्ध करना कठिन है। लैटिन और इतालवी भाषाओं के कुछ प्रतिरूप उदाहरण रूप में लेना प्रासंगिक होगा। संज्ञा, सर्वनाम विशेषण, सभी वर्गों के शब्दों में ऐसे ओकारान्त शब्द हैं। पहले लैटिन रूप देते हैं, उसके बाद इतालवी प्रतिरूप: अमिकुस (मित्र)—अमिको, असिनुस (गधा)—असिनो, अर्मेतुम (गोरु)—अर्मेतो, अर्गेंतुम (चाँदी)—अर्जेंतो, अन्तिकुउस (प्राचीन)—अंतिको, अमारुस (कटु)—अमारो, मेई (मेरा)—मिओ, तुई (तेरा)—तुओ, सुई (उसका)—सुओ। ध्वनि परिवर्तन के किसी नियम के अन्तर्गत इतालवी के रूपों को लैटिन के आधार पर सिद्ध करना असम्भव है साथ ही दोनों भाषाओं के रूप मूलतः एक हैं इसमें भी सन्देह नहीं। इस भेद-अभेद की स्थिति का कारण यह है कि जिस बोली के आधार पर लैटिन का विकास हुआ, उसके समानान्तर ओकारान्त प्रवृत्ति वाली दूसरी बोली भी थी जिसके आधार पर इतालवी का विकास हुआ और इन दोनों प्राचीन बोलियों में निकट सम्पर्क के कारण शब्द भण्डार में बड़ी समानता थी। संस्कृत में गत आदि रूप मूलतः, व्रजभाषा या इतालवी के समान, ओकारान्त नहीं होते। तब समझने की बात यह है कि संस्कृत में जहाँ गत बदल कर गतो होता है वहाँ वह किसी ऐसी भाषा के प्रभाव में होता है जिसमें ओकारान्त शब्दों के व्यवहार की प्रवृत्ति विद्यमान है। वहुत और बोल के उदाहरण पर ध्यान दें तो गतो रूप मागधी प्रभाव से उत्पन्न विदित होगा। किन्तु मागधी भाषाओं में ऐसे ओकारान्त रूप नहीं होते जैसे व्रजभाषा में होते हैं। मेरो के समानान्तर बँगला में आमार होगा अवधी हमार के समान। इसलिए व्रजभाषा के ओकारान्त रूपों का विकास मागधी प्रभाव से स्वतन्त्र मानना चाहिए, वैसे ही जैसे अवधी के उकारान्त रूपों का विकास स्वतन्त्र हुआ है। जिस जनपद में वृष्णि, अंधक नाम से प्रसिद्ध गणसमाज पहले रहते थे, उसमें ओकारान्त रूपों का व्यवहार होता था, यह तर्कसंगत निष्कर्ष है। यह प्रवृत्ति व्रजभाषा तथा अन्य पश्चिमी भारतीय भाषाओं में अब तक विद्यमान है।

राजस्थानी गुजराती आदि में मूर्धन्य नासिक्य का व्यवहार बहुत होता है जैसे बांगरू और पंजाबी में। राजस्थानी-गुजराती से व्रजभाषा का गहरा सम्बन्ध है किन्तु व्रजभाषा में ण ध्वनि का नितान्त अभाव है, न वह साहित्यिक व्रजभाषा में है न आज की बोलचाल की व्रजभाषा में। जो लोग शूरसेनी अपभ्रंश से व्रजभाषा को उत्पन्न मानते हैं वे इस बात की व्याख्या नहीं देते कि इस अपभ्रंश में ण की भरमार है पर व्रजभाषा से उसका सफाया कैसे हो गया। अपभ्रंश को पुरानी राजस्थानी और गुजराती मानने वाले विद्वान् भी अनेक हैं। अपभ्रंश का ण राजस्थानी और गुजराती में

ही नही, बाँगरू और पजाबी मे भी है, इसका कारण क्या है? जिन्हे हम शूरसेनी समुदाय और कौरवी समुदाय कह चुके है उन दोनो मे मूर्धन्य नासिक्य का व्यवहार एक सामान्य प्रवृत्ति है। इनसे भिन्न वामनी और मागधी समुदायो की भाषाएँ दन्त्य या वर्त्स्य नासिक्य का व्यवहार ही करती है। केवल उडिया मे ण का सीमित व्यवहार होता है। शूरसेन जनपद की प्राचीन भाषा मे, गणसमाजो के युग की भाषा मे, ण का व्यवहार होता था या नही ? मेरा अनुमान है कि होता था। व्रजभाषा से उसका लोप वैसे ही हुआ है जैसे मगही से श का। यह श मगध से हटकर बङ्गाल मे सुरक्षित है वैसे ही ण ब्रज से हटकर राजस्थान और गुजरात मे सुरक्षित है। इण्डोयूरोपियन परिवार की भाषाओ से यहा भी एक उदाहरण दिया जा सकता है। नार्वे और स्वीडन की भाषाएँ जर्मन समुदाय के अन्तर्गत है। इन भाषाओ मे ण का व्यवहार होता है किन्तु जर्मन मे नही होता। नार्वे और स्वीडन के कुछ जनसमुदाय पहले उत्तर इगलैंड मे आ बसे थे। इसका परिणाम यह है कि नार्थम्बरलैंड की भाषा मे—यानी अग्रेजी के उत्तरी रूप मे—ण का व्यवहार अब भी होता है पर जर्मन की तरह अग्रेजी मे उसका व्यवहार नही होता। व्रज प्रदेश के पडोस मे कोसल है। अवधी और व्रजभाषा के त्रियारूपो का अध्ययन करने से विदित होता है कि इन दोनो भाषाओ मे बडी गहरी व्याकरणगत समानता है, इसलिए दोनो मे ध्वनिगत समानता भी हो तो आश्चर्य न होना चाहिए। एक ओर ओकारान्त रूप व्रजभाषा को अवधी से अलग करते हैं दूसरी ओर ण के स्थान पर न का व्यवहार उसे अवधी से जोडता है। इस सन्दर्भ मे व्रजभाषा, बागरू की अपेक्षा, अवधी के अधिक समीप है।

अवधी मे मूर्धन्य और तालव्य सकारो का अभाव है। संस्कृत से तद्भव रूप बनाते हुए व्रजभाषा श को स मे बदल देती है। व्रजभाषा को भाखा भी कहा जाता था। ष का ख मे बदलना मागधी प्रभाव के कारण है। मगही और मैथिली मे एक भेद ह और छ वाली समापिका त्रिया के रूपो को लेकर है। मगही ह रूपवाले क्षेत्र मे है और मैथिली छ वाले क्षेत्र मे। उसमे मिलता जुलता भेद राजस्थानी और व्रजभाषा मे है। व्रजभाषा मे छ त्रिया का व्यवहार नही होता किन्तु राजस्थानी गुजराती मे उसका चलन खूब है। पडोस मे है के अलावा बाँगरू का स रूप भी प्रचलित है किन्तु व्रजभाषा ने ह वाला रूप ही लिया है। मेरी समझ मे इसका कारण भी अवधी का प्रभाव है। एक दूसरा उदाहरण ब ध्वनि का लिया जा सकता है। पुरानी साहित्यिक व्रजभाषा और आधुनिक बोलचाल की व्रजभाषा दोनो मे ब की भरमार है। व्रजप्रदेश की पुरानी गण भाषाओ मे ण के समान व का व्यवहार भी होता रहा होगा इस कारण गुजराती और राजस्थानी मे इसका व्यवहार अब भी होता है। किन्तु व्रजभाषा सर्वत्र संस्कृत शब्दो या पडोसी आर्यभाषाओ के शब्दो मे जहा व हो, वहा उसे ब मे नहीं बदलती। जिस व्रजभाषा कहते है वह व्यवहारगत अनेक बोलियो का समुदाय है। हिन्दी वह का प्रतिरूप कई जगह ग्वू बोला जाता है। यह अवश्य ही उस भाषा की प्रवृत्ति है जिसमे कवर्गीय ध्वनियाँ प्रमुख थी। व का सीधा उच्चारण कठिन होने से उसके पहले सघोष कण्ठ्य ध्वनि जोड

दी गई। इसी प्रकार वह का एक प्रतिरूप ब्वा भी है। एक लोक कथा मे इस तरह क प्रयोग हैं अब नट ब्वा डोरा क् पकरि क ऊपर चढि गयौ (ब्रज की लोक कहानियाँ, पृष्ठ ३३), आप ब्वाइ राखि कै कहा करौगे, ब्वाई बखत अपनौ चोला छोडि क राजा के चोला मे जाइ घुस्यौ (उप०, पृष्ठ ३८), ब्वा साहूकार पै बुरौ समैयौ आइगौ (उप० पृष्ठ १५८)। इस तरह के प्रयोग उन पुरानी भाषाओ की प्रवृत्ति के कारण हैं जिनम कण्ठ्य की अपेक्षा ओष्ठ्य ध्वनियो का व्यवहार अधिक होता था। बँगला स ब्रजभाषा की भिन्नता ध्यान म रखनी चाहिए। शब्द का आदि स्थान छोडकर ब्रजभाषा म व और य ध्वनियो का व्यवहार होता है।

राजस्थानी, पंजाबी और बागरू मे ल् के अतिरिक्त मूर्धन्य पार्श्विक ध्वनि ळ का व्यवहार भी होता है। यह ध्वनि मराठी तथा द्रविड भाषाओ मे भी है। जैसे बाँगरू का एक शब्द काळा। यह हिंदी मे काला बोला जाएगा। सम्भव है, शूरसेन जनपद की पुरानी भाषा मे यह ध्वनि भी रही हो। प्रसिद्ध है कि उत्तर-पश्चिमी भाषाएँ लकार प्रधान रही हैं पर ब्रजभाषा, अवधी के समान, र ध्वनि का व्यवहार अधिक करती है। काळा तो दूर, काला भी ब्रजभाषा म नहीं चलता, कारो रूप ही स्वीकृत है।

मेरा, मेरौ, मोर—इन तीनो रूपो मे एक अन्तर यह है कि ब्रज मेरौ, बागरू मेरा मे अन्तिम स्वर दीर्घ हैं, अवधी मोर का अन्तिम स्वर ह्रस्व है। सूरदास की ब्रजभाषा मे, तथा आधुनिक ब्रजभाषा म भी, कुछ सर्वनाम, विशेषण और कृदन्त ऐसे हैं जिनका अन्तिम स्वर दीर्घ है, पर उनके अवधी प्रतिरूप का अन्तिम स्वर ह्रस्व होगा। सूरसागर म जो रूप आए हैं, उनमे से कुछ उदाहरण के लिए दिए जाते हैं। तेरे, तिहारे, हमारे सर्वनाम रूपो के अवधी रूप तोर, हमार, तिहार होगे, तेरा, हमारा, तुम्हारा आदि हिन्दी रूप आकारान्त हैं। आँधरो जैसा विशेषण अवधी म आँधर होगा। ऐसो विशेषण अवधी म अइस होगा। जातौ—जात, दयौ—दीन्ह, दीन्हेसि, बुढानौ—बुढान, बुढानि, हिरानौ—हैरान, हिरानि, ठाढौ—ठाढ, यहाँ दोनो भाषाओ के ध्वनितत्र का भेद देखा जा सकता है। अन्तिम स्वर ओ हो चाहे ई, अवधी रूपो म वह ह्रस्व दिखाई देता है। गई रूप गइ बोला जाएगा और यही अब अवधी का स्त्रीलिंग कृदन्त रूप है। इसी प्रकार भई के समानान्तर अवधी के भइ और भै रूप हैं। ब्रज और बाँगरू दीर्घ स्वरो की सामान्य प्रवृत्ति प्रदर्शित करती हैं। वर्तमानकालीन कृदन्त देत ब्रजभाषा म, अवधी के ही समान, ह्रस्व स्वरान्त है हिन्दी मे देता रूप होगा। ब्रजभाषा ने बाँगरू और अवधी, दोनो के ध्वनितत्र की विशेषताएँ ग्रहण की हैं।

बाँगरू और ब्रजभाषा म एक महत्त्वपूर्ण भेद निष्ठा और कृदन्त प्रयोगो का है। बोलचाल की बाँगरू म निष्ठा प्रयोगो की भरमार है, विशेषत वर्तमानकाल के रूपो म, किन्तु बोलचाल की ब्रजभाषा म इनका अनुपात कम है। ब्रज की लोक कहानियों म निष्ठा रूपो के ऐसे उदाहरण हैं "सो यु गूव दूध पीव' (पृष्ठ ३), 'तेरे ब्वा मोड़ कटूई नाय दीन' (पृष्ठ १०)। इसके विपरीत कृदन्त रूप बहुत हैं। "बहू आदमी के समार बढ़कर बढ़ि गवरय' (पृष्ठ १० अधार बढ़ गया है), "पास कहा बाने जो

बाहर जातो" (पष्ठ १३, जाते हो) "तोप जो कछू होइ सो धरिद मई तौ तोइ मारतिऊँ' (पष्ठ ५६, मारती हूँ), "एक अस्सी कोस जातिऐ और एक साठ कोस जातिऐ" (पष्ठ ५८, जाती है), "जाते हम पल्ली पारि पहुचिवो चाहतएँ" (पष्ठ १०५, चाहते हैं) 'अब राज के बेटा ने पूछी क यार अब मैं पूछे बिना नाउ मान सकतु" (पष्ठ १३९ मान सकता हूँ।) डा० सत्येन्द्र द्वारा सम्पादित ब्रज की लोक कहानियाँ पुस्तक मे अनेक स्थानो से लोक कथाएँ लेकर सग्रहीत की गई है। इससे कृदत प्रयोगों की व्यापकता का पता चलेगा। अवधी मे वतमानकाल के रूपा मे सवन अब त प्रत्यय वाले कृदन्ता का व्यवहार होता है यद्यपि जायसी और तुलसीदास की भाषा म ऐसे रूपो का अनुपात कम है। यदि स्वय तुलसीदास की ब्रजभाषा की तुलना उनकी अवधी से की जाए तो विदित होगा कि अवधी की अपक्षा उनकी ब्रजभाषा मे कृदत प्रयोगा की बहुलता है। इससे यह निष्कष निकलता है कि कृदत रूपा के व्यवहार का एक प्रसार केन्द्र ब्रज क्षेत्र था। यह बात तब और पुष्ट होती है जब हम बागरू के वतमानकालिक क्रियारूप देखते हैं।

डा० जगदेवसिंह ने ए डिस्क्रिप्टिव ग्रामर आफ बाँगरू नाम से बागरू का जो व्याकरण लिखा है, उसम इम तरह के उदाहरण मिलते हैं बाळक खेल्हैं स—बालक खेलते है, खूब जाणू सू—खूब जानता हूँ, राम पडढ स—राम पढता है, जाऊ जाऊ कह्‌दा रहै स—जाऊँ जाऊँ कहता रहता है (कृदत विशेषण रूप मे है नियारूप मे नही), घोडा करडा भाज स—घोडा तज भागता है, राम बठ्या बठ्या दूध पीव स—राम बैठा ब ठा दूध पीता है, मन्न तिरणा आव स—मुझे तैरना आता है, कोए आया दिख—कोई आया दिखता है। जहा नकारात्मक वाक्य रचना होती है वहा कृदत रूप का व्यवहार होता है यथा राम न्हाइ कर्दा—राम नही करता है। भूतकालीन रूपो म भी बाँगरू कृदत के बिना काम चलाती है। राम घरा जा था— राम घर जाता था, चाह्वै था—चाहता था, मर्यामर्या करै था—मरा मरा करता था। था गा, स तीना के साथ तीना कालो मे तिङन्त रूपा का व्यवहार हो सकता है काटू सू, काट था, काटूगा। मानक हिन्दी मे अब काटूगा रूप ही स्वीकृत है। काटू सू और काटू था की जगह कृदत वाले रूप काटता हूँ, काटता था चलत हैं। 'कुत्ता सबनि के लत्तानु पकरि क खच। परि काऊ की समझ मे व्वा की बात ई न आवै।" (ब्रज की लोक कहानियाँ, पष्ठ ५६)। यहाँ खेच, आव भूतकाल का बोध कराते है। इनके बारे म कहा जा सकता है कि य वास्तव म वतमानकाल के रूप हैं और भूतकाल के लिए उनका प्रयोग हुआ है। कृदन्त रूप, बाँगरू की अपेक्षा ब्रजभाषा म, अतीतकाल के लिए अधिक प्रयुक्त होत हैं। वु नित्त दान पुन्न कियो करत्वो (पष्ठ ९ करता था), वे जमुना जी की उल्लो पारि एक भांटि मे रह्यो करतए (पृष्ठ १०८, रहा करते थे), परि व्वा कौ मनु नाओ लगतु व्वा सहर मे एकु साहूकार रह्यौ करतो, साहूकार जब जाइक व्वा मे डुबकी लगामो करतुओ तौ व्वा के हायन मे हीरा, पन्ना, जवाहिरात आइ जायौ करतऐ (पष्ठ ५५, लगता था, करता था, करते थे)। भविष्यकाल मे ग चिन्ह ही, कृदन्त प्रत्यय के समान, बदलता है,

मूल क्रिया ब्रज और बागरू, दोनों में तिङन्त रहती है और यह तिङन्त रूप वर्तमानकाल का है। जाहि अर्थात् जाता है जाहि से जाइ, और जाय रूप बने और ग जोड़ने पर जायगा, जायगी क्रिया रूप निर्मित हुए। जाता है, जाती है रूपों में वर्तमानकालिक कृदन्त लिङ्गभेद सूचित करता है, पुरुषभेद नहीं। मैं जाता हूँ, तू जाता है, यहाँ पुरुषभेद होने से जाता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। किन्तु मैं जाऊंगा, यहाँ जाय से काम न चलेगा। तिङन्त रूप है, पुरुषभेद सूचित करेगा।

क्रियार्थी संज्ञा के लिए ब्रजभाषा में ब वाले पूर्वी रूप प्रयुक्त होते हैं किन्तु इनकी पैठ बागरू क्षेत्र में नहीं हुई। यहाँ न वाले रूप का चलन है। ग्रांह कहण लाग्या—वह यह कहने लगा, ग्राज पडढण लागूगा—आज पढने लगूगा। ध्यान देने की बात है कि आधुनिक हिन्दी में कहना, पढना आदि क्रियार्थी संज्ञा रूपों में दीर्घ स्वर होता है किन्तु बांगरू में अवधी का पुराना रूप कहन, पढन ही ह्रस्व स्वर के साथ प्रचलित है। केवल नासिक्य ध्वनि मूर्धन्य हो गई है। संयुक्त क्रियाओं में कृदन्त रूप का व्यवहार होता है। सुणदे ग्राए—सुनते आए, जागदा रह्या—जागता रहा। बागरू में त के स्थान पर द का व्यवहार पंजाबी की उस प्रवृत्ति के कारण है जो दो स्वरों के बीच के अघोष स्पर्श व्यंजन को सघोष करती है। रह्या रूप राजस्थानी की याद दिलाता है। बाँगरू में मर्या, मर्या, कर्या आदि के साथ हुया रूप भी है। मानक हिन्दी में य विहीन रूपों का चलन है। बूझण लाग्या, कहण लाग्या—ये रूप बूझने लगा, कहने लगा, इस प्रकार स्वीकृत हुए हैं।

पुरानी ब्रजभाषा में मैंने, तूने जैसे प्रयोग नहीं मिलते किन्तु आधुनिक ब्रजभाषा में इनका व्यवहार होता है। आश्चर्य की बात यह है कि ने चिह्न का व्यवहार कम कारकों में शुरू होता है। मैंने इन हातन ते कबऊ काऊ को बुरो न कीयो (ब्रज की लोक कहानियाँ, पृष्ठ ३०), कमदेव न ऊ एक हात जोरि दीयो (उप०, पृष्ठ २१)। यहाँ मानक हिन्दी के समान कर्ता कारक के लिए ने चिह्न का व्यवहार हुआ है किन्तु कम कारक में भी इसका व्यवहार स्वच्छन्दतापूर्वक होता है मैं राजा नें सात तारे भीतर मूंदि राखो है (उप० पृष्ठ ३४) नट चारि बार बतावें तौ नौकर कान लगाइक धारयो बाता नें सीखि लेय (उप०, पृष्ठ ३८), ब्या नें विराहू मनी ते कही कै न होय तौ इन छोरान नें कहूँ पढ़िबे करि ग्राऊं (उप०, पृष्ठ ८०), मैं याने गेरयो, सो राजा के हाली हमानौ ने मालूम भई (उप०, पृष्ठ ६७)। अंतिम उदाहरण में ने चिह्न का व्यवहार सम्प्रदान कारक के लिए हुआ है। जब मानक हिन्दी में को चिह्न का व्यवहार कर्म और सम्प्रदान दोनों कारकों के लिए होता है, तब भी यहाँ ने का व्यवहार हुआ है। इस लिए का वाद विशेष सम्बन्ध कारण कारक में नहीं है। सम्बन्धक शब्दों के आधार पर जो प्रत्यय विकसित होते हैं वे एक से अधिक कारकों के साथ प्रयुक्त होने लगे जाते हैं, यही स्थिति इस ने चिह्न की है। अवधी में इसका प्रयोग नहीं है, ब्रज और बाँगरू का यह सामान्य चिह्न है।

६ कुरु जनपद

हिंदी के लिए प्रसिद्ध है कि यह दिल्ली और मेरठ की भाषा है। ये दोनों शहर कुरु जनपद में हैं और इस जनपद की भाषा का दूसरा नाम बांगरू है। बांगरू वर्तमान हरियाणा राज्य के गाँवों में ही नहीं बोली जाती, वरन् उत्तर प्रदेश के कुछ उत्तरी भागों और दिल्ली के आसपास के गाँवों में भी बोली जाती है। दिल्ली, मेरठ और हरियाणा के नगरों में शिष्ट जनों की भाषा हिंदी है और यह हिंदी बांगरू से भिन्न है। बांगरू एक जनपद की भाषा है, हिंदी पटना, उज्जैन और दिल्ली के विशाल त्रिकोण में बसने वाली जाति की भाषा है। जातीय भाषा का विकास वैसे ही नहीं होता जैसे किसी जनपदीय भाषा का होता है, कोई जनपदीय भाषा ज्यों की त्यों जातीय भाषा बन जाए, ऐसा नहीं होता। किसी जनपदीय भाषा को मुख्य आधार बनाकर कोई जातीय भाषा विकसित होती है किंतु उसमें अन्य जनपदों से भाषा तत्व आकर घुलमिल जाते हैं और आधार भाषा के रूप को काफी बदल देते हैं। इस तरह की प्रक्रिया हर जातीय भाषा के साथ घटित होती है। कलकत्ते की मानक बँगला या पुणे की मानक मराठी किसी जनपद में वहाँ की ग्रामीण भाषा के रूप में नहीं बोली जाती। न अब मानक अंग्रेजी ब्रिटन के किसी जनपद की ग्रामीण बोली है। यह प्रक्रिया न समझकर कुछ लोग हिंदी को कृत्रिम भाषा कहते हैं। यदि हिंदी कृत्रिम है तो संसार की जितनी जातीय भाषाएँ हैं वे सब कृत्रिम हैं। देहाती बोलियों से सम्पर्क, फिर भी उनसे अलगाव, जातीय भाषा की यह द्वंद्वात्मक विशेषता है। देहाती बोलियों से तत्व लिए बिना यह भाषा विकसित नहीं हो सकती और किसी एक ही बोली से वह सम्पर्क बनाए रखे तो अनेक जनपदों में उसका प्रसार नहीं हो सकता। इसका यह अर्थ नहीं है कि विभिन्न जनपद, किसी अनुपात विशेष में, अपने भाषातत्व जातीय भाषा को देते हैं, फिर सर्वसम्मति से उसे अपनी मिलीजुली भाषा मान लेते हैं। व्यापार और संस्कृति के मुख्य केन्द्र किन जनपदों में हैं, उनका आपस में और अन्य जनपदों से कैसा सम्बन्ध है, इस पर जातीय भाषा के निर्माण में जनपदों की भूमिका निर्भर है। बारहवीं सदी के बाद व्यापार के प्रमुख केन्द्र उत्तर पश्चिमी प्रदेशों में रहे इनका प्रभाव पूर्व के क्षेत्रों पर पड़ा। जितना ही विशद जातीय भाषा का क्षेत्र होता है उतना ही अधिक उसके स्थानीय रूपों की संख्या होती है। इसका कारण यह है कि एक केन्द्र से फैलने वाली जातीय भाषा को अन्य जनपद प्रभावित करते हैं। बनारस की हिन्दी आगरे की हिन्दी से भिन्न है, कारण यह कि बनारस की हिन्दी भोजपुरी से प्रभावित है और आगरे की हिन्दी ब्रजभाषा से। इसी तरह इस समय की दिल्ली की भाषा पंजाबी से प्रभावित है और इलाहाबाद की हिन्दी अवधी से प्रभावित है। जब यह जातीय भाषा अन्य जातीय क्षेत्रों में पहुँचती है तो वहाँ की जातीय भाषाओं का प्रभाव ग्रहण करती है और अपने स्थानीय रूप बनाती है। इस तरह कलकत्ते की हिन्दी और बम्बई की हिन्दी का अपना अलग अलग रूप है। और जब कलकत्ता बम्बई बड़े शहर न बने थे, तब हैदराबाद की हिन्दी का अपना दक्खिनी रूप निराला

था। यहाँ बोलचाल के स्तर पर जो भाषा व्यवहार में आती है, उसकी चर्चा है। भाषा के लिखित रूप में जैसी समानता देखी जाती है, वैसी बोलचाल के स्तर पर भाषा में नहीं होती। नाटकों, उपन्यासों आदि में कभी कभी लेखक इन रूपों का व्यवहार करते हैं।

हिन्दी कुरु जनपद की बाँगरू भाषा से भिन्न है, हिन्दी के विकास का विवेचन करते हुए यह तथ्य सदा ध्यान में रखना चाहिए। इसे ध्यान में न रखने पर भाषाविज्ञानी अपभ्रंश से सीधे आधुनिक भाषाओं की मंजिल में पहुँच जाता है। हिन्दी के अतिरिक्त जिन लोगों ने बँगला आदि के विकास पर ग्रन्थ लिखे हैं, उन्होंने आधुनिक बँगला के विकास की मंजिल को बंगाल के विभिन्न जनपदों की भाषाओं के विकास की मंजिल से अलग नहीं रक्खा। पर दोनों मंजिलों में लम्बा फासला है। जनपदीय भाषाओं के उद्भव की मंजिल जातीय भाषाओं के उद्भव की मंजिल हो ही नहीं सकती। जब हम आधुनिक भाषाओं की बात करते हैं, तब सामान्यतः आशय जातीय भाषाओं से होता है और इनका विकास भी शताब्दियों तक चलता है। भारत में वैदिककाल गणसमाजों का युग है और वह उस युग का अन्तिम चरण है। जिस समय संस्कृत, पालि और प्राकृत साहित्य और धर्म तथा विभिन्न सामाजिक कार्यों का माध्यम बनी हुई हैं, उस समय गणसमाज विघटित हो रहे हैं, रक्त सम्बन्ध के बदले वर्णाश्रम धर्म द्वारा व्यंजित नये श्रम विभाजन के आधार पर नये जनपद संगठित हो रहे हैं। जिस समय अपभ्रंश साहित्य का माध्यम बनती है, उस समय जनपदीय भाषाएँ अपने विकास के अन्तिम चरण में पहुँच रही हैं। बारहवीं सदी के बाद, अपभ्रंश से भिन्न, जनपदीय भाषाएँ साहित्य में भी प्रतिष्ठित होने लगती हैं। यह जातीय भाषाओं के निर्माण का प्रथम चरण भी है। यद्यपि साहित्य में जनपदीय भाषाओं का व्यवहार होता है किन्तु ये भाषाएँ जनपदों तक सीमित नहीं रहतीं, अन्य जनपदों से भाषा-तत्व लेती हैं, वहाँ की भाषाओं को प्रभावित करती हैं। यही कारण है कि रामचरितमानस की भाषा में जनपदीय भाषा अवधी आधारभूत है किन्तु उसमें अन्य भाषाओं के तत्व आकर मिल गए हैं, केवल शब्द नहीं, रूपात्मक विशेषताएँ आकर मिल गई हैं। रामचरितमानस अवध के बाहर पढ़ा और समझा जाता था और तुलसीदास ने अवधी के अलावा ब्रजभाषा में भी काव्य लिखा। जातीय निर्माण की प्रक्रिया के लिए यह सब महत्वपूर्ण कार्यवाही थी।

जिस बोली के आधार पर मानक हिन्दी का विकास हुआ है, वह कुरु जनपद की बाँगरू भाषा है। कुरु जनपद अपेक्षाकृत छोटा था, वर्तमान बाँगरू के क्षेत्र में हरियाना के अलावा दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश का काफी उत्तर पश्चिमी भाग आ जाता है। मानक हिन्दी में और बाँगरू में काफी अन्तर है। इस अन्तर के कारण लोगों का यह कल्पना करना अस्वाभाविक नहीं है कि हिन्दी का आधार बाँगरू के अलावा और कोई बोली रही होगी। अनेक उर्दू के विद्वान् यह समझते रहे हैं कि दिल्ली की कोई अपनी बोली थी और उसी ने उर्दू का रूप धारण किया। पन्द्रहवीं सदी की दिल्ली एक छोटा-सा शहर थी और उसकी भाषा आसपास के गाँवों की भाषा से बहुत भिन्न न हो सकती थी। प्रत्येक भाषा के समान बाँगरू भी अनेक बोलियों का समुदाय है, पर ये सब

बोलियाँ एक दूसरे से मिलती जुलती हैं और उन्हें बाँगरू की संज्ञा दी जा सकती है। बाँगरू क्षेत्र की कोई ऐसी बोली नहीं है जिसे ज्यों का त्यों मानक हिन्दी का रूप माना जाए। इसलिए कुछ लोग हिन्दी को कृत्रिम भाषा भी मानते हैं। यह उदारता उन्हें उर्दू के प्रति भी दिखानी चाहिए क्योंकि बोलचाल की हिन्दी बागरू से जितना भिन्न है, उतना ही उर्दू भी है।

बागरू ने ब्रजभाषा के प्रभाव से हिन्दी रूप धारण किया। यह हिन्दी रूप बागरू क्षेत्र के उत्तर में पंजाब में भी काम में लाया गया, इसके अलावा हिन्दी प्रदेश में तथा हिन्दी प्रदेश के बाहर यह भाषा काफी बड़े क्षेत्र में लिखने और बोलने के काम आती थी। हैदराबाद की दक्खिनी वहाँ उत्तर से ही गई है। वह केवल साहित्य का माध्यम नहीं है वरन् बोलचाल का माध्यम भी है। उसका यह बोली रूप मानक हिन्दी उर्दू से भिन्न है और बागरू से भी भिन्न है। उसमें राजस्थानी उतनी ही है जितनी बागरू के कुछ रूपों में। पर ब्रजभाषा का प्रभाव बाँगरू की अपेक्षा इस पर बहुत अधिक है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि पन्द्रहवीं सदी के आसपास ब्रज के प्रभाव से हिन्दी ऐसा रूप धारण कर रही थी जो गावों की बागरू बोली से काफी भिन्न था और मानक हिन्दी के निकट था। आगरा और दिल्ली इस ब्रज प्रभावित बागरू के दो केन्द्र थे पर यह प्रभाव शहरों तक सीमित नहीं था। कुरु जनपद में ब्रज प्रभावित भाषा में या ब्रजभाषा में ही लिखे हुए दोहे, लोकगीत आदि प्रचलित थे। डा० कृष्णचन्द्र शर्मा ने ऐसे लोक प्रचलित दोहों का एक संकलन गामेल्लाभास नाम से प्रकाशित किया है (लोकगीत प्रकाशन, मेरठ, १९७६)। इसका पहला दोहा है

गोविन्द गाढी भोर मे, मैं सुमरत हूँ तोय।
पत राखी पहलाद की, सोइ भरोसो मोय॥

यह दोहा आसानी से ब्रजभाषा का दोहा कहा जा सकता है। एक दूसरी मिसाल है

हाय दई कसी भई, अनचाहत को संग।
दीपक के भायें नहीं, जल जल मरे पतंग।

ऐसे अनेक दोहे कुरु जनपद में प्रचलित रहे हैं। कहीं कहीं अवध में किसानों में प्रचलित उक्तियाँ भी वहाँ पहुँच गई हैं। उक्त पुस्तक में यह दोहा भी है

आलस नींद किसानें नासे चोर नासे खांसी।
आँखो लोवर बेसुए नासे तिरमिर नासे पांसी।

ठेठ बाँगरू का नमूना इस प्रकार है

मैं के जाणू थी अरी, न्यु फुटटेंगे भाग।
कट के मर ग्या रेल तें, दे ग्या मर्णे दुहाग।

एक अन्य संकलन लोक जीवन के स्वर में डॉ० कृष्णचन्द्र ने जो गीत संकलित किये हैं, वे मानक हिन्दी के ही हैं थोडा बहुत ब्रज का प्रभाव है। इस संकलन (कुरु लोक संस्थान, मेरठ, १९७७) में एक गीत इस प्रकार है

दौड़ी दौड़ी समधन डोल, पहन पग मे लंडुग्रा।
होले होले जीमो बराती और परोसू लडुग्रा।
रसीले तेरे दो नना, मेरी समधन चतर सुजान।
दौडी दौडी समधन डोल, पहन हाथ मे चूडी।
धीरे-धीरे जीमो बराती और परोसू पूडी।
रसीले तेर दो नना।
दरवाजे पर दई बिलइया बारौठी पर धूस।
च यादान मे वई लोमडी जिसकी लम्बी पूछ।
रसीले तरे दो नना।
चले विदा हो ग्रब हम समधन खुस राखे भगवान।
राम कर तेरे होय लाडली हम ग्राव मेहमान।
रसील तरे दो नना।

इस सकलन म जिस भाषा के गीत है, वह अवश्य ऐसे गीतों के माध्यम से गाँवो म पहुच गई है। यदि इस भाषा को भी कोई कृत्रिम कहे तो उसे मानना चाहिए कि कुरु जनपद के लोग अपने गीतो म कृत्रिम भाषा ही पसन्द करते हैं।

बागरू की प्रमुख विशेषता उसम मूर्धन्य ध्वनियो का व्यवहार है पर इसम मूर्धन्य ष् नहीं है। इस तथ्य स पुन इस धारणा की पुष्टि होती है कि सभी मूर्धन्य ध्वनियो का विकास एक ही केन्द्र से एकसाथ नही हुआ। मूर्धन्य ध्वनियो म प्रमुख है ण। हरियाणा के एक ओर पहाडी बोलिया है जिनमे इस ध्वनि का व्यवहार होता है। उत्तर म पजाब और पश्चिम म राजस्थान ह। ण ध्वनि पश्चिम म गुजरात, महाराष्ट्र और सिंध तक है किन्तु सिन्धु नदी के पार इरानी क्षेत्र मे नही है। उत्तर म पजाब में है किन्तु कश्मीर म नही है। इस प्रकार ण् ध्वनि का क्षेत्र उत्तर और पश्चिम मे घिरा हुआ है। मध्य एशिया म उसका कोइ केन्द्र नही है, इसीलिए उसे भारतीय ध्वनि मानना उचित है। हरियाणा के दक्षिण मे ब्रज से लेकर असम तक बोलचाल के स्तर पर इस ध्वनि का व्यवहार नही होता। आय भाषाओ के प्रदश म इसका व्यवहार क्षेत्र सीमित है। निस्सन्देह प्राचीन काल से अब तक इस ध्वनि के विकीरण का एक प्रमुख केन्द्र हरियाणा रहा है। यह ध्वनि बागरू को इतनी प्रिय है कि अग्रेजी और फारसी के तत्सम तद्भव भी—स्टेशन, लालटेन दामन, फोरन—ण के कारण बागरू रूप धारण करते ह टेसण, लालटण, दाम्मण, फोरण। फिर दिन, धन पानी आदि की नासिक्य ध्वनि को मूर्धन्य बनाकर बोलना स्वाभाविक ही है। हिन्दी म और सस्कृत म भी, ऐसे शब्द कठिनाई म मिलेंगे जिनम न और ण का भेद अर्थ विच्छेदक हो। डा० जगदेव सिंह ने बागरू भाषा का जो व्याकरण लिखा है, उसम उदाहरण कानी और काणी शब्दो मे अर्थ भेद दिखाया है। कपडे का किनारा हो है कानी और जिसे मानक हिन्दी मे कानी कहेंगे, वह है काणी।

बागरू की एक विशेषता यह है कि समवर्गीय नासिक्य ध्वनि आदि के सिद्धान्त को किनारा करता यह शब्द के मध्य म भी न रहती है यथा उन्नीस। उर्दू म इस ध्वनि

का पूर्ण बहिष्कार है। साहित्य की पुरानी ब्रजभाषा मे, बोलचाल की ब्रजभाषा के समान ही, इसका व्यवहार न होता था। मानक हिन्दी म इसका व्यवहार तत्सम शब्दो मे ही होता है। बागरू सस्कृत शब्दो के न को ण म बदल कर उन्हे तदभव बनाती है, मानक हि दी सस्कत शब्दा के ण को न म बदलकर तदभव बनाती है। सस्कत किरण को किरन कह तो वह मानक हिन्दी के लिए तदभव है सस्कत दिन को दिण कह तो वह बागरू के लिए तदभव है।

मानक हि दी के समान बागरू म उत्क्षिप्त ध्वनि ड़ है। यह बहुधा र और ल का स्थान लेती है। इस प्रकार कुर्ता बागरू मे कुड़ता है। हिन्दी म जा कटोरा है वह बागरू मे कटोड़ा है।

भरा कटोड़ा दूध बिण बूरा पिया न जाय।
माई बाप की लाडली पिउ बिण रहा न जाय।

(गामेल्लाभास, पृष्ठ २७)

इसी प्रवत्ति के कारण उदू का बागरू उच्चारण उड़दू है, उदू और बागरू मे यह अतर है। उदू ही नही वर्दी उड़दी है, यारी बदलकर याड़ी हो जाती है। हिन्दी मे ड़ के साथ र का सयोग अस्वाभाविक माना जायगा। अवधी कर्रा बागरू मे कड़ा है, हिन्दी मे कड़ा काफी है। हि दी की ध्वनि-प्रकृति म ण के पहले किसी अन्य टवर्गीय ध्वनि का व्यवहार ककश कहा जायगा किन्तु बागरू मे कोठरी के लिए कोठड़ी रूप स्वाभाविक है। ड़ के अतिरिक्त राजस्थानी और मराठी के समान बागरू मे एक मूधन्य पार्श्विक ळ भी है। हिन्दी के अनक शब्दा मे जहा ल है, वहा बागरू मे ळ है जैसे पोलिया—पोळिया। यह प्रवृत्ति न का ण म बदलने वाली प्रवत्ति से मिलती जुलती है। यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि जो शब्द ल से आरम्भ होता है, वह किसी दूसरे शब्द के बाद जल्दी से बोला जाय तो उसका आदिस्थानीय लकार भी मूधन्य हो जाता है। हिन्दी पालागन या पालागों बागरू मे पाळङ्गा है। ये उदाहरण मैं डा० जगदेव सिंह की पुस्तक स ले रहा हूँ। यद्यपि ल् ध्वनि का मूधन्यीकरण होता है, फिर भी बागरू म ल और ळ अथ विच्छेदक ध्वनियाँ है। लाल तो रग के लिए है पर लाळ मुह से बहने वाली लार के लिए है। हिन्दी मे दो स्वरा के बीच ड का उच्चारण उत्क्षिप्त होगा। जाडा जैसा शब्द हिन्दी मे सम्भव नही जाड़ा ही बोला जायगा पर बागरू म हिन्दी जाड़ा के लिए जाडा है जाड़ा एक घास है। हिन्दी का मोड बागरू म भी वही अथ दता है पर एक शब्द मोड़ भी है जिसका अथ है साधू। बागरू मे ड और ड़ दो भिन्न ध्वनिया हैं वैसे ही ड़ और ळ भी भिन्न ध्वनियां है। गोला या चक्र बागरू मे गोळा है, गोडा का अथ है घुटना (अवधी का गोड)। लाड प्यार के लिए लाड़ है लाळ का अथ है लार। ड, ड़ ळ— ऐसा भेद किसी द्रविड भाषा मे नही है। इसलिए मूधन्यीकरण के प्रमुख केन्द्र के रूप मे हरियाणा का दावा विचारणीय है। हिन्दी म मूधन्यीकरण का यह महत्व नही है यह स्पष्ट ही है।

मूधन्य ध्वनियो की स्थिति मागधी समुदाय म ध्यान दन योग्य है। इस

स्थान पर बहुधा ऐ का उच्चारण होता है। बांगरू के स, पैंड आदि मानक हिन्दी में से, पड़े हैं।

जिस भाषा में मूर्धन्यीकरण की प्रवृत्ति प्रबल हो उसमें तालव्यीकरण की प्रवृत्ति भी हो, तो यह आश्चर्य की बात होगी। किन्तु ये दोनों प्रवृत्तियां बांगरू में हैं। अन्तिम आ बहुधा या में बदलता है। तण्या, भर्या, हट्या, क्रमश तना, भरा, हटा के प्रतिरूप हैं। ऐसा तालव्यीकरण आदि स्थानीय वर्ण में भी होता है। च्यार, श्याबाश क्रमश च्यार स्याबास बोले जायेंगे। ब्रज और बांगरू दोनों में यह प्रवृत्ति है। डा० जगदेव सिंह ने उदाहरण रूप एक वाक्य दिया है कुत्या ने देखि कें गादड़ भाजदा हुया। यहाँ कुत्ता, के, हुआ में अ और ए के साथ य का योगदान हुआ है। भाजि ज्या अर्थात भाग जा, यहां भाजि तो ब्रजभाषा के समान है किन्तु ज्या में ब्रजभाषा से अधिक तालव्यीकरण है। घोड्या (घोड़े), ताल्या (ताले) बहुवचनरूप पंजाबी से मिलते जुलते हैं किन्तु य का संयोग पंजाबी से भिन्न प्रकृति की सूचना देता है। इसी प्रकार कृदन्त रूप खड़या तोड़या, बठया आदि पंजाबी की अपेक्षा राजस्थानी से अधिक मिलते हैं।

डा० जगदेव सिंह के अनुसार बांगरू में महाप्राण ध्वनियां पूरी शक्ति से उच्चरित नहीं होतीं। उनके बाद जब स्वर होता है, तब पूरी सुनाई देती हैं। ह् सघोष ध्वनि है। डा० जगदेव सिंह ने लिखा है कि बांगरू में अघोष ह् का व्यवहार भी होता है यथा गोह (जो घोष का रूपान्तर है)। संस्कृत में विसर्ग का व्यवहार इसी प्रकार सघोष ह के अघोष होने पर प्रचलित हुआ होगा। ह के निकट जो अल्पप्राण स्पर्श ध्वनि हो, बांगरू उसे ह् से मिलाकर नई महाप्राण ध्वनि भी बना लेती है। इस प्रकार बहकाया बदलकर हुआ भुकाया। भतेरा का पूर्व रूप था बहुतेरा। कहीं-कहीं वर्ण विपर्यय से आश्चर्यजनक परिवर्तन होते हैं, भूजि दे का मूल रूप है बूभि दे।

बांगरू की एक विशेषता, बलाघात की आवश्यकता के कारण, आदिस्थानीय स्वर का ह्रस्व होना या लोप होना है। इस प्रकार इक्यावन इ के बिना क्यावन बोला जाता है। एगारह के आधार पर बना हुआ ग्यारह इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। अचम्भा को चम्भा कहना काफी है। ठवाई का अर्थ है उठवाई। गूठी का मतलब है अँगूठी। गया इसी प्रवृत्ति के अनुसार ग्या बोला जाता है। चौरासी और चौथाई का आदि वर्ण ह्रस्व होकर चरासी, चुथाई रूप निर्मित करता है। कहीं-कहीं आदि वर्ण अन्तिम वर्ण को अपने भीतर समेट लेता है जैसे नाम न न को नाँ कहना काफी है। य् व् ह्, म जैसी ध्वनियां में स्पर्श तत्व क्षीण है इसलिये इनके साथ व्यंजन मिश्रण, वर्ण विपर्यय आदि के चमत्कार विशेष रूप से देखे जाते हैं। बाव्ह अर्थात बहिन, काव्हो अर्थात् कहानी, ह्वाज अर्थात सिहाज ह्वाईजह् माज अर्थात् हवाई जहाज, निस्सन्देह बांगरू और मानक हिन्दी के ध्वनितन्त्र में यथेष्ट अन्तर है।

बांगरू के शब्द-तन्त्र में कुछ विशेषताएं ध्यान देने योग्य हैं। बहिर काल के स्वन और स्वना प्रत्ययों की तरह बांगरू में भी पण और पणा दोनों तरह के प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं सुथरपण, मदणापण और भाईपणा, बाळकपणा। वैदिक काल में ही असगान और

आकारान्त दो तरह के वैकल्पिक रूप प्रचलित थे, उसी तरह बांगरू में क्रियाओं से एक तरह का सज्ञा रूप बनेगा मरण, दूसरी तरह का बनेगा धरणा। मानक हिन्दी मे मरना, धरना जग दीघ आकारान्त रूप ही स्वीकृत है किन्तु मरन, धरन जैसे ह्रस्व अकारान्त रूप अवधी और कनौजी मे प्रयुक्त होते रहे हैं और बागरू के उत्तर मे पजाबी और कश्मीरी म भी प्रयुक्त होते है। बागरू मे आर प्रत्यय जोड कर क्रिया स सज्ञा रूप बनाने की पद्धति है। नचार—नाचने वाला, बुलार—बोलने वाला, खिल्हार—खिलाडी, यहा वदिक काल का वही आर प्रत्यय लगा है जो कर्म्मार मे है। यह कार का रूपान्तर है। बागरू मे एक तरह की वस्तुओ का समुदाय जताने के लिये कुछ अनोखे प्रत्यय है। डा० जगदेव सिंह के अनुसार एक है ओड। मखोड—मक्खियो का झुण्ड, चमरोड—चमारो का समूह मटोड—मिट्टी का ढेर। यह ओड वास्तव म उड है। अकारान्त शब्दो के बाद आने स सन्धि का सामान्य नियम अ और उ को मिलाकर ओ कर दता है। उड का पूव रूप उर था जो पुर का रूपान्तर है। ग्राम, पुर, उर य तीनो शब्द मनुष्यो के निवास का अथ देने के अलावा बहुत्व की सूचना भी देत थे। डा० जगदेव सिंह न एक अन्य प्रत्यय ईक का उल्लेख किया है यथा गडीक अर्थात गाडियो की पाति। यह क प्रत्यय है जो सम्बन्ध कारक का चिन्ह होने क अलावा बहुत्वसूचक भी है। क की यह दोहरी भूमिका भोजपुरी मे भी देखी जाती है।

बागरू मे चराने का अथ देने वाली चाल क्रिया है, मानक हिन्दी म चाल केवल सज्ञा रूप है। जौ की बाल के लिये सिर्टा शब्द है जिसका सम्बन्ध बोने जन्म देने वाली प्राचीन सि अथवा सु क्रिया स है। कण्डे के लिये अर्णा और जगल के लिय रन, दोना अरण्य से सम्बद्ध हैं। खेत के लिये क्यार केदार का रूपान्तर है मानक हिन्दी म केवल स्त्रीलिंग रूप क्यारी स्वीकृत है। आवाज लगाने के लिये गोहा शब्द घोष के आधार पर बना है और गोहार या गुहार रूप मे बागरू क्षेत्र के बाहर भी प्राप्त है। बागरू का एक रोचक शब्द माळह है जिसका अथ है शहद का छत्ता। यह उस समय की यादगार है जब ध पहले अल्पप्राण हुआ, फिर द् ल म परिवर्तित हुआ। ऐसा रूपान्तर मधु सूचक शब्दो म अन्यत्र भी पाया जाता है। बागरू म घुमन्तू लोगो के लिये ओड शब्द है। यह कही वेड क्रिया स जुडा हुआ है। बगला म इसका रूपान्तर बेड घूमन की क्रिया का अथ दता है। अवधी म गरीब घुमन्तू लोगो के लिये बडिया शब्द है वह इसी स सम्बद्ध है।

बागरू के विभक्ति चिन्हो म न बहुत महत्वपूण है। मानक हिन्दी म कर्ता कारक के चिन्ह ने का यही स्रोत है। मानक हिन्दी म इसका प्रयोग सीमित है किन्तु बागरू म इसके प्रयोग मे बडी विविधता है। घोडे नै पाणी पिया यहा कर्ता कारक के साथ इसका व्यवहार हुआ है। (यह कर्ता कारक मूलत करण होगा, इससे यहाँ बहस नहीं।) उस नै बी आणा था अर्थात उसे भी आना था। यहा नै हिन्दी को का स्थान लेता है। इसी प्रकार म्न इब जाणा चाहिये—मुझे अब जाना चाहिये। राति नैं रोज तारे लिकड स— रात मे रोज तारे निकलते हैं, यहा नै अधिकरण कारक के लिए है। किस न आणा दिख स—किसी का आना दिखाई दता है, हिन्दी म जहा सम्बन्ध कारक का प्रयोग होगा, वहा

आकारान्त दो तरह के वैकल्पिक रूप प्रचलित थे, इसी तरह बागरू में क्रियाओं से एक तरह का संज्ञा रूप बनेगा मरण, दूसरी तरह का बनेगा धरणा। मानक हिन्दी में मरना, धरना जैसे दीर्घ आकारान्त रूप ही स्वीकृत है किन्तु मरन, धरन जैसे ह्रस्व अकारान्त रूप अवधी और कनौजी में प्रयुक्त होते रहे है और बागरू के उत्तर में पंजाबी और कश्मीरी में भी प्रयुक्त होते है। बागरू में आर प्रत्यय जोड कर क्रिया से संज्ञा रूप बनाने की पद्धति है। नचार—नाचने वाला, बुलार—बोलने वाला, खिल्हार—खिलाडी, यहा वैदिक काल का वही आर प्रत्यय लगा है जो कर्म्मार में है। यह कार का रूपान्तर है। बागरू में एक तरह की वस्तुओं का समुदाय जताने के लिये कुछ अनोखे प्रत्यय है। डा० जगदेव सिंह के अनुसार एक है ओड। मखोड—मक्खियों का झुण्ड, चमरोड—चमारों का समूह, मटोड—मिट्टी का ढेर। यह ओड वास्तव मे उड है। अकारान्त शब्दों के बाद आन से सन्धि का सामान्य नियम अ और उ का मिलाकर ओ कर देता है। उड का पूर्व रूप उर था जो पुर का रूपान्तर है। ग्राम, पुर, उर ये तीनो शब्द मनुष्यों के निवास का अर्थ देने के अलावा बहुत्व की सूचना भी देते थे। डा० जगदेव सिंह ने एक अन्य प्रत्यय ईक का उल्लेख किया है यथा गडीक अर्थात गाडियो की पाति। यह क प्रत्यय है जो सम्बन्ध कारक का चिह्न होने के अलावा बहुत्वसूचक भी है। क की यह दोहरी भूमिका भोजपुरी में भी देखी जाती है।

बागरू मे चलने का अर्थ देने वाली चाल क्रिया है, मानक हिन्दी म चाल केवल संज्ञा रूप है। जौ की बाल के लिये सिर्टा शब्द है जिसका सम्बन्ध बोने, जन्म देने वाली प्राचीन सृति अथवा सु क्रिया से है। कण्डे के लिये अर्णा और जगल के लिये रन, दोनो अरण्य से सम्बद्ध हैं। खेत के लिये क्यार केदार का रूपान्तर है मानक हिन्दी म केवल स्त्रीलिंग रूप क्यारी स्वीकृत है। आवाज लगाने के लिये गोहा शब्द घोष के आधार पर बना है और गोहार या गुहार रूप मे बागरू क्षेत्र के बाहर भी प्राप्त है। बागरू का एक रोचक शब्द माळह है जिसका अर्थ है शहद का छत्ता। यह उस समय की यादगार है जब ध पहले अल्पप्राण हुआ, फिर द ल मे परिवर्तित हुआ। ऐसा रूपान्तर मधु सूचक शब्दो म अन्यत्र भी पाया जाता है। बागरू में घुमन्तू लोगो के लिये श्रोड शब्द है। यह कहीं बेड क्रिया स जुडा हुआ है। बगला मे इसका रूपान्तर बेड घूमने की क्रिया का अर्थ देता है। अवधी मे गरीब घुमन्तू लोगो के लिये बेंडिया शब्द है वह इसी स सम्बद्ध है।

बागरू के विभक्ति चिह्नो म न बहुत महत्वपूर्ण है। मानक हिन्दी मे कर्ता कारक के चिह्न ने का यही स्रोत है। मानक हिन्दी म इसका प्रयोग सीमित है किन्तु बागरू मे इसके प्रयोग मे बडी विविधता है। घोडे नै पाणी पिया यहा कर्ता कारक के साथ इसका व्यवहार हुआ है। (यह कर्ता कारक मूलत करण होगा, इसमे यहाँ बहस नही।) उस न बो आणा था अर्थात उम भी आना था। यहा नै हिन्दी को का स्थान लेता है। इसी प्रकार मन इब जाणा चाहिये—मुझे अब जाना चाहिये। राति न रोज तारे लिकडैं स— रात मे रोज तारे निकलते हैं, यहा नै अधिकरण कारक के लिए है। किस न आणा दिख स—किसी का आना दिखाई देता है, हिन्दी म जहा सम्बन्ध कारक का प्रयोग होगा, वहा

आकारान्त दो तरह के वैकल्पिक रूप प्रचलित थे, इसी तरह बांगरू में क्रियाओं से एक तरह का सज्ञा रूप बनेगा मरण, दूसरी तरह का बनेगा धरणा। मानक हिन्दी में मरना, धरना जसे दीघ आकारान्त रूप ही स्वीकृत हैं किन्तु मरन, धरन जसे ह्रस्व अकारान्त रूप अवधी और कनौजी म प्रयुक्त होते रहे हैं और बागरू के उत्तर म पजाबी और कश्मीरी म भी प्रयुक्त होते हैं। बागरू मे आर प्रत्यय जोड कर क्रिया से सज्ञा रूप बनाने की पद्धति है। नचार—नाचने वाला, बुलार—बोलने वाला, खिल्हार—खिलाडी, यहा वैदिक कान का वही आर प्रत्यय लगा है जो कर्मार मे है। यह कार का रूपान्तर है। बागरू में एक तरह की वस्तुओ का समुदाय जताने के लिये कुछ अनोखे प्रत्यय है। डा० जगदेव सिंह के अनुसार एक है ओड। मखोड—मक्खियो का झुण्ड, चमरोड—चमारो का समूह मटोड—मिट्टी का ढेर। यह ओड वास्तव मे उड है। अकारान्त शब्दो के बाद आने से सन्धि का सामान्य नियम अ और उ को मिलाकर ओ कर देता है। उड का पूव रूप उर था जो पुर का रूपान्तर है। ग्राम, पुर, उर ये तीनो शब्द मनुष्यो के निवास का अथ देने के अलावा बहुत्व की सूचना भी देते थे। डा० जगदेव सिंह ने एक अन्य प्रत्यय ईक का उल्लेख किया है यथा गडीक अर्थात गाडिया की पाति। यह क प्रत्यय है जो सम्बन्ध कारक का चिह्न होने के अलावा बहुत्वसूचक भी है। क की यह दोहरी भूमिका भोजपुरी मे भी देखी जाती है।

बागरू म चलने का अथ देने वाली चाल क्रिया है, मानक हिन्दी म चाल केवल सज्ञा रूप है। जो की बाल के लिये सिर्टा शब्द है जिसका सम्बन्ध बोने, ज म देने वाली प्राचीन सि अथवा सु क्रिया से है। कण्डे के लिये अर्णा और जगल के लिये रन, दोनो अरण्य से सम्बद्ध हैं। खेत के लिये क्यार केदार का रूपान्तर है, मानक हिन्दी म केवल स्त्रीलिंग रूप क्यारी स्वीकृत है। आवाज लगाने के लिये गोहा शब्द घोष के आधार पर बना है और गोहार या गुहार रूप मे बागरू क्षेत्र के बाहर भी प्राप्त है। बागरू का एक रोचक शब्द माळह है जिसका अथ है शहद का छत्ता। यह उस समय की यादगार है जब ध पहले अल्पप्राण हुआ, फिर द ल म परिवर्तित हुआ। ऐसा रूपान्तर मधु सूचक शब्दो म अयत्र भी पाया जाता है। बागरू मे घुमन्तू लोगो के लिये ओड शब्द है। यह कहीं वेड क्रिया से जुडा हुआ है। पजाबी मे इसका रूपान्तर बेड घूमने की क्रिया का अथ देता है। अवधी म गरीब घुमन्तू लोगो के लिये बेंडिया शब्द है वह इसी स सम्बद्ध है।

बागरू के विभक्ति चिह्नो म नै बहुत महत्वपूण है। मानक हिन्दी मे कर्ता कारक के चिह्न ने का यही स्रोत है। मानक हिन्दी म इसका प्रयोग सीमित है किन्तु बागरू मे इसके प्रयोग म बडी विविधता है। घोडे नै पाणी पिया यहा कता कारक के साथ इसका व्यवहार हुआ है। (यह कता कारक मूलत करण होगा, इसमे यहां बहस नही।) उस न बी आणा था अथात उसे भी आना था। यहा नै हिन्दी को का स्थान लेता है। इसी प्रकार मन इब जाणा चाहिये—मुझे अब जाना चाहिये। राति न रोज तारे लिकड स—रात म रोज तारे निकलते हैं यहा नै अधिकरण कारक के लिए है। किस न आणा दिख स—किसी का आना दिखाई दता है हिन्दी म जहा सम्ब ध कारक का प्रयोग होगा, वहा

स्थान पर बहुधा ए का उच्चारण होता है। बागड़ के स, पॅड आदि मानक हिन्दी में से, पड़े हैं।

जिस भाषा में मूर्धन्यीकरण की प्रवृत्ति प्रबल हो उसमें तालव्यीकरण की प्रवृत्ति भी हो, तो यह आश्चर्य की बात होगी। किन्तु ये दोनों प्रवृत्तियां बागड़ू में हैं। अन्तिम आ बहुधा या में बदलता है। तन्या, भर्या, हट्या, क्रमश तना, भरा, हटा के प्रतिरूप हैं। ऐसा तालव्यीकरण आदि स्थानीय वर्ण में भी होता है। प्यार, शाबाश क्रमश स्यार स्याबास बोले जायेंगे। ब्रज और बागड़ दोनों में यह प्रवृत्ति है। डा० जगदेव सिंह ने उदाहरण रूप एक वाक्य दिया है कुत्या ने देखि क्यों गादड भाजदा हुया। यहाँ कुत्ता, क, हुआ में अ और ए के साथ य का योगदान हुआ है। भाजि ज्या अर्थात भाग जा, यहाँ भाजि तो ब्रजभाषा के समान है किन्तु ज्या में ब्रजभाषा से अधिक तालव्यीकरण है। घोड्यां (घोड़े), ताल्यां (ताले) बहुवचनरूप पंजाबी से मिलते जुलते हैं किन्तु य का प्रयोग पंजाबी से भिन्न प्रकृति की सूचना देता है। इसी प्रकार कृदन्त रूप खड़्या, तोड़्या, बठ्या आदि पंजाबी की अपेक्षा राजस्थानी से अधिक मिलते हैं।

डा० जगदेव सिंह के अनुसार बागड़ में महाप्राण ध्वनियां पूरी शक्ति से उच्चरित नहीं होतीं। उनके बाद जब स्वर होता है तब पूरी सुनाई देती हैं। ह सघोष ध्वनि है। डा० जगदेव सिंह ने लिखा है कि बागड़ में अघोष ह् का व्यवहार भी होता है यथा गोह् (जो गोध का रूपान्तर है)। संस्कृत में विसर्गों का व्यवहार इसी प्रकार सघोष ह के अघोष होने पर प्रचलित हुआ होगा। ह् के निकट जो अल्पप्राण स्पर्श ध्वनि हो बागड़ उसे ह् में मिलाकर नई महाप्राण ध्वनि भी बना लेती है। इस प्रकार बहकाया बदलकर हुआ भुकाया। भतेरा का पूर्व रूप था बहुतेरा। कहीं-कहीं वर्ण विपर्यय से आश्चर्यजनक परिवर्तन होते हैं, भूजि दे का मूल रूप है बूभि दे।

बोलने की एक विशेषता, बलाघात की आवश्यकता के कारण, आदिस्थानीय स्वरों का ह्रस्व होना या लोप होना है। इस प्रकार इक्यावन इके बिना क्यावन बोला जाता है। एगारह के आधार पर बना हुआ ग्यारह इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। अचम्भा को चम्भा कहा जाता है। ठुपाई का अर्थ है उठवाई। गूठो का मतलब है अँगूठो। पका इसी प्रवृत्ति के अनुसार प्या बोला जाता है। चौरासी और चौथाई का आदि वर्ण ह्रस्व होकर चरासी, चुथाई रूप निर्मित करता है। कहीं कहीं आदि वर्ण अन्तिम वर्ण को अपने भीतर समाहित करता है जैसे साम [illegible] को [illegible] कहना काफी है। [illegible] ध्वनियां में [illegible] होते हैं इसलिए इनका साथ व्यंजन मिलकर वर्ण विपर्यय आदि के चमत्कार विशेष रूप से देखे जाते हैं। बाल्ह अर्थात बहिन, काल्हो अर्थात कहानी [illegible] अर्थात [illegible] अर्थात [illegible], जिनमें से बागड़ और मानक हिन्दी के [illegible] में वर्तमान अन्तर है।

बागड़ के शब्द-भंडार में कुछ विशिष्ट [illegible] है। वैदिक भाषा के स्वन और स्वर [illegible] की तरह बागड़ में भी [illegible] और [illegible] प्रयुक्त होते हैं सुगाथ, [illegible] और [illegible]। वैदिक भाषा में ही [illegible] और

आकारान्त दो तरह के वैकल्पिक रूप प्रचलित थे, उसी तरह बांगरू में क्रियाओं से एक तरह का सञ्ज्ञा रूप बनेगा मरण, दूसरी तरह का बनेगा धरणा। मानक हिन्दी मे मरना, धरना जैसे दीर्घ आकारान्त रूप ही स्वीकृत है किन्तु मरन, धरन जैसे ह्रस्व अकारान्त रूप अवधी और कनौजी में प्रयुक्त होते रहे हैं और बांगरू के उत्तर मे पंजाबी और कश्मीरी में भी प्रयुक्त होते हैं। बांगरू मे आर प्रत्यय जोड कर क्रिया से सञ्ज्ञा रूप बनाने की पद्धति है। नचार—नाचने वाला, बुलार—बोलने वाला, खिल्हार—खिलाडी, यहां वैदिक काल का वही आर प्रत्यय लगा है जो कर्म्मार मे है। यह कार का रूपान्तर है। बांगरू मे एक तरह की वस्तुओं का समुदाय जताने के लिये कुछ अनोखे प्रत्यय है। डा० जगदेव सिंह के अनुसार एक है ओड। मखोड—मक्खियों का झुण्ड, चमरोड—चमारो का समूह, मटोड—मिट्टी का ढेर। यह ओड वास्तव में उड है। अकारान्त शब्दों के बाद आने से सन्धि का सामान्य नियम अ और उ को मिलाकर ओ कर देता है। उड का पूर्व रूप उर था जो पुर का रूपान्तर है। ग्राम, पुर, उर ये तीनो शब्द मनुष्यों के निवास का अर्थ देने के अलावा बहुत्व की सूचना भी देते थे। डा० जगदेव सिंह ने एक अन्य प्रत्यय ईक का उल्लेख किया है यथा गडीक अर्थात गाडियों की पांति। यह क प्रत्यय है जो सम्बन्ध कारक का चिह्न होने के अलावा बहुत्वसूचक भी है। क की यह दोहरी भूमिका भोजपुरी में भी देखी जाती है।

बांगरू मे चलने का अर्थ देने वाली चाल क्रिया है मानक हिन्दी में चाल केवल सञ्ज्ञा रूप है। जौ की बाल के लिये सिर्टा शब्द है जिसका सम्बन्ध बोने, जन्म देने वाली प्राचीन ति अथवा सु क्रिया से है। कण्डे के लिये अर्णा और जंगल के लिये रन, दोनों अरण्य से सम्बद्ध हैं। खेत के लिये क्यार केदार का रूपान्तर है मानक हिन्दी में केवल स्त्रीलिंग रूप क्यारी स्वीकृत है। आवाज लगाने के लिये गोहा शब्द घोष के आधार पर बना है और गोहार या गुहार रूप मे बांगरू क्षेत्र के बाहर भी प्राप्त है। बांगरू का एक रोचक शब्द माळह है जिसका अर्थ है शहद का छत्ता। यह उस समय की यादगार है जब ध पहले अल्पप्राण हुआ, फिर द ल मे परिवर्तित हुआ। ऐसा रूपान्तर मधु सूचक शब्दो में अन्यत्र भी पाया जाता है। बांगरू मे घुमन्तू लोगों के लिये ओड शब्द है। यह कहीं बेड क्रिया से जुड़ा हुआ है। बंगला में इसका रूपान्तर बेड घूमने की क्रिया का अर्थ देता है। अवधी मे गरीब घुमन्तू लोगों के लिये बॅडिया शब्द है वह इसी से सम्बद्ध है।

बांगरू के विभक्ति चिह्नों में न बहुत महत्वपूर्ण है। मानक हिन्दी में कर्ता कारक के चिह्न ने का यही स्रोत है। मानक हिन्दी में इसका प्रयोग सीमित है किन्तु बांगरू में इसके प्रयोग मे बड़ी विविधता है। घोडे ने पाणी पिया यहां कर्ता कारक के साथ इसका व्यवहार हुआ है। (यह कर्ता कारक मूलत करण होगा, इससे यहां बहस नहीं।) उस न भी आणा था अर्थात उसे भी आना था। यहां न हिन्दी को का स्थान लेता है। इसी प्रकार मन्न इब जाणा चाहिये—मुझे अब जाना चाहिये। राति न रोज तारे लिकड स—रात मे रोज तारे निकलते हैं, यहां न अधिकरण कारक के लिए है। किस न आणा दिख स—किसी का आना दिखाई देता है, हिन्दी में जहां सम्बन्ध कारक का प्रयोग होगा, वहां

का व्यवहार अब भी होता है, यद्यपि वैसा व्यवहार दिल्ली की मानक भाषा मे स्वीकृत नही है। आगरे के बहुत से कारीगर दिल्ली मे जा बसे थे। इनकी बोली, कारखानो मे इनके काम करने से, करखनदारी कहलाती है। यह भी खडी बोली है पर उस तरह की है जिस तरह की आगरे की अपनी खडी बोली है। जनपदीय भाषाओ के परस्पर सम्पर्क से कैसे नये रूप उभरते है, इसकी मिसालें दिल्ली की इस बोली मे बहुत हैं। गोकुलचन्द नारग ने इस बोली पर एक सुन्दर पुस्तक लिखी है करखनदारी डायलेक्ट ऑफ डेल्ही उर्दू (दिल्ली, १९६१)। इसमे उन्होने यह दिखाया है कि टकसाली उर्दू दिल्ली के कारीगरो की इस बोली से दूर होती चली गई है, फिर भी "इस बोली के वे रूप जो आज की साहित्यिक उर्दू मे पुराने पड चुके है, पुरानी उर्दू मे बने हुए हैं।" (पृष्ठ ६७)। इस बोली मे जाइयो, लीजियो आदि ओकारान्त रूपो का प्रयोग खूब होता है और गोकुलचन्द नारग ने स्वीकार किया है कि यह स्पष्ट ही ब्रजभाषा के प्रभाव के कारण है। ब्रजभाषा का यह प्रभाव दिल्ली के अपढ कारीगरो मे साहित्य के माध्यम से न पहुचा था। गालिब और मीर की तरह ये कारीगर आगरे से दिल्ली गए और अपने साथ ब्रज का प्रभाव ले गए। किस्सए मेहर अफ़रोज़ की भूमिका मे मसूद हुसेन खाँ ने इस बोली को याद किया है। उन्होने लिखा है "अमीर खुसरोकालीन खडी बोली का स्वरूप दक्नी हिन्दी उर्दू मे मिलता है और इसका ब्रजमिश्रित स्वरूप हम जहागीर के समय के एक लेखक 'अफजल' की कृति 'बिकट कहानी' मे मिलता है। किस्से की भाषा तत्कालीन प्रचलित जनभाषा का रूप है। अत उस समय की भाषा विषयक सभी विशेषताएँ इसमे उपलब्ध होती है जिनमे से कुछ दिल्ली की वर्तमान करखनदारी भाषा मे भी पाई जाती है।" मसूद हुसेन खाँ ने क़िस्सए मेह्र अफ़रोज़ की भाषा को एक ओर "अमीर खुसरो के काल की पजाबी और हरयानी से प्रभावित खडी बोली से भिन्न" बताया है, दूसरी ओर उसे 'अकबर और जहागीर के काल की ब्रजमिश्रित भाषा से" पृथक् बताया है। ऐसी भाषा से उन्होने करखनदारी भाषा की समानता दिखाई है। वास्तव मे करखनदारी बोली ब्रजभाषा का गहरा प्रभाव लिए है। किस्सए मेह्र अफ़रोज़ की भाषा पर भी ब्रज का प्रभाव है जैसे जहाँ-तहा ही के स्थान पर हू का व्यवहार। जसे कबहू, वसे ही कबहू अकसाम अकसाम तरह के ऐसे फूल हैं कि उन्होने कदहू नहीं देखे थे। (पृष्ठ ६)। मानक हिन्दी के आगे के बदले ईसवी खा आगू लिखते है इस नहर मे से पानी पी लीजिए तब आगू चलिए (पष्ठ ८)। ब्रजभाषा का कू भी इस गद्य पुस्तक मे निरन्तर प्रयुक्त हुआ है तो दिलबर उसकी पेशवाई कू आवती है दिलबर जोश से गुलरुख कूँ मिलती है, सो बादशाहजादे कू देखा। (पष्ठ ५२)। अवधी और ब्रज का काहे यहाँ भी है चुगल काहे से हैं कि दिन को जो बात होहे सो ये कह देती हैं। (पष्ठ ८३)। सर्वनामो मे त का प्रयोग त अपनी बादशाहत व अपने ऊपर जो रहम नहीं करता (पृष्ठ ३), और उस के स्थान पर तिस का प्रयोग तिस से मालूम होता है कि मेरे जो जो गुनाह हैं तिस के ऊपर खुदा ताआला ने नजर की है (पष्ठ २)। ब्रज प्रदेश की हिन्दी का अन्य पुरुष एकवचन सर्वनाम रूप विस ता विस के मेटने के स्वाद कू जी न चहा

ये सब पात्र लखनऊ के हैं, स्त्री और पुरुष दोनो भया रूप का व्यवहार करते हैं। लखनऊ में कई तरह की हि दी बोली जाती है, उसमें एक यह भया वाली हिन्दी भी है। लखनऊ अवध जनपद में है। अवधी के क्षेत्र मे जो हिन्दी बोली जा रही है, उसका एक रूप व्रज भाषा के पुराने शब्द अब भी अपनाए हुए हैं। ऐसा गहरा नाता व्रजभाषा, अवधी और खडी बोली का है।

पुरानी हिन्दी का एक रूप दक्खिनी का है। यह दक्खिनी हिन्दी व्रजभाषा का प्रभाव लिए हुए है। इस भाषा के पुराने नमूने बारहवी सदी से मिलने लगते हैं। इससे यह तथ्य सिद्ध होता है कि बारहवी सदी में व्रजभाषा खडी बोली को प्रभावित कर रही थी और इससे पहले भी प्रभावित करती आई थी। दक्खिनी हिन्दी के जो पुराने से पुराने नमूने हैं, उनकी भाषा का ध्वनितत्र न तो बागरू का है, न पजाबी या राजस्थानी का। उसका ध्वनितत्र व्रजभाषा से काफी प्रभावित हो चुका है। तुर्क आक्रमणो से पहले यहाँ जनपदो का अलगाव खत्म होने लगा था और व्रजभाषा बागरू को प्रभावित करने लगी थी। एक बात असदिग्ध है कि चाहे पुरानी हिन्दी हो चाहे आधुनिक, चाहे मानक हिन्दी हो चाहे उसका कोई स्थानीय रूप, वह कुरु जनपद की भाषा बागरू से काफी भिन्न है और इस भिन्नता का मुख्य कारण व्रजभाषा का प्रभाव है। मानक हिन्दी और बाँगरू दोनो के रूपतत्र का विकास व्रजभाषा के प्रभाव से हुआ और यह व्रजभाषा पुरानी अवधी का प्रभाव आत्मसात् किए हुए है। आधुनिक अवधी का रूपतत्र कई बातो में व्रजभाषा से प्रभावित है और मानक हिन्दी से मिलता-जुलता है। हिन्दी प्रदेश का पूर्वी क्षेत्र साहित्यिक हिन्दी का मुख्य क्षेत्र रहा है इसलिए पूर्वी जनपदीय भाषाओ का प्रभाव हिन्दी के स्थानीय रूपो पर ही नही, उसके मानक रूप पर भी पडा है। ऐसे प्रभाव का एक उदाहरण मानक हिन्दी में मध्यवर्ती ह ध्वनि की महाप्राणता की रक्षा है। इस प्रकार जनपदीय भाषाओ के सम्पर्क से जातीय भाषा की पचीदा प्रक्रिया सम्पन्न होती है। शूरसेनी अपभ्रश से व्रज का सम्बन्ध जोड कर, किसी कल्पित कौरवी अपभ्रश से बाँगरू का सम्बन्ध जोड कर, भाषाई विकास प्रक्रिया की व्याख्या नही की जा सकती।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने कुतुबशतक और उसकी हिन्दुई नाम की पुस्तक सम्पादित की थी जो १९६७ मे भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुई थी। डा० गुप्त के अनुसार कुतुबशतक की रचना पन्द्रहवी सदी के अन्त म या सोलहवी सदी के आरम्भ मे हुई थी। इसकी भाषा अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। अनेक जनपदो के रूप कसे आपस मे घुल मिल रहे थे और आधुनिक हिन्दी के रूपो के विकास म इनकी भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है, इन बातो का पता कुतुबशतक की भाषा के विश्लेषण स चलता है। विशेष रूप से अवधी के रूप पहले उत्तर पश्चिमी प्रदेशो तक फले हुए थे, इसका ज्ञान होता है, व्रज भाषा के रूपो का प्रभाव और प्रसार तो यहा है ही। इसके साथ ही कुछ बागरू या पजाबी के रूप भी है जो अब मानक हिन्दी मे प्रयुक्त नही होत। कुतुबशतक की भाषा म कुछ अन्य ऐसे रूप हैं जो अब प्रयुक्त नही होत या कम होत हैं किन्तु जो भाषाई विकास को समझने म सहायक होते है।

कुतुबशतक म हुआ है, ब्रजभाषा म अब भी होता है, दक्खिनी हिन्दी म भी इसका व्यव हार हुआ है। इसी के जोड के सु, सू, सौं करण कारक के लिए प्रयुक्त होने वाले विभक्ति चिह्न हैं। अधिकरण म इ ओर अइ वाले रूप मिलते हैं कर्मार, दरबारि, हत्थइ, कण्ठइ। यह वही विभक्ति चिह्न हैं जो सस्कृत म एकार रूप म प्राप्त हैं। अधिकरण के लिये महि, मंहि, मइ, म, मि सम्बन्धक रूप भी प्रयुक्त हुए हैं। इन सबका आधारभूत रूप मध हो सकता है। कोई कह कि मध सवनाम है तो सवनाम और विभक्ति चिह्नों की सामान्य रचना प्रक्रिया याद कर लेनी चाहिए।

कुतुबशतक की भाषा की क्रियापद रचना म अवधी रूपों की भूमिका ध्यान देने योग्य है। भविष्य काल का एक रूप है करहिगा। अन्य पुरुष एकवचन के वतमान कालिक रूप करहि म गा चिह्न जोडा गया है। करहि अवधी का वतमान काल का रूप है। महाप्राणता का लोप होने पर हि के स्थान पर इ रह जाता है। कुतुबशतक मे कर-हिंगा के समानान्तर करइगा जस रूप भी हैं। यह करइ मानक हिन्दी का करे है। कर-इगा स करेगा रूप का विकास हुआ है। वह करे ह, वह क्या करे, वह करेगा, हिन्दी के इन विभिन्न रूपों म करे का आधार सवत्र अवधी का करहि है। गा चिह्न जोडने से मानक हिन्दी का बोध होता है किन्तु कुतुबशतक मे गा विहीन भविष्यकालीन रूप भी है यथा सोई लज्जा रक्खिहइ जावे साहि नसीब। यहा रक्खिहइ मे अवधी का काल-वाचक चिह्न हइ, पूवरूप हहि, लगा हुआ है। इससे अवधी रूपों के प्रसार का अनुमान हो सकता है। भविष्य काल के लिए ही अन्य पुरुष के बहुवचन रूप कहइंगे मे कहइं का पूव रूप कहहि है। यही अब मानक हिन्दी का कहगे रूप है। मध्यम पुरुष के लिए देहुगे जैसे रूप मे अवधी का देहु स्पष्ट है। अन्य रूपों म ध्यावहु, ल्यावहु, दिखावहु पुन अवधी के रूप हैं और व उत्तर पश्चिमी प्रदेशों म कस बदल रहे थ, इसके प्रमाण भी कुतुबशतक मे हैं। करउ जसे रूप म महाप्राण ध्वनि का लोप हो गया है और जिलाओ जसे रूप म सयुक्त स्वर अउ के स्थान पर ओकार का व्यवहार हुआ है। मानक हिन्दी म य ओकार वाले रूप ही स्वीकृत हैं। वतमान काल मे उत्तम पुरुष एकवचन के तिङन्त रूप हैं जाणुं, जाणउं। इनका आधार जानहुं जैसा अवधी रूप है। मानक हिन्दी मे जब कहते हैं म क्या जानूं, तब पूवरूप जानहु के सक्षिप्त रूपान्तर का ही व्यवहार करते हैं। कुतुबशतक मे अन्य पुरुष एकवचन के वतमानकालिक रूप होइ, देखइ, बखाणइ आदि अवधी के समान है। पुरानी अवधी के समान कुतुबशतक की खडी बोली म तिङन्त रूपों का व्यवहार काफी होता है किन्तु कृदन्त रूपों को आधार बनाकर क्रियापद-रचना भी होने लगी है यथा जाणता हइ, जाणता हूं। भूतकाल के लिये गया, धाया, आया आदि कृदन्त रूपों का व्यवहार सामान्य है। लेद्या कह्या, जाण्या जसे रूप बागरू की देन है जो अब मानक हिन्दी मे स्वीकृत नहीं है। महत्वपूण रूप लीन्हा, लिन्न, लीना आदि ह। अवधी के दीन्ह, लीन्ह जस रूप इनका आधार हैं और इनका न्ह ध का विकास है। वतमानकालिक कृदन्त करत, होत, देखत आदि ब्रज अवधी के समान प्रयुक्त हुए हैं। क्रियार्थी सज्ञा रूपों मे एक ओर ना वाले फेरणा, मारणा जैसे रूप हैं, दूसरी ओर ब वाले फेरिबे जस रूप है जो ब्रजभाषा म

प्रयुक्त होत हैं। भाना रूपा म धरि, हेरि, देखि, फेरि आदि व्रज क्षेत्र म प्रचलित रूपा के समान ह।

गुरु ग्रथ साहिब म जो कबीर के पद दिये हुए है, उनकी भाषा म कुछ वसी ही विशेषताए हैं जसी कुतुबशतक की भाषा म हैं। इनके अध्ययन स हिन्दी के रूपो के विकास को समझन म सहायता मिलेगी। (शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबधक कमेटी, अमतसर द्वारा अगस्त १९५१ म प्रकाशित श्री गुरु ग्रथ साहिब स यहा उद्धरण दिये गय हैं।) एक पद है हरि जसु सुनहि न हरि गुन गावहि। बातन ही असमानु गिरावहि। एसे लोगन सिउ किआ कहीए। जो प्रभ को ए भगति ते बाहज तिन ते सदा डराने रहीए। आपि न देहि चुरू भरि पानी। तिह निन्दहि जिह गगा पानी। बठत उठत कुटिलता चालहि। आप गय अउरन हू घालहि। छाडि कुचरचा आन न जानहि। ब्रह्मा हू को कहिओ न मानहि। आप गय अउरन हू खावहि। आगि लगाइ मदर म सोवहि। अवरन हसत आपि हहि कान। तिनकउ देखि कबीर लजान। (पृष्ठ ३३२)। इस पद म सबस पहल असमानु जस उकारान्त रूपा पर ध्यान दना चाहिए। एस रूप कबीर तथा अय सता की भाषा म काफी हैं और पजाब म जा हिन्दी गद्य लिखा गया था, उसम भी मिलत हैं। इसके बाद क्रिया क हि वाल रूपा पर ध्यान दना चाहिए। हि पर अनुस्वार का चिह्न नहीं है किन्तु हैं य सब बहुवचन क रूप। यह मान लना चाहिए कि अन्तिम स्वर का उच्चारण अनुनासिक होता था। इनम एक रूप हहि भी है। अनुस्वारयुक्त हहिं का रूपान्तर हैं मानक हिन्दी म प्रयुक्त होता है। पूर्वकालिक कृदन्त छाडि, वतमानकालिक कृदन्त बठत उठत, सवनाम रूप जिह तिह, सज्ञा क बहुवचन रूप, यथा लोगन, अवधी रूपों के व्यापक व्यवहार की ओर सकत करत है। इस पद की छन्द-रचना और शब्द-योजना पर भी अवधी लोक काव्य का प्रभाव झलकता है।

कबीर क पदा की भाषा म बहुत जगह ह वाल रूप हैं, इनक साथ क्रिया पदा क वकल्पिक रूप भी हैं जिनम इस महाप्राण ध्वनि का लोप हो गया है। वतमान काल क अय पुरुष एकवचन रूपा म इस तरह क उदाहरण हैं। साधू सग पावहि कलि सागर (पृष्ठ ३२४)। भविष्य काल क रूपा म यह प्रक्रिया और भी अधिक स्पष्ट दखी जा सकती है। तब जानहुगे जब उघरगा पाज (पृष्ठ ३२८)। जानहुग आग मकर जानोग बना। कहत कबीर सुनहु भा मर। इहो हवाल होहिग तर। (पृष्ठ ३३०)। सुनहु का रूप तर सुना प्रचलित हुआ और होहिगे न होयेंगे, फिर होग रूप बना। य भविष्य काल [illegible] हैं और उत्तर [illegible] भाषाओ का [illegible] है। गुरु ग्रथ साहिब म [illegible] विहीन विशुद्ध [illegible] रूप भी है। कहन कहावन तउ पतिअइहै तउ मनु मान [illegible] म जइहै। (पृष्ठ ३२८)। [illegible]

[illegible]

मातम राम। (पृष्ठ ३२४)। कहीं-कहीं भविष्य काल के लिए इसी रूप का प्रयोग हुआ है—बिनु बराग न छूटसि माइआ। (पृष्ठ ३२६)।

सवनामा म जासु, जिसु, तिसु, इसु ध्यान दन योग्य है। दिल्ली के पुरान शायर किसी के स्थान पर किसू रूप का प्रयोग अक्सर करत थ। जासु तासु के समान य अवधी के उकारान्त रूप है। एक जगह तुझहि का प्रयोग मिलता है—चलु रे बैकुण्ठ तुझहि ले तारउ (पृष्ठ ३२६)। यहा तुझ मे कम कारक का चिह्न हि लगा है और इस तुझहि से तुझे का विकास हुआ है। कबीर के पदा म एकु, करमु, गिग्रानु, निरमलु, ससारु, गुरु, ग्रलहु आदि उकारान्त अवधी रूप भरे पडे है। कुतुबशतक क समान यहा भी बहुत जगह सयुक्त स्वरा का व्यवहार हुआ है यथा जउ, जिसका वतमान रूप जो है।

महाराष्ट्र क स त नामदेव न जो हिन्दी पद रचे थ, उनम भी हू वाले रूप मिलते हैं। एक नामदव पजाब म भी थ और इस बात को लेकर विवाद हो सकता है कि कौन से पद किस नामदव क है। किन्तु महाराष्ट्र म किसी भी नामदेव क हिन्दी पद मिले, इसमे सन्देह नही कि उनम भाषा-सम्बन्धी विशेषताएँ वसी ही है जसी कुतुबशतक म हैं, गुरु ग्रथ साहिब म दिय हुए कबीर क पदा म है। ऐसी कुछ विशेषताए रामचरित मानस की क्रियापद रचना म है। इससे सिद्ध होता है कि व्यापक पैमाने पर हिन्दी जनपदीय भाषाओ के तत्वो का मिश्रण हो रहा था और व खडी बोली को प्रभावित कर रही थी। डा० भगीरथ मिश्र ने पूना विश्वविद्यालय से जो सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली (१९६४) प्रकाशित की है, उसम उन्होने लिखा है "नामदव की भाषा मूलत ब्रज है और उस पर पजाबी, राजस्थानी, रेखता और मराठी का प्रभाव है। बहुत स शब्द जनपदीय बोलिया से भी लिये गये है।" (पृष्ठ ४०)। नामदेव कहते हैं बालू के मन्दिर बिनसि जाहिगे (पृष्ठ ४१), यहा जाहिगे खडी बोली का रूप है अवधी रूप जाहि म गे जोड कर बनाया गया है। इसी पद म कहत हैं कोटि उपाइ जु करही रे नर, और प्राब बबूल न फलही रे नर। यहा फलही और करही—गे के बिना—अवधी के विशुद्ध भविष्यकालीन रूप है। इसी पद म रतन न मिलहि उधारे रे नर, यहा मिलहि वतमान काल के अन्य पुरुष का बहुवचन रूप है। पुन इसी पद म झूठे करहु पसारा रे नर, यहा करहु वतमान काल के मध्यम पुरुष का बहुवचन रूप है। ऐसा ही रूप आदेश के लिये भी प्रयुक्त होता है, चेतहु रे चेतनहार (पृष्ठ ३९)। जाइगी (पृष्ठ ७), कहेगे (पृष्ठ ८), आइये न जाइये (पृष्ठ १३), मुख बेद पुरान पढता (पृष्ठ २८), ऐसे खडी बोली के रूप भी है। एक पद या आरम्भ होता है काहे रे मन भूला फिरई। चेति न राम चरन चित धरही (पृष्ठ ३५)। यहा धरही अवधी का वतमानकालिक अन्य पुरुष, एकवचन रूप है। स्पष्ट ही पहली पक्ति के पाठ म फिरई के स्थान पर फिरही पढ़ना उचित है। अवधी क इस एकवचन रूप के समानान्तर वतमान काल मे ही अन्य पुरुष के बहुवचन रूप जाहि खाहि है काइरे मन बिखिया बन जाहि। देखत ही ठग मूली खाहि। (पृष्ठ २७)। अवधी रूप पुरानी हिन्दी कविता म है, इसके साथ वे पुरान हिन्दी गद्य म भी मिलते है।

पंजाब विश्वविद्यालय के गोविन्दनाथ राजगुरु ने गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य (राजकमल, सन् १९६९) नाम की महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। इसमें उन्होंने सत्रहवीं अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों के गद्य लेखकों का परिचय दिया है और उनके गद्य के नमूने दिये हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने हरि जी सोढी कृत गोसटि गुरु मिहरिवानु भी सम्पादित की है। यह पुस्तक पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९७४ में प्रकाशित हुई थी। पंजाब में हिन्दी का जो पुराना गद्य प्राप्त है उस पर उन्होंने कुछ अन्य निबंध भी लिखे हैं। यह सारी सामग्री हिन्दी गद्य के विकास तथा हिन्दी भाषा के मानक स्वरूप के विकास को समझने में सहायक है। सबसे अधिक इस पुराने गद्य का महत्व इस बात में है कि इसमें विभिन्न जनपदों की भाषाओं के परस्पर सम्पर्क का प्रमाण मिलता है। इस सम्पर्क के फलस्वरूप एक ऐसी भाषा का व्यवहार साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्यों के लिये होने लगा था जिसमें बहुत से रूप अवधी और ब्रज के हैं। जो परिणाम पद्य की भाषा के अध्ययन से जनपदीय सम्पर्क के बारे में निकाले जा सकते हैं, उन सबकी पुष्टि इस गद्य के विश्लेषण से होती है। जिन लोगों को गुरु ग्रंथ साहिब में कबीर आदि संतों के दिये हुए पदों की भाषा के बारे में सन्देह हो, उन्हें इस गद्य का अध्ययन करना चाहिए। वर्तनी की अनेक विशेषताएँ दोनों में समान हैं, यह स्वाभाविक है क्योंकि लिपि गुरुमुखी है और लिपि-क्षेत्र पंजाब है। महत्वपूर्ण समानता है गद्य और पद्य की भाषा में संरचना की दृष्टि से। यदि यह संरचना आधुनिक पंजाबी या बांगरू के रूप दिखलाती तो उसका इतना महत्व न होता। यहाँ गद्य वाला जो रूप है, वह पंजाबी से तो भिन्न है ही, बांगरू से भी काफी भिन्न है। वह ब्रज से प्रभावित है किन्तु उसमें ब्रज भाषा की संरचना नहीं है। उसमें अवधी के वे रूप हैं जो कोसल से पूर्व और पश्चिम की अनेक भाषाओं में मिलते हैं। इस गद्य में पंजाबी के भी [illegible] रूप हैं जो अब मानक हिन्दी में स्वीकृत नहीं हैं। सत्रहवीं सदी तक, गद्य के माध्यम के रूप में, आधुनिक हिन्दी का एक रूप बन चुका था जिसमें [illegible] अनेक [illegible] भाषाओं के तत्व [illegible] किन्तु वह—बांगरू समेत—जनपदीय भाषाओं से भिन्न था।

गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य पुस्तक [illegible] सबसे पुराना उद्धरण है वह मिहरि-वानु कृत सचुखंड पोथी [illegible] है। इसमें कुछ बातें [illegible] उनमें सर्वप्रथम है हिन्दी [illegible] पर [illegible] प्रभाव। [illegible] इस पुस्तक में—अर्थात भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी में—[illegible] यह बात कही गई है कि उत्तर-पश्चिम [illegible] कहीं-कहीं [illegible] प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति इस [illegible] में आज भी [illegible] देखी जा सकती है [illegible] इस प्रवृत्ति का अपभ्रंश के साथ [illegible] जोड़ा गया है [illegible] उदाहरण [illegible] कर दिया गया है। [illegible] है [illegible] उत्तर-पश्चिमी प्रभाव का परिचायक है। सचुखंड पोथी में [illegible] गोबिंद राम नाम को, अंत जुग महि राखा नाम [illegible] पहर निमखनि विखानि महि रखै, परमातमा राम नाम [illegible] सतगुरु राम नाम सा कहिया।

यहा राजा त्रैता, श्रठ (आठ), संसार, थाबा, ये शब्द एकार से लिखे गय हैं। यह एकार शब्द के आदि और अन्त मे, दोनो जगह आता है। इन रूपो के साथ जि और सि सवनाम तुलनीय है। वास्तव मे य एकारान्त रूप ह, जि और सि उनके रूपान्तर ह। व्रजभाषा मे जि का प्रयोग अब भी होता है। बँगला म जे और से रूपो का चलन है जो वास्तव मे उत्तर-पश्चिमी है– हिन्दी मे जो और सो का व्यवहार होता है और ये रूप मूलत मागधी है। सचुखड पोथी म लिखा है कपड की धरमसाला चल जि नागा होइ सि पहिर। यहा जि और सि के मूल रूप जे और से है।

दूसरी बात जो ध्यान देन की है वह उकारान्त रूपा का व्यवहार है नामु दानु इसनानु सीलु सजमु कमाव राजा जनकु। इस तरह के उकारान्त रूप गुरु ग्रथ साहिब म उद्धत किये हुए पदा म भी है। तीसरी ध्यान देने की बात यह है कि कुतुबशतक मे जसे व्रज के प्रभाव स अनेक शब्द इकारान्त है, वैस रूप यहा है। तब, बस, पास जैसे शब्द तबि, बसि पासि लिखे गये है। एक जगह जनक को भी जनकि लिखा गया है तबि जनकि भगति कहिश्रा। कारक चिह्नों मे सौं कु आदि का व्यवहार ब्रजभाषा क अनुरूप है। आदेश के लिय क्रिया का इकारान्त रूप मिलता है जिउ जानहु तिउ करि, तब गरु बाबेनानक जी कहिश्रा जि सुनि हो मुला म किसु साथि बोलिउं। (सुनि हो मुला अर्थात ह मुल्ला, सुन।) सचुखड पोथी म क्रिया के कृदन्त रूप काफी है जैस आधुनिक हिन्दी म प्रयुक्त होत है होता है रहते हैं, करती है श्रावत हैं। इनके साथ कही कही बागरू और पजाबी क सघोष ध्वनि वाले कृदन्त रूप फिरदा है, करदा है अथवा अघोष ध्वनि वाले कीती है जस रूप मिलत है। आश्चय की बात है कि यहा वतमान काल के तिड त रूप समापिका क्रिया के बिना काफी प्रयुक्त हुए है। रहै कर, कमाव पीव, पहिर जैस प्रयोग अनक जनपदा म दखने को मिलते है। य रूप वास्तव म करहि—करइ—कर इस क्रम से बने है। बहुवचन म हि वाल रूप अधिक सुरक्षित रह है। धरम साला राजे जनक कीश्रां चलहि—यहा चलहि वतमान काल का अन्य पुरुष बहुवचन रूप है। इसी के आग वाक्य है पाणी की धरमसाला चलै। यहा चलहि का रूपान्तर चल प्रयुक्त है। तिसु के तू निकटि न श्राइग्रहु (आयह)—यहा महाप्राण ध्वनि युक्त अवधी का आदेशात्मक क्रिया रूप प्रयुक्त हुआ ह। इसी प्रकार जिउ जाणहु तिउ करि—इस वाक्य म जाणहु वतमान काल का मध्यम पुरुष बहुवचन रूप है। नानक का पथ चलावउंगा—*यहा चलावहु रूप म ह रा लोप हुआ है और ग प्रत्यय जोडा गया है।* इसी प्रकार देउंगा पहले देहुंगा था। इसम दूगा मानक रूप का विकास हुआ है। हउ एहा बात पडित पछता हउं—यहा पहला हउ सवनाम है व्रजभाषा मे हौं, हू इसी के रूपान्तर हैं, दूसरा हउं क्रिया है। इसका पूवरूप हहुं था। मानक हिन्दी का हू इसस विकसित हुआ है। एक दिलचस्प क्रिया रूप हैनि ह। सि एहु भी पछाव कि निश्राई हैनि रूप जोवनु जि है सि एहि भी पछावे को निश्राई हैनि। हैं का पूवरूप है हैनि। पाद टिप्पणी म सम्पादक न लिखा है हैं। पजाबी।' स क्रिया क स रूप म बहुवचन के लिय नि जोडा गया, इस प्रकार सनि स हैनि और हैनि म हैं का विकास हुआ।

हैन और हैनि रूप गोसटि गुरु मिहरिवानु म भी है तवि ना किछु उह बाहरि प्रकासि महि प्रवि प्राए हैन। सहिजे ही प्राए सहिजे ही उठ गए हैनि। तसे ही परमेसुर के नगति प्रागिप्रा पाइ करि सहिजे प्रावते हैनि प्ररु सहिजे ही उठि जात हैनि। (पृष्ठ १७२)। क्रिया रूपों में पावहिंगे करहिंगे (पृष्ठ १७३) जैसे रूपों में वर्तमान कालिक हि वाला तिङन्त रूप विद्यमान है। होइगा (पृष्ठ १७४) होहिगा का रूपान्तर है। बोलहु भाई वाहु गुरु नानक (पृष्ठ १६६), एसु बालके का नामु मनोहरि दासु राखहु (पृष्ठ १७४), तुसी एस के प्रागे टहल करहु (पृष्ठ १७६), सुनहु भाई सतहु (पृष्ठ १८१) यहाँ क्रिया के आज्ञार्थ रूप अवधी के समान हैं। उकारान्त रूप इसनानु, फलु, लोकु बिगसमानु बलु, रगु बहुतु दिनु जिसु (पृष्ठ १८३) भरे पड़े हैं। जे और से सर्वनाम भी दर्शनीय हैं प्ररु साधि जनि जेहैं से जगम तीरथ चेतनु रूपु हैं। (पृष्ठ १८५)।

गुरुमुखी लिपि में हिन्दी गद्य पुस्तक में अठारहवीं सदी के गद्य का नमूना पचासत उपनिषद भाषा से लिया गया है। इसमें मानक हिन्दी के शेष अकारान्त वर्तमानकालिक कृदन्त के स्थान पर ब्रजभाषा के समान ह्रस्व अकारान्त रूपों का व्यवहार हुआ है। प्रंगीकार करत है, कहिलावत है, प्रापत होत है, प्रापति करत है, दूर होत है, जीवत है, उचार होत है, प्रगनि निकसत है—यही रहा—सूरज पूरब दिशा सों निकसता है—आकारान्त रूप भी है। ब्रजभाषा का प्रभाव कहियतु जैसे रूप के प्रयोग में देखा जा सकता है, ताको प्रणव कहीप्रतु है ताको प्रधान कहिप्रतु है। भया और भय की भरमार है पुनह मन प्रगट भया। प्ररु करम इंद्र उतपत भए। प्ररु भूताकास उतपत भया। प्ररु पवन उतपत भई। प्ररु प्रगन प्रगट भया। प्ररु प्रग्नी उतपत भई। (पृष्ठ २०२)। ये और इस तरह के अनेक वाक्य एक साथ आते हैं।

अठारहवीं सदी की एक पुस्तक विहंगमवाणी में [illegible] वाले [illegible] का प्रयोग ध्यान देने योग्य है उतरनगे, लगनगे, प्ररावनगे, चढनगे, हावनगे (पृष्ठ २६७)। यह कृदन्त रूप पुरानी अवधी का है, [illegible] में अब भी प्रयुक्त होता है। [illegible] पुराने [illegible] वाले दो रूप और हैं होगु, होगु सुरति तब पवित्र होत जा तेरो दिसटि होगु। (पृष्ठ २६७)। यह [illegible] प्रत्यय है और [illegible] भी रहा होगा, पर उसका [illegible] रूप है। गद्य पुस्तक में रूप [illegible] [illegible] है, इसका प्रमाण यह है कि आदि गुरु ग्रंथ साहिब में [illegible] है [illegible] जौ पाईए जागु। प्रन का निरगु सुरति सनु होगु। (पृष्ठ ३२४)। यह [illegible] में खूब प्रयुक्त होता है यद्यपि उसका [illegible] नहीं है। [illegible] का कोई [illegible] है।

ब्रजभाषा का प्रभाव [illegible] प्रयोग हैं [illegible] (पृष्ठ ३०४) [illegible] (पृष्ठ ३०६)। [illegible]

माना गया है। ऐसे वाक्यतत्र म, जिसम विधेय पहले आता था, दूसरी तरह का वाक्यतत्र घुल मिल गया है, जिसम उद्देश्य पहले आता था। ग्रियसन न अपन भाषा सर्वेक्षण ग्रथ के आठवें खण्ड के पहल भाग म सि धी और लहदा (पश्चिमी पजाबी) का विवेचन किया है। इसम उ होन लहँदा और उससे सम्ब धित जिन बोलियो का विवेचन किया है, उनमे क्रियारूप ऐस हैं जो अपने सवनाम चिह्न द्वारा कर्त्ता के पुरुष और वचन की सूचना देते है, फिर भी वाक्य के आरम्भ म अलग स कर्त्ता प्रयुक्त होता है।

एक वाक्य है मैं गिउस—मैं गया (पष्ठ ३६५) यहा गिउस क्रियारूप उत्तम पुरुष एकवचन के लिये सुरक्षित है फिर भी उसके पहले कर्ता मैं विद्यमान है। मै हुम - मैं था,' यहा क्रियारूप हुम कर्ता मैं की सूचना देता है, फिर भी कर्ता मैं अलग से विद्यमान है। उस नू होश आइउस—इस वाक्य का अनुवाद ग्रियसन ने इस प्रकार किया है उसको होश आया उसको (पष्ठ ३८२)। जो सवनाम सम्प्रदान कारक म प्रयुक्त हुआ है, वही क्रिया के साथ है। क्रिया के साथ अ य पुरुष एकवचन की सूचना दने वाला यह सवनाम अनावश्यक है क्योंकि होश, अलग से कर्ता रूप म ही, विद्यमान है। जब हम कहते हैं, होश आया, तब आया को अनावश्यक सवनाम के ब धन से मुक्त कर देते हैं। कि तु पश्चिमी पजाब की बोलियो के गिउस और आइउस रूपो से तुलना कीजिये बघेली के रूपो की। धीरे द्र वर्मा की ग्रामीण हि दी म बघेली का एक वाक्य है पछारी ऐसन भइस कि बपारी कौनऊ बात मे राजा के ढिगा कसूर मे भुक गइस। अवध की अवधी म भइस और गइस की जगह भा और गा रूप होगे, भइस और गइस अवधी के पुराने रूप हैं जो बघेली म सुरक्षित है।

ग्रियसन के उदाहरणो से एक महत्वपूण निष्कष यह निकलता है कि अ य पुरुष सवनाम का एकवचन रूप स उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र म खूब प्रयुक्त होता है। आखेआसु—उसने कहा, पुच्छेआस—उसने पूछा तक्केआसु—उसने देखा, छोडेस—उसन छोडा। कही स है तो कही सु और कही उससे थोडा भि न उस। यह सवनाम रूप उत्तम पुरुष के लिये भी प्रयुक्त होता है यथा म गिउस वाक्य मे। या तो एक ही सवनाम अनेक पुरुषो के लिय प्रयुक्त होता है या फिर उत्तम पुरुष वाले स का स्रोत कोई दूसरा है। संस्कृत के अस्मद म अस उत्तम पुरुष सवनाम का एकवचन रूप है। अहम अदम जस रूपो से यह निष्कष निकलता है कि अस का आधार अध है। पजाबी का असीं या अस्सीं उत्तम पुरुष का बहुवचन रूप उसी अस से सम्बद्ध है जिसका आधार अध था। होन के लिये आस अस क्रिया भी थी, इस कारण इस क्रिया के रूप और सवनाम रूप कही-कही बिलकुल एक से होते है। अस की प्रतिरूप आस क्रिया का आह रूपा तर पश्चिमी पजाब मे प्रचलित है। उत्तम पुरुष एकवचन म इसके दो भूतकालिक रूप है आहिस और आहिम (पृष्ठ ३८६)। यहाँ आहिस का स अस्मद के अस का अवशेष है और आहिम का म मद का। लहँदा क्षत्र मे मानक हि दी का म सवनाम व्यापक रूप स प्रयुक्त होता है। यह मध का रूपा तर है, इसका प्रमाण यह है कि यहाँ उसका वकल्पिक रूप मा भी प्रचलित है। मया से चाहे म सिद्ध कर लीजिये चाहे मा, उसस दोना रूप सिद्ध नही हो

पजाबी की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसके कुछ शब्दो मे स्वरताना का व्यवहार है। इनका विवरण इण्डियन लिंग्विस्टिक्स (जून १६५७) म कालीचरण बहल ने टोंस इन पजाबी निबन्ध म दिया है। अमतसर के आसपास की पजाबी को उन्होंने आधार बनाया है। उनका कहना है कि पजाबी शब्दो म बलाघात का महत्व नही होता किन्तु स्वर तान अथ विच्छेदक होती है। उन्होने तीन तरह की स्वरतानें मानी हैं, गिरती, उठती और समतल। तीन स्वरतानो के अनुसार पाल्ला शब्द के तीन अथ होते हैं—ठढ, भाला, घमडी। इसी प्रकार चा शब्द के तीन अथ है चार, शर्मीलापन, चाय। टाग के तीन अथ है टागना, ढग और टाग यानी पर। महाप्राणता की क्षतिपूर्ति स्वरताना से होती है और प्रथम वण का जो स्वर मूलत ह्रस्व था वह सुनने म दीघ जान पडता है। इससे विदित होता है कि पजाबी मे सवत्र स्वर की ह्रस्वता या दीघता अथ विच्छेदक नही होती। कालीचरण बहल ने जो उदाहरण दिये हैं उनमे अनेक ऐसे शब्द हैं जिनके मूल रूप म सघोष महाप्राण ध्वनि थी। महाप्राणता के लोप के कारण स्वर के साथ कोई न कोई तान जुड जाती है। बेली ने पजाबी मनुअल ऐड ग्रामर म लिखा है कि ह के कारण अनेक शब्दो म स्वर का स्तर बदलता है, ह बोला नही जाता वरन स्वरतान निश्चित करने के लिये होता है। उक्त पुस्तक मे कहा गया कि यह स्थिति चीनी भाषा म स्वरताना की स्थिति स मिलती जुलती है। यह सम्भव है कि पजाबी पर नाग भाषाओ का प्रभाव पडा हो। नाग भाषाओ म स्वर की दीघता महत्वपूर्ण नही होती, स्वरतान अथ विच्छेदक होती है। पजाबी म स्वरताना का व्यवहार बहुत सीमित है। इसकी तुलना म वदिक भाषा म स्वरताना का व्यवहार अधिक होता था पर य स्वरतानें सगीतात्मक थी, अर्थविच्छेदक नही। पजाबी की स्वरतानें उनसे सम्बद्ध प्रतीत नही होती। बागरू और पजाबी म स्वरतान सबधी अन्तर महत्वपूर्ण है। एक रोचक तथ्य यह है कि जिन शब्दो के मूल रूप म सघोष महाप्राण ध्वनि थी वहा तो सघोषता और महाप्राणता का लोप होने पर स्वरतान का व्यवहार होता है, किन्तु जहा ब के साथ ह दिखाई दिया वहा पजाबी दोनो को मिलाकर नयी सघोष महाप्राण ध्वनि बना लेती है यथा बहन का पजाबी रूप भण काफी प्रसिद्ध है।

ग्रियसन ने पश्चिमी पजाबी और पडोसी भाषाओ की एक विशेषता क्रिया के साथ सवनाम जोडने की पद्धति मानी है। यह पद्धति किसी एक भाषा-परिवार तक सीमित नही है और उसे हिन्दी आदि भाषाओ से अलग पश्चिमी पजाबी को एक विशेष वग म रखने का आधार नही बनाया जा सकता। यह पद्धति एक विशेष प्रकार के वाक्यतत्र की देन है। उस वाक्यतत्र म क्रिया पहले आती है, कर्ता उसके बाद। इसके विपरीत एक दूसरी तरह का वाक्यतत्र है जिसम कर्ता पहले आता है और क्रिया बाद म आती है। अहम् पठामि म और मैं पढता हूँ तथा आय भाषाओ के वाक्यतत्र म दोनो पद्धतियो का समन्वय दिखाई देता है। पठामि केवल उत्तम पुरुष एकवचन के साथ प्रयुक्त होगा, अत अतिरिक्त कर्ता अहम् अनावश्यक है। पढता हूँ या हूँ उत्तम पुरुष एकवचन की सूचना देता है मैं अनावश्यक है। किन्तु दोनो वाक्यो म अहम् और मैं का प्रयोग उचित

सक्ते। किन्तु मध का मूल रूप मानने से उसके रुपान्तर म और मा दोना सिद्ध होत हैं कोमली वृत्ति से मा, और कौरवी वत्ति से मैं। पजाब की एक बोली म ह क्रिया क हम, हाउम हाइम हाउस अनेक वैकल्पिक रूप उत्तम पुरुष एकवचन के लिये ह। यहाँ भी म और स चिह्ना का वैसा ही वकल्पिक प्रयोग दिखाई दता है। अय पुरुष क बहु वचन रूप आहिम (पृ० ३०४) से अवधी के हम आहिन और वो आहीं रूप तुलनीय हैं।

भविष्य काल म सभी पुरुषो के क्रिया रूपो मे स चिह्न दिखाई दता है। मारे सां, मारे सें, मारे सो—उत्तम, मध्यम और अ य पुरुष के एकवचन रूप हैं। यहाँ स भविष्य काल की सूचना दता है कर्ता सवनाम की नही।

लहँदा क्षेत्र म कृदन्ता का प्रयोग काफी शिक्षाप्रद है। गाँ डिटठीम—गाय मरे द्वारा देखी गइ (पृ० २७०)। यहाँ कृदन्त कमवाच्य है और कता सवनाम चिह्न द्वारा सूचित है। उस मारे अम—मैं उसके द्वारा पिटा (पष्ठ २१०)। हिन्दी मे जब हम कहत हैं मने मारा, तब ग्रियसन आदि कहते है, यह कमवाच्य प्रयोग है और मने का अय है—मेरा द्वारा। कितु उस मारे अम म कर्ता उस के साथ करण कारक का कोई चिह्न नही है। जब इसके साथ दिया हुआ एक और वाक्य देखें उसनू मारे अम—मैंने उस मारा। यहा उसके साथ कम कारक का नू चिह्न लगा है। कर्ता की अलग स आवश्यकता नही है क्योंकि क्रिया के अम चिह्न स काम चल जाता है। उस मारे अम, इस वाक्य म अम कम की सूचना दता है किन्तु उसनू मारे अम—मैन उस मारा, यहाँ अम कता की सूचना दता है। एक ही सवनाम रूप कर्ता और कम की सूचना द सक्ता है। क्रिया के साथ जो सवनाम चिह्न लगता है, वह कर्ता ही नही, कम की भी सूचना द सकता है, यह स्थिति यहा आशिक रूप म झलकती है। इसका पूण प्रसार मगही और मथिली भाषाओ म है। लहँदा क्षेत्र की बोलिया म हिन्दी के समान जाना का अथ देने वाली क्रिया को कृदन्त म जोडकर कमवाच्य बनाते हैं। मरी वासां—मारा जाऊँगा, मरी गए—व मारे गए (पष्ठ २६६)। कन्दाई—मैं कर रहा हूँ या मैं करूगा (पृष्ठ ३८६), यहाँ कृदन्त कन्द म सवनाम चिह्न जोडा गया है। कृदन्त रूप मूलत किसी काल की सूचना न दते थे अत कन्दाई मे वतमान और भविष्य दोना कालो का बोध होता है। कृदन्त रूपो क साथ सवनाम चिह्न जोडने की प्रवृत्ति मागधी भाषाओ की याद दिलाती है। करदित्तुस—उसने कर दिया (पष्ठ २८२), यहा दित्त कृदन्त म सवनाम चिह्न जोड़ा गया है। पर सदा सवत्र नहा होता। हिन्दी क समान कृदन्त रूप सवनाम चिह्नो स मुक्त भी होत है। दित्ता, दित्तडा, दोनो का अथ है उसन दिया। हिन्दी क समान करिये—हम करें खाविये—हम खायें जस रूपो का चलन भी है (पृष्ठ २८१)। आखिया—कहा, गिया—गया रूप हिंदी स मिलत जुलत हैं। बठन क लिय बाह क्रिया है। इसका भूत कालिक कृदन्त बइठा, बठा है (पष्ठ २०८)। यही कृदन्त रूप हिन्दी म सामान्य क्रिया का काम दता है।

ध्वनि परिवतन क कारण भाषा म जो पररूपिक रूप मिलत हैं उ हु नया अथ देकर लहँदा क्षेत्र की बोलियाँ उन विस्तार करती हैं। पीन और पीह एक ही क्रिया के

दो वैकल्पिक रूप हैं। स के ह म बदलने से पीह रूप भी प्राप्त हो गया और पीस का अस्तित्व मिटा नहीं। दो तरह की ध्वनि प्रक्रिया एक साथ काम करती रही। तब पीह कर्तृवाच्य हो गया और पीस कर्मवाच्य। डोह—दुहना, डुभ—दुहा जाना (दुग्ध का प्रतिरूप दुभ्भ भी प्रचलित रहा होगा, डोह के ह का पूर्व रूप यहाँ भ था) सी—सीना, सीप—सिया जाना (मूल क्रिया सी म यहा भी प वर्गीय कृदन्त चिह्न लगाकर सीप रूप बनाया गया।) ता—गमाना, तप—गमाया जाना (यहा मूल क्रिया त, ता हो सकती है।) इस क्रिया से रूठा (पृ० ३६४), बठा की तरह, हिन्दी रूठा की रचना को उजागर करता है। लहँदा म नस—भागना से नठा, ग्रह (मूलत त्रस—डरना) से त्रठा, यह प्रवत्ति यहा काफी व्यापक है। एक क्रिया है वत्त—घूमना जो वत का रूपान्तर है। वत—स्वय मूलत वर् क्रिया का कृदन्त रूप वत है। वत्त का भूतकालिक कृदन्त यहा वदा है (पृष्ठ ३४५)। अवश्य ही वत म रेफ ससर्ग के कारण वदा का एक रूप वड्डा भी रहा होगा। इसका कौरवी रूप होगा बेडा। बँगला के बेडाच्चे (घूमता है) म वही कृदन्त रूप बेड मूल क्रिया का काम करता है और अवध म घुमन्तू लोगो के लिये प्रयुक्त बडिया शब्द इसी के आधार पर बना है।

लहँदा क्षेत्र म क्रियार्थी सज्ञा रूप ना णा और न ण, दोनो प्रत्ययो के साथ बनता है। कहणा और कहुण दोनो रूप मिलेंगे। एक कृदन्त रूप है पूर्वकालिक क्रियाओ का घिन्न (लेकर) (पृष्ठ ३३१)। अवधी के दो ह, को ह की तरह घिन्न का पूर्व रूप घिन्ह था और घिन्ह का पूर्व रूप घिन्ध था।

यद्यपि लहँदा म कृदन्त रूपो का काफी व्यवहार होता है, फिर भी अनेक बोलियो म तिडन्त रूप अब भी प्रयुक्त होते हैं यथा वर्तमान काल म मारे—मारता है। (पृष्ठ ३०६)। मारहि—मारइ—मार—मारें विकास की यह शृंखला है। मुल्तान म कराहीं पूर्वकालिक क्रिया रूप के 'कर' का अर्थ देता है। खा कराहीं—खा कर (पृष्ठ ३३०)। यह कराहीं वर्तमान काल का अन्य पुरुष रूप है जो पूर्वकालिक रूप के लिये प्रयुक्त होता है। लहँदा क्षेत्र म स सर्वनाम का व्यवहार तो काफी होता है किन्तु स क्रिया का ह रूप ही यहा अधिक प्रचलित है। हम, हावे, हा उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुष के वर्तमान कालिक एकवचन रूप है। हा का स्त्रीलिंग रूप हाइ है कृदन्त प्रभाव से क्रिया रूप म विशेषण के समान लिंगभेद किया गया है। अतीत काल के लिये रूप है झेरा कीतस—उसने झगडा किया (पृष्ठ ३७९)। यहा कीत भूतकालिक कृदन्त है जिसम अन्य पुरुष का सर्वनाम चिह्न जोड कर क्रिया रूप बनाया गया है। अवधी की हँसि (भूतकाल, अन्य पुरुष, एकवचन) और कीतस की सरचना का ढँग एक ही है, भूतकालिक कृदन्त म सर्वनाम चिह्न को जोडना। यही कृदन्त रूपो का तिडन्तीकरण है। लहँदा की एक विशेषता निषेधात्मक भाव से ह क्रिया का व्यवहार है। मैं नहीं हूँ—नी म्हो, हम नहीं हैं—निहसे, निस्से, तू नहीं है—नी हवो, नेही, तुम नहीं हो—नी हवे, ने हे वह नहीं है—नी हसो, न इह, नहीं, व नहीं है—निन्ने हैं ने हन। (पृष्ठ ३०४) यहा निषेधात्मक प्रत्यय नी या ना म ह क्रिया जोड कर ये रूप बनाये गये है। ऊपर अन्य

पुरुष एकवचन रूप नहीं हिंदी के नहीं से बिल्कुल मिलता है। हिंदी का यह निषेधात्मक अव्यय इसी प्रकार ह क्रिया के आधार पर बना होगा।

पूर्वकालिक क्रिया का एक रूप विचित्र है। इसके अन्त में ड प्रत्यय लगा रहता है। निकलोड—निकल कर (पृष्ठ २८१)। यह ड र का रूपान्तर है और र कर का अवशेष है। निकलोड का पूर्वरूप होगा निकलि कर। क्रिया के ऐसे पूर्वकालिक रूप जिनमें र लगा हो, राजस्थानी क्षेत्र में बहुत मिलते हैं। वही र यहाँ बागरू प्रभाव से ड हो गया है। सामान्यतः लहँदा में क्रिया के पूर्वकालिक रूप हिंदी के समान बनते हैं, यथा बज्ज के—जाकर (पृष्ठ २८२)।

लहँदा के सर्वनाम रूप ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पहले उत्तम पुरुष एकवचन के रूप देखें। हमारा के लिये असाडा, तुम्हारा के लिए तुसाडा या तुहाडा के समान मेरा के लिए माहडा रूप भी है (पृष्ठ ५७१)। जैसे असाडा में असा, तुसाडा में तुसा आधार शब्द है, वैसे ही माहडा का आधार शब्द माह है। इसी का कर्म-सम्प्रदान रूप माहक अथवा माहको है। अब इसमें सन्देह न रहना चाहिए कि उत्तर पश्चिमी आर्य भाषा क्षेत्र में किसी समय मध जैसे सर्वनाम रूप का व्यवहार होता था। मह, मद, मस इसी के रूपान्तर होंगे। मध्यम पुरुष के एकवचन करण कारक का रूप तुध दिया है (पृष्ठ ५७१)। इस तुध से तुझ वाला रूप मिला, वैसे ही मुध से मुझ रूप मिलेगा। मुध, मध, माध वैकल्पिक रूप थे जो विभिन्न कारकों के आधार बने। तुध के साथ सम्बन्ध कारक में मध्यम पुरुष सर्वनाम का एकवचन रूप तोहडा है (पृष्ठ ५७१) जो मागधी भाषाओं के तोहर, तोहार से तुलनीय है। दोनों का ही आधार तध या ताध सर्वनाम होगा। प्रश्नवाचक सर्वनाम का भी कध जैसा रूप प्रचलित था, यह काहडा (किसका) से प्रमाणित है (पृष्ठ ५७१), भोजपुरी में भी केह जैसे सर्वनाम रूप का चलन है। लहँदा की अनेक बोलियों में मेरा, तेरा जैसे रूप प्रचलित हैं (पृष्ठ २५६)। इनसे विदित होता है कि मध—मह में मे और तध—तह से ते रूपों का विकास भी हुआ था। जैसे माहडा-काहडा वाली बोली में क्या के लिये प्रश्नवाचक सर्वनाम के है (पृष्ठ ५७१), वैसे ही मेरा-तेरा वाली बोली में उत्तम पुरुष सर्वनाम का एकवचन रूप मां भी है (पृष्ठ २५६)। मे और मा दोनों रूप मह से बने हैं जिसका आधार मध है। यहां एकार, आकार और आकार वाली तीनों तरह की ध्वनि पद्धतियां घुलती मिलती दिखाई देती हैं। सम्प्रदान कर्म कारक का चिह्न का है क भी है (पृष्ठ ५७१)। रलो रेहा—रला रहा (पृष्ठ २८२)—इस आकार एकार मिश्रण का अच्छा उदाहरण है। सुदूर कोहाट में हिंदी पहले का प्रचलित पेसो (पृष्ठ ४६५) दूर-दूर तक हिंदी जनपदों के भाषा तत्वों का प्रसार सिद्ध करता है।

मध्यम पुरुष के लिए न, निह (पृष्ठ ३०३) सर्वनाम प्रत्यय के रूप में प्रयुक्त होते हैं। घर न अर्थात् तुम्हारा घर। मारेमान—तुमने मारा। केहडा ग्राउर निह—तुम्हारा गाँव कौन सा है (पृष्ठ ३०३) इस न, निह सर्वनाम रूप का आधार भी नध जैसा रूप होगा। मन्दन मे उत्तम पुरुष के लिए प्रयुक्त होनेवाला रूप है। दोनों परस्पर

सम्बद्ध होने चाहिए। कुछ बोलियों में ने रूप केवल अन्य पुरुष के लिए प्रयुक्त होता है (पृष्ठ ३०३)। एक ही सर्वनाम रूप अनेक पुरुषों के लिए प्रयुक्त हो सकता है, विभिन्न बोलियाँ कहीं उत्तम पुरुष, कहीं मध्यम पुरुष, कहीं अन्य पुरुष से उसे सम्बद्ध कर लेती हैं, कहीं यह सम्बद्धता एक से अधिक पुरुषों के साथ बनी रहती है।

मध्यम पुरुष सर्वनाम का एकवचन रूप थू भी यहाँ मिलता है (पृष्ठ ३७८)। या तो तू में अतिरिक्त महाप्राणता के संयोग से यह रूप बना है अथवा यह उस ध्वम् का रूपान्तर है जो कुछ संस्कृत क्रिया रूपों के अन्त में दिखाई देता है। दूसरी स्थिति में त्वम तू, थू उसी मूल रूप ध्वम के विकास माने जायेंगे। हिन्दी तू के अंग्रेजी प्रतिरूप दाउ में प्रथम वर्ण की सघोष ध्वनि मूल रूप के ध के कारण हो सकती है।

अन्य पुरुष सर्वनाम के एकवचन रूप सु और स व्यापक रूप में प्रचलित थे, इसका प्रमाण आखेआसु—उसने कहा, पुच्छेआस—उसने पूछा (पृष्ठ ५१३) जैसे क्रिया रूपों से मिलता है। स के ह में परिवर्तित होने पर ह वाले रूपों का चलन भी बड़े पैमाने पर हुआ। हे, हत, अन्य पुरुष सर्वनाम के एकवचन रूप हैं (पृष्ठ ३७८)। हे सीधा से का रूपान्तर है। हत सध का विकास है। सध के रूपान्तर हह, अह आह भी हो सकते हैं। ओंह की व्युत्पत्ति जो भी हो, इसका व्यवहार बड़े पैमाने पर होता था। माहड़ा-तोहड़ा वाली बोली में ओह भी है(पृष्ठ ५७१), इसी का पूर्वरूप आस पंजाबी के अन्य क्षेत्रों में प्रयुक्त होता है। आह रूप भोजपुरी में भी है। मानक हिन्दी में इसका रूपान्तर वह स्वीकृत है। आस का प्रतिरूप उस हिन्दी में प्रचलित है। एक उदाहरण में सुसको (उसको) रूप भी है(पृष्ठ ५७३)। यदि यह उदाहरण सही है तो उस का पूर्वरूप सुस होगा और इस सुस का मूल रूप सुध होगा। ऊपर जहाँ केहड़ा रूप का उल्लेख है वहाँ उसके समानान्तर जेहड़ा रूप भी ध्यान देने योग्य है (पृष्ठ ३०३) अन्य बोली में केड़ा, जोड़ा रूप हैं (पृष्ठ ३०३)। हर सर्वनाम रूप में किसी न किसी प्रकार ध के अवशेष दिखाई देते हैं। इसका एक रूपान्तर ह है अन्य रूपान्तर स (ध—द—ज—ज—स)। यह ध सर्वनामों के साथ जुड़कर नये सर्वनाम बनाता है और व्यक्ति स्थान काल आदि की सूचना देता है।

लहँदा क्षेत्र के अनेक शब्द ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व के हैं। इनमें एक शब्द है समय सूचक तोडी। पंजाबी मैनुअल ऐण्ड ग्रामर पुस्तक में तोडी और ताडी (इस समय तक) रूप दिए गए हैं। ये रूप अनेक काल सूचक द्रविड शब्दों में मिलते हैं और आगरे की बोली में ई तोडी (इस समय तक) जैसे रूपों का चलन है। जलने के लिए सडना पुनः द्रविड भाषाओं की सुळ् क्रिया की याद दिलाता है। जदो तदो ओदो (तब) में ज, त, ओ सर्वनाम चिह्न हैं जिनके संयोग से ये समयसूचक शब्द बने हैं। अजे का अर्थ है अभी तक। यह स्पष्ट ही अद्य के आधार पर बना है और निकट समय की सूचना देता है। स्वयं अद्य में द्य दिवससूचक है और अ सर्वनाम है।

उत्ते उता, उत (ऊपर) संस्कृत उत्तर के उत् की व्याख्या करते हैं। तीन चौथाई के लिए मुन्ना शब्द तमिल मुन (तीन) के आधार पर बना है। इसी प्रकार तमिल मुद

(प्रथम) से मुर्दो (आरम्भ से) सम्बद्ध है। यहा काटने के लिए वध् क्रिया के रूपान्तर वटठ का व्यवहार होता है। हिन्दी मे यह क्रिया सज्ञा रूप बढ़ई म रह गई है। टोल शब्द का एक अर्थ है इकट्ठा करना। हिन्दी टोला इसका प्रतिरूप है। इसी प्रकार खेल शब्द पुर के अर्थ म, गाव और शहरो के नाम के साथ, आता है जैसे ईसा खेल, भगी खेत। यह मूलत खेत का विकास है जिसका अर्थ था जोती हुई भूमि, आवास भूमि।

बलूचिस्तान म खेत्रान नाम का एक कबीला रहता है। ग्रियसन ने लिखा है कि इस कबीले के लोग सम्भवत पठान थे जिन्हे अकबर ने बलूचिस्तान मे खदेड दिया था। इनकी बोली खेत्रानकी कहलाती है। इसम बहुत से शब्द ठेठ हिन्दी जनपदीय रूपो की याद दिलाते हैं। सौंह व्रज का अपना शब्द है। घींच का प्रतिरूप यहा गिची प्रचलित है और घुटने के लिए गोडे शब्द है। मक्का को मकाही बोलते हैं। घीच, गोड, मकई अवध की याद दिलाते हैं। देखने के लिए लखन पुराना सुपरिचित शब्द है। बहुत्व सूचक घने घने का रूपान्तर है। नाभि के लिए नारा अनेक जनपदो म प्रचलित है यद्यपि इस अर्थ म उसका व्यवहार मानक हिन्दी म नही होता। लोमडी लूबड है, यह रूप अवध म प्रचलित है।

हिन्दी और पजाबी का आपसी सम्बन्ध जानने के लिये, इनके मानक रूप छोड कर, दोनो की बोलियो पर ध्यान देना आवश्यक है। मानक भाषाओ म जितना अन्तर दिखाई देता है उतना बोलियो म नही है। सकडो शब्द, शब्द भडार के मूल अश सर्वनाम, कारक चिह्न क्रियापद रचना तत्व बहुत मिलते जुलते हैं और कही कही बिल्कुल एक से हैं। पजाबी क्षेत्र के ऐसे रूप किसी एक हिन्दी जनपद के नहा हैं, उनका सम्बन्ध अनेक जनपदो स है और यह सम्बन्ध पजाब की सीमाए पार करके पठानो और बलूचियो के देश तक पहुचता है। पठान अग्रेजो से लडे और मुगलो से लड। तुर्कों की तुलना म उन्होने भारतीय भाषाओ की बहुत बडी सेवा की है। ग्रियसन ने अकबर स पठानो के सघर्ष की सम्भावना का उल्लेख किया है। अग्रेजो के विरुद्ध जो पठान लडे और हिन्दुस्तानियो के साथ मिलकर लडे, उसम सम्भावना का प्रश्न नहा है, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है और यह तथ्य बीसवी सदी का नही है। १८५७ के महान् सग्राम म कुछ वर्ष पहले हिन्दी प्रदेश म जो अग्रेज विरोधी अभियान शुरू हुआ था, उसका प्रभाव हजारा क पश्चिम म तनावल पर्वतमाला म रहने वाले पठानो पर पडा था। इसके बारे म ग्रियसन ने लिखा है कि ये तनावली पठान १८५३ ई० म हिन्दुस्तानी जहादियो स मिल गये और दोनो ने अग्रेजो पर हमला किया। 'शायद इन लोगो का आपसी सम्पर्क और पहले से चला आ रहा था और इसी कारण उनकी भाषा म जहा तहा हिन्दुस्तानी रूप दिखाई देते हैं।' (पृष्ठ ५७०)।

निस्सन्देह हिन्दियो और पठानो का सम्पर्क बहुत पुराना था। अग्रेजी राज म, और उससे पहले, इस सम्पर्क के कारण हिन्दी भाषा के बहुत से रूप वहा की भाषा म घुल मिल गये। पठानो के देश की तुलना म पजाब हिन्दी क्षेत्र के और भी निकट है। इस लिए यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि हिन्दी क्षेत्र की बोलियो के बहुत स रूप पजाबी भाषा

की बोलियो म मिलें। हिन्दी तथा हिन्दी प्रदेश की बोलियो को अलग रखकर पजाब की भाषाई स्थिति और मानक पजाबी के विकास का विवेचन नही किया जा सकता।

हिन्दी क्षेत्र के पश्चिम मे राजस्थानी का विशाल क्षेत्र है जो एक ओर बागरू और पजाबी को छूता है तो दूसरी ओर सिन्धी, गुजराती और मराठी को छूता है। मराठी की तुलना म इस क्षेत्र की बोलिया का सम्बन्ध सिन्ध और गुजरात की बोलियो से अधिक है। हिन्दी क्षेत्र की बोलिया म इनका सम्बन्ध व्रज और बागरू से विशेष है। यद्यपि मानक पजाबी के समान मानक राजस्थानी का विकास नही हुआ पर बोलियो के स्तर पर राजस्थान और पजाब की भाषाई स्थिति मिलती जुलती है, हिन्दी क्षेत्र की बोलिया से इस स्थिति का सम्बन्ध भी मिलता जुलता है।

राजस्थान मूर्धन्य ध्वनियो का क्षेत्र है। ट वर्गीय ध्वनिया के अतिरिक्त यहा ळ ड़, और ण का व्यवहार भी होता है। गुजरात म ऐसे क्षेत्र है जहा त-वर्ग का अभाव है, केवल ट वर्ग की ध्वनिया प्रयुक्त होती है। सम्भवत ऐसा क्षेत्र राजस्थान म भी थी। नेपाल की तराई म जो थारू लोग रहते है, वे राजस्थान से आये बताए जाते है। उनकी भाषा म ट, ठ, ड् आदि ध्वनिया है, त्, थ्, द का अभाव है। उनके आसपास कोई ऐसा भाषाई परिवेश नही है जो उन्हे त् के बदले ट् कहने पर बाध्य करता। इडियन लिंग्विस्टिक्स (खण्ड १-४, १९३१—३४) मे डा० बाबूराम सक्सेना ने थारू लोगो की भाषा पर एक लेख लिखा था। इसम उन्होने बताया था कि इस भाषा की सबसे बडी विशेषता त, थ, द, घ् के स्थान पर ट्, ठ् ड, ढ का व्यवहार है। डा० बाबूराम सक्सेना ने थारू लोगो के बीच म रहकर और उनकी भाषा सुनकर यह बात लिखी थी। उन्होने इस बात पर आश्चय प्रकट किया था कि ग्रियसन ने अपने सर्वेक्षण ग्रन्थ म इस महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख नही किया। ट वर्गीय ध्वनियो के उच्चारण मे अवधी बोलने वालो की जीभ प्रतिवेष्टित होती है या नही, उनके द्वारा उच्चारित ये ध्वनिया मूर्धन्य है या वर्त्स्य हैं, थारू लोगो के ट ठ्, ड् से वे कितना भिन्न हैं, ये प्रश्न गौण हैं। मुख्य बात यह है कि असम और सौराष्ट्र के अलावा थारू लोगो का भाषा क्षेत्र ऐसा है जहा ध्वनियो की एक ही शृखला है, त वर्गीय और ट-वर्गीय ध्वनियो मे अर्थविच्छेदक भेद हिन्दी क्षेत्र म है, इन भाषाओ के क्षेत्र म नही। राजस्थान और गुजरात म सवत्र किसी समय केवल ट-वर्गीय ध्वनिया रही हो, त वर्गीय नही, यह आवश्यक नहा है। किन्तु वहा कुछ क्षेत्र ऐसे थे, यह विश्वसनीय है। इस आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि ट वर्गीय ध्वनिया हिन्दी क्षेत्र म उधर से पहुची है और त वर्गीय ध्वनिया उधर के क्षेत्रो मे हिंदी प्रदेश से पहुची है। त ट् वाला भेद बहुत पुराना है, यह बात यूरुप की त वर्गीय लटिन समुदाय तथा स्लाव समुदाय की भाषाओ को देख कर समझी जा सकती है। उत्तरी यूरुप की जमन समुदाय की भाषाओ म ट-वर्गीय ध्वनियो की प्रधानता है जैसे कि अग्रेजी म। अग्रेजी मे जहा-तहा ड और द् का भेद तो दिखाई देता है जसे डॅन, (गुफा) और दन् (तब), पर ऐसा भेद त और ट मे नही है। अग्रेजी म त् ध्वनि का पूर्ण अभाव है। उधर रूसी, इतालवी आदि भाषाओ म ट वर्गीय ध्वनियो का पूर्ण अभाव है।

वरण पडोसी गुजरात के अलावा मथिली और बँगला,मे भी है, नेपाली तथा अनेक पहाडी भाषाओ मे है। इससे हम कल्पना करते है कि किसी समय इस क्षेत्र थ जो स के स्थान पर छ का ही व्यवहार करते थे। श के स्थान पर छ का व्यवहार सस्कृत के अनेक रूपो को प्रभावित कर सका था जैसा कि प्रश्न और पृच्छति के उदाहरण स ज्ञात होता है। बँगला मे एक ओर दन्त्य स को तालव्य करन की प्रवत्ति है, दूसरी ओर साधारण बोलचाल के स्तर पर स को छ कहने की प्रवृत्ति भी है यथा मुसलमान का मुछोलमान रूप।

राजस्थान की बोलियो मे स के स्थान पर छ् ह् का व्यवहार आश्चयजनक नही है कि तु थ के स्थान पर ह् छ् का व्यवहार आश्चयजनक है। एक जगह हि दी के समान आई थी है, तो दूसरी जगह आई ही और तीसरी जगह आई छी बोला जाता है। डा० कलाशचन्द्र अग्रवाल ने शेखावटी बोली का वणनात्मक अध्ययन (लखनऊ, १९६४) मे जो उदाहरण दिये है, उनसे यही सिद्ध होता है। चिडावा जिला भुभुनू म आई थी सीकर मे आई ही चलेगा कि तु जिला सीकर के ही अतगत नीम का थाना म आई छी बोलेगे। इससे यह अनुमान होता है कि छ ध्वनि केवल स के लिये नही वरन थ के लिये भी कभी प्रयुक्त होती थी। सघर्षी ध्वनियो का चलन यहा अधिक रहा होगा, स्पश ध्वनियो का कम।

राजस्थानी क्षेत्र की बोलियो की एक विशेषता अइ, अउ सयुक्त ध्वनिया के स्थान पर ऐ औ का व्यवहार है। (यदि कोई कहे कि ऐ, औ भी सयुक्त ध्वनिया है तो म कहूँगा कि पुरानी सयुक्त ध्वनियो के स्थान पर इन नई सयुक्त ध्वनियो के चलन की प्रवत्ति है।) व्रज से पूव की ओर पुरानी सयुक्त ध्वनिया अब भी काफी प्रयुक्त होती हैं। मानक हिन्दी म उनका व्यवहार केवल तत्सम रूपा म होता है। समस्त उत्तर पश्चिमी क्षेत्र म एकार, ओकार का एक विशेष क्षेत्र अवश्य रहा होगा और सम्भव है कि यह क्षेत्र राजस्थान हो। वहा की अनेक बोलिया म एकार औकार को भी एकार ओकारवत बोलने की प्रवृत्ति है। हिन्दी म कहइ—कहै—कहे जैसा विकास इसी प्रवत्ति का परिणाम है।

राजस्थान की बोलियो और हिन्दी क्षेत्र की बालिया के कारक चिन्हो मे बहुत बडी समानता है। मारवाडी मे र वाले विभक्ति चिन्ह ह तो अन्य बोलियो म क वाले। डा० कलाशचन्द्र अग्रवाल की शेखावटी बोली वाली पुस्तक म जितन उदाहरण ह, उनम सज्ञा के साथ र वाले विभक्ति चिन्हो के प्रयोग के उदाहरण ह ही नही। य नौकर किस सेठ के ह यह वाक्य चिडावा की बोली मे इस प्रकार है य नोकर क सेठ का है, सीकर नगर की बोली म य नोकर की सेठ का है, फतहपुर जिला सीकर की बाली म य नोकर कौं सेठ का है, नीम का थाना, जिला सीकर की बोली म य नोकर कुण सा सेठ का छ, जयपुर नगर की बोली मे य नोकर किस्या सेठ का छ। इन उदाहरणा स राजस्थान म क विभक्ति चिन्ह के प्रसार का अनुमान किया जा सकता है। मे, पर से आदि चिन्ह थोडे से हेर फेर से प्रयुक्त होते ह। कम कारक के लिय न का प्रमाग बागरू के समान है। मानक हिन्दी के विपरीत कर्ता कारक के साथ यहा ने का व्यवहार अनिवाय नही है। मेरी कलम किसने चुरा ली, इस वाक्य को चिडावा, सीकर नगर, फतहपुर,

जयपुर नगर आदि की बोलियो म ने के बिना ही कहा जायगा। किसने चुरा ली के लिये कुण चोर ली या कुण चोरी कहना काफी है। कुण करण कारक नही है, यह ध्यान देने की बात है। राजस्थान की बोलियो मे एक विशेषता यह है कि अनेक स्थाना म सवनाम के साथ भी को, क, की आदि चिन्ह लगत ह। हिन्दी म हमारा आगन, हमारी जेब, हमारे साथ आदि रूपो म हम के साथ र प्रत्यय ही लगता है किन्तु जयपुरी मे म्हाको चौक, म्हाकी जेब, म्हाकी साथ जैस प्रयोग होग। जयपुरी म म्हारी, म्हारा रूप भी प्रयुक्त होत हैं किन्तु हिन्दी क्षेत्र स भिन्न यहा सवनाम के साथ क प्रत्यय भी लगता है। यह स्थिति, राजस्थानी से मिलती जुलती, कुछ अन्य बोलियो म भी है।

राजस्थानी बोलियो की क्रियापद-रचना म विभिन्न प्रवत्तिया घुल मिल गई ह। वतमान काल के रूपा म चळतो हो, चळइ हो उत्तम पुरुष एकवचन के रूप ह। ग्रियसन द्वारा दिय हुए मारवाडी क इन उदाहरणा म पहला कदन्त है, दूसरा तिडन्त है। राजस्थानी भाषा की पुरानी पुस्तक क्रिसन रुकमणी री वेलि (सम्पादक नरोत्तमदास स्वामी, आगरा १९७१) की भूमिका म सम्पादक न ठीक लिखा है कि डिंगल का मूलाधार मारवाडी ही है। इस पुस्तक की भाषा अर्थात मारवाडी के उदाहरणा म अन्य पुरुष के तिडन्त रूप इस प्रकार ह सूझइ, होयइ, समाइ जाइ अवधी के सूझहि, होवहि आदि रूप ह। अवधी म ह-युक्त और ह विहीन दोना तरह के रूप मिलते ह। मध्यम पुरुष बहुवचन के रूप कहउ, वछउ आदि अवधी के कहहु वछहु के रूपान्तर ह। उत्तम पुरुष एकवचन के सकू, कहूँ हिन्दी रूपा से मिलते ह और सकहुँ, कहहुँ के आधार पर बन ह। पुरानी साहित्यिक भाषा म बहुत से परम्परागत रूपो का चलन था जिन्ह उस समय की बोलचाल के रूप मानना भ्रामक होगा। क्रिसन रुकमणी री वेलि म वतमान काल के अन्य पुरुष रूप राजति, कहति, भयति, रहन्ति, गायन्ति बोलन्ति आदि इसी कोटि क साहित्यिक प्रयोग ह।

ग्रियसन द्वारा दिय गय उदाहरणा म कुछ भूतकालीन रूप एस ह जिनम कदन्त क बाद सवनाम चिन्ह जोडा गया है। राणी पूछीस—रानी न पूछा, आप बिचारीअस—उसन आप विचार किया। ग्रियसन न ठीक लिखा है कि यहा अस केवल जोर देने क लिए है (लिंग्विस्टिक सर्वे, खण्ड ९, भाग २, पृष्ठ ३८), कारण यह कि सवनाम चिन्ह कर्ता का अवशेष मात्र है कर्ता—अलग स—क्रिया म पहले आ चुका है। अधिकतर भूतकाल के लिय राजस्थान की बोलियो म कृदन्तो का व्यवहार हिन्दी बोलियो क समान होता है यथा मिला मिला दिया मारकर नगर की बोली म होगा सुया लिया दिया। राजस्थानी म कदन्त रूप—पजाबी ही नहा, बागरू की तुलना म भी—मानक हिन्दी क रूपा स अधिक मिलत ह। राजस्थानी क वर्तमानकालिक रूप ब्रजभाषा क प्रकार म बने ह। मैं मार रहा हूँ की जगह म खास रया हूँ ब्रजभाषा क अनुरूप है, साथ ही बागरू क समान वर्तमान काल म तिडन्त रूपा का व्यवहार—पड है जाव है आदि—व्यापक रूप स होता है। इ तिडन्त रूपा क आधार पर जायगो, होवगा आदि भविष्यत्कालिक रूप बन ह, यह तथ्य मानक हिन्दी क जायगा, होगा रूपा की राजस्थानी रूपा म और

हो इसका मयोग दिखाई देता है। गुजराती म्हारणो के समान मालवी में भी म्हापणों रू है किन्तु मालवी में म्हाणा भी है। अपना जसे रूपों में कारक चिह्न, सभी आयभाषाओं में नया ण है। यह इस बात का सूचक है कि सवनाम रूपों का प्रसार कुछ निश्चित केन्द्रों से हुआ है। सम्भव है, अपना जस रूप का प्रसार मालवा से हुआ हो, म्हारो आदि का प्रसार राजस्थान से हुआ हो, क वाले रूपों का प्रसार मध्य देश से हुआ हो। जयपुरी में म्हाकी जैसा रूप अब भी प्रचलित है यद्यपि हिन्दी क्षेत्र में ऐसे रूप का अभाव है। मालवी—एक भाषाशास्त्रीय अध्ययन (जयपुर, १९६०) में डा० चिन्तामणि उपाध्याय ने उत्तमपुरुष सवनाम के जो रूप दिये हैं, उनमें जयपुरी के समान क वाले रूप भी हैं। म्हके—मुझे, त्हके—तुझे। हमें के लिये हमके रूप भी आया है। इसी प्रकार पडोस की रांगडी बोली में मध्यम पुरुष सवनाम के एकवचन रूप कम कारक में हमके, म्हके। ग्रियसन ने म्हाणा रूप मालवी के अन्तगत भी दिया है डा० उपाध्याय ने रांगडी के अन्तगत दिखाया है।

यहा मालवी की कुछ अन्य विशेषताओं का उल्लेख भी उचित होगा। इसमें उनीस उन्तालिस, उन्चास, उन्यासी के लिये गुनीस, गु चालिस गु पचास, गुन्यासी जसे रूपों का चलन है। यहा ग व्यजन मूलत उ के पहले नहीं जोडा गया वरन उसके रूपान्तर वु के पहले जोडा गया है। उ नीस आदि शब्दों का उच्चारण वु नीस जैसा कहीं होता होगा, अधस्वर व के उच्चारण को सुगम बनाने के लिये उसके पहले ग व्यजन वस ही जोडा गया जसे ब्रजक्षेत्र में वु सवनाम में ग जोडकर कई जगह ग्वु बोलते हैं।

मालवी और रांगडी दोनों में ऐ, औ के स्थान पर ए ओ के व्यवहार की प्रवृत्ति है। उत्तम पुरुष सवनाम का एकवचन रूप मे है। रहता था रेता था (बहुवचन) हो जायगा। ह के लोप की प्रवृत्ति प्रबल है। रहवा कहवा के रूपान्तर रवा, केवा (क्रियार्थी सज्ञा रूप) होंगे। रांगडी में ने चिह्न का व्यवहार पूवकालिक क्रिया के लिये भी होता है यथा बठी ने—बैठ कर। मालवी में हिन्दी हि के समान ज का व्यवहार अर्थ पर जोर देने के लिये होता है। याज—यहा ही, अपणाज—अपना ही, यही दक्खिनी हिन्दी का च है जो अथ पर जोर देने के लिये प्रयुक्त होता है। डा० उपाध्याय ने हलन्त च और ज आदि को शब्दों के अन्त में जोडने की बात लिखी है (पृष्ठ ८३) किन्तु उन्होंने च जोडने के उदाहरण नहीं दिये।

मालवी की शब्द रचना में सवनामों से बने स्थान सूचक विशेषण उल्लेख नीय हैं। इनाग—इधर कनाग—किधर, पनाग—उस ओर, जनाग—जिधर, उनाग—उधर, इन सभी रूपों में ग स्थान सूचक चिह्न है, तमिल इन्ग (यहां) के ग के समान। यह ग मूलत घ है जो कि ब्रजके इघें और उघा के इघ रूपों में।

राजस्थानी, मारवाडी आदि की अनेक प्रवृत्तियां मध्यदेश की भाषाओं को प्रभावित करती रही हैं, साथ ही इनमें मध्यदेशीय भाषाओं के अनेक तत्त्व घुलमिल गये हैं। राजस्थान, पजाब और बंगाल इन तीनों प्रदेशों की भाषाई स्थिति में एक समानता है, वह यह कि यहां मध्यदेश के अनेक जनपदीय भाषा-तत्त्व एक साथ मिलते हैं। जैसा

प्रदेश हिंदी क्षेत्र के परिवृत्त में है, मूल हिंदी क्षेत्र को घेरे हुए है, अतः उनमें विभिन्न जनपदीय तत्वों का मिलना स्वाभाविक है। पूर्व में मगध, उत्तर में कुरु जनपद, मध्य में कोसल और ब्रज, उक्त जनपदीय तत्वों के प्रसार के मुख्य केन्द्र हैं। आगे(तीसरे खण्ड में) हम देखेंगे कि हिंदी परिवृत्त की भाषाओं पर—मध्यदेश को घेरने वाले आर्य-भाषा क्षेत्र पर—द्रविड आदि आर्येतर भाषाओं का प्रभाव भी सर्वाधिक है।

९ आर्य भाषा केन्द्र और हिन्दी

आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास समझने के लिये यह जानना जरूरी है कि संस्कृत, विकास की अनेक मंजिलें पार करके, वह रूप प्राप्त कर सकी है जो भारत के प्राचीनतम ग्रन्थों में मिलता है। ये विकास की मंजिलें किसी भाषा का ऐसा एकान्त विकास नहीं है जिसमें भाषाई परिवेश अथवा अन्य भाषाओं से सम्पर्क न रहा हो। यहां परिवेश और अन्य भाषाओं में द्रविड, कोल, नाग भाषाओं की बात नहीं कही जा रही, आशय उन भाषाओं से है जिन्हें अन्य गण समाज बोलते थे, जिन्हें उतने ही विश्वास से आर्य कहा जा सकता है जितने विश्वास से संस्कृत बोलने वालों को। इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कृत के विकास की मंजिलें किसी एक केन्द्रीय भाषा से अन्य गण-भाषाओं के सम्पर्क का प्रमाण भी हैं। इन मंजिलों से हमारी दिलचस्पी इसलिए है कि केन्द्रीय भाषा से अलग वे अन्य भाषा तत्व, संस्कृत का रूप स्थिर होने के बाद, समाप्त नहीं हो गए। केन्द्रीय भाषा की मूल विशेषताएं भी समाप्त नहीं हुई। परस्पर सम्पर्क और विकास की वह प्रक्रिया आगे भी भाषाओं का रूप निर्धारित करती रही।

यदि आधुनिक आर्य भाषाएं सुलभ न हों, इण्डो यूरोपियन परिवार की भाषा सामग्री प्राप्त न हो, तो भी केवल संस्कृत के आधार पर उसके विकास की कुछ मंजिलों का ज्ञान हो सकता है। इन मंजिलों की पहचान के लिये संस्कृत के ध्वनितंत्र का ण तत्व सबसे महत्वपूर्ण है। संस्कृत में यह ध्वनि पहले से थी या बाद की मंजिलों में आई, इसकी सीधी कसौटी यह है कि हम संस्कृत की क्रियाओं में इस ध्वनि की भूमिका देखें। संस्कृत का काफी शब्द भण्डार क्रियाओं के आधार पर रचा गया है, इस कसौटी से केवल क्रियाओं में नहीं, अधिकांश शब्द भण्डार में इस ध्वनि की भूमिका का ज्ञान हो जाएगा। संस्कृत क्रियाओं पर इस दृष्टि से विचार करने से ज्ञात होता है कि इनकी रचना में ण की भूमिका नगण्य है। पर संस्कृत में ण् वाले रूपों की भरमार है। इसका कारण यह है कि विशेष प्रकार के ध्वनि-परिवेश में मूर्धन्य ण् दन्त्य न का स्थान लेता है। संस्कृत मूलतः उस क्षेत्र की भाषा है जिसमें केवल दन्त्य न का व्यवहार होता था, इस भाषा पर एक ऐसी गण भाषा का प्रभाव पड़ा जिसमें ण ही प्रमुख नासिक्य ध्वनि थी। अब आधुनिक आर्य भाषाओं को देखें तो विदित होगा कि बोलचाल के स्तर पर यह ण् और न् वाला भेद आज भी विद्यमान है। बागरू, पंजाबी, राजस्थानी आदि भाषाएं ण् प्रधान समुदाय की हैं, इधर ब्रज से लेकर बंगला और असमिया तक दन्त्य न् की प्रधानता है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि जिस भाषा समुदाय में दन्त्य न् की प्रधानता है,

उससे संस्कृत के मूल रूप का गहरा सम्बन्ध रहा है।

इसी प्रकार ट, ठ, ड, ढ ध्वनियों के बारे में कहा जा सकता है कि ये मूल संस्कृत की ध्वनियाँ नहीं हैं। भारत में ऐसे भाषा केन्द्र हैं जिनमें त-वर्ग के बदले ट-वर्ग की ध्वनियों का ही व्यवहार होता है या उनकी प्रधानता है। (यहाँ ट वर्ग में ण के अतिरिक्त अन्य ध्वनियों पर ही विचार करना है।) ट, ड् वाले क्षेत्र असम, सौराष्ट्र, सिंध और पश्चिमी पंजाब में हैं। इस समुदाय की प्राचीन भाषाओं ने संस्कृत को कभी इतना प्रभावित किया था कि कृदन्त रूपों में जहाँ भी षकार आया, त् बदल कर ट हुआ और सकार दन्त्य अथवा तालव्य स बदल कर मूर्धन्य हुआ। नश्यति में नश क्रिया तालव्य श-वाली है किन्तु नष्ट में ट के संयोग से तालव्य श् का मूर्धन्यीकरण हुआ। यदि संस्कृत सर्वनामों, उपसर्गों आदि पर ध्यान दिया जाय तो विदित होगा कि श, ष की अपेक्षा दन्त्य स की भूमिका ही प्रधान है। इसी प्रकार ल् की तुलना में र की भूमिका प्रमुख है। ब्रज से लेकर मिथिला तक दन्त्य स की प्रधानता है और ल की अपेक्षा र का व्यवहार भी अधिक होता है। इस लिए यह धारणा बनती है कि संस्कृत अपने मूल रूप में मध्यदेश की भाषा है।

संस्कृत के वाक्यतंत्र में दो बातें बहुत स्पष्ट दिखाई देती हैं। एक तरह का वाक्यतंत्र वह है जिसमें विधेय की प्रधानता है, उद्देश्य बाद में आता है। इस वाक्यतंत्र के कारण क्रियापद रचना इस प्रकार होती है कि क्रिया पहले आती है और उसके बाद सर्वनाम चिह्न उससे संयुक्त होकर कर्ता की ओर संकेत करता है। इसके विपरीत दूसरा वाक्यतंत्र वह है जो उद्देश्य को प्रधानता देता है और वाक्य में उसके बाद विधेय को स्थान देता है। इस पद्धति में सर्वनाम चिन्ह का कर्तावाला महत्व समाप्त हो जाता है, वह क्रिया की अवस्था, कालभेद, पुरुषभेद आदि सूचित करने लगता है। इस कारण पठामि रूप में कर्ता का उल्लेख होने पर भी अहं पठामि कहने का चलन हुआ। आधुनिक आर्य भाषाओं में मगही, मैथिली और अंशतः अवधी में सर्वनाम चिन्हों का पुराना महत्व अब भी सुरक्षित है। दूसरी प्रवृत्ति का एक परिणाम यह हुआ कि तिङन्त रूपों की अपेक्षा कृदन्त रूपों का व्यवहार अधिक होने लगा। कृदन्त रूप सर्वनाम चिह्नों से मुक्त रखे जा सकते थे। उनका व्यवहार उद्देश्य प्रधान वाक्यतंत्र के अधिक अनुरूप था। प्रसिद्ध था कि संस्कृत का व्यवहार करने वालों में उदीच्यजन कृदन्त प्रिय हैं। तात्पर्य यह कि मध्यदेश और पूर्व के लोग तिङन्त रूपों का व्यवहार अधिक करते थे। आधुनिक आर्य भाषाओं के विवेचन से पता चलता है कि कृदन्तों का व्यवहार ब्रज, पंजाबी, मराठी जैसी उत्तर पश्चिमी भाषाओं की विशेषता है। जिन क्षेत्रों में तिङन्त पद्धति की प्रधानता थी, उनमें जब कृदन्त पहुँचे तब उनका भी तिङन्तीकरण हुआ अर्थात् सर्वनाम चिह्नों के साथ उन्हें जोड़ दिया गया। आधुनिक आर्य भाषाओं का सारा विकास इस तिङन्त कृदन्त सम्पर्क का परिणाम है और यह दो तरह के वाक्यतंत्रों का सम्पर्क है। संस्कृत के प्राचीनतम रूपों में तिङन्त पद्धति की प्रधानता है। अतः इससे पुनः उपर्युक्त निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि संस्कृत अपने मूल रूप में मध्यदेश की भाषा है। तिङन्त रूपों के साथ कारक रचना की विशेषता जुड़ी हुई है। इनमें सर्वनामों की भूमिका प्रमुख है। यह स्वाभाविक था कि

के आर्यों ने जीता होगा। लिखा है कि सरहिन्द के पश्चिम में जो भूमि है, उस पर अंशत दरद कबील और अंशत बाहरी शाखा के लोग रहते थे। इस भीतरी शाखा वालो ने जीता, आत्मसात किया और उनकी भाषा पहले के निवासियो की भाषा के स्थान पर जम गई जैसे कि हिंदुस्तानी भाषा पंजाबी को हटाकर वहा जम रही है। पंजाबी के लिये उन्होंने लिखा है कि वह भीतरी शाखा की भाषा है जिसमे दरद या बाहरी शाखा के कुछ तत्व रह गये हैं।

ग्रियसन के विवेचन से बाहरी और भीतरी शाखाओं का भेद सिद्ध नही होता। भारत की प्राचीन आर्य गण भाषाओ के जो अनेक समुदाय हैं, ये समुदाय जो एक दूसरे को प्रभावित करके विभिन्न आर्य भाषाओं के विकास में सहायक हुए, इसकी कल्पना ग्रियसन के विवेचन में नही है। भीतरी शाखा वाले पहले बाहरी शाखा वालो को हटा कर जम गये फिर बाहरी शाखा वालो को दबोचते चले गये। यह मध्यदेशीय भाषाओं के प्रभाव की स्वीकृति है, इसमें विजय अभियानों की कथा प्रमाणित नही होती। उनके विवेचन का सकारात्मक पक्ष यह है कि वह प्राचीन भाषाओं की गतिविधि जानने के लिए आधुनिक भाषाओं का सहारा लेते हैं। यह पद्धति वह यांत्रिक ढंग से लागू न करते तो कुछ अच्छे परिणाम निकलते। फिर भी आधुनिक भाषाओं पर ध्यान देने के कारण ग्रियसन के सामने एक तथ्य निरन्तर स्पष्ट होता गया है, वह है मध्यदेशीय भाषातत्वों का दूर दूर तक प्रसार।

सर्वेक्षण ग्रंथ के नवें खण्ड के पहले भाग में उन्होंने मथुरा और कनौज की बीच की भूमि को भाषाई तत्वों के प्रसार की केन्द्र भूमि माना है। उन्होंने लिखा है कि पश्चिमी पंजाब की तरह पूर्वी पंजाब में भी लहँदा जैसी भाषा बोली जाती थी। उन्होंने इसका कोई प्रमाण नहीं दिया। उनके अनुसार वर्तमान भाषाई स्थिति से विदित होता है कि हिंदुस्तानी भाषा का एक पुराना रूप समूचे पूर्वी पंजाब पर फैल गया। पुरानी लहँदा भाषा के ऊपर यह रूप छा गया या उसे हटाकर वह वहा जम गया। उसका प्रभाव और भी उत्तर की ओर फैला। झेलम चनाब तथा सिन्धु के बीच मरुभूमि ने इसका प्रसार रोका। राजपूताना में भी मरुभूमि ने ही केन्द्रीय भाषा के इस बढ़ते हुए ज्वार को रोका। दोनो ही मरुस्थलो के पश्चिम में लहँदा और सिन्धी बाहरी शाखा की दो विशुद्ध भाषाएं मिलती हैं। दुर्भाग्य से मरुस्थल का चक्कर काट कर कहीं कहीं केन्द्रीय भाषाएं उत्तर-पश्चिम की ओर बढ़ती गई। ग्रियसन ने अपने ग्रंथ के आठवें खण्ड के पहले भाग में सिन्धी की चर्चा करते हुए लिखा है कि बलोची ईरानी भाषा है, सिन्धी से दूर का रिश्ता है पर उसमें मारवाडी भाषा यांत्रिक रूप में मिल गई है। अब राजस्थानी को लीजिए। राजस्थानी बाहरी शाखा की भाषा है। इसके ऊपर केन्द्रीय समुदाय की भाषा पश्चिमी हिन्दी फैलती चली गई, अब राजस्थानी में उस पुरानी शाखा के अवशेष मात्र रह गये हैं। महाभारत के पाण्डवों का स्मरण करते हुए ग्रियसन ने लिखा है कि इन्होंने भारत में पहले प्रवेश किया था। भीतरी शाखा के साथ प्रबल हुए और दे ह दक्षिण चले गये। प्राचीन पाण्डवों के समय में रहकर बाल्हीकों से गांधार तक

मत है कि संस्कृत में सर्वनाम-प्रत्ययों का व्यवहार न होता था। यह मत आश्चर्यजनक है क्योंकि पठामि जैसे रूपों में सर्वनाम चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं।

बंगाल की कई बोलियों में क्रिया के साथ सर्वनाम चिन्ह जोड़कर क्रियापद रचना होती है। ग्रियर्सन ने उत्तरी बंगाल में ऐसे उदाहरण दिये हैं बोलिम—मैं कहूंगा पाम—मैं पाऊंगा, जाम—मैं जाऊंगा। पूर्वी मालदा की बोली से मिलते-जुलते उदाहरण दिये हैं पामु—मैं पाऊंगा, जामु—मैं जाऊंगा, कर्मु—मैं करूंगा। इन रूपों में कृदन्त के बाद नहीं, मूल क्रिया के बाद सर्वनाम चिन्ह लगाया गया है। अंग्रेज़ी में इनका अनुवाद करते हुए इन्हें भविष्य काल का रूप बताया गया है। वास्तव में ये रूप कालभेद से परे हैं, वे केवल क्रिया की अवस्था सूचित करते हैं। बंगाल की जिन बोलियों में भविष्यसूचक ब प्रत्यय लगने लगा, उनमें भी, उस चिन्ह के बाद, बहुधा सर्वनाम प्रत्यय जोड़े जाते हैं यथा मैमनसिंह की बोली में पाइबाम—मैं पाऊंगा, जाइबाम—मैं जाऊंगा। यहां ब प्रत्यय का कोई विशेष सम्बन्ध भविष्य काल से नहीं है, न इसका सम्बन्ध संस्कृत प्रत्यय तव्य से है। इसका उपयोग कृदन्त रूप बनाने के लिए वैसे ही होता है जैसे ग प्रत्यय का।

भूतकालिक कृदन्तों के प्रसंग में डा० चाटुर्ज्या ने ग्रियर्सन की दो वर्गों वाला सिद्धान्त पुनः अंशतः स्वीकार किया है। उन्होंने लिखा है कि आधुनिक आर्य भाषाओं की सकर्मक क्रियाओं का भूतकालिक कर्मवाच्य कृदन्त किसी न किसी अपभ्रंश से मिला है। लहंदा, सिन्धी, गुजराती राजस्थानी और मराठी में उसका चलन बना हुआ है किन्तु पूर्वी हिन्दी और मागधी भाषाओं ने कर्मवाच्य रूप बिलकुल छोड़ दिया है और कर्तृवाच्य रूप का विकास किया है, उन्होंने कर्मवाच्य कृदन्त को विशेषण से बदल कर क्रिया बना लिया है और उसमें अन्य पुरुष के लिए सर्वनाम चिन्ह जोड़े हैं। लहंदा और सिन्धी भी सर्वनाम चिन्ह जोड़ती हैं किन्तु क्रिया, कर्म के अनुरूप, लिंग-वचन भेद सूचित करती है। पश्चिमी हिन्दी को लहंदा के अनुरूप बतलाते हुए उन्होंने कहा है कि आधुनिक आर्य भाषाओं को दो समुदायों में बांटा जा सकता है पूर्वी अथवा कर्तरि प्रयोगवादी और पश्चिमी अथवा कर्मणि प्रयोगवादी।

पूर्वी भाषाओं में कर्मवाच्य कृदन्त अतिरिक्त प्रयुक्त होते हैं, यह बात ग्रियर्सन ने भी कही थी। डा० चाटुर्ज्या ने पश्चिमी हिन्दी को लहंदा मराठी, गुजराती आदि के साथ रखा है पर उन्होंने माना है कि मेरा मारा जैसा कर्म वाच्य से युक्त प्रयोग पश्चिमी भाषाओं में है पूर्वी भाषाओं में नहीं है। जिन पश्चिमी भाषाओं में ऐसा युक्त प्रयोग है, उनमें लहंदा, मराठी आदि आते हैं। इस प्रकार ग्रियर्सन की स्थापना कि भूतकालिक कृदन्त का कर्मयुक्त प्रयोग हिन्दी में है बाहरी वर्ग की पश्चिमी और पूर्वी भाषाओं में नहीं है, डा० चाटुर्ज्या के विवरण में पुष्ट हो जाता है। आगे उन्होंने लिखा है 'यह अनुमान किया जा सकता है कि जो बोलियां उत्तर पश्चिमी और पूर्वी समुदायों की सीमा पर थीं, उनमें कभी कि [illegible] था जो मध्य [illegible] की भाषा का अन्त [illegible] बोलियों में न [illegible] था। पर [illegible] [illegible] सकता कि प्राचीनतम स्तर में [illegible] समुदाय

थे क्योंकि यह भी दिखाया जा सकता है कि उत्तर-पश्चिमी और मध्यदेशीय बोलियो म कई जगह समानता है जबकि पूर्वी समुदाय की बोलिया उनसे भिन्न हैं। भारतीय आर्य भाषा की पुरानी मजिलो के जो प्रमाण हैं, वे इस कल्पना के विपरीत है।" (पृष्ठ १६८)। यहा डा० चाटुर्ज्या ने प्राचीनतम काल को छोड कर बाद के लिए दो वृत्तो वाला सिद्धान्त अशत स्वीकार किया है। अन्यत्र उन्होने लिखा है कि पूर्वी भाषा समुदाय पश्चिमी समुदाय की भाषाओ से ध्वनितत्र म बहुत भिन्न था और अशत रूपतत्र म भी भिन्न था। यह सारा भेद उन्होने प्राकृतो के आधार पर बताया है जिन्हें वह कृत्रिम भी कहते हैं। सस्कृत को भी वह कृत्रिम भाषा मानते हैं। फिर पूर्वी भाषाओ को उन्होने पश्चिमी समुदाय से किस आधार पर अलग किया है, यह स्पष्ट नहीं होता। उनके विचार स बिहार म पजाब के आर्यों ने उपनिवेश स्थापित किये, इन पश्चिमी आर्यों ने आर्य बोलियो की शुद्धता की अधिक रक्षा की। आर्यावत के केन्द्रीय भाग म सामान्य जनता प्राकृत बोलती थी किन्तु ब्राह्मण और क्षत्रिय भाषा को शुद्ध बनाये रखने का प्रयत्न कर रहे थे। ये ब्राह्मण-क्षत्रिय 'मध्यदेशीय आर्यरक्त" के थे। (पृष्ठ ४६)। डा० चाटुर्ज्या मध्यदेश की आर्य भाषा को आदर्श शुद्ध भाषा मानते है, उसका सम्बन्ध शुद्ध आर्यरक्त से जोडते हैं, साथ ही यह भी कहना चाहते हैं कि मध्यदेश की भाषा का विशेष सम्बन्ध सस्कृत से नहीं है। वह मागधी भाषाओ को मध्यदेशीय भाषा केन्द्र से स्वतत्र दिखाना चाहते हैं, साथ ही इस केन्द्र की भूमिका स्वीकार करने म कठिनाई अनुभव करते हैं। बँगला, असमिया और उडिया को तो इस केन्द्र से अलग रखते ही है, वह भरसक भोजपुरी, मगही और मैथिली को भी यथासम्भव मध्यदेशीय प्रभाव से मुक्त दिखाना चाहते हैं। किन्तु मध्यदेशीय भाषा-केन्द्र के बिना भोजपुरी और मैथिली की तो बात ही क्या, बँगला का विकास भी समझ म नहीं आ सकता। डा० चाटुर्ज्या ने भाषा की शुद्धता और आर्यरक्त की शुद्धता के जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, उनका भाषाई यथार्थ स कोई सम्बन्ध नहीं है।

मान लीजिए पजाब के आर्यों ने बिहार मे जाकर अपने उपनिवेश बसाये। पजाब म ये आर्य मूर्धन्य ण् का प्रचुर प्रयोग करते हैं। वहा जो आर्येतर जन थे, व भी इस ध्वनि का बखूबी उच्चारण करने लगे। किन्तु बिहार म न तो उच्च वर्ग न, और न निम्न वर्ग ने, बोलचाल क स्तर पर इस ध्वनि को स्वीकार किया। जब य पजाबी आर्य बिहारी बन गये और बिहार से बगाल पहुँच कर बगाली हो गये, तब भी उस मूर्धन्य नासिक्य ध्वनि का उद्धार न हुआ। पडोस मे उडीसा के लोग, बोलचाल के स्तर पर, इस ध्वनि का व्यवहार करते है। क्या इससे यह निष्कर्ष निकाला जाय कि उडीसा म पहुँचने वाले आर्य कुछ ज्यादा पजाबी थे और बगाल म पहुचने वाले आर्य, बिहार म बसने के कारण, अपना पजाबीपन खो चुके थे? पर जिस मध्यदेश की इतनी चर्चा है, उसम इस ध्वनि का व्यवहार क्या नहीं होता? राजस्थान की मरुभूमि और पहाडो पर रहने वाले सामान्य जन इस ध्वनि का उच्चारण मजे म करते हैं और मध्यदेश का सामान्य जन कहना चाहता है गनेश तो सुनाई देता है गडेश। भाषा के सभी तत्व परिवर्तनशील हैं किन्तु कुछ तत्व अधिक परिवर्तनशील हैं, कुछ कम। इनम भाषा की ध्वनि प्रकृति अत्यन्त महत्वपूर्ण

है। राजस्थान, पश्चिमी पजाब, सिन्ध सस्कृत भाषा के केन्द्र नही रहे पर यहां ण ध्वनि की प्रचुरता है। आधुनिक बँगला म तत्सम रूपो की भरमार है किन्तु शिक्षित बगाली भी दन्त्य स को न ही बोलते हैं। इससे सिद्ध यह होता है कि उनके लिए भाषा की ध्वनि प्रकृति का महत्व सर्वोपरि है। बागरू और ब्रज कोसल के बीच ण और न का भेद पुराना है, यह सस्कृत के ही मूल शब्द-भण्डार, उसकी धातुओ के विवचन से सिद्ध हो जाता है अवधी क्षेत्र के पूव म मागधी समुदाय की सारी भाषाए ह्रस्व अकार का उच्चारण वृत्ताकार करती हैं। एसा उच्चारण अवधी ब्रज, बागरू आदि म नही है। द्रविड प्रभाव के बारे में डा० चाटुज्या न बहुत कुछ लिखा है और दूसरो ने भी काफी लिखा है। किन्तु ऐसा वृत्ताकार उच्चारण न तो द्रविड भाषाओ म है, न कोल आदि अन्य आर्येतर भाषा समुदायो मे। मान लीजिए, बिहार और बगाल की अधिकाश जनता द्रविड थी। वहां पजाबी आर्यों ने उपनिवश बनाये। बिहार और बगाल म न द्रविडो का अकार चला न पजाबियो का, यह तीसरा वृत्ताकार रूप कहा से आ गया? और ऐसा आया कि उसने उपनिवेशित आर्यों और विजित द्रविडो दोनो के अकार को निराकार कर दिया। मानना होगा कि यह वृत्ताकार अकारवाद न तो द्रविडो की दन है न पजाबी आर्यों की देन है वरन पूर्वी भाषा समुदाय की अपनी सामान्य विशेषता है।

डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या न ग्रियसन की दो शाखाओ वाली धारणा का खण्डन किया है। बँगला भाषा के उदभव और विकास वाले ग्रन्थ म उन्होने लिखा है कि मध्य देश की आय भाषा म कोई एसा परम आयत्व नही है कि उसे सस्कत का निकटतम सम्बन्धी माना जाय। डा० चाटुर्ज्या बँगला भाषा को मागधी अपभ्रश स उत्पन्न मानते हैं। यदि मागधी भाषा समुदाय को बाहरी शाखा के अन्तगत माना जाय तो स्वभावत मध्यदेशीय भाषा समुदाय सस्कत के अधिक निकट ठहरेगा। यह निकटता डा० चाटुर्ज्या को स्वीकार नही है पर इसके खण्डन के लिए उनके पास कोई पुष्ट तर्क नही है। नृतत्व शास्त्र का सहारा लेत हुए उन्होने कहा है कि लहँदा और सिन्धी बोलने वाले लोग पूव के लोगो से भिन्न हैं किन्तु वे मध्यदेश क लोगो स, या कम से कम वहां के उच्च वग के लोगो से, मिलत जुलते हैं।

डा० चाटुर्ज्या न आय भाषाओ के सम्बन्ध म अनेक महत्वपूर्ण बातें कही हैं जिन्हें वे अपने विवचन का आधार नहीं बनात। घूम फिर कर वे ग्रियसन के ही मूल सूत्र दोहराते हैं। उन मूल सूत्रो स भिन्न डा० चाटुर्ज्या की कुछ महत्वपूर्ण स्थापनाएं इस प्रकार हैं। भारत म आन वाली आय भाषा समरूप या परिनिष्ठित नही थी। वह अनेक कबीलो की बोलिया का समुदाय थी। इनम स एक बोली या बोली समुदाय वदो म है। अन्य बोलिया बदल कर कोई न कोई आधुनिक आय भाषा या बोली बनी। प्राचीन आय बोलियो की विशेषताएँ क्या था इनका आपसी सम्बन्ध क्या था, व किन प्रदेशों म बोली जाती था, इन समस्याओ का समाधान, डा० चाटुर्ज्या क अनुसार शायद कभी न होगा। आधुनिक आय भाषाओ के रूप इस काम म विशेष उपयोगी सिद्ध नही होते। प्राकृत और अपभ्रश साहित्यिक भाषाए हैं और बहुत कुछ तक कृत्रिम भाषाए हैं, प्राकृत के

है। राजस्थान, पश्चिमी पंजाब, सिंध संस्कृत भाषा के केंद्र नहीं रहे पर यहाँ ण ध्वनि की प्रचुरता है। आधुनिक बँगला में तत्सम रूपों की भरमार है किन्तु शिक्षित बंगाली भी दन्त्य स को श् ही बोलते हैं। इससे सिद्ध यह होता है कि उनके लिए भाषा की ध्वनि प्रकृति का महत्त्व सर्वोपरि है। बागरू और ब्रज कोसल के बीच ण और न का भेद पुराना है, यह संस्कृत के ही मूल शब्द भण्डार, उसकी धातुओं के विवेचन से सिद्ध हो जाता है। अवधी क्षेत्र के पूर्व में मागधी समुदाय की सारी भाषाएं ह्रस्व अकार का उच्चारण वृत्ताकार करती हैं। ऐसा उच्चारण अवधी ब्रज, बागरू आदि में नहीं है। द्रविड़ प्रभाव के बारे में डा० चाटुर्ज्या ने बहुत कुछ लिखा है और दूसरों ने भी काफी लिखा है। किन्तु ऐसा वृत्ताकार उच्चारण न तो द्रविड़ भाषाओं में है, न कोल आदि अन्य आर्येतर भाषा समुदायों में। मान लीजिए, बिहार और बंगाल की अधिकांश जनता द्रविड़ थी। वहाँ पंजाबी आर्यों ने उपनिवेश बनाये। बिहार और बंगाल में न द्रविड़ों का अकार चला न पंजाबियों का, यह तीसरा वृत्ताकार रूप कहाँ से आ गया? और ऐसा आया कि उसने उपनिवेशित आर्यों और विजित द्रविड़ों दोनों के अकार को निराकार कर दिया। मानना होगा कि यह वृत्ताकार अकारवाद न तो द्रविड़ों की देन है न पंजाबी आर्यों की देन है वरन् पूर्वी भाषा समुदाय की अपनी सामान्य विशेषता है।

डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने ग्रियर्सन की दो शाखाओं वाली धारणा का खण्डन किया है। बँगला भाषा के उद्भव और विकास वाले ग्रन्थ में उन्होंने लिखा है कि मध्यदेश की आर्य भाषा में कोई ऐसा परम आर्यत्व नहीं है कि उसे संस्कृत का निकटतम सम्बन्धी माना जाय। डा० चाटुर्ज्या बँगला भाषा को मागधी अपभ्रंश से उत्पन्न मानते हैं। यदि मागधी भाषा-समुदाय को बाहरी शाखा के अन्तर्गत माना जाय तो स्वभावतः मध्यदेशीय भाषा समुदाय संस्कृत के अधिक निकट ठहरेगा। यह निकटता डा० चाटुर्ज्या को स्वीकार नहीं है पर इसके खण्डन के लिए उनके पास कोई पुष्ट तर्क नहीं है। नृतत्त्व शास्त्र का सहारा लेते हुए उन्होंने कहा है कि लहँदा और सिंधी बोलने वाले लोग पूर्व के लोगों से भिन्न हैं किन्तु वे मध्यदेश के लोगों से, या कम से कम वहाँ के उच्च वर्ग के लोगों से, मिलते जुलते हैं।

डा० चाटुर्ज्या ने आर्य भाषाओं के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें कही हैं जिन्हें वे अपने विवेचन का आधार नहीं बनाते। घूम फिर कर वे ग्रियर्सन के ही मूल सूत्र दोहराते हैं। उन मूल सूत्रों से भिन्न डा० चाटुर्ज्या की कुछ महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ इस प्रकार हैं। भारत में आने वाली आर्य भाषा समरूप या परिनिष्ठित नहीं थी। वह अनेक कबीलों की बोलियों का समुदाय थी। इनमें से एक बोली या बोली समुदाय वेद में है। अन्य बोलियाँ चल कर कोई न कोई आधुनिक आर्य भाषाओं का आधार बनीं। प्राचीन आर्य बोलियों की विशेषताएँ क्या थीं, इनका आपस में सम्बन्ध क्या था, वे किन प्रदेशों में बोली जाती थीं, इन समस्याओं का समाधान, डा० चाटुर्ज्या के अनुसार शायद कभी न होगा। आधुनिक आर्य भाषाओं के [illegible] इस कार्य में विशेष सहायक सिद्ध नहीं होते। प्राकृत और अपभ्रंश साहित्यिक भाषाएँ हैं और बहुत हद तक कृत्रिम भाषाएँ हैं, प्राकृत के

है। राजस्थान, पश्चिमी पजाब, सिन्ध सस्कृत भाषा के केन्द्र नही रहे पर यहा ण ध्वनि की प्रचुरता है। आधुनिक बँगला म तत्सम रूपो की भरमार है किन्तु शिक्षित बगाली भी दन्त्य स् को श ही बोलते हैं। इससे सिद्ध यह होता है कि उनके लिए भाषा की ध्वनि प्रकृति का महत्व सर्वोपरि है। बागरू और व्रज कोसल के बीच ण और न् का भेद पुराना है, यह सस्कृत के ही मूल शब्द भण्डार, उसकी धातुओ के विवेचन स सिद्ध हो जाता है। अवधी क्षेत्र के पूव म मागधी समुदाय की सारी भाषाए ह्रस्व अकार का उच्चारण वृत्ताकार करती हैं। ऐसा उच्चारण अवधी व्रज, बागरू आदि म नही है। द्रविड प्रभाव के बारे म डा० चाटुर्ज्या न बहुत कुछ लिखा है और दूसरा ने भी काफी लिखा है। किन्तु ऐसा वत्ताकार उच्चारण न तो द्रविड भाषाआ म है, न कोल आदि अय आर्येतर भाषा समुदायो मे। मान लीजिए, बिहार और बगाल की अधिकाश जनता द्रविड थी। वहा पजाबी आर्यों न उपनिवेश बनाये। बिहार और बगाल म न द्रविडो का अकार चला न पजाबियो का, यह तीसरा वत्ताकार रूप कहा से आ गया? और ऐसा आया कि उसन उपनिवेशित आर्यो और विजित द्रविडो दोनो के अकार को निराकार कर दिया। मानना होगा कि यह वत्ताकार अकारवाद न तो द्रविडा की देन है न पजाबी आर्यों की दन है वरन पूर्वी भाषा समुदाय की अपनी सामान्य विशेषता है।

डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने ग्रियसन की दो शाखाआ वाली धारणा का खण्डन किया है। बँगला भाषा के उदभव और विकास वाले ग्रन्थ म उन्होने लिखा है कि मध्य देश की आय भाषा म कोई ऐसा परम आयत्व नही है कि उसे सस्कृत का निकटतम सम्बन्धी माना जाय। डा० चाटुर्ज्या बँगला भाषा को मागधी अपभ्रश से उत्पन्न मानते हैं। यदि मागधी भाषा-समुदाय को बाहरी शाखा के अन्तगत माना जाय तो स्वभावत मध्यदेशीय भाषा समुदाय सस्कत के अधिक निकट ठहरेगा। यह निकटता डा० चाटुर्ज्या को स्वीकार नही है पर इसके खण्डन के लिए उनके पास कोई पुष्ट तक नही है। नतत्व शास्त्र का सहारा लेते हुए उन्होने कहा है कि लहँदा और सिन्धी बोलने वाले लोग पूव के लोगो से भिन्न हैं किन्तु वे मध्यदेश के लोगा से, या कम से कम वहा के उच्च वग के लोगो से, मिलते जुलते है।

डा० चाटुर्ज्या ने आय भाषाओ के सम्बन्ध म अनेक महत्वपूण बातें कही हैं जिन्हें वे अपने विवेचन का आधार नही बनात। घूम फिर कर वे ग्रियसन के ही मूल सूत्र दोह राते हैं। उन मूल सूत्रो से भिन्न डा० चाटुर्ज्या की कुछ महत्वपूण स्थापनाए इस प्रकार है। भारत मे आने वाली आय भाषा समरूप या परिनिष्ठित नही थी। वह अनेक कबीलो की बोलिया का समुदाय थी। इनम स एक बोली या बोली समुदाय वेदा म है। अय बोलिया बदल कर कोई न कोइ आधुनिक आय भाषा या बोली बनी। प्राचीन आय बोलिया की विशेषताएँ क्या था इनका आपसी सम्बन्ध क्या था, व किन प्रदेशा म बोली जाती थी, इन समस्याओ का समाधान डा० चाटुर्ज्या के अनुसार, शायद कभी न होगा। आधुनिक आय भाषाओ के रूप इस काय म विशेष सहायक सिद्ध नही होते। प्राकत और अपभ्रश साहित्यिक भाषाए है और बहुत हद तक कृत्रिम भाषाए हैं, प्राकत के

वैयाकरणो का सदा भरोसा नही किया जा सकता। बगाल, असम, उडीसा और बिहार का भाषा समुदाय भारतीय आय भाषा के किसी ऐसे प्राचीन रूप से उत्पन्न हुआ होगा जो उत्तर भारत के पूर्वी भाग मे प्रचलित रहा होगा।

इन स्थापनाओ म आर्यो की भारत विजय की आधारभूत भावना निहित है। इसे छोड दें तो अनेक गणभाषाओ की कल्पना साथक है। वदिक भाषा म अनेक गणभाषाओं के तत्व समाहित हैं, उनकी छानबीन की जा सकती है। सस्कत के विकास की मजिलो के चिह्न उस भाषा मे सुरक्षित है, यह बात ध्यान म रखनी चाहिए। प्राकतें कृत्रिम हैं, यह सही है पर उनमे अनेक भाषा तत्व ऐसे आये हैं जिनका आधार सस्कत नही है। अपभ्र श का ध्वनितत्र बहुत कुछ प्राकृतो का है पर इसम देशी भाषाओ के तत्व बहुत हैं। यदि इस अपभ्रश को पुरानी बँगला न कहा जाय तो उसके विश्लेषण से देशी भाषाओ की स्थिति का कुछ पता चल सकता है। पर यह अपभ्रश काल आदिम गण भाषा काल से हजारो साल बाद का है। अपभ्र श की तुलना म जनपदीय भाषाओ से अधिक सहायता मिलती है। जसे डा० चाटुर्ज्या ने प्राचीन काल म परिनिष्ठित आय भाषा के बदले गण भाषाओ की हकीकत को उभारा है उसी प्रकार आधुनिक आय भाषाओ के परिनिष्ठित रूप के बदले जनपदीय भाषाओ पर ध्यान देना अधिक आवश्यक है। अपने ग्रथ के पृष्ठ ४३२ पर उन्होंने माना है कि बँगला भाषा की विभिन्न बोलियो के ध्वनितत्र का अध्ययन सम्भव नही हुआ किन्तु बँगला भाषा के विकास के विस्तत और पूण अध्ययन के लिए बोलियो का तुलनात्मक विवेचन आवश्यक होगा। यहा जो बात बँगला भाषा के लिए कही गई है, वह बात अन्य आय भाषाओ के लिए भी कही जा सकती है, और जो बात ध्वनितत्र के लिए कही गई है, वह रूपतत्र और वाक्यतत्र के लिए भी कही जा सकती है। जनपदीय बोलियो का अध्ययन केवल परिनिष्ठित भाषा का विकास समझने के लिए आवश्यक नही है वरन् उससे भाषा के पूवरूपो का ज्ञान भी हो सकता है। डा० चाटुर्ज्या पुरानी गण भाषाओ के बदलने और आधुनिक आय भाषाओ के बनने की बात कहते हैं पर गणभाषाओ के बाद जनपदीय भाषाओ की मजिल आती है आधुनिक जातीय भाषाओ की मजिल उसके बाद की है। इस सदभ मे उन्होंने ग्रियसन के सर्वेक्षण ग्रथ की खामियो की ओर सकेत किया है। सर्वेक्षण काय के लिए प्रशिक्षित कायकर्ता चाहिए और उन्ह बोलियो से सुपरिचित होना चाहिए। यह आलोचना सही है पर भारत म भाषा विज्ञान की जैसी उपेक्षा है, उससे अभी अगले पचास साल तक नये सर्वेक्षण की कोई सम्भावना दिखाई नही देती। ग्रियसन के काय का यही युगान्तरकारी महत्व है कि लाख कमिया होते हुए वह अपने ढँग का अनूठा काय है भारत सरकार को नये सिर से सर्वेक्षण कराने की बात अभी सूझी नही है।

ब्रजभाषा और हिन्दी का गहरा सबध है पर ब्रजभाषा बहुत से शब्दो को ओकारान्त रूपो म प्रयुक्त करती है और यह प्रवृत्ति राजस्थान पार करती हुई गुजरात और सिंध तक पहुच गई है। इसलिए यह मानना होगा कि एक भाषा-समुदाय ऐसा रहा है जो अनेक शब्दो का ओकारान्त उच्चारण करता था। इस समुदाय के दो भाग हो जाते हैं

[illegible] भाषाओ का, दूसरा ण ध्वनि वाली भाषाओ का। और यह ण ध्वनि [illegible] भी है। यह स्थिति वैसी ही है जैसी मागधी समुदाय म, भोजपुरी, मथिली [illegible] तो द [illegible] स वाली भाषाए हैं, बँगला श् वाली और असमिया ख वाली। उधर [illegible] हिन्दी बोलियो के समान दत्य स् वाली भाषा है। स, श, ख वाली तीनो प्रवृत्तियाँ प्राचीन है। वत्ताकार अकार वाली प्रवत्ति भी प्राचीन है। ण वाली प्रवत्ति प्राचीन है, शब्दो को ओकारान्त रूप देने की प्रवत्ति प्राचीन है, ण स भिन्न न के लिए आग्रह भी प्राचीन है। इस प्रकार ध्वनितत्र की मूल विशेषताओ को प्राचीन मानते हुए यदि वृत्त खीचे जाए तो बहुत स वत्त बनेंगे और वे एक दूसरे की परिधि काटेंगे। इसस भाषाई विकास की पेचीदगी समझी जा सकती है। फिर भी वत्ताकार अकार का एक पूरा क्षेत्र दिखाई दता है। इससे मिलता जुलता वत्ताकार उच्चारण महाराष्ट्र, राजस्थान और पजाब की सीमाओ पर कही-कही सुनाई दता है यद्यपि मुख्य क्षेत्र पूव म है। इसी तरह उत्तर पश्चिम म ण वाला क्षेत्र है, पूव म उडिया पर उसकी छाया भर है। वत्ताकार अकार वाले क्षेत्र तथा ण ध्वनि वाले क्षेत्र के बीच दन्त्य न और स का क्षेत्र है। इस तरह के तीन क्षेत्र न तो सस्कृत की देन हैं न प्राकृतो की, न अपभ्र श की, न द्रविडो की, न कोलो और नागो की। कम स कम य तीन प्राचीन आय भाषा समुदाय थे, इसमे सन्देह नही रह जाता। इनमे से प्रत्येक के अन्तगत भिन्न विशेषताओ वाल अनेक भाषा वग हैं, यह भी मानना होगा। ग्रियसन ने एक निहायत उलझी हुई स्थिति को बहुत सरल बनाकर प्रस्तुत किया था।

भारत म ऐसे केन्द्र हैं जो त और द के स्थान पर ट और ड का व्यवहार करते है। ऐसे केन्द्र ईरान म नही हैं। द्रविड भाषाओ को शब्द के आदि स्थान मे ट और ड का व्यवहार करने स बडी अरुचि है। आय भाषाओ म सैकडो शब्द इन्हे आदि स्थान दत हैं। ट और ड वाले नवीन और प्राचीन केन्द्रो को आय भाषा केन्द्र मानने का उतना ही पुष्ट कारण है जितना त और द प्रधान ईरान का आय भाषा क्षेत्र मानने का। फिर बहुत से शब्दो म स ध्वनि बदल कर महाप्राण ध्वनि बनती है। ऐसा परिवतन वदिक भाषा म होता है, आधुनिक भाषाओ के पुराने शब्दो म ही नही नये उधार लिये हुए शब्दो मे भी होता है। अवध मे बहुत जगह मस्जिद को लोग महजिदि कहते ह। (इसकी विपरीत प्रक्रिया भी घटित होती है। डा० विश्वनाथ प्रसाद ने भोजपुरी पर अपने शोधग्रथ म बताया [illegible] कुछ भोजपु[illegible] मँह तर को मँस्तर बोलते हैं, वसे ही जसे सस्कृत के विसग [illegible] धारण करत हैं।) यह स ह वाला परिवतन ईरान म [illegible] आय होने म कोई सन्देह नही है। इस प्रकार [illegible] के कम से कम पाच विभाग दिखाइ दने [illegible]

यह ध्यान दन की बात है [illegible]

बँगला, अ[illegible] का वृत्ताका[illegible]

हुआ है [illegible] वस अव [illegible]

कि भारतीय आय भाषाओ के विकास को समझने के लिए सबस पहले भारतीय आर्य भाषा-केन्द्रो पर ही ध्यान दना उचित है। इन के द्रा का अनुमान आधुनिक आय भाषाओ के अध्ययन से ही होता है।

ध्वनि प्रकृति के अलावा भाषा की सरचना मे क्रियापद रचना का विवेचन पुराने गण भाषा समुदायो को पहचानने मे सहायक होता है। मध्यदेशीय भाषाएँ तिङन्त प्रधान थी। यह प्रवत्ति किसी न किसी रूप मे, न्यूनाधिक मात्रा म, प्रत्यक आयभाषा मे है। यह प्रवत्ति मागधी भाषा समुदाय म एसी बद्धमूल रही है कि उधर जब कृदन्तो का प्रसार हुआ, तब उस समुदाय की भाषाओ न इन्हे भी तिङन्त बाना पहनाया। इस प्रकार वाक्यतत्र अथवा रूपतत्र की दृष्टि से आय गण भाषाओ के कम से कम दो समुदाय दिखलाई देते हैं। इनमे कृदन्तो का केन्द्र उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रो म था।

भाषा-सरचना के कुछ तत्व अमूतरूप से बोलने वाला के मन मे जड जमाए रहते हैं। बाईस, बत्तीस बयालिस मे इकाई पहले या दहाई, यह वाक्यतत्र की विशेषता पर निभर है। इसे भाषा की भाव प्रकृति कह सकते ह। कश्मीरी समेत समस्त आधुनिक आय भाषाएँ सस्कृत की तरह इकाई पहले और दहाई बाद को, यह क्रम रखती हैं। इसस भिन्न द्रविड भाषाओ म दहाई पहले और इकाई बाद को आती है। कश्मीरी की पडोसी भाषा फारसी मे सख्यासूचक शब्दा का द्रविड क्रम चलता है कश्मीरी म आय भाषाओ वाला। भाव प्रकृति के स्तर पर ऐसी अनेक विशेषताए हैं जिनसे नई और पुरानी आय भाषाएँ एक ही सूत्र मे गुथी हुई दिखाई दती है। भाषाओ के विकास का अध्ययन करते हुए उनकी विशेषताओ की भिन्नता और समानता, दाना पर ही ध्यान देना उचित है। कुछ विशेषताओ के कारण सभी आय भाषाओ को एक ही समुदाय मे रखना उचित है, अन्य विशेषताओ के कारण उनके बहुत से वग-उपवग बन जाते हैं।

भारत मे आधुनिक आय भाषाओ का निर्माण एक सी परिस्थितियो मे नही हुआ। हिन्दी प्रदश म पहले कोसल की भूमिका प्रमुख थी। कोसल समुदाय की भाषाए सस्कृत का आधार थी। फिर इस आधार पर कुरु जनपद का जबदस्त प्रभाव पडा। बौद्धकाल मे प्राचीन कोसली जनसपक का माध्यम बनी, कान्यकुब्ज साम्राज्य के विघटन के बाद कुरु और शूरसेन जनपदो की भाषाए फिर उभर कर सामने आइ।

बँगला भाषा क्षेत्र की विशेषता यह है कि वहा की जनपदीय बोलियो म हिन्दी क्षेत्र की बोलियो के रूप पहुँचे हैं और परिनिष्ठित बँगला के समानान्तर अब भी अपना अस्तित्व बनाय हुए हैं। इनमे स अनेक तत्वो न परिनिष्ठित बँगला को भी प्रभावित किया है। आदि आयभाषा, मध्य आयभाषा प्राचीन बँगला, मध्यकालीन बँगला, आधुनिक बँगला, इस सारे ऊहापोह म एक केन्द्रीय तत्व ओझल स ओझल हो जाता है। वह केन्द्रीय तत्व यह है कि बँगला भाषा बोलन वाला म एक बहुत बडा हिस्सा उन लोगा का है जो पश्चिम से जाकर वहा बस गय और अपनी बोलिया की कुछ न कुछ विशेषता बनाये रहे। भविष्य काल के लिए ग का प्रयोग खडी बोली क्षेत्र की विशेषता है। अवधी क्षेत्र म कही भी ग वाले रूप अवधी म पुनत मिलते न दिखाई दें किन्तु

बँगला मे ब और ग वाले रूप एक साथ प्रयुक्त होते दिखाई देंगे। डा० चाटुर्ज्या ने आमरा करिगा, आमरा करिगे, तोरा करगा, तोरा करिगे, तोरा करिसगा जस रूप दिय है। पुरानी बँगला म तुमि ताश्रोगा जस रूप मिलते हैं। केरी न उन्नीसवी सदी के आरम्भ की बँगला के उदाहरणा मे ऐसे रूप दिये थे उनिश्रो सामग्री आयोजन करनगा—वह भी सामग्री का आयोजन करे। कुछ बोलियो म क्रिया के पूवकालिक रूप र प्रत्यय जोडकर बनते है और उसके बाद वतमान काल के लिए ग जोडा जाता है जारगा—वह जाता है।

पूवकालिक क्रिया का यह र सीधे पश्चिम से आया है। डा० चाटुर्ज्या ने मारवाडी के हुयार—होकर, मारर—मारकर जयपुरी और मेवाती के होर—होकर रूप दिए हैं। कर के क् का लोप होने पर ऐसे रूप बने हैं। बगाल की बोलियो म खाइआर—खाकर, जाइयार—जाकर जैस रूप है। इसे स्वतत्र विकास कहना कठिन होगा। बँगला मे चलियाछे—चला है, इस तरह की क्रियापद रचना बागरू के कह्या, चल्या जैस रूपो के आधार पर हुई है। डा० चाटुर्ज्या ने बागरू का स्पष्ट उल्लेख किया है। खडी बोली क्षेत्र म सम्बन्ध कारक का चिन्ह का है किन्तु ब्रजभाषा क्षेत्र म इसका रूप को है। डा० चाटुर्ज्या ने इस को का व्यवहार सवनामो के साथ होते दिखाया है, इतना ही अन्तर है कि को के स्थान पर सघोष रूप गो का व्यवहार होता है आमागो—हमारा, तोमागो—तुम्हारा। कुछ बोलिया म सम्बन्ध कारक के रूप मोर, तोर के बाद यह अतिरिक्त गो जोडा जाता है मोरगो—मेरा, तोरगो—तेरा।

बगाल की कुछ बोलियो मे क्रिया रूप के बाद क जोडने की प्रवत्ति है तुमि दिलेक—तुमन दिया, से चलबेक—वह चला। यह प्रवृत्ति भोजपुरी और मथिली बोलियो मे है। डा० उदयनारायण तिवारी की भोजपुरी भाषा और साहित्य पुस्तक म इस तरह के उदाहरण है। बनिया जात रहलक—बनिया जाता था, बाघ कहलक—बाघ ने कहा, बनिया जाएक लागलक—बनिया जाने लगा। डा० विश्वनाथ प्रसाद ने मानभूम और धलभूम के भाषा सर्वेक्षण वाली पुस्तक म पुरुलिया की मथिली का जो नमूना दिया है, उसमे ऐसे उदाहरण है उ आदमी कहलक—वह आदमी बोला, लडका खूब खनलक—लडके ने खूब खोदा। इसमें सन्देह नही रह जाता कि बगाल की बोलियो में दिलेक, चलबेक जैसे प्रयोग भोजपुरी और मथिली प्रभाव के कारण हैं। पुरानी बँगला में ऐसे अतीत कालीन क्रिया रूप थे आछिला हा—मैं था, आयिला हों—मैं आया हू। मै आवा हों (या हऊँ), यह अवधी वाक्य हुआ, इसी के अनुरूप बँगला में आइला हो—मैं आया हूँ गेला हो—मै गया हूँ।

बँगला में क्रियार्थी सज्ञा रूप न और ना दोनो प्रत्यया के साथ बनते हैं। डा० चाटुर्ज्या न आमा के देखन जाय जस रूप दिये है जो पुरानी बँगला मे बहुत प्रचलित थे। डा० चाटुर्ज्या ने इस सदर्भ म तुलसीदास के ऐसे प्रयोगा का स्मरण उचित ही किया है। हिन्दी के समान बँगला म आना जसे क्रियार्थी सज्ञा रूप का व्यवहार भी होता है। आना गोना हिन्दी के आना जाना के ही समान हैं। यहाँ भी डा० चाटुर्ज्या ने हिन्दी रूपो का

स्मरण उचित किया है। अवधी मे भूतकालिक कृदन्त रूप जैसे न प्रत्यय के साथ बनते हैं, वस पुरानी बँगला मे भी मिलते हैं। शुखान—सूखा हुआ, अवधी सुखान, हारान—खोया हुआ, अवधी हेरान।

बँगला के अनेक प्रयोग हिन्दी क्षेत्र के प्रयोगो की याद दिलाते है। पुरानी बँगला म लागेली आगि अवधी के आगि लागि का रूपान्तर है। क्रिया रूप मे स्त्रीलिंग सूचक इ चिह्न बँगला की प्रकृति के अनुरूप नही है। हिन्दी म जैसे बताना और बतलाना दो तरह के रूप हैं, वसे ही बँगला म बातलान जसा रूप है। बोलचाल म दिलाना का प्रतिरूप देलाना प्रचलित है। हिन्दी प्रेरणाथक नियाओ मे जैसे कराना जोडा जाता है वसे ही बँगला म स्नान करान, पान करान आदि का प्रयोग है। देखादेखि, मारामारि हिन्दी के देखादेखी, मारामारी के समान है। आग बाडान अर्थात आग बढना, बके जाओया अर्थात बके जाना हिन्दी मुहावरे है। कही-कही सवनाम रूप बिल्कुल हिन्दी के हैं यथा आमि के स्थान पर उत्तरी बगाल में हम का व्यवहार। अवधी मे जसे लगे (हमरे लगे—हमारे पास) का व्यवहार होता है, वैसे ही बगाल की कुछ बोलियो में सगे और साथे के साथ लगे का व्यवहार भी होता है। ग्रियसन ने मानभूम की बोली मे तक का प्रयोग दिखाया है लदी तक्क—नदी तक। यहा की बोली में न के स्थान पर ल बोलने की प्रवृत्ति है, साथ ही भोजपुरी क्षेत्र के समान क्रिया में क जोडने की प्रवत्ति है सुधालेक—पूछा, होलेक—हुआ। यहा की बोली का एक मुहावरा आधाइ गेना—अघायगा ठेठ अवधी मुहावरे का प्रतिरूप है। एक महत्वपूण तथ्य यह है कि पूर्वी बगाल की बोलिया में जिन बहुत से पुराने शब्दो में स था, उनमें तो उसका उच्चारण ह होता है किन्तु, ग्रियसन के सर्वेक्षण के अनुसार, जो हिन्दी के नये शब्द वहा पहुँचे हैं, उनमें स ध्वनि बनी रहती है। इसका अथ यह हुआ कि हिन्दी ध्वनितन्त्र बगाल की कुछ बोलियो को प्रभावित करने लगा है। सरकार को वहा सारकर कहते है, हारकर नही।

बगाल की एक बोली हजोग है। इसे बोलने वाले तिब्बती-बर्मी परिवार के कह जाते हैं। य लोग अब बँगला बोलते है। भविष्य काल के लिए मारिब जस रूपो के साथ करग—करूगा भी बोलते है। ग्रियसन ने ग का तिब्बती बर्मी प्रत्यय कहा है। यह प्रत्यय हिन्दी क्षेत्र का परिचित प्रत्यय है, पुरानी बँगला तथा बगाल की आधुनिक बोलियो म उसका व्यवहार होता है। हिन्दी क्षेत्र से बँगला का ऐसा ही सम्बन्ध है।

'एक आदि आयभाषा के बदले यहा अनेक आयभाषा केन्द्रो का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। यह सिद्धान्त सस्कृत के विवेचन स पुष्ट होता है और सस्कृत के विकास को समझने म सहायक होता है, वह आधुनिक आयभाषाओ के विवेचन स पुष्ट होता है और उनके विकास को समझने म सहायक होता है। किसी भी भाषा परिवार का निमाण होते होते होता है और उसम यह अनेक केन्द्रो की भूमिका अनिवाय होती है। बहुकेन्द्रीयता कोई ऐसा प्रपच नही है जो भाषाई विकास की किसी एक मजिल म सक्रिय रहे, फिर निष्क्रिय हो जाय। आयभाषा परिवार के निर्माण म अनक प्राचीन भाषा केन्द्रो का योगदान रहा है, इनम मध्यदेश के भाषा-केन्द्रो की भूमिका निणायक रही है।

दिया गया है पर वहा महाप्राण थ् नही, अल्पप्राण द् है। कुछ प्राकृतें शब्दो की मूल ध्वनि म सघोषता जोडती है, कुछ सघोषता हटाती हैं पर इस तरह अतिरिक्त महाप्राणता शायद कोई प्राकृत नही जोडती। यौवन के हिन्दी रूप जोवन स, इसी प्रकार सघोष ब् को महाप्राण बनाकर, सिन्धी म जोभनु रूप रचा गया। पव के रूपान्तर पब से पभु रूप बना। जहा मूल शब्द मे अघोष महाप्राण ध्वनि है, वहा प्राकृत परपरा के अनुसार सघोषता आरोपित करते हुए महाप्राणता की रक्षा की गई है यथा पथ का सिन्धी प्रतिरूप पधु है। अघोष अल्पप्राण ध्वनियो म भी जब-तब सिन्धी महाप्राणता का सयोग करती है। पुराना भारतीय शब्द मुकुल सिन्धी मे मुखिरि बना, अरबी से किताब, साबत, हिम्मत जसे रूप सिन्ध म पहुँच कर खुताबु, साबथ, हिम्मथ हो जाते हैं। जहा मूल रूप म सघोष महाप्राण ध्वनि है, वहा वह—ईरानी भाषाओ के विपरीत—सिन्धी म बनी रहती है जसे श्राद्ध और व्याघ्र के प्रतिरूपा सिराधु और वाघु म। जैसे हिन्दी म जहा-तहा दन्त्य ध्वनियो का मूर्धन्यीकरण हुआ है वैसे ही सिन्धी म भी यह प्रक्रिया सपन्न हुई है पर सघोषता और महाप्राणता के दोनो लक्षण यथावत् रहे। वद्ध हिन्दी म बूढ़ा है, वसे ही सिन्धी म 'बुढो है। मिथ्या के सिन्धी प्रतिरूप मठ्या मे थ् का मूर्धन्यीकरण हुआ है, हिन्दी म वैसा रूप नही है, प्राकृतो के अनुरूप अतिरिक्त सघोषता यहा आरोपित नही की गई। मूर्धन्यीकरण के अलावा जहा तालव्यीकरण हुआ है, वहा भी सघोषता-महाप्राणता के सयोग पर आच नही आई। सस्कृत के उपाध्याय हिन्दी म वाझा हुए और सिन्धी म वाझ्झा बने, मैथिली झा के समान। तालव्य स्पश ध्वनि सघोष रही, महाप्राण भी। (जो चवर्गीय ध्वनियो को पूण स्पश न मानें, वे उन्हे ईषत् स्पश कह लें।) हिन्दी क्षेत्र की पछाही बोलिया म हाथ का दूसरा वण महाप्राणता खो देता है, तब हात बोला जाता है, सिन्धी हिम्मत को भी हिम्मथ कर देती है। (सिन्धी भाषा के उदाहरण अर्नेस्ट ट्रम्प की पुस्तक ग्रामर ऑफ द सिन्धी लग्वेज लाइपत्सिग, १८७२, से दिय गय हैं।)

दन्त्य, ओष्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, कठ्य, पाचो प्रकार की सघोष महाप्राण ध्वनिया सिन्धी में विद्यमान है। यह स्थिति सिन्ध और मध्यदेश के घनिष्ठ भाषाई सपक का प्रमाण है। मध्यदेश के आर्यभाषा केन्द्रो को देखत सिन्धी प्रान्त भाषा है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि यह अघोष मूल शब्दो की अल्पप्राण ध्वनि पर महाप्राणता आरोपित करती है, ऐसे मूल शब्द सस्कृत के हो नहीं अरबी के भी है। पव के लिए पभु जस मध्यदेश में न मिलेगा पर उससे सिद्ध यह होता है कि ईरानी भाषाओ से भिन्न सि... लिए सघोष महाप्राण ध्वनियो का व्यवहार अत्यन्त स... आप... ईरान से आने वाले आर्य पहले मध्यदेश पहुँचे थे, य... या ... मध्यदेश पहुँचे थे, या सिन्धी भाषा के विकास की प्र... ही से

सिन्धी उस आर्यभाषा समुदाय के अन्तगत है ... थी। सिन्धी भाषा के विवेचन ट्रम्प मानते थे कि प्राकृ... का है, वैसा अन्य किसी अन्य भारतीय आय भाषा ... भी मूर्धन्यता के लिए वसा आग्रह नहो है असा सिन्धी

दिया गया है पर वहा महाप्राण थ् नही, अल्पप्राण व है। कुछ प्राकृत शब्दों की मूल ध्वनि मे सघोषता जोडती है, कुछ सघोषता हटाती हैं पर इस तरह अतिरिक्त महाप्राणता शायद कोई प्राकृत नही जोडती। यौवन के हिन्दी रूप जोबन से, इसी प्रकार सघोष ब् को महाप्राण बनाकर, सिन्धी मे जोभनु रूप रचा गया। पव के रूपान्तर पव से पभुं रूप बना। जहा मूल शब्द मे अघोष महाप्राण ध्वनि है, वहा प्राकृत परपरा के अनुसार सघोषता आरोपित करते हुए महाप्राणता की रक्षा की गई है यथा पथ का सिन्धी प्रतिरूप पधु है। अघोष अल्पप्राण ध्वनियो मे भी जब-तब सिन्धी महाप्राणता का सयोग करती है। पुराना भारतीय शब्द मुकुल सिन्धी म मुखिरि बना, अरबी स किताब, साम्रत, हिम्मत जसे रूप सिन्ध मे पहुँच कर खुताबु, साम्रथ, हिम्मथ हो जाते हैं। जहा मूल रूप म सघोष महाप्राण ध्वनि है, वहा वह—ईरानी भाषाओ के विपरीत—सिन्धी म बनी रहती है जैसे श्राद्ध और व्याघ्र के प्रतिरूपो सिराधु और वाघु म। जसे हिन्दी मे जहा-तहा दन्त्य ध्वनियो का मूर्धन्यीकरण हुआ है वैसे ही सिन्धी मे भी यह प्रक्रिया सपन्न हुई है पर सघोषता और महाप्राणता के दोना लक्षण यथावत् रहे। वृद्ध हिन्दी म बूढा है, वैसे ही सिन्धी म 'बुढो है। मिथ्या के सिन्धी प्रतिरूप मठ्या मे थ् का मूर्धन्यीकरण हुआ है, हिन्दी म वैसा रूप नही है, प्राकृतो के अनुरूप अतिरिक्त सघोषता यहा आरोपित नही की गई। मूर्धन्यीकरण के अलावा जहा तालव्यीकरण हुआ है, वहा भी सघोषता-महाप्राणता के सयोग पर आच नही आई। सस्कृत के उपाध्याय हिन्दी म पाधा हुए और सिन्धी मे वाझा बने, मैथिली झा के समान। तालव्य स्पश ध्वनि सघोष रही, महाप्राण भी। (जो चवर्गीय ध्वनियो को पूण स्पश न मानें, वे उन्ह ईषत स्पश कह लें।) हिन्दी क्षेत्र की पछाही बोलियो मे हाथ का दूसरा वण महाप्राणता खो देता है, तब हात बोला जाता है, सिन्धी हिम्मत को भी हिम्मथ कर देती है। (सिन्धी भाषा के उदाहरण अर्नेस्ट ट्रम्प की पुस्तक ग्रामर ग्रौफ द सिन्धी लग्वेज लाइप्त्सिग, १८७२, से दिये गये हैं।)

दन्त्य, ओष्ठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, कठ्य पाचो प्रकार की सघोष महाप्राण ध्वनिया सिन्धी मे विद्यमान है। यह स्थिति सिन्ध और मध्यदेश के घनिष्ठ भाषाई सपक का प्रमाण है। मध्यदेश के आयभाषा केन्द्रो को देखते सिन्धी प्रान्त भाषा है। इसका एक प्रमाण यह भी है कि वह अनेक मूल शब्दो की अल्पप्राण ध्वनि पर महाप्राणता आरोपित करती है, एसे मूल शब्द सस्कृत के ही नही अरबी के भी है। पव के लिए पभु जसा रूप मध्यदेश में न मिलगा पर उससे सिद्ध यह होता है कि ईरानी भाषाओ स भिन्न सिन्धी के लिए सघोष महाप्राण ध्वनियो का व्यवहार अत्यन्त सहज है। अब आप विचार करें कि ईरान से आने वाले आय पहले मध्यदेश पहुँचे थे, वहा से सिन्ध गये, या सिन्ध होते हुए मध्यदेश पहुँचे थे, या सिन्धी भाषा के विकास की प्रक्रिया इस आवाजाही से स्वतत्र है।

सिन्धी उस आयभाषा समुदाय के अन्तगत है जिसम मूर्धन्य स्पश ध्वनियाँ प्रमुख थी। सिन्धी भाषा के विवेचक ट्रम्प मानते थे कि प्राकृतो से जसा घनिष्ठ सबध इस भाषा का है, वैसा अन्य किसी अन्य भारतीय आय भाषा का नही है, किन्तु प्राकृतो म कही भी मूर्धन्यता के लिए वसा आग्रह नही है जसा सिन्धी म है। इसलिए ट्रम्प ने अपने सिन्धी

व्याकरण मे लिखा है, "सि धी म द त्य ध्वनिया अपनी प्रतिरूप मूध य ध्वनियो के लिए स्थान छोड़ देती हैं, और यह आत्मसमपण वत्ति इतनी प्रबल है कि सि धी नी व्यजन-व्यवस्था इस मामले मे पुरानी प्राकृत व्यवस्था स स्पष्टत और तत्वत भिन्न है।" (भूमिका, प० २०)। सस्कृत और जनपदीय भाषाओ के बहुत से शब्दा मे जहा द त्य ध्वनि है, वहां सिन्धी मूध य ध्वनि का व्यवहार करती है। दीघ, पुत्र, मित्र, चन्द्र, क्षेत्र, मत्र, यात्रा, निद्रा, शास्त्र, कुदाल, दस चौदह, आदित्य, दिवस, तोडना, देना के सिन्धी प्रतिरूप क्रमश इस प्रकार हे डिघो, पुट्ट, मिट्ट, चड्ड, खेट, मट्ट, (अथवा मड्ड), जाट्रा, निड्र, ड्रामो, को'डरि, 'डह, चो'डह, आ'डितु, 'डींहु, ट्रोडणु, 'डिअणु। मध्यदेश की भाषाए द त्य मूध य ध्वनिया का उपयोग अथभेद के लिए करती हैं, व द त्य ध्वनियो के स्थान पर इस तरह मूध य ध्वनिया का सामूहिक प्रतिस्थापन नही करती। सिन्धी के लिए टवर्गीय ध्वनिया ही प्रधान हैं, अत वह पचीसा मध्यदेशीय शब्दा को अपनी ध्वनि प्रकृति के अनुरूप ग्रहण करती है। मध्यदेश म य ध्वनिया सिन्ध सौराष्ट्र की ओर स आई हैं, तवर्गीय ध्वनिया सि धी मे मध्यदश से पहुची है। असम और सौराष्ट्र की अपेक्षा सिन्ध ने इन तवर्गीय ध्वनियो को अधिक अपनाया है। ये ध्वनिया ईरान मे भी हैं किन्तु वहा य नही है, वहा टवर्गीय ध्वनिया का भी पूण अभाव है। अत पूरी स्थिति देख कर यही कह सकते है कि तवर्गीय ध्वनिया सिन्धी मे ईरान से नहीं, मध्यदेश से पहुची है।

सिन्धी भाषा मे मूधन्य ध्वनिया की स्थिति ईरानी भाषाओ से उसका मौलिक अन्तर प्रकट करती है। ये ध्वनिया अवेस्ता की भाषा, पहलवी और फारसी म नही हैं, ईरानी समुदाय की भाषाओ मे उनका सामान्य अभाव है। जहा उनका व्यवहार होता है यथा पश्तो म, वहा उसका कारण भारतीय प्रभाव है। ट्रम्प ने सिन्धी और पश्तो को एक दूसरे के बहुत समीप माना था जो उचित है। इस समीपता का एक लक्षण टवर्गीय ध्वनियो का व्यवहार है, ऐसा व्यवहार दरद भाषा क्षेत्र की विशेषता नही है।

ब्रज, अवधी आदि जनपदीय भाषाओ मे टवर्गीय स्पश ध्वनिया का व्यवहार होता है, मूधन्य नासिक्य का नही। ण के मामले मे सिन्धी बागरू के अधिक निकट है किन्तु बागरू के समान यह उसकी प्रधान नासिक्य ध्वनि नही है। ण के अतिरिक्त उसम ञ, ङ, न का भी खूब व्यवहार होता है। क्रियार्थी सज्ञारूपो म अवधी कनौजी का न प्रत्यय यहा णु रूप म प्रयुक्त होता है भउणणु (भ्रमण करना), चवणु (कहना), मञणु (मानना), तापणु (तप्त होना)। मानक हिन्दी के समान यहा आकारान्त प्रत्यय ना का व्यवहार नही होता, अवधी-कनौजी के समान प्रत्यय ह्रस्व स्वरान्त है। अवधी सज्ञारूपा के समान उसे उकारान्त भी बनाया गया है। सस्कृत के अनेक शब्दा म जहा न है, वहा सिन्धी ने ण स्थापित किया है, धेनु, नयन, सुजान जैसे रूप परिवर्तित होकर धेणु, नेणु सुजाणु बने। किन्तु मूल शब्दा का ण, मध्यदेशीय भाषाओ के समान, अनेक बार न रूप म भी ग्रहण किया गया है पुनो (पूण), रतवरनो (रक्तवण)। सिन्धी के अनेक तद्भव रूप प्राकृत-परपरा से विलग हैं। सन अथवा सेंहन नींहु, (स्नेह), सुपनो (स्वप्न), जोभनु (योवन) जस रूप व्रजभाषा की याद दिलाते हैं। ट्रम्प ने इस बात पर ध्यान दिया है कि

प्राकृतो के समान सिन्धी मे ण् सवत्र सस्कृत शब्दो के न् का स्थान नही लेता, "दोनो ध्वनियो को एक दूसरे से साफ अलग रखा जाता है।" (भूमिका, पृ० १८) । फिर भी यह मानना होगा कि सिन्धी ण् क्षेत्र की भाषा है। इस दृष्टि से वह वागरू पजाबी, राजस्थानी-गुजराती, मराठी समुदाय के निकट है और ईरानी से दूर है। उसम अन्य तवर्गीय ध्वनियो के समान न का प्रवेश मध्यदेशीय प्रभाव से हुआ है।

मूधन्य क्षेत्र की भाषाओ से भिन्न सिन्धी मे तालव्य नासिक्य ध्वनि ञ का व्यवहार बहुत होता है। पुण्य का ण तालव्य ध्वनि य् के ससग से अपना मूध य तत्व खोकर ञ बन जाता है, पुण्य का सिन्धी रूपान्तर हुआ पुञो। मज्जा म अतिरिक्त नासिक्य ध्वनि जोडी गई, फिर केवल नासिक्य ध्वनि रही और ज् का लोप हो गया, मज्जा का रूपान्तर हुआ मिञु। सिन्धी म ञ के अतिरिक्त ङ् के साथ भी जो स्पश ध्वनि हो, उसका लोप करने की प्रवत्ति है। इस प्रकार ग्रङु (अग) ग्रङरु (अगार), ग्रङणु (आगन), मङणु (मागना) जैसे रूप सिन्धी भाषा की विशेषता है। म और न के अलावा ङ्, ण्, ञ का प्रचुर व्यवहार सिन्धी मे होता है। नासिक्य ध्वनियो म वह विशेष समद्ध है। यह समद्धि उसे पुन ईरानी समुदाय मे अलग करती है।

सिन्धी उन भाषा केन्द्रो से विशेष प्रभावित हुई है जिनम तालव्य स्पश ध्वनियो की प्रधानता थी। हिन्दी म सत्य का रूपान्तर सच है किन्तु हत्या मे ऐसा परिवतन नही होता। सिन्धी हत्या को भी बदल कर हचा बना लेती है। इसी प्रकार विद्या और वद्य क्रमश विंजा और वेंजु है। एक ओर दन्त्य ध्वनियो का तालव्यीकरण होता है, दूसरी ओर उनका मूधन्यीकरण भी होता है। इन दो प्रवत्तियो के बीच दन्त्य ध्वनियो की स्थिति निबल हो जाती है। दन्त्य ध्वनियो का ऐसा व्यापक तालव्यीकरण ईरानी भाषाओ की विशेषता नही है। सिन्धी ध्वनितन्त्र के विवेचन से इस धारणा की पुष्टि होती है कि तालव्य ध्वनियो के केन्द्र भारत के उत्तर पश्चिमी क्षेत्रो मे थे।

सिन्धी मे बहुत से शब्द ओकारान्त है। इनमे सज्ञा रूप है बाबो (पिता), सहुरो (ससुर), गाडो (गाडी), विशेषण हैं मुग्रो (मरा), पको (पका), 'बुढो (बूढा), कृदन्त रूप है वेन्दो (जाता), करीन्दो (करता), भरीन्दो (भरता)। ऐसे ओकारान्त रूप ब्रज राजस्थानी गुजराती मे हैं इडोयूरोपियन परिवार की कुछ अन्य भाषाग्रो म है किन्तु वे ईरानी समुदाय की भाषाओ म नही है। सिन्धी में ओकारान्त और उकारान्त दोनो तरह के रूप हैं। इससे यह धारणा खडित होती है कि ग्रवधी के उकारान्त रूप पालि के ओकारान्त रूपो के आधार पर बने है। ब्रज की ओकारान्त और अवधी की उकारान्त, दोनो तरह की प्रवत्तिया सिन्धी म हैं। सिन्धी पुराने आय शब्दो के अलावा अरबी से आये शब्दो को भी उकारान्त रूप देती है यथा दौर—दौरु, गरीब—गरीबु तमाम—तमामु। सिन्धु शब्द उकारान्त वत्ति की प्राचीनता सिद्ध करता है, कौरवी भाषा समुदाय की प्रवृत्ति ऐसे उकारान्त शब्दो के स्थान पर अकारान्त रूपो के व्यवहार की है। सिन्धु का वतमान प्रचलित रूपान्तर सिन्ध कौरवी प्रभाव का परिणाम है। भाषा का नाम सिन्धी, सिन्धु नही सिंध के आधार पर, रखा गया। सिंध और सिन्धी के समान, भिन्न

प्रदेश और भाषा के लिए, हिन्द और हिन्दी शब्दों का चलन हुआ।

मध्यदेशीय भाषाओं की एक विशेषता शब्दों को अजन्त रूप में व्यवहार करने की है। यह प्रवृत्ति सिन्धी में बनी हुई है। इसके विपरीत कौरवी प्रवृत्ति अनेक शब्दों को हलन्त रूप में व्यवहार करने की है। फ़ारसी में यह वृत्ति प्रबल है। फ़ारसी और सिन्धी के क्रियार्थी संज्ञा रूपों की तुलना करने से यह बात स्पष्ट हो जायगी। आवाज़ीदन्—पुकारना, इस्तादन्—खड़े होना, मफ़्हुदन्—मुझाना, इन फारसी रूपों के अन्त में व्यंजन है। सिंधी के चवणु—बोलना, वञणु—जाना, निअणु—ले जाना रूपों में अंतिम ध्वनि स्वर है। फ़ारसी और सिंधी दोनों में आधारभूत प्रत्यय न है, फारसी में इसका हलन्त रूपान्तर न् है, सिंधी में अजन्त रूपान्तर णु है।

उत्तर पश्चिमी भाषाओं में ल् की प्रधानता है, मध्यदेश की भाषाओं में र् की। सिंधी अनेक शब्दों में संस्कृत की ल् ध्वनि को र् बना लेती है। वल्कल से वकरु, शीतकाल से सिआरो देवालय से डुमारो रूप इसी ध्वनि प्रकृति के कारण बनते हैं। सिंधी की स्वतंत्र ध्वनि प्रकृति फ़ारसी शब्दों का भी कायाकल्प करती है। बुलबुल का सिंधी प्रतिरूप बुर्बुलो एक ल् स्वीकार करता है, दूसरे की जगह उसमें र् स्थापित है। बिल्लोचिनी के लिए ट्रम्प ने सिंधी रूप 'बरोचाणी दिया है। जैसे ल और र की जोड़ी है वैसे ही र और स् की है। सिंधी मूल शब्दों के ल् को बदल कर र् कर देती है तो वह र के स्थान पर स् को भी जहाँ-तहाँ प्रतिष्ठित करती है। दर्शन, क्लेश, श्लोक, शुष्क सिंधी में क्रमशः दसनु किलेसु, सलोकु सुको हैं। दन्त्य स् के लिए आग्रह मध्यदेशीय भाषाओं की विशेषता है। मध्यदेशीय भाषाओं के ही समान सिंधी अनेक शब्दों में श के स्थान पर छ् का व्यवहार करती है। शनश्चर, शावाश, पादशाह सिंधी में क्रमशः छछरु, छाबिस, पाछाहु हैं। फारसी में इस छ ध्वनि का अभाव है। पश्चिमी आर्य भाषाओं के समान सिंधी अनेक शब्दों के स् को ह् में बदलती है। फासी, दस, देस बरस सिंधी में फाही, 'डह, 'डेहु, परिहु है। यह प्रवृत्ति अवेस्ता की भाषा में है किन्तु फारसी में नहीं है। अरात इसका प्रभाव मध्यदेश की भाषाओं पर भी है किन्तु वह मूलभूत विशेषता पश्चिमी आर्य भाषाओं की है।

मध्यदेशीय भाषाओं के समान ही सिंधी को व्यंजन द्वित्व से विशेष प्रेम नहीं है। ग्रियसन ने अपने सर्वेक्षण ग्रंथ (खंड ८, भाग १) में बताया है कि अरबी फारसी शब्दों में अतिरिक्त स्वर के योग से सिंधी व्यंजन द्वित्व समाप्त कर देती है। मासिमान, बोसित, हुकिम, खिजिमत उमिर, वकित—इन रूपों से इ निकाल दें तो मूल शब्दों के स्वरूप का अनुमान हो सकेगा, साथ ही फारसी सिंधी की ध्वनि प्रकृति का भेद भी ज्ञात होगा। ग्रियसन ने स्वीकार किया था कि लहँदा में व्यंजन द्वित्व खूब चलता है और सिंधी यहाँ उससे भिन्न है। किन्तु वह सिंधी और लहँदा दोनों को फारसी प्रभावित दरद भाषाओं में गिनते थे। उन्होंने दरद भाषाओं की एक विशेषता यह बताई थी कि संस्कृत शब्दों के दो व्यंजनों के स्थान पर जब वे एक ही व्यंजन का व्यवहार करती है, तब क्षतिपूर्ति के लिए स्वर को दीर्घ नहीं करती। संस्कृत भक्त हिन्दी में तो भात है किन्तु सिंधी में भत है। उक्ति-व्यक्ति प्रकरण में कष्ट का अवधी प्रतिरूप कठ है, वस्तु का प्रतिरूप बथु है, भद्र का

प्रतिरूप भल है। बालकाण्ड के आरभ मे तुलसीदास ने भी लिखा था ते नर यह सर तजहि न काऊ। जि ह के राम चरन भल भाऊ। भल मे क्षतिपूर्ति के लिए प्रथम वण के स्वर को दीघ नही किया गया, मानक हि दी का भला अवधी भल का ही कौरवी दीघ स्वरा त रूप है। क्षतिपूर्ति हुई है बँगला रूप भालो मे। मध्यदेश मे, स्वर को दीघ किये बिना, दो व्यजनो के स्थान पर एक व्यजन के व्यवहार की पद्धति रही है, यद्यपि यह पद्धति कश्मीरी और सि धी मे अधिक प्रभावी है। कि तु इस पद्धति को फारसी से क्या लेना देना है? वहा तो स्वप्न का प्रतिरूप ख्वाब, वर्षा का प्रतिरूप बारिश, प्रस्ताव का प्रतिरूप पेशाब है।

अनेक पश्चिमी आय भाषाओ के समान सिन्धी व ध्वनि की रक्षा करती है और कभी कभी प को भी व मे बदलती है। यहा वर और वद्ध क्रमश वेरु और वे जु हैं, व ध्वनि सुरक्षित रही, इसके सिवा उपाध्याय का रूपा तर पाधा सि धी म वाझो हुआ, प ध्वनि व मे परिवर्तित हुई। फारसी यहा मध्यदेशीय भाषाओ के अधिक समीप है, व् को ब मे बदलने से सस्कृत वात और वर्षा वहा बाद और बारिश है। अ य अन्तस्थ ध्वनि य को सि धी मध्यदेशीय भाषाओ के समान अवसर ज मे बदलती है। सूय, यश, आश्चय, यौवन के सि धी रूपान्तर सूरिजु, जसु, अचुजु, जोभनु है। फारसी मे य का स्पष्ट व्यवहार होता है। फारसी मे ऐ, औ स्वर स्पष्ट हैं, सि धी पुराने सयुक्त स्वरो अइ, अउ और नये ऐ, औ, को पश्चिमी आय भाषाओ के समान ए, ओ मे बदलती है। जहा वह अइ, अउ का व्यवहार करती है, वहा वे सयुक्त स्वर नही, दो भि न स्वर होते है यथा हि दी सौ के प्रतिरूप सउ मे अ और उ अलग अलग दो स्वर है। हि दी बैद और बर इसी प्रवृत्ति के कारण सि धी म वेजु और वरु हैं, सस्कृत यौवन के प्रथम वण का सयुक्त स्वर अउ सि धी जोभनु मे ओ रह जाता है। उधार लिए हुए शब्दा म भी सि धी ऐसा परिवतन करती है यथा कौम को कोमु बना लेती है पर सवत्र वह ऐसा नही करती। पजाबी के समान सि धी म मध्यवर्ती स्पश ध्वनि को सघोष करने की प्रवृत्ति है। पजाबी के समान कृद त प्रत्यय त यहा सघोष रूप मे प्रयुक्त होता है सुण दो (सुनता), पिअ दो (पीता), वे दो (जाता)। शक्ति को स'गति बनाने के अलावा सि धी राजपूत जैस अपेक्षाकृत नये शब्दा को भी रजबूतु रूप में, सघोषता के साथ, ग्रहण करती है। प्राकृत परपरा के अनुरूप अघोष महाप्राण ध्वनियो म भी वह ऐसा परिवतन करती है (पुन सवत्र नही), सोठ, कठी गाठ यहा सुढि, कढी, गढि हैं। प्राकृतो, पजाबी, बागरू, सि धी, मानक तमिल म मध्यवर्ती अघोष स्पश ध्वनि को सघोष करने की व्यापक प्रवृत्ति है, इसलिए उसे भारतीय भाषा परिवारो की एक विशिष्ट प्रवृत्ति मानना चाहिए। यह प्रवृत्ति अवेस्ता की भाषा म नही है किन्तु अशत फारसी मे है। मानना चाहिए कि फारसी ने उसे भारतीय भाषाओ से प्राप्त किया है। सि धी मे सघोषता के लक्षण का विकास अ य आय भाषाओ की अपेक्षा अधिक हुआ है। इसम ग, ज, ड, ब ध्वनियो का उच्चारण दो प्रकार से होता है। एक प्रकार वह है जिसम, अ य आय भाषाओ के समान, इनका उच्चारण करते समय अवरुद्ध वायु का निवास बाहर का होता है, दूसरे प्रकार म अवरुद्ध वायु का स्फोट भीतर की ओर होता है। इस प्रकार उक्त ध्वनियो मे, अ त स्फोट और बहि स्फोट के विचार

सिन्धी म निधरु (असहाय) इस भाषा की शब्दरचना क्षमता का अच्छा उदाहरण है। स्तम, स्थाण् आदि शब्दा म जस स्थिरता के साथ सहारा देने का भाव है वैस ही धरा शब्द स स्थिरता और सहारा, दोना की व्यजना होती थी। यह तथ्य निधरु स स्पष्ट हाता है। इस शब्द द्वारा सि धी न धर, धरा आदि शब्दा के पुराने अथ ससग को १ .यम रखा है, नि उपसग लगाकर उसक आधार पर नया शब्द गढा है।

सिन्धी के पोढ़िय्रो (श्रम करना) पोढ़िय्रतु (श्रमिक) शब्द उस पो क्रिया से बने हैं जा पाणि और पणिक्कर क पण से सबद्ध है। सस्कृत अप् (श्रम, सब ध कारक म अप) इसी त्रिया से बना है, अ्र उपसग है। लटिन आपुस (श्रम, कृति) इसी शृखला म है। सिन्धी म कृदन्त पोध पोढ़ को फिर क्रियामूल बनाया गया है। भारतीय भाषा-परिवारा म ऐसी अनक क्रियाएँ ह जिनक धा, वर वत आदि अनेक वैकल्पिक रूप हैं। इसी तरह पो का एक रूप पर था। पर् म ध प्रत्यय जोडन पर पध रूप बना, प् के व म बदलने पर वध रूप मिला जिसे पुन त्रिया मूल बनाया गया। वध् का अथ होना चाहिए बढना किन्तु इसका अथ था काटना। इसका रहस्य यही है कि वध् (काटना) का पूवरूप पध् था। हाथ स जो त्रियाएँ सपन्न हाती हैं, उनम मारना, काटना भी एक प्रमुख क्रिया है। कर त्रिया म त प्रत्यय जाडन पर जो कत रूप मिला, उसी स काटन का अथ व्यक्त करन वाली सस्कृत कतन की कत अथवा कृत अग्रेजी कट् क्रियाए बनी। इसी प्रकार दस्त (हस्त) के दस तस से तक्ष क्रिया बनी जिसका अथ काटना हुआ। तक्षक साप है, तक्षन् बढई है। वधक, वर्धकि इसी प्रकार बढ़ई का अथ देत है। सिन्धी म वेढ़ि शब्द का अथ जगल है, जगल के लिए इस शब्द का प्रयोग बढई की लकडी काटने वाली त्रिया के ससग स हुआ होगा।

सिन्धी मे इभो, उभो निर्देशक सवनाम है। इनके पूवरूप इध, उध थे, इ उ सवनामा म वस्तु वाचक ध प्रत्यय जोडा गया था। सस्कृत इह इसी इध का रूपान्तर है। सिन्धी ने यहा ध का तालव्याकरण ता स्वीकार किया किन्तु स्पशतत्व का लोप न होने दिया। हि दी इधर, उधर म मूल ध ध्वनि विद्यमान रही। सस्कृत इह और हिन्दी यह-वह क समान सि धी म ईहो ऊहो (यही-वही) रूप भी हैं। बादी के लिए सिन्धी शब्द वा ही पूवरूप बाधो की सूचना देता है। ब ध् त्रिया के आधार पर फारसी रूप बादो बना, ध का अघोपीकरण हुआ। सिन्धी न ध को ह् म परिवर्तित किया और बान्ही रूप चलाया। इसी क भाइबद पूर्वी क्षेत्र के बनिहार (दास) है। सिन्धी मे बाधी शब्द भी है किन्तु उसका अथ है नदी म तरता लटठा। इसका सबन्ध बन से होगा, सिन्धी वणु का अथ है पेड।

सिन्धी 'गाल्हि (शब्द) का सब ध प्रगल्भ के गल्भ स है, गल्प और पजाबी गल्ल जिसके रूपान्तर हं। गल्भ का 'गल गद त्रिया का रूपान्तर है। सिन्धी ने यहा स्पश ध्वनि भ को सघर्षी ह रूप म ग्रहण किया है। सोन के लिए सुम्ह त्रिया का पूर्वरूप सुम्भ रहा

अत मध्यदेश की भाषा परपरा और उससे सिन्धी के सबन्ध पर सोचने-विचारने का प्रश्न ही न था। बहुत से बहुत किसी काल्पनिक प्राकृत या अपभ्रंश से सिन्धी का सबन्ध जोडकर, पुराने प्राकृत अपभ्रंश रूपों की रक्षा का श्रेय सिन्धी को दे दिया गया, बस! सास्कृतिक दृष्टि से सिन्धु घाटी की सभ्यता का मूल क्षेत्र सिन्ध है किन्तु इसका सबन्ध सिन्ध की आर्यभाषाई जनता से जोडा ही क्या जाता जब यह सभ्यता आर्येतर मान ली गई थी! किन्तु सिन्धी भाषा म मध्यदेशीय भाषा के जो तत्व है, वे अत्यन्त प्राचीन है। उचित होगा कि इन तत्वो की पहचान को आधार बनाकर एक बार फिर सिन्धु घाटी की लिपि के रहस्यभेद का प्रयत्न किया जाय। सिन्धी शब्द-तत्र का अध्ययन करते समय हम सबसे पहले इस बात पर ध्यान दें कि सिन्धी न महाप्राणता के लक्षण की रक्षा कैसे की है और यह लक्षण सिन्धी रूपो की प्राचीनता कैसे सिद्ध करता है। यदि सिन्धु घाटी की सभ्यता द्रविड जनो की सभ्यता होती तो सिन्धी मे महाप्राण ध्वनियो की रक्षा असभव होती, विशेषरूप से इस कारण कि अरबो ने सिन्ध पर अधिकार किया और न भी द्रविडो के समान सघोष महाप्राण स्पर्श ध्वनियो का व्यवहार न करते थे। यदि फ्रास से आनेवाले नामन विजेताओ के प्रभुत्वकाल मे अग्रेजी की स्थिति से अरब प्रभुत्वकाल मे सिन्धी की स्थिति की तुलना करें, तो पता चलेगा कि अग्रेजी के ध्वनितत्र म जहा व्यापक परिवतन हुआ है वहा सिन्धी का ध्वनितत्र मूलत अपरिवर्तित रहा है। सिन्धी जनता का यह स्वभाषा प्रेम ऐतिहासिक भाषाविज्ञान को उनकी विशिष्ट देन है।

सिन्धी शब्द **सघ** का अथ है शक्ति, क्रिया सघणु का अथ है सकना, कोई काम करने की क्षमता होना। सस्कृत **साहस** म जो **सह** क्रिया है उसका पूवरूप **सघ** है। इस **सघ** का रूपान्तर सस्कृत **शक्नोति** की **शक** क्रिया है जिसम हिन्दी **सकना** का सबन्ध है। **शक, शक्त, शक्ति** इसी **शक** से सबद्ध है इसका उल्लेख पहले हो चुका है। गणवाचक शब्द बहुत्वसूचक होते है, **सघ** के रूपान्तर **सक** या **सग** से सस्कृत **सकल** और ब्रजभाषा के **सिगरे** रूप बने। **सकल** के गुजराती प्रतिरूप **सघळू सगळू** हैं। (ये रूप डा० पी० बी० पडित ने जून १६५७ की **इडियन लिंग्विस्टिक्स** पत्रिका म प्रकाशित गुजराती मे अनुनासिकता और महाप्राणता पर अपने लेख म दिये है।) **सघळू** के **सघ** म महाप्राणता जोडी गई है, यह मानने का कोई कारण नही है। सस्कृत म **शक** तथा **सह** और **सकल** का **सक** तो है, मूलरूप **सघ** नही है। यह मूल रूप गुजराती और सिन्धी म है, सिन्धी म उसका शक्तिवाचक अथतत्व सुरक्षित है। **शक, सह, सकल सघ** परस्पर सबद्ध हैं इसकी पुष्टि अथससग की उन रीतियो से होती है जो यहा दूर दूर तक प्रचलित थी और जिनका विश्लेषण पहले किया जा चुका है। सिन्धी **सघारो** (शक्तिशाली) म यही **सघ** है। **सघ, सघो** रूप भी सिन्धी मे विशेषण के समान प्रयुक्त होत है।

आयभाषाओ म इस समय कृदन्त प्रत्यय **ध** सबसे ज्यादा सिन्धी म सुरक्षित है। **दुग्ध** सिन्धी मे '**डुधो** है, हिन्दी **दूध** म भी **ध** प्रत्यय बना हुआ है। **रांधना, रांधा** के समान सिन्धी म **रन्ध** क्रिया और **रधो** कृदन्त रूप है। सभोग क्रियासूचक सस्कृत **यभ**

के सिन्धी प्रतिरूप जभ और जह से कृदन्त जधो बनता है। सि धी क्रिया डह (सताना) संस्कृत दह् का रूपान्तर है, दग्ध के समान कृदन्त रूप 'डधो है। सि धी रुभ (व्यस्त होना) हि दी उलझना, व्रज सुरझत, अवधी अरझत से सबद्ध है, कृद त रूप है रधो। हि दी रीझना, रीझा के समान सि धी रीझ और रीधो हैं कि तु रीझा के विपरीत सि धी रूप मे ध है। सि धी विझणु (फेंकना) संस्कृत बिध हि दी बेधना का प्रतिरूप है, कृद त रूप है विधो। सि धी रूपा को देखने के बाद किसी के मन म स देह न रहना चाहिए कि हि दी दिया, किया के आधार रूप दिध, किध ये, कृत और दत्त को ऐसे रूपो का आधार मानना सही नही है। पजाबी कृद त रूपा मे ध का अभाव सूचित करता है कि मध्यदेश से निकटतम सपर्क सि ध का था।

सि धी कृद त रूपा मे ध्वनितत्त्वीय विशेषता यह है कि ग्ध, द्ध, ब्ध से केवल घ् बच रहता है पूर्व व्यजन का लोप हो जाता है और क्षतिपूर्ति के लिए आदि वण का स्वर दीघ नही होता, वह क्रियामूल म ही दीघ हो तो बात अलग है। यह मध्यदेश की पुरानी प्रवृत्ति है और दामोदर पडित के समय तक जीवित थी। अवधी बिहिसि, किहिसि के विह्, किह् के पूवरूप दिध, किध थे, दिद्ध किद्ध नही। ध प्रत्यय के पहले कही नासिक्य ध्वनि भी दिखाई नही देती। र ध क्रिया से रधो रूप बनता है, रांधो या रँधो रूप नही। पूव स्वर को अनुनासिक बनाकर न व्यजन लुप्त हो जाय, ऐसा नही होता। पूरा व्यजन ही लुप्त होता है जसे ग, द्, ब लुप्त होत है। ध के अतिरिक्त जहाँ अ य प्रत्यय है, वहा भी यह क्रम देखा जाता है यथा मुझ (उलझन म पडना) स मुठो। किन्तु हल दो (चलता हुआ), सुण दो (सुनता हुआ) पिय दो (पीता हुआ) आदि म ध के स्थान पर द है और न सुरक्षित है। यह विरोधी प्रवृत्ति है जिसका सब ध कुरुगण समुदाय से है। ऐतिहासिक दृष्टि से अ य व्यजनो की अपेक्षा सि धी कृदन्ता म न का लोप अधिक महत्वपूण है। मुझ और र ध क्रियाओ के लिए यह सभावना है कि इनके समानान्तर मुझ, रध रूपा का चलन रहा हो और इनमे मुठो रधो कृद त बने हो।

किन्तु मुठो और रधो चाहे मुझ और र ध से बने हा, चाहे मुझ और रध से, यह तो स्पष्ट है कि आदि वण पर बलाघात से बचने के लिए सि धी व्यजन लोप द्वारा बहुधा दीघ वण को ह्रस्व कर देती है। प्राचीन काल म यदि गम स ग त, मन से म त रूप बने हो, तो सि धी ध्वनिप्रकृति के अनुकूल इनके गत और मत प्रतिरूपा का चलन होगा। गत, गति, मत मति रूपा म नासिक्य व्यजन के अभाव का कारण उक्त ध्वनि प्रकृति हो सकती है।

हृदय के सि धी प्रतिरूप हिर्धो पर फिर विचार करें। ट्रम्प का कहना है कि र् के ससग से द म अतिरिक्त महाप्राणता जोडी गई है किन्तु ऐसा कोई नियम नही है। अचजु (आश्चय), गबु (गव), सुर्गु (स्वग), सिजनहारु, आतरु (आदित्यवार) आदि उदाहरणा म र के ससग से महाप्राणता का योग नही होता। मिर्धो म सिर क्रिया सस्कृत सर का प्रतिरूप हो सकती है। श्रद्धा के श्रद, लटिन कार् और ग्रीक कर्दिआ से सर क्रिया का सकेत मिलता है। वणसकोच और मूध यीकरण के कारण सध जम रूप का चलन हुआ।

पेनारु रूप बनते है। हिंदी भिखारी, अवधी भिखियारि इसी तरह बन हैं। सिंधी मे ब्रजभाषा के समान ओकारान्त, और अवधी के समान उकारान्त, दोनो तरह के रूप है। **ओठि** (ऊँट हाँकने वाला) म इ प्रत्यय ह। उष्ट्र के सिन्धी रूप **ओठ** म **इ** प्रत्यय जोडा गया है। कही कही मूल क्रिया के स्वर को दीर्घ करके सज्ञा शब्द बनता है जैसे **वध** (बढाना) से **वाधू** (बढती)। हिन्दी म जस **बढती** सज्ञा रूप है, वैसे ही सिन्धी **खपति** (खच) मे **ति** प्रत्यय जोडा गया ह। मानक हिन्दी के **खपत** का अवधी प्रतिरूप **खपति** होगा। छूट के लिए **छ'डति**, आमदनी के लिए **आवति जावति** सिन्धी की शब्द-रचना क्षमता का परिचय देत है। भाववाचक सज्ञा बनाने के लिए सिन्धी म **प, पो, पण** प्रत्ययो का व्यवहार होता हैं। **बुढापा, बचपन** आदि की तरह सिन्धी म **वडुप** (सहायता), **नढेपो** (जवानी), **चाहिपो** (चौकीदारी), **पडितपनो** (पडितपन), **नडपन** (जवानी) आदि रूप है। मनुष्यता के लिए सिन्धी का एक बहुत अच्छा शब्द है **माण्हिपो** जिसम **माण्हि मनुष्य** का प्रतिरूप है। हिंदी भलाई के समान सिंधी म **निमलाई**(निमलता), **कूडाई**(मिथ्यावाद) जैसे रूप है। हिन्दी **ग्वाला** का पूर्व रूप **गोपाल** माना जाता है। कुछ सिन्धी शब्द शब्द निर्माण के उस साचे की ओर सकेत करत ह जहा किसी वस्तु म **आरु** या **आलु** प्रत्यय जोडा जाता है।[1] जो भैसें रखता ह वह **मेहारु** हे, पशुपालक **धनारु** है। **जवालु** वह व्यक्ति है जिसके पास अनाज है। यहा निश्चय ही **जवालु** म **जौ** को पालने का भाव नही है। **आरु** के समान **एर** या **ऐल** प्रत्यय ह। हिंदी **ठठेरे** के समान सिन्धी **चमेलो** (चमडे स सम्बन्धी) रूप है। इसी तरह जिसका गायो स सबध हो, वह **ग्वाला**। **लठ** से हिंदी **लठत** के समान सिन्धी मे बहुत सुन्दर शब्द बनते ह भाइतो (भाई वाला), **धिएतो** (बटी वाला), **सभु** (अवसर) स **सभाइतो** (उपयुक्त), **वाट** (बाट) से **वाटाइतो** (बटोही), **वारो** (वार अर्थात समय) से **वाराइतो** (सही समय वाला), इनसे सस्कृत रूप **लोकायत** तुलनीय है।

सिन्धी म अनक शब्द एस है जिनम सम्बन्धसूचक **आनो, आणो** प्रत्यय का व्यवहार होता है। **आ'डू** का पुत्र **आ'डु आणो**, महमूद का बेटा **महमूदानो**। इनसे मिलत जुलत रूप वे है जिनमे **क** या **च** प्रत्यय दिखाइ देता ह। **गोठु** (गाव) स **गोठचो** (छोटे गाव वाला), **वेढि** (जगल) स **वेढिचो** (जगली), **पाडो** (पाडा या मोहल्ला) स **पाडचो** (उसी मोहल्ल का), **पारि** (उस पार) से **पारेचो** (उस पारवाला)। इन रूपो स रूसी भाषा के वे शब्द तुलनीय ह जहा **इच** अथवा **विच** लगाकर वल्दियत सूचित की जाती है जैसे **विसारिग्रन** का पुत्र **विसारियनोविच**। **इच** के समान सिन्धी म **इक** प्रत्यय का व्यवहार भी होता ह। **चान्डोको** (चादनी), **वरेहु** (वर्ष) से **वरेहेको** (वार्षिक), **हाने** (अभी) स **हाणोको** (अभी हाल का), **वाण्यो** (वनिया) स **वाणिको** (वनिये से सम्बन्धित)। **न, च, क** सम्बन्धसूचक चिन्ह है। सिन्धी ध्वनितत्र पर तालव्यीकरण का गहरा प्रभाव है, इसलिए **क** और **च** दोनो प्रत्ययो वाले रूप मिलत है। **चोराणो** (चोर का) **भायाणो** (भागीदार का) म **णो** सम्बन्धसूचक चिन्ह ह। कभी-कभी **ण** और **इक** दोनो प्रत्यय जोड दिए जाते हैं और **चोराणिको** (चोर का) जैसे रूप बनते ह।

होगा। **स्वप** का **प्** **म** म परिवर्तित हुआ है, फिर भ प्रत्यय जोडकर कृदन्त **स्वम्भ** को पुन क्रियामूल बनाया गया। लटिन **सोम्निश्रो** (सपन देखना) और **सोम्नुस** (नींद) म भी **स्वप** का **प्** **म** म परिवर्तित हुआ है। आकाश के लिए **उभु** सिंधी का अपना शब्द है। यह प्रकाश सूचक है, यह **उभिर** दाँ (पूव दिशा) से सिद्ध है। **नभ** और **उभु** की रचना एक ही प्रकार से हुई है, प्रकाशसूचक **भ**, **भु** मे निर्देशक सवनाम **न** उ जोडे गय है। **नभ** शब्द वैसे ही प्रकाश की व्यजना करता है जैसे **आकाश**। अरबी उफुक(क्षितिज)का आधार **उभु** है। **अधरु** (असहाय) के समान सिंधी के **अभरु** (निधन) म **भर** का पुराना भरणपोषण वाला भाव बना हुआ है। **धनारु** का अथ पशुपालक, ग्वाला, गडरिया है, पशुधन ही कभी मुख्य धन था, इस कारण **धनारु** का यह अथ निश्चित हुआ। **भरिणो** शब्द अलकरण कपडा पर बेलबूट काढने का अथ देता है। पोषण का अथ देने वाली **भ** (अर्थात **भर**) क्रिया स पोषित का अथ देनेवाला भत्य (सेवक) शब्द बनता है। धनी गहस्वामियो के यहा भत्य वस्त्रादि पर अलकरण काय करते थे, अत **भरिणो** मे वसा अथ विकास हुआ।

घुर का अथ है चाहना, इच्छा करना। हिन्दी **घूरना** और सिंधी **घुर** सबद्ध है। इसी प्रकार पुरानी अवधी मे **चाह** क्रिया का अथ देखना था, बँगला मे अब भी है किन्तु हिन्दी म इच्छा वाला अथ ही रह गया है। सिंधी की **घोरणु** (खोजना) क्रिया उसी **घुर** स सबद्ध है।

सिंधी म सघोष महाप्राण स्पश ध्वनिया वाले बहुत स शब्द है जिनम पुराना अथ निहित है या नये अथ का विकास हुआ है। वैसे रूप हिन्दी क्षेत्र म अब प्रयुक्त नही होते। **भउणो** (घुमक्कड, भ्रम क्रिया से), **कुभ** (अभागा), **धुरि** (उदगम) **वढि** (झगडा, तुलनीय है अवधी **ईढि** जिसका अथ हठ है), **झलिबो** (पकडा जाना), **घुड़यो** (अक्खड), **झुडालो** (बादला का मौसम), **झरती** (झाकना), **झपो** (झपटना), **छिम्भ** (डाटना), **भरी** (बोझ), **भयतु** (कुली), **सझु** (अवसर), **सझाइतो** (उपयुक्त), **भट्ू** (बिच्छू), **सवोझो** (समझदार), **'डाघो** (ऊँट), **ल घो** (ढोलची), **घाग्रो** (जाल), **मन्झी** (भ स), **'डधि** (गलत), **धाइणु** (दूध पीना, हिन्दी का **धाय** शब्द इससे सबद्ध है), **भुच** (हजम होना), **घा** (समान), **घोडा घोडा** (हाय हाय)—इन शब्दों स यही सिद्ध नही होता कि सिंधी ईरानी क्षेत्र की भाषा नही है वरन् यह भी कि अनक आधुनिक आयभाषाओ की अपेक्षा उसन सघोष महाप्राण ध्वनिया की रक्षा अधिक की है और मध्यदेशीय भाषातन्त्र से उसका सबध जितना पुराना है उतना ही सुदृढ भी है।

सिंधी के **ज'डिंहि त डिंहि** (जभी तभी) कौरवी **जद तद** के आधार पर बने हैं। वस्तुसूचक **ध** अल्पप्राण, मूर्धन्य रूप मे प्रयुक्त हुआ है। **इहडो-उहडो** (एसा-वसा) म आधार शब्द **इध** ह, यहा **ध** ह् म परिवर्तित हुआ है। सिंधी के (कोई), **की** (कुछ) रूपो से सिद्ध है कि **क** सवनाम मूलत प्रश्नवाचक नही था। **किथे** (कहा) म **कि** प्रश्नवाचक है। वस्तुसूचक **ध** प्रत्यय **थ**, **द** ('ड), **झ**, **ह** आदि अनक ध्वनिरूपा म परिवर्तित होता है। इससे विदित होता है कि अन्य भाषा क्षेत्रा के समान सिंधी क्षेत्र भी अनेक

जैसे हृदय को हिर्दै कहने की प्रवत्ति है, वैसे ही सध को सिर्धा कहा जाता होगा। सर क्रिया का अर्थ है चलना, जो वस्तु निरंतर गतिशील हो, वह हुई सध, सिध, सघ, श्रध। सृध से हृदय और सिर्धो रूप बने। संस्कृत मुण्ड या सिन्धी प्रतिरूप मुद्दी है। ट्रम्प न मूर्धन को स्रोत रूप माना है। यहां सिन्धी रूप महाप्राणता बनाये हुए है, संस्कृत में उसका लोप हो गया है। अवधी में मूधन् का रूपान्तर मुड्ढ है, जो अपन साथियों में प्रमुख हो, वह मुड्ढ है। संस्कृत दद्रू (दाद) के सिन्धी प्रतिरूप डढु, ड्ढु हैं, तपण का प्रतिरूप ढापणु (तप्त होना) है। यदि र के संसर्ग से महाप्राणता जोडी गई है तो डढु के पूर्वरूप दद्रू में द् के बाद आने पर भी र ने उसे ढ बनाया और ढापणु के पूर्वरूप तपण में त को महाप्राण ही नहीं सघोष भी बना देता है। संस्कृत में द (अर्थात दर) क्रिया का अर्थ है चटकना, फटना, बिखरना। दर् से कृदन्त रूप दध बनेगा, दध में चटकने, फटने का भाव दाद के रोग की ओर संकेत कर सकता है, अन्यथा दद्रु या दद्रू निरर्थक सा शब्द लगता है। जैसे श्रद्ध का पूर्वरूप सध उसकी व्याख्या भली प्रकार करता है, वैसे ही दद्रू का पूर्वरूप दध उसकी व्याख्या कर सकता है। तपण और तप्ति का सबंध मूलतः जल-वाचक तिर तीर से है। तृप पानी पीने की इच्छा है तृप्ति पानी पी चुकने का सुख है। अंग्रेजी थर्स्ट का थर्स तृप का प्रतिरूप है। तीर का आहूइ प्रतिरूप दौर (पानी) है। जलवाचक शब्द में त, थ, द तीन ध्वनियों वाले शब्द है। संभावना यही है कि मूल रूप धीर धिर जैसा होगा। ढापणु के ढाप का पूर्वरूप होगा धप जिसका अर्थ होगा तप्त।

सिन्धी का एक रोचक शब्द थधेकार (ठंढा दिमाग) है। इसमें थ और ध दो महाप्राण ध्वनियां एक साथ हैं, संस्कृत में एक ही वर्ग की दो महाप्राण ध्वनियों का इस प्रकार एक दूसरे के पास होना अस्वाभाविक माना जायगा। किंतु मध्यदेश में ऐसे रूपों का चलन था, यह निष्कर्ष आधुनिक अवधी के विवेचन से निकलता है। स्थध जैसा रूप यहां प्रचलित था, इससे पुरानी अंग्रेजी का स्टुड्ड (खंभा) और ब्रज अवधी के ढाढ़, ठाढे रूप बने। स्थध जैसे रूप से अंग्रेजी का स्टैन्ड (खड़े होना) और हिन्दी का ढढ रूप बने। ढढ का पूर्वरूप स्तन्ध अथवा स्थन्ध था, यह सिन्धी स्थध से सिद्ध होता है जो ढढ का ही अर्थ देता है। यद्यपि सिन्धी मूर्धन्य ध्वनियों के क्षेत्र की भाषा है किंतु धध या थध जैसा रूप हिन्दी में नहीं है यहां ठढ है, थध रूप सिन्धी में है। सिन्धी वधीक का अर्थ है अधिक। वर्धन का भाव वधीक में स्पष्ट है, वध् क्रियामूल में र के संसर्ग से ध का मूर्धन्यीकरण हिन्दी बढ़ना में हुआ है सिन्धी में नहीं। सिन्धी में र का लोप हो गया है। संस्कृत अधिक में अधि को उपसर्ग माना जाय तो यह ऐसा शब्द होगा जो प्रत्यय में उपसर्ग जोड़कर बनाया गया है। वध के पूर्वरूप वर्ध से वधिक शब्द सहज भाव से बनेगा, प्रथम दीर्घ वर्ण मध्यदेशीय ध्वनि प्रकृति के अनुकूल ह्रस्व हो जायगा। वधिक में व और र के लोप से पुराने मध्यदेशीय अधिक रूप का चलन हुआ। वधिक शब्द वध (मारना) क्रिया का भाव व्यक्त करता था, अतः व के लोप से अधिक को वधिक से अलगाने में सुविधा हुई।

हिंदी दूज, तीज या दूजे (दूसरे), तीजे (तीसरे) की तरह सिंधी में 'बिजो, ट्रिजो रूप है, हिंदी दोना, तीना की तरह 'बिनि, ट्रिनि रूप है। ये नि वाले रूप एक निश्चित व्यवस्था के अन्तर्गत है। 'बिनि, ट्रिनि की तरह सतनि, अठनि आदि रूप भी हैं। संस्कृत में त्रीणि रूप तो है किन्तु द्वीनि जैसा रूप नहीं है। हिन्दी दोनों के अतिरिक्त मराठी दोण और सिंधी 'बिनि से विदित होता है कि द्वीनि जसा रूप भी प्रयुक्त होता था।

सिन्धी में निर्देशक सर्वनाम ही, हे अपने मूल रूपों सी, से की सूचना देते हैं। ट्रम्प ने इनके साथ मराठी सर्वनाम ह को ठीक याद किया है। इस क्रम में वह ग्रीक सर्वनामों को भी याद कर सकते थे। करण कारक में इसी सर्वनाम के सिन्धी हिन, हिनि रूप है, ही हे निकटवर्ती वस्तु की सूचना देते है, हू, हो दूरवर्ती वस्तु की सूचना देते हैं। इ और उ का यह भेद आर्य द्रविड़ दोनों परिवारों में है। हिन के समान करण कारक में हू का हुन रूप होता है। सिंधी की कुछ बोलियों में ह का लोप होने के बाद ही, हे, हिन आदि की जगह ई, ए, इन आदि रह जाते हैं। ही सर्वनाम का सम्बन्ध कारक रूप महत्वपूर्ण है। हिन्दी इ होने के इह शब्द मूल का व्यवहार सिंधी इहेजो (एकवचन) इहनिजो (बहुवचन) में होता है। सर्वनाम मूल सि में ध चिह्न जोड़ने पर एक रूप तो सिध बनेगा जिसके रूपान्तर हिद, इद, इह आदि होंगे। अनुनासिक व्यंजन जोड़ने पर एक रूप सिन्ध बनेगा जिससे हिह इह रूप बनेंगे। हिन, इन रूप सिध से बन सकते हैं सिन्ध से भी। (कहना न होगा कि इस मूल सर्वनाम रूप सिंध का सिन्धु नदी या सिन्ध प्रदेश से कोई सम्बन्ध नहीं है।) तमिल में इद के साथ जो इंद रूप है, वह इसी निर्माण प्रक्रिया का परिणाम है। इङ्ग और इन्द तमिल में निकटवर्ती स्थान की सूचना देते हैं। इनके मूल रूपों में घ और ध चिह्न स्थान के साथ वस्तु व्यक्ति आदि की सूचना भी देते थे। अवधी मोहिं के समान सिन्धी में मुहँ, मुहिं रूपों का व्यवहार होता है। सम्बन्ध कारक के एकवचन रूप मुहिंजो मुहँजो (मेरा), तुहिंजो, तुहुँजो (तेरा) ऐसे सर्वनामों के मूल रूपों में ध चिन्ह की स्थिति पुष्ट करते हैं। इनके समान जोंहजो (जिसका), कोंहजो (किसका) में ध का रूपान्तर ह है। ब्रज भाषा का कोऊ यहां ह् ध्वनि के साथ कोहु रूप में विद्यमान है। अवधी में कोंहू और कोऊ दोनों रूपों का व्यवहार होता है। सिंधी के प्रश्नवाचक केहो, केहारो (कौन सी चीज) में पुनः ह् स्थित है। विभिन्न आर्य जनपदों के सर्वनाम-रूपों में तगड़ा विनिमय हुआ है, कोहु का को मूलतः मागधी है केहो का के मूलतः कौरवी। पँहँजो, पाँहजो (अपना) का सर्वनाम मध्यदेशीय है क्योंकि आदि वर्ण में पे या पो नहीं है, प है। ये रूप इस बात की पुष्टि करते हैं कि पध जैसा सर्वनाम कभी यहाँ प्रयुक्त होता था। एक ओर पध में सिन्धी का पँहँ सर्वनाम रूप विकसित हुआ, दूसरी ओर उसी प्रक्रिया से अवधी का सम्बन्धक पहँ विकसित हुआ। सम्बन्धक और सर्वनाम दोनों की रचना में एक तत्व है सर्वनाम मूल प दूसरा तत्व है व्यक्ति-स्थान सूचक ध। सर्वनाम पँहँ का अर्थ हुआ वह व्यक्ति, सम्बन्धक पहँ का अर्थ हुआ वह स्थान। मानक हिन्दी के ऐसा, वसा

आदि की व्युत्पत्ति ईदृश् जैस रूपा स की जाती है। सि धी के समानार्थी रूपा की व्यवस्था भी इसी तरह की गई है। कि तु ध प्रत्यय वाले सवनाम रूपो को आधार मान लेन पर व्युत्पत्ति सरल ही नही, युक्ति सगत भी हो जाती है। जहि, कहि के समान जिहि, किह सवनामा से जिहडो (जैसा), किहडो (कसा) रूप बनत है। यदि किहडो का मूल रूप कीदृश था तो कहि, जहि आदि रूप इस व्यवस्था स बाहर चले जाते हैं। केहरो (क्या), किहडो (कसा) स्पष्टत एक ही प्रक्रिया स बन है। इन्ही क समान तिहडो (तसा), इहडो (एसा), उहडो (वैसा) रूप है। यहा डो प्रत्यय ध का ही रूपान्तर प्रतीत होता है। इहडो, किहडो आदि का हू पहल ध था। इह, किह आदि म रो, डो प्रत्यय जोडे गय। कुछ शब्दा म डो के स्थान पर डो का व्यवहार होता है कॅडो (कितना बडा), केहि डो (कितना छोटा)। कध के आधार पर निर्मित प्राचीन रूप कत से सि धी केतिरो (कितना) अवधी कॅतरा के समान है।

सिन्धी म ब प्रत्यय जोडकर जो कृदन्त बनाय जात है, वे अवश्य ही मध्यदेश की देन है। धोइबो (धोना), पीबो (पीना) वतमानकालिक कृदन्त है और ब्रजभाषा के क्रियार्थी सना रूपा के समान है किन्तु ब प्रत्यय जोडकर, कोसली मागधी भाषाओ के समान, सिन्धी म भविष्यकालिक कृदन्त भी बनत है। होइबो (होगा) भविष्यकालिक कृदत का अ य पुरुष, एकवचन रूप है। इससे पुन इस धारणा की पुष्टि होती है कि बँगला भोजपुरी अवधी का ब कृदन्त प्रत्यय है जिसका काल-सूचना से मूलत कोई सम्बन्ध नहा था। सिन्धी पिग्रन्दो (पीता हुआ), चव दो (बोलता हुआ) कौरवी पद्धति के कृदन्त रूप हैं। इससे विदित होता है कि सिन्धी मे विभिन्न पद्धतिया के कृदन्तो का व्यवहार हाता है। ध वाले कृदन्त सि धी की विशेषता है, इसका उल्लेख पहले हो चुका है।

भूतकालिक कृदन्त ग्रायो (आया), जिग्रो (जिया) व्रजभाषा रूपा के समान है। चयो (कहा) व्रजभाषा के कह्यो रूप क समान है। मध्यम पुरुष के साथ प्रयुक्त होन वाले हल्यउ (तुम गय) म, पुरानी अवधी के चलहु क समान, सवनाम चिन्ह हु था, उ उसी का रूपान्तर है। सिन्धी क आदेशात्मक पिग्रो, 'डिग्रो हिन्दा पियो, अवधी दियो के समान है। व्रजभाषा के दीज, कीज के समान सिन्धी म ज प्रत्यय वाल कृदन्त भी है। होइजें हुइज (होइय) म य का रूपान्तर ज है। हिन्दी क पीजिये, कीजिये आदि रूपो से पीज, कीज निकालकर, उनके आधार पर सिन्धी कमवाच्य रूप बनाती है और ज के बाद वह एक अ य कृदन्त प्रत्यय णु जोड देती है। धुग्रणु (धोना), धोइजणु (धोया जाना), करणु (करना) किजणु (किया जाना), ऐसे रूपो म कमवाच्य का भाव दिखान के लिए सहायक क्रिया की आवश्यकता नही होती। हिन्दी मे जस आदर दिखान क लिए कम-वाच्य प्रयाग होते है यथा मेरी बात सुनी जाय, वैसे ही सिन्धी म सुणिजु (सुनिये), किजें (कीजिये) आदि रूप है।

पूवकालिक क्रिया रूप अवधी और व्रजभाषा क समान बनाय जात है। रोई मध्य-देशीय रोइ, रोव (रोकर) का प्रतिरूप है। इसी प्रकार सुणी (सुनकर), वरी (लौटकर),

काल म भी यह सम्पर्क घनिष्ठ था, इसका प्रमाण कश्मीरी भाषा है। कश्मीरी भाषा को दरद समुदाय मे गिना जाता है, यह बात आश्चर्यजनक है कि दरद भाषाओ म कोई ऐसी भाषा नही है जिसम कश्मीरी के समान साहित्य-रचना हुइ हो। कश्मीरी दरद भाषा हो चाहे न हो, उसम जो साहित्य रचा गया ह उसका प्रधान कारण भारत से कश्मीर का सबध है। इसी से कश्मीर सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश साहित्य का रचना-केन्द्र भी रहा है। ब्रज बी० काचरू न कश्मीरी भाषा का व्याकरण **ए रेफरेन्स ग्रामर ऑफ कश्मीरी** लिखा है। उसम उन्होने मौर्गेन्स्टीन का यह मत उद्धत किया है कि दरद भाषाएँ विशुद्ध भारतीय आय मूल की हैं और उनका उदभव एसी भाषा से हुआ है जो वदिक भाषा से बहुत मिलती जुलती थी, उनके अनुसार दरद भाषाआ म एसे अनेक प्राचीन लक्षण सुरक्षित है जो उत्तरकालीन भारतीय आय भाषाआ म लुप्त हो गए है।

ग्रियसन दरद भाषाआ को सस्कृत की अपेक्षा इरानी से प्रभावित मानत थे। इरान की प्राचीन भाषा वदिक भाषा स बहुत मिलती जुलती है। यदि कश्मीरी भारतीय उदभव की भाषा है तो अवेस्ता की भाषा का भारतीय उदभव और भी असदिग्ध होना चाहिए।

ब्रज काचरू ने एमेनो का हवाला दिया है जिनके अनुसार फ्रासीसी भाषाविद ब्लौख और अग्रेज भाषाविद बरो भी दरद भाषाआ को भारतीय उदभव का मानत हैं। भारतीय भाषाआ से दरद भाषाओ का अन्तर यह है कि यहा जैस प्राकृता का विकास होता है वैसे कश्मीर म नही होता।

कश्मीरी उन लोगा के लिए भारी कठिनाई पदा करती ह जो वदिक भाषा को आदि आय भाषा, प्राकृत को मध्य आय भाषा और हिन्दी बँगला आदि को नव्य आय भाषा मानकर भारतीय भाषाओ के विकास की रूपरेखा निश्चित करत है। कश्मीर सस्कृत के अलावा, प्राकृत और अपभ्रश भाषाआ के व्यवहार का केन्द्र भी रहा है। अवध या ब्रज की अपक्षा प्राकृत और अपभ्रश का व्यवहार कश्मीर म कुछ अधिक ही हुआ है। फिर भी अपभ्रश का सम्बन्ध ब्रज और अवधी से माना जाता ह कश्मीरी से नही। इसलिए सस्कृत प्राकृत अपभ्रश वाला विकास क्रम पुन विचारणीय ह।

कश्मीरी भाषा की स्वर व्यवस्था सस्कृत से काफी भिन्न है, हिन्दी की स्वर-व्यवस्था से अधिक जटिल है। इस स्वर-व्यवस्था को लिखित रूप देन के लिए शारदा लिपि का व्यवहार होता था। ग्रियसन ने अपन सर्वेक्षण ग्रन्थ के ८वें खण्ड के दूसरे भाग म दरद भाषाओ का विवेचन करत हुए स्वीकार किया है कि कश्मीरी स्वरा के लिए शारदा लिपि म सभी चिन्ह मौजूद है। यह लिपि नागरी से मिलती जुलती है। शारदा लिपि का व्यवहार सभवत दसवी सदी से होन लगा था। जिस समय ग्रियसन सर्वेक्षण ग्रन्थ के लिए सामग्री एकत्र कर रहे थे, उस समय कश्मीरी पाठशालाआ म शारदा लिपि का व्यवहार होता था। क्रमश न केवल शारदा लिपि को, वरन कश्मीरी भाषा को भी, शिक्षा और राजनीति के क्षेत्रो से निकाल दिया गया। स्वाधीन भारत के अभिन्न अग कश्मीर म शिक्षा का माध्यम कश्मीरी नही है। जब कश्मीरी भाषा का व्यवहार किया

वचन की भिन्नता सूचित करती है। करण कारक में 'डेहनि रूप भी अवधी के समान है। अवधी में भूखन मरिहो—हिन्दी में भूखो मरोगे, यहाँ अवधी का न चिह्न मानक हिन्दी का श्रो है। सिंधी में न के स्थान पर नि है। बहुवचन बनाने के लिए भी सिन्धी में नि का प्रयोग होता है, वैसे ही अवधी में न का प्रयोग है। घरनिश्रा—घरों से, अवधी रूप घरनते, 'डेहनिजो—दिनों का, अवधी रूप दिनन का। अवधी में दिन शब्द बहुवचन में भी प्रयुक्त होता है। दिनन का प्रयोग शायद ही कोई करे, किन्तु गावन का—गावों का, मनइन का—मनुष्यों का, ऐसे प्रयोग अवधी में सामान्य हैं। अपादान कारक का सिंधी चिह्न खे—डेहखे अर्थात दिन को या दिन के लिए—कह का रूपान्तर है और कह का आधार वही कथ है। हिन्दी प्रदेश की अनेक बोलियों के समान सिन्धी कर्म में भिन्न सम्प्रदान कारक का निर्देश नहीं होता है। खे चिह्न कर्म कारक में प्रयुक्त नहीं होता। अधिकरण में श्रें अथवा इ का व्यवहार होता है, यह संस्कृत ए का प्रतिरूप है और बँगला में इस चिह्न का व्यवहार अब भी होता है, साथ ही मानक हिन्दी का मे भी सिन्धी में प्रयुक्त होता है। डेहें डेहि, 'डेह में, तीनों रूपों का अर्थ है दिन में। सम्बन्ध कारक के लिए सिन्धी जो चिह्न का प्रयोग करती है और यह पुल्लिंग रूप है। हिन्दी के समान सिन्धी में भी सम्बन्ध कारक रूप विशेषण का काम करता है। ट्रम्प ने मराठी चा, हिन्दी का, पंजाबी दा, पश्तो द, गुजराती नो को एक साथ ठीक याद किया है किन्तु इनमें जो परस्पर सम्बन्ध है उसकी ओर उनका ध्यान नहीं गया। हिन्दी का का पूर्व रूप कर है। अन्तस्थ र के लोप होने पर का, के, को तीन रूप प्राप्त होते हैं और तीनों विभिन्न जनपदीय भाषाओं में कर के अलावा, सम्बन्धकारक के लिए प्रयुक्त होते हैं। का का तालव्यीकृत रूप मराठी चा है। सिन्धी भी तालव्यीकरण की प्रवृत्ति से प्रभावित है। का का प्रतिरूप को, को का तालव्यीकृत रूप चो, चो का सघोष रूप जो। ज ध्वनि जब द में बदलती है, जैसा कि अनेक पाली शब्दों में देखा जाता है तब का—चा—जा—दा इस क्रम से पंजाबी और पश्तो का सम्बन्धसूचक दा या द प्राप्त होता है। यह द लटिन समुदाय की फ्रांसीसी स्पेनी आदि अनेक भाषाओं में पाया जाता है यद्यपि स्वयं लटिन में उसका अभाव है।

सिन्धी में कृदन्त चिन्ह ब का व्यवहार होता है, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। ट्रम्प ने इसके सदर्भ में बँगला रूपों का ठीक हवाला दिया है। लटिन के कुछ रूपों में बो चिह्न का व्यवहार होता है। क्रिया के बाद ब अथवा इब प्रत्यय का योग प्राकृतों में नहीं है, यह बताने के बाद ट्रम्प इस प्रत्यय के बारे में कहते हैं 'इसे देखकर हमें बहुत जोरों से लटिन प्रत्यय बो की याद आती है। प्रथम और द्वितीय गणों की क्रियाओं के भविष्यत्कालिक कर्त्तवाच्य रूपों के निर्माण में इसका व्यवहार होता है। बौप ने इसे संस्कृत की भू क्रिया से व्युत्पन्न माना है। सिंधी प्रत्यय वो से इसकी तुलना की जाय तो यह ज्यादा सीधी बात होगी। किन्तु उसका उद्भव ऐसा है कि ऐसी तुलना करना कठिन है।" (ग्रामर श्राफ द सिन्धी लंग्वेज, पृष्ठ २६३)। ट्रम्प उन वैयाकरणों में हैं जो लटिन तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में आश्चर्यजनक समानताएँ देखकर चमत्कृत

होते हैं, उन समानताओं को भ्रामक न मानकर कहना चाहते हैं कि वे वास्तविक हैं किन्तु भाषाविज्ञान के पुराने चौखटे की सीमाएँ लाँघ न सकने के कारण वह ऐसी समानताओं को अस्वीकार करते हैं। आर्य और द्रविड दोनों परिवारों में ब प्रत्यय का व्यापक व्यवहार होता है। बँगला, सिन्धी और तमिल तीनों भाषाओं में इस प्रत्यय का उपयोग भविष्य काल के लिए हुआ है। वही स्थिति लटिन की है। सिन्धी में बो प्रत्यय भविष्य और वर्तमान दोनों कालों के लिए प्रयुक्त होता है। ट्रम्प ने ठीक लिखा है कि भविष्यकालिक रूप संभावना व्यक्त करते हैं। संभावना का भाव निश्चयात्मकता में बदल कर भविष्य काल का अर्थ देने लगा। मूलतः ब का संबंध भविष्य से नहीं है।

सिन्धी में क्रिया का आज्ञार्थी रूप, अवधी के समान, उकारान्त होता है। हलु (चल), अवधी में होगा चलु। सिन्धी, क्रिया के बाद सर्वनाम चिह्न जोड़ती है। यहाँ उस दरद प्रभावित मानने की बात और भी खंडित होती है। संस्कृत में तो सर्वनाम-चिन्ह क्रिया में जोड़े ही जाते हैं, आधुनिक हिन्दी में भी ऐसे रूपों की कमी नहीं है। सिन्धी रूप रुग्रा हिन्दी रोऊ का प्रतिरूप है। रोऊ केवल उत्तम पुरुष एकवचन के साथ प्रयुक्त होगा। यही स्थिति रुग्रां की है। ग्रां और ऊ सर्वनामों के अवशेष हैं। हलिउसें (मैं गया) अवधी (बघेलखंडी) गइस के समान है। अवधी कहेँसि में अन्य पुरुष एक-वचन सर्वनाम सि है, वह सिन्धी में उत्तम पुरुष स है। हल्यु (तुम गये) अवधी कहेँहु जैसे रूप के समान है, हु का रूपान्तर है सिन्धी उ। मैथिली मगही के समान सिन्धी क्रिया के बाद कर्ता और कर्म दोनों की ओर संकेत करने वाले चिह्न जोड़ सकती है। छ डिग्रो मा ग्रें—छोडा मेरे द्वारा तू। यहाँ ग्रें मध्यम पुरुष का सर्वनाम चिन्ह है जो कर्म भाव व्यक्त करता है, मा उत्तम पुरुष एकवचन रूप है जो कर्ता भाव व्यक्त करता है। यह प्रवृत्ति आर्य भाषाओं के अतिरिक्त कोल भाषाओं में है अतः उसका दरद भाषाओं से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

मध्यदेश की स (होना) क्रिया बँगला मैथिली आदि में छ बनती है, मगही, अवधी आदि में ह, सिन्धी में थ। थिग्रणु—होना थिउ—तू हो, थिन्दो—होता, थिग्रो—हुआ, इस थि का सम्बन्ध ग्रस्ति से जोड़ना दूर की कौड़ी लाना है, वह बँगला-मैथिली छि का सिन्धी प्रतिरूप है। इस प्रकार सिन्धी भाषा घनिष्ठ रूप से अन्य आर्य भाषाओं से सम्बद्ध है, इन आर्य भाषाओं में पुरानी मध्यदेशीय भाषाओं से उसका सम्बन्ध सबसे गहरा और ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

२ कश्मीरी

क ध्वनितंत्र

मध्यदेश से दूर उसके पश्चिमी छोर पर सिन्धी भाषा है तो वैसे ही सुदूर उत्तरी छोर पर कश्मीरी है। सिन्धी की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि मध्यदेश से सम्पर्क कायम करना अपक्षाकृत सरल है किन्तु कश्मीरी से सम्पर्क बनाये रखना कठिन है। ज्ञात इतिहासकाल में भारत से कश्मीर का घनिष्ठ सम्पर्क रहा है, अज्ञात इतिहास-

हलो (जाकर) रूप है। जैसे अवधी में सुनि के अतिरिक्त सुनिक रूप का चलन हुआ, वैसे ही सिन्धी में वरी, हली के साथ वरीकरे, हलोक्रे रूप भी प्रयुक्त होते हैं। मानक हिन्दी में करना क्रिया की सहायता से जिस प्रकार पूर्वकालिक रूप बनाये जाते हैं, उसी प्रकार सिन्धी के ये रूप बनाये गये हैं। ऐसे रूप निस्सन्देह अपेक्षाकृत नवीन हैं। हिन्दी में टूटना और तोडना फटना और फाडना क्रिया रूपों में, भिन्न व्यंजनों की सहायता से, अर्थ-भेद किया गया है, वैसे ही सिन्धी में भी अर्थभेद किया जाता है। फाटनु (फटना), फाडनु (फाडना) में व्यंजन-भेद से अर्थ-भेद किया गया है। बहुधा व्यंजन के साथ स्वर में भी भेद किया जाता है यथा धुअ्रण (धोना), धोपणि (धुलना)। कहीं-कहीं केवल स्वर-भेद से अर्थ भेद किया जाता है। सिन्धी के बरणु, बारणु अवधी के बरबु, बारबु (जलना, जलाना) के समान हैं। यहां परिवर्तन आदि स्वर में हुआ है। चुअ्रणु, (टपकना), चुआरणु (टपकाना) अवधी चुअबु चुआवबु के समान हैं, यहां परिवर्तन मध्यवर्ती वर्ण के स्वर में हुआ है।

अन्य आर्य भाषाओं के समान सिन्धी भी संयुक्त क्रियाओं का व्यवहार करती है। बहुत सी संयुक्त क्रियाएँ उसी कोटि की हिन्दी की संयुक्त क्रियाओं से मिलती जुलती हैं। करे चुकण शब्दशः हिन्दी का कर चुकना है। मरी वञणु का अर्थ है मर जाना, पहली क्रिया हिन्दी के समान है, दूसरी व्रज क्रुदन्त के रूपान्तर वञ्ज से बनी है। अर्थ की दृष्टि से दोनों भाषाओं की संयुक्त क्रियाओं की संरचना एक ही ढँग की है। रुअ्रण ल'गणु — रोने लगना, यहां भी दोनों क्रियाओं की संगति हिन्दी के समान है। वठी वञणु—ले जाना में वठी हिन्दी से भिन्न रूप है और वञ क्रिया भी हिन्दी में भिन्न है किन्तु अर्थ की दृष्टि से हिन्दी और सिन्धी दोनों की संयुक्त क्रियाओं का ढँग एक ही है। खलीपवणु—खुल पडना, वढेविभ्रणु—काट फेंकना इसी प्रकार अर्थ विचार से एक रूप है। किन्तु पईखिअ्रणु—पा डालना में क्रियाओं का क्रम भिन्न है। वे दोरही चलता रहा में रह क्रिया का प्रयोग एक ही ढँग से हुआ है किन्तु हिन्दी में इस क्रिया का व्यवहार साथ की क्रिया की निरन्तरता दिखाने के लिए होता है। सिन्धी में इसके अतिरिक्त रह क्रिया का उपयोग अन्य क्रिया की पूर्णता बताने के लिए भी होता है। रमीरहण—चल रहना अर्थात चल पडना,—चलने की शुरुआत पक्की हो गई। हिन्दी पडना के अनुरूप सिन्धी रहण है। रह क्रिया के समान सिन्धी की एक वत क्रिया है। चारी दोवते—चरता रहा, यहां वते मूर्त क्रुदन्त है। वर से बने हुए वत रूप का सिन्धी प्रतिरूप है। प्रथम वर्ण को ह्रस्व रखने की प्रवृत्ति के कारण र का लोप हो गया है जैसे वढ में बध के र का लोप हो गया है। यह वते हिन्दी क्षेत्र की पूर्वी बोलियों का वटे बाद, बाडे आदि है। मध्यदेश में वर क्रिया का प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता था। एक ओर सिन्धी दूसरी ओर भोजपुरी, इनके साथ संस्कृत और द्रविड भाषाओं में इसका व्यापक व्यवहार होता है। व्रज शब्द वज का रूपान्तर है और वज वर् से बना हुआ कृदन्त रूप है। व्रज और व्रात्य दोनों में वर क्रिया का वर्ण संकोचन वाला रूप है। संस्कृत में एक ओर वत् क्रिया है, दूसरी ओर व्रत। दोनों क्रियाएँ ही

जाता है, तब शारदा लिपि की पूछ नहीं होती। किसी जाति की भाषाई और सांस्कृतिक विरासत नष्ट करने की ऐसी मिसालें बीसवीं सदी में कम मिलेंगी।

ग्रियर्सन के अनुसार बाइबिल के न्यू टेस्टामेन्ट का कश्मीरी अनुवाद १८२१ में प्रकाशित हुआ था और इसकी लिपि शारदा थी। यदि ईसाई प्रचारक बाइबिल का अनुवाद छापते समय शारदा लिपि का व्यवहार करें तो इससे यही समझना चाहिए कि कश्मीर के शिक्षित जनों में उस लिपि का व्यवहार व्यापक रूप से होता था। १८८४ में न्यू टेस्टामेन्ट का कश्मीरी अनुवाद अन्य केन्द्र में छपा और इस बार फारसी लिपि का प्रयोग किया गया। भारत में अंग्रेजी राज जैसे-जैसे सुदृढ़ हुआ, वैसे वैसे कश्मीर में शारदा लिपि का व्यवहार भी कम होता गया।

ग्रियर्सन ने लिखा है कि कश्मीरी भाषा बहुत पुरानी है। उन्होंने कश्मीरी कवि कल्हण का एक वाक्य उद्धृत किया है रगस्स हेलु दिण्णु—रग नामक व्यक्ति को हेलु नाम का गाँव दिया जाय। ग्रियर्सन ने लिखा है कि आधुनिक कश्मीरी में यह वाक्य यों लिखा जायगा रगस हेलु द्युन। कल्हण का समय बारहवीं शताब्दी है। उस समय या उसके पहले कश्मीरी भाषा साहित्य में प्रतिष्ठित नहीं हुई तो इसका कारण शासक वर्ग की भाषा नीति है।

सबसे पहले कश्मीरी ध्वनितंत्र की कुछ विशेषताओं पर विचार करें। अपने विवेचन के लिए मैं काचरू और ग्रियर्सन के पूर्वोक्त ग्रन्थों से तथ्य ले रहा हूँ। फारसी की एक प्रमुख ध्वनि ख़ है। यह संघर्षी ध्वनि है और संस्कृत हिन्दी की स्पर्श ध्वनि ख से भिन्न है। कश्मीरी में संस्कृत हिन्दी का ख है, फारसी का ख़ नहीं। इसी प्रकार फारसी में संघर्षी फ़ ध्वनि है जो संस्कृत हिन्दी की स्पर्शध्वनि फ से भिन्न है। कश्मीर के पढ़े-लिखे लोग अरबी-फारसी से उधार लिये हुए शब्दों में फ़ का उच्चारण कर लेते हैं किन्तु सामान्य कश्मीरी जन, ब्रज या अवध के किसानों की तरह फ़कीर को फकीर ही कहते हैं। कश्मीरी में ज़ का प्रयोग खूब होता है। इस ध्वनि का व्यवहार फारसी में भी होता है तथा संस्कृत और जनपदीय हिन्दी में नहीं होता। किन्तु ज़ का व्यवहार भारत के एक छोर पर मराठी में और दूसरे छोर पर असमिया में होता है। पूरे भारतीय भाषाई परिवेश को देखें तो कन्नड और तेलुगु के कुछ क्षेत्रों में भी इसका व्यवहार होता है। संघर्षी ध्वनियाँ भारतीय नाग भाषाओं की अपनी विशिष्ट ध्वनियाँ हैं। उनमें संघर्षी ज़् का ही नहीं, संघर्षी च़ का व्यवहार भी होता है। कश्मीरी में, मराठी और असमिया के समान, ज़् के अलावा च़ भी है। अतः कश्मीरी ज़ को नाग भाषाओं की देन मानना चाहिए। स्वयं फारसी में संघर्षी ध्वनियाँ नाग भाषाओं के प्रभाव से आई हैं। कोई यह स्थापना न माने, तो भी उसे यह तो स्वीकार करना होगा कि भारत की अनेक आर्य, द्रविड और नाग भाषाओं में ज़् का व्यवहार होता है और इन भाषाओं को कोई इस कारण दरद समुदाय में नहीं गिनता। कश्मीरी में संघर्षीकरण की प्रवृत्ति इतनी प्रबल है कि वह भारतीय आर्य उद्भव के शब्दों में जहाँ ज् है वहाँ भी ज़् का व्यवहार करती है, यथा प्राज—अज़, जागना—ज़ागुन। इसी प्रकार संस्कृत क्रियारूप गच्छ कश्मीरी में

गछ सुनाई देता है।

फारसी और कश्मीरी मे एक महत्वपूर्ण भेद यह है कि कश्मीरी म ट वर्गीय ध्वनियो का व्यवहार होता है। सिधी मूर्धन्य ध्वनि क्षेत्र की भाषा है, कश्मीरी उसी तरह मूर्धन्य ध्वनि क्षेत्र की भाषा न कही जायगी। सिधी म ण् की बहुलता है, कश्मीरी म उसका अभाव है। ब्रज और अवधी मे अन्य ट वर्गीय ध्वनिया है, ण नही है। इस दृष्टि से सिधी की अपेक्षा कश्मीरी मध्यदेशीय भाषाओ के अधिक समीप है। ब्रज और अवधी मे ढ ध्वनि भी है। कश्मीरी मे न ढ है, न घ, ध, भ, झ ध्वनिया है। सघोष महाप्राण ध्वनियो का अभाव फारसी म भी है। जो लोग उसे फारसी प्रभावित मानते है, उनका यह मुख्य तर्क है कि कश्मीरी म सघोष महाप्राण ध्वनिया नही है। उर्दू पर फारसी का कम प्रभाव नही है। फारसी के जितने शब्द उर्दू मे है उतने कश्मीरी म नही है। किन्तु उर्दू मे सघोष महाप्राण ध्वनिया विद्यमान है। उर्दू भाषी भात को बात (कश्मीरी म बति), घास को गास नही कहते। कश्मीरी म सघोष महाप्राण ध्वनिया के अभाव का कारण फारसी का प्रभाव नही है वरन् नाग द्रविड भाषाओ का प्रभाव है। स्वय ईरान की भाषाओ म इस प्रभाव के कारण सघोष महाप्राण ध्वनियो का व्यवहार नही हुआ। अनेक तेलुगु कन्नड भाषी सघोष महाप्राण ध्वनि को सघोष अल्पप्राण रूप म बोलते है। वही प्रवृत्ति कश्मीरी मे है। कही कही शब्द रूप भी मिलते जुलते है जसे हिन्दी घोडा कश्मीरी मे गुर है, तेलुगु म गुरमु। इसी प्रवृत्ति के कारण भारतीय रूप भ्रातर (भ्रात) फारसी मे बिरादर है।

कश्मीरी की एक विशेषता यह है कि वह अनेक अघोष अल्पप्राण ध्वनिया को महाप्राण कर देती है। यह स्थिति सिधी ध्वनितत्र की याद दिलाती है। हिन्दी एक कश्मीरी म अख्ह है, ठीक का कश्मीरी रूपान्तर ठीख है, ग्रंथि बदलकर ग्रथ हो जाता है। सूत का कश्मीरी प्रतिरूप सियिर है। शत का प्रतिरूप शथ और हथ् है। सिधी के समान कश्मीरी भी अरबी फारसी से उधार लिये हुए शब्दो म महाप्राणता जोडती है। चालाक खतरनाक, नालायक कश्मीरी म चालाख खतरनाख्, नालायख है। प्राचीन इरानी म महाप्राणता जोडने की यह प्रवृत्ति है, फारसी आदि स्थानीय ध्वनिया म कभी कभी महाप्राणता जोडती है जैसे सस्कृत क्रीत के रूपान्तर खरीद म। इसे नाग भाषाई प्रवृत्ति मानना चाहिए जिससे ईरानी भाषाएँ प्रभावित हुई है। यहा कश और खश शब्दो का सम्बन्ध ध्यान देने योग्य है। कश्मीर म कश नामक गण रहता था, उसी की निवासभूमि कश्मीर कहलाई। खश इसी कश का रूपान्तर है।

कश्मीरी कुछ शब्दो म महाप्राणता जोडती है तो कुछ म उसे हटा देती है। जिन शब्दो के आरम्भ म ह है, उनम कश्मीरी, द्रविड भाषाओ के समान इस ध्वनि का लोप करती है। इस प्रकार हिन्दी हसना क्रिया असु रूप म हिन्दी मना हाथ अथ रूप म प्रयुक्त होती है। कश्मीरी की एक विशेषता यह है कि जहा वह महाप्राणता जोडती है, वहा उसी शब्द के किसी रूप म उसकी अल्पप्राणता बनाये भी रहती है। दवात यदि कश्मीरी म दवाथ है तो उसका बहुवचन रूप दवाति है। सस्कृत म भिन्न, और हिन्दी जनपदीय

भाषाओ के अनुरूप, कश्मीरी अनेक शब्दो म दो महाप्राण ध्वनिया को एक दूसरे के निकट रहने देती है। फफोले का कश्मीरी प्रतिरूप फफर है। जो व्यक्ति हकलाता है, उसे फोफ कहते है।

यद्यपि कश्मीरी म तालव्यीकरण की प्रवत्ति प्रबल है, फिर भी ध् ध्वनि द्रविड भाषाआ के समान, अधिकतर द रूप म ग्रहण की जाती हैं। इस प्रकार धान, निधन, साधु कश्मीरी म क्रमश दार्ये, निदन, साद है। इसस विदित होता है कि कश्मीरी पर तालव्यीकरण का प्रभाव अन्य क्षेत्रा से आया है, उक्त द्रविड प्रभाव की तुलना म वह गौण है। कन्नड की अपेक्षा तमिल मे यह तालव्यीकरण की प्रवत्ति अधिक व्यापक है, इसलिए यह माना जा सकता है कि कश्मीरी भाषियो का सम्पक जिन द्रविड़ो से हुआ, वे अभी तालव्यीकरण के प्रभाव म न आये थे। कश्मीरी म मध्य के प्रतिरूप मज् का चलन है। यह उन थोडे शब्दा म है जिनमे ध का रूपान्तर ज मिलता है। इससे अनुमान होता है कि कश्मीरी न सीधे मध्य को बदलकर मज् नही बनाया वरन् उसे मज्झ या मझ रूप सिन्ध जसे किसी प्रन्दश मे प्राप्त हुआ है। झ ध्वनि को ज् रूप मे ग्रहण करने की प्रवृत्ति कश्मीरी म अब नही है। नासमझ का कश्मीरी रूपान्तर नासमिज है। जैसे कश्मीरी दवात के अन्तिम वण म महाप्राणता जोडती है किन्तु दवाथ के बहुवचन रूप दवाति मे अल्पप्राण ध्वनि कायम रखती है वैसे ही जिन शब्दा के दूसरे वण म ट या ड है, उनके एक रूप म कश्मीरी यह ध्वनि बनाये रखती है, दूसरे म उसे तालव्य कर देती है। बुड् का अथ बुढिया है, करण, अपादान आदि कारको म इसका रूप होता है बुजि। लकडी का टुकडा खड है, इसका बहुवचन खजि है। कश्मीरी में कुछ शब्द ऐसे है जिनके एक रूप म ल् है और दूसरे म ज। इसका कारण यह है कि ल् के साथ य का योग होने पर कभी-कभी ल का लोप हो जाता है और य ज मे बदल जाता है। कुल शब्द का अथ है वक्ष, इसका स्त्रीलिंग रूप है कुज। यहा ल के साथ य का सयोग होने पर ल् का लोप हुआ और य ध्वनि ज मे परिवर्तित हुई। किन्तु य् ध्वनि कश्मीरी मे खूब प्रयुक्त होती है और कुल् का बहुवचन कुल्य् स्वीकृत है। विभिन्न व्यजनो के तालव्य और तालव्येतर दो रूप होते हैं और उनका भेद अथविच्छेदक होता है यथा पन—भागा, प्यन—वे गिरेंगे, तल्—तलना, त्यल—टुकडा, खव—खाइ ख्यव—हमने खाया। कश्मीरी भाषा मे तालव्यीकृत व्यजना का एसा अथभेदी व्यवहार उसकी अपनी विशेषता है, यह विशेषता न ईरानी भाषाओ म है न अन्य भारतीय आय भाषाआ म। कश्मीरी म इ स्वर दो प्रकार का है, एक तालव्य है, दूसरा पश्च तालव्य। जहाँ तालव्य इ का व्यवहार होता है, वहा ड भी ज म बदल जाता है जस खड के बहुवचन रूप खजि मे किन्तु ददि (दूध) वति (राह) मे द और त अपरिवर्तित रहते है क्योकि यहाँ भिन्न कोटि का इ स्वर है। तालव्य स्वर के सयोग से ड ध्वनि ज् म बदल जाती है इसस विदित होता है कि मूधन्यीकरण की अपेक्षा कश्मीरी म तालव्यीकरण की प्रवृत्ति अधिक शक्तिशाली है। इसके विपरीत द्रविड भाषाआ मे तालव्यीकरण की अपेक्षा मूधन्यीकरण की प्रवृत्ति अधिक शक्तिशाली है। ये दोनो प्रवत्तियाँ कश्मीरी या तमिल मे सभी व्यजनो को समान रूप से

प्रभावित नही करती। तमिल मे **त** की अपेक्षा **क** ध्वनि का तालव्यीकरण अधिक होता है। फारसी मे भी यह प्रवृत्ति है किन्तु कश्मीरी मे **क** ध्वनि सुरक्षित रहती है, **य** का सयोग होने पर भी वह **च्** मे परिवर्तित नही होती यथा **क्यन्**—कहा।

मध्यदेशीय भाषाओ के समान कश्मीरी म **र** ध्वनि की प्रधानता ह। सस्कृत और प्राचीन ईरानी दोनो म इस ध्वनि का व्यापक व्यवहार होता है किन्तु कश्मीरी मे पश्तो के समान और फारसी से भिन्न **ड्** का व्यवहार भी होता है, और काचरू के अनुसार गावो म **ड** अधिक सुनाई देता है। परिनिष्ठित कश्मीरी **गुर** का देहाती रूप हिन्दी घोडे के समान **गुड** है। हिन्दी की **ढ्** ध्वनि महाप्राणता के लोप से **ड** म बदलती है, परिनिष्ठित कश्मीरी फिर उसे **र्** मे बदलती है, जैसे **पढना** क्रिया का पढ पहले पड बना, फिर **पर**, **परान** अथात पढता हुआ। इसी प्रकार **लिखाडी** कश्मीरी मे **लिखोरि** है, **घडी गर** है, बहुवचन मे **गरि** है। **ग्वाला** का कश्मीरी प्रतिरूप **गोर्** है किन्तु **ल** ध्वनि अधिकाश शब्दा म सुरक्षित रहती है। अनेक आयभाषाओ के समान कश्मीरी **द** ध्वनि को **ल** म बदलती है। घर के लिए कश्मीरी **लर** फारसी **दर** का रूपान्तर है। कुछ शब्दो मे **ज** ध्वनि पहले **द** मे परिवर्तित हुई है और फिर यह **द** ध्वनि **ल** बनी है। **बीज** का प्रतिरूप **ब्योल** इसी प्रक्रिया से सभव हुआ है। ग्रियसन ने लिखा है कि पूर्वी ईरानी भाषाएँ तो **द** ध्वनि को निरन्तर **ल** म बदलती है, कश्मीरी इस **ल** के स्थान पर **ज** का व्यवहार करती है। फारसी **मादर** शिना भाषा मे **माली** है किन्तु कश्मीरी मे **माजि** है। वास्तव मे **माजि** का **ज** **य** का रूपान्तर है, **माल्यि** रूप म **ल** का लोप हुआ और **य** का **ज** म रूपान्तर हुआ। मध्यदेशीय भाषाएँ **द** को **र** मे बदलती हैं। उधर **गेल** जैसे पूर्वी कृदन्त रूपा मे **ल** **त्** या **द** का रूपान्तर है। लैटिन म **लेविर** इसी प्रकार **देवर** के **द** को **ल** मे बदलता है।

कश्मीरी म **स** और **श** के रूपान्तर महत्वपूर्ण है। ये दोना ध्वनिया कश्मीरी म प्रयुक्त होती हैं, साथ ही बदलती भी है। **बसुन**—रहना, **बुसुन**—पीला होना म **स** ध्वनि है किन्तु **बॅहुन** (बैठना) म **स्** ध्वनि **ह** मे परिवर्तित हुई है। **शत** के प्रतिरूप **हथ** म **श** ध्वनि सीधे **ह्** मे बदली है या **शत** के प्रतिरूप **सत** का **स** **ह** म बदला है। इसी प्रकार सूखन के लिए **हाखु** क्रिया का **ह्** **श** या **स** का रूपान्तर है। कश्मीरी **स** और **श** दोनो ध्वनियो को **छ** मे भी बदलती है। हिन्दी की प्राचीन **स** (होना) क्रिया कश्मीरी म, बँगला और मैथिली के समान, **छ** रूप म प्रयुक्त होती है। **छुस** (मैं हूँ), **छुख** (तू है), **छुह्** (वह है), कश्मीरी की यह बहुप्रयुक्त क्रिया है और उस भारतीय आय भाषाओ से जोडती है। फारसी म **छ** ध्वनि का अभाव है और **स** क्रिया का ऐसा रूपान्तर वहा नहा होता। साथ ही अतीतकालीन रूपा म मध्यदेश की जिस प्राचीन **अस** क्रिया का व्यवहार होता है, कश्मीरी म उसका **स** सुरक्षित रहता है। **ओसुस** (मैं था), **ओसुख** (तू था), **ओसु** (वह था), इसस विदित होता है कि कश्मीरी म आय भाषाओ की अनेक ध्वनि पद्धतियो का मिलन ही नही, समन्वय भी हुआ है। कश्मीरी **क्ष** ध्वनि को भी **छ** म बदलती है। सभी आय भाषाओ म सस्कृत **लक्ष** का रूपान्तर **लाख** प्रचलित है किन्तु

कश्मीरी म लछ रूप का चलन है। मक्खी के लिए अवधी माछी के समान कश्मीरी म मॉछ् रूप है। सभी आय भाषाओ म संस्कृत अक्षि का रुपान्तर आख है किन्तु कश्मीरी म आँछ् रूप है। तक्षन् का पजाबी रूप तिरखाण है किन्तु कश्मीरी प्रतिरूप छान् (बढई) है। मागधी प्रवृत्ति के अनुसार क्ष का रुपा तर ख होगा, किन्तु मध्यदेशीय प्रवत्ति के अनुसार उसका रूपान्तर छ् होगा। कश्मीरी म यह प्रवृत्ति बहुत पुरानी है, तभी लाख, आख जैसे शब्दो का उसम चलन नहीं हुआ। संस्कृत के जो शब्द हिन्दी म अब प्रयुक्त न हाग, उनके तदभव रूप कश्मीरी म है, और उनम क्ष के स्थान पर छ का व्यवहार होता है। धाने के लिए कृदन्त रूप छलान् का सम्बन्ध क्षालन (प्रक्षालन) स है बुछुन् (देखना) का सम्बन्ध वीक्षण से है। कश्मीरी म बस (बैठना) का प्रतिरूप वय् है। हिन्दी बैठना का आधारभूत रूप वय् जैसा रूप है, केवल यहाँ ष का मूधन्यीकरण हुआ है। कश्मीरी म इस प्रकार स ध्वनि बनी रहती है और अनेक रूपा म बदलती भी है।

कश्मीरी भाषा के कुछ शब्द रूपा म आ के स्थान पर ओ का व्यवहार होता है यथा भाई के लिए बोय् शब्द है। इसका कारण मागधी भाषाओ का प्रभाव हो सकता है। इस समुदाय की भाषाएँ कश्मीर स बहुत दूर है किन्तु छ क्रिया मागधी और कश्मीरी भाषाओ म सामान्य है। इसलिए आ के स्थान पर ओ का व्यवहार उस प्रभाव के कारण हो सकता है। यह सही है कि मागधी भाषाएँ अ को बदलती है आ को नहीं किन्तु अनुकरण वृत्ति स सभव है, आ को भी ओ मे बदला गया हो। मधुर का कश्मीरी प्रतिरूप मादुर् है, मत्त का प्रतिरूप मात, पट का प्रतिरूप पाट है। इन उदाहरणो से विदित होता है कि ह्रस्व अ को ऑकारवत बोलने की प्रवत्ति कश्मीरी म है यद्यपि यह प्रवत्ति बहुत सीमित है। साथ ही इ और उ स्वरो को विवृत रूप म बोलन की प्रवृत्ति भी बँगला के समान कश्मीरी मे है। दूध का प्रतिरूप वादि निधन का प्रतिरूप नॅदन् इसी प्रवृत्ति के द्योतक है। अत भाई का बोय् रूप मागधी प्रभाव के कारण हो सकता है। कश्मीरी अपनी समन्वयवादी प्रवृत्ति के कारण अपादान कारक म बायि रूप बनाये रहती है जहा दीघ आ अपरिवर्तित रहता है। इसी प्रकार पानी के लिए पो य शब्द अपादान कारक म पानि है। बनिया का प्रतिरूप बाणिया कश्मीरी मे वोन्य् है किन्तु अपादान कारक मे वानि है।

कश्मीरी भाषा मे ऐसे शब्द बहुत है जहा मूल रूप के अ के स्थान पर ओ का व्यवहार हुआ हो, ऐसे शब्द कम है जिनम मूलरूप के अ के स्थान पर ए का व्यवहार हुआ हो। शख शब्द कश्मीरी मे शेडख है। यहा स्पष्ट ही कौरवी प्रभाव से एकार का व्यवहार हुआ है। ऐसे शब्द बहुत खोजन पर मिलेग। इससे सिद्ध यह होता है कि कश्मीरी पर जितना प्रभाव मागधी भाषा समुदाय का है, उतना कौरवी समुदाय का नहा। बँगला म एस शब्द बहुत है जिनम आदि वण का अकार एकार म गहीत है। इसका कारण बँगला पर कौरवी प्रभाव है। यह बात आश्चयजनक लगेगी कि कौरवी प्रभाव जितना सुदूर बगाल की भाषा पर है, उतना पडोसी कश्मीर की भाषा पर नही है। विभिन्न आय गणभाषाओ का परस्पर सम्पक और प्रभाव अनेक अवस्थाओ की सूचना

देता है, प्रत्येक अवस्था मे यह सम्पर्क और प्रभाव एक सा नही रहता। जो लोग एकार वत्ति को अध मागधी की विशेपता मानते हो, व मराठी म भी इसका प्रसार देखें। इसके अतिरिक्त अकार के एकार ओकार वाले रूपान्तरण भारत से बाहर इडोयूरोपियन परिवार की भाषाओ म अन्यत्र भी है।

यह बात उल्लेखनीय है कि मानक हिंदी के करना रूप के प्रतिकूल कश्मीरी कृदन्त पुरानी अवधी के करन के समान ह्रस्व अकारान्त अथवा उकारान्त होत है। गछुन (जाना), बोवुन (होना) आदि रूपा म श्र का लाप हो गया है, रूप निर्माण की प्रक्रिया वही ह। च्योनु (पीना), प्योनु (गिरना) आदि उकारान्त रूप ह। कौरवी प्रवृत्ति के अनुरूप इनके अन्त म श्रा स्वर नहीं ह। कश्मीरी भाषा की ध्वनि प्रकृति यहा मध्यदशीय भाषाओं की ध्वनि-प्रकृति के अनुरूप है।

कश्मीरी म सघोप और अघोप ध्वनियो का भेद होता है किन्तु इस भाषा पर द्रविड प्रभाव इतना गहरा है कि अनक शब्दो म सघोप ध्वनिया अघोप हो गई। हिंदी बेर का कश्मीरी प्रतिरूप तेर ह। अरबी फारसी म उधार लिए हुए शब्दा म भी कभी कभी सघोप ध्वनि को अघोप कर लिया जाता है, यथा कागज—कागद का रूपान्तर काकद है, बाज कश्मीरी म पाज है। एस रूप दखकर याद आता है कि जिस प्राकृत म गगन का रूपान्तर ककन होता था, उसका सम्बन्ध इसी क्षेत्र म था। दूसरी ओर मूल अघोप ध्वनि को सघोप भी किया जा सकता है। प्रकाश का काश कश्मीरी म गाश है। इसी प्रकार मसीत का कश्मीरी प्रतिरूप मसीद ह।

कश्मीरी भाषा की एक विशेपता शब्दा क अन्त म एस स्वरो का प्रयोग ह जो बहुत कम सुनाई देते है गैर कश्मीरियो का तो सुनाई ही नहीं दत कश्मीरियो को भी वह साफ साफ सुनाई दत है इसम सन्देह है। इन अस्फुट स्वरो को मात्रा स्वर कहा गया है और उनकी स्थिति काफी रहस्यपूर्ण ह। दरद भाषाओ मे एसे अस्फुट स्वर किन क्षेत्रो म प्रयुक्त होत हैं, इसका विवरण नही मिलता। कम स कम इतना तो स्पष्ट है कि ईरानी भाषाओ क प्रभाव स कश्मीरी म यह विशेपता उत्पन्न नहीं हुई। इन तथाकथित मात्रा स्वरो म रहस्यपूर्ण कुछ भी नही है। य स्वर कश्मीरी भाषा क मूल ध्वनितत्र की एक विशेपता सूचित करत है जो अन्य प्रभावो के कारण प्राय नष्ट हो गई है। ब्रज काचरू न ठीक लिखा है कि कभी य स्वर अर्थ विच्छेदक रह होंगे। इनम उ और इ स्वर है जो पुल्लिग और स्त्रीलिंग का भेद सूचित करत है। इस प्रकार का भेद अवधी भाषा भी सूचित करती है और उसक लिए वह इन्हीं स्वरो म काम लती है। यदि कश्मीरी भाषा म इन स्वरो की अर्थ विच्छेदक भूमिका रही हो तो मानना होगा कि यह एक मध्यदेशीय विशेपता थी। गोरु—ग्वाला, गूरि—ग्वालिन मोल—पिता माजि—माता, युथु—ऐसा, यिछि—ऐसी इस तरह क भेद कश्मीरी म व्यापक है और प्राय हर वर्ग क शब्दों के साथ प्रयुक्त होत हैं। किन्तु अब इन स्वरो की छाया भर रह गई ह और इसीलिए इनके अस्तित्व और भूमिका के बारे म विवाद होता है। कश्मीरी क ध्वनितत्र पर कोई एसा प्रभाव पडा है जो इन स्वरो के अस्तित्व को व्यर्थ कर देता ह। कश्मीरी म बलाघात की

व्यवस्था पर ध्यान दिया जाय तो इस प्रभाव का पता चल जायगा। बलाघात अर्थ-विच्छेदक नही है किन्तु वह शब्दबद्ध है, वाक्य की लय पर निर्भर नही है। जैसे महाराज शब्द बोलचाल मे माहरा बन जाता है, वाक्य मे उसकी स्थिति कही भी हो। महाराज के माहरा बनने का कारण प्रथम वर्ण पर बलाघात है। बलाघात के कारण प्रथम वर्ण का ह्रस्व स्वर दीर्घ हो गया है और अन्तिम वर्ण के ह्रस्व स्वर और व्यजन दोनो का लोप हो गया। कश्मीरी शब्दो के ध्वनितत्र पर क० मु० विद्यापीठ म काम करते हुए प्राणनाथ त्रसल के सहयोग स अशोक आर केलकर ने एक लेख लिखा था कश्मीरी वड फोनोलौजी ए फस्ट स्केच जो ऐंथ्रोपौलौजीकल लिंग्विस्टिक्स के जनवरी १९६८ के अक म प्रकाशित हुआ था। इसम उन्होने लिखा था कि ध्वनिशास्त्रीय विचार से कश्मीरी भाषा म बलाघात सदैव शब्द के पहले वर्ण पर होता है। यदि अवधी म बलाघात की स्थिति देखी जाय तो विदित होगा कि उस भाषा मे स्थिति इससे भिन्न है। प्रथम वर्ण पर बलाघात की प्रवृत्ति मागधी भाषाओ की है और यह प्रवृत्ति बँगला म अब भी है। मागधी प्रभाव अवधी पर सीमित है कुरु भाषा समुदाय पर अधिक है और स्वभावत इस समुदाय के क्षेत्र को पार करता हुआ वह कश्मीर म पहुँचता है। मध्यदेशीय आर्य भाषाओ की मूल प्रवृत्ति शब्दो के अजन्त रूपो का व्यवहार करने की है। मागधी प्रभाव से सस्कृत मे बहुत से शब्द हलन्त रूप मे प्रचलित हुए। यहा अजन्त रूपो म हम उन्ही शब्दो को नही लेते जिनके अन्त म स्वर है वरन उन्हे भी लेते है जिनके अन्त म नासिक्य व्यजन है, ऐसे व्यजनो मे स्पर्श-तत्व क्षीण होता है अत वे अर्धस्वर के समान होते है। नासिक्य व्यजनो के साथ स जैसी सघर्षी ध्वनियो को भी गिनना चाहिए, क्योकि यहाँ भी स्पर्श तत्व क्षीण है। इसी कोटि मे र, ल आदि अन्तस्थ ध्वनियाँ हैं। इस दृष्टि स तमिल भाषा के शब्द अजन्त है, पूर्ण स्पर्श व्यजन उनके अन्त म नही आता। अत सस्कृत के हलन्त शब्द रूपो का कारण द्रविड प्रभाव नही है। यह प्रभाव प्राचीन मागधी अथवा कौरवी भाषा समुदाय का है। इस प्रकार कश्मीरी के ध्वनितत्र के निर्माण म सबसे पहले मुख्य भूमिका उसके अपने ध्वनितत्र की है। कश्मीरी ध्वनितत्र के स्वतत्र केन्द्र का अस्तित्व उसके स्वरतत्र म देखा जा सकता है। स्वरो के एम भेद कश्मीरी के आस पास अन्य प्रमुख भाषा-क्षेत्रो म नही है। इसके बाद महत्वपूर्ण भूमिका है प्राचीन कोसली गण समुदाय की भाषाओ की। इसके बाद मागधी भाषाओ का जबदस्त प्रभाव कश्मीरी पर पडा जिसने उसके ध्वनितत्र म काफी परिवर्तन किया।

कश्मीरी म ऐसे शब्द बहुत है जिनके मूल रूप का अन्तिम वर्ण प्राय लुप्त हो जाता है। उसम ऐसे शब्द कम है, जिनम मध्यवर्ती वर्ण का लोप होता हो। पुष्प का प्रतिरूप पोश है, यहा पूरा वर्ण प लुप्त हुआ, प्रथम वर्ण के साथ जो ष व्यजन था वह तालव्य रूप म बच रहा। पुश्त के प्रतिरूप पत (पीछे) म श् व्यजन और त के अ का लोप हुआ। पदम पुष्प कश्मीरी म पम्पोश् है, यहाँ पद्म के अन्तिम म तथा द का लोप हुआ। गधर्व का प्रतिरूप ग दुर् (युवा) है, यहाँ पूरे वर्ण का लोप हुआ। एक शब्द है लोनवज जिसका अर्थ है खेत काटने की मजदूरी। इसम लोन का सम्बन्ध तो काटने या अर्थ देने

वाली लुन् क्रिया से है और वज़् पथ्य का रूपान्तर है। य वर्ण का लोप हुआ, उससे पूर्व स्थित नासिक्य ध्वनि तालव्य में परिवर्तित हुई। प्राचीन शब्द **आस्य** (मुख) का कश्मीरी प्रतिरूप **आस्** है, यहाँ भी **य** वर्ण का लोप हुआ। इस तरह अंतिम वर्ण के लोप का कारण बलाघात है, लोप चाहे आंशिक हो चाहे पूर्ण।

साथ ही कुछ शब्दों में मध्यवर्ती वर्ण का लोप भी देखा जाता है। इस प्रवृत्ति के उदाहरणों में एक शब्द है **कशीर** जो **कश्मीर** का रूपान्तर है। यहाँ पूरे मध्यवर्ती वर्ण का लोप नहीं हुआ। **मी** के व्यंजन अंश का लोप हुआ है, स्वर पूर्व व्यंजन से संयुक्त हो गया है। **कबूतर** का कश्मीरी प्रतिरूप **कोतुर्** है, यहाँ पूरे वर्ण का लोप हुआ किन्तु क्षतिपूर्ति के लिए प्रथम वर्ण का स्वर दीर्घ हुआ। इसी प्रकार **गृहस्थ** के प्रतिरूप **गूरस्त** से प्रथम वर्ण का स्वर दीर्घ हुआ है। ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा के शब्द कोश में **लुताश** शब्द दिया है जो **रोहिताश्व** का प्रतिरूप है। यहाँ वर्ण संकोचन मध्यदेशीय प्रवृत्ति के अनुरूप है यद्यपि **र्** का **ल्** में रूपान्तर मागधी प्रवृत्ति के अनुरूप है। कश्मीरी में **र** ध्वनि की प्रधानता है किन्तु कुछ शब्दों में **र** के स्थान पर **ल्** का व्यवहार होता है। इनमें एक शब्द **लुद्र** है जो **रुद्र** का रूपान्तर है। ऐसे ही **रुक्ष** का कश्मीरी तद्भव रूप **लछु** (रूखा) है। ऐसे परिवर्तन अपवाद रूप हैं। इसी प्रकार प्रथम वर्ण को अपवाद रूप में ह्रस्व किया जाता है।

कश्मीरी भाषा में दो व्यंजन एक साथ बहुत कम आते हैं। यह उल्लेखनीय है कि शब्द के प्रथम वर्ण में स्पर्श ध्वनि के साथ **र** का संयोग तो होता है, **ल्** के संयोग के उदाहरण नहीं मिलते। हिन्दी **गोड** (पैर) के लिए कश्मीरी में **ग्रौंड** शब्द है। ग्रियर्सन का विचार था कि मूल रूप में **र्** ध्वनि थी जिसे कश्मीरी कभी-कभी उच्चारित नहीं करते, अतः **ग्रौंड** को **गोडु** भी बोलते हैं। वास्तव में मूल रूप में **र** नहीं है। जैसे **कोटि** के **क्** में अतिरिक्त **र** जोड़कर **क्रोटि** बना जिसका तद्भव रूप **करोड** है, वैसे ही **गोड** में अतिरिक्त **र** जोड़कर **ग्रौंड** रूप बनाया गया। कश्मीरी **ल** क्षेत्र की भाषा होती तो आदि स्थानीय व्यंजन के साथ **ल** भी अनेक शब्दों में संयुक्त दिखाई देता।

ख शब्दतंत्र

कश्मीरी शब्दतंत्र में अनेक स्तरों के शब्द हैं। शब्द भंडार का एक भाग हिन्दी उर्दू के शब्द भंडार से मिलता जुलता है। उस भाग पर यहाँ विचार करना अनावश्यक है। शब्द भंडार का काफी हिस्सा ऐसा है जो कश्मीरी भाषा का अपना है। इस पर भी यहाँ कुछ कहना जरूरी नहीं है। कश्मीरी में काफी ऐसे शब्द हैं जो प्राचीन आर्य भाषाओं के हैं किन्तु हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होते। इन पर यहाँ विचार करेंगे। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो या तो संस्कृत में हैं नहीं या उनका वैसा रूप नहीं है या उनका अर्थ बदल गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसे शब्द सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

कश्मीरी में **गंदुर** (युवा) गन्धर्व का तद्भव रूप है। संस्कृत में गन्धर्व का गाने-बजाने वाला अर्थ बना हुआ है किन्तु मूल अर्थ संभवतः युवा था। गन्धर्व निस्सन्देह

एक गण समाज का नाम था। गण-समाजो के नाम युवक, योद्धा, पुत्र का अर्थ देने वाले शब्द पर रखे जाते थे। नाम रखने की यह भी एक परिपाटी थी यद्यपि एकमात्र परिपाटी नही थी। गधार स्थान से गधर्व गण का सम्बन्ध रहा होगा। कश्मीरी म गिन्दगार का अर्थ है नर्तक। यहाँ गधर्व का गौण अर्थ सुरक्षित है। पुत्र के लिए कश्मीरी का एक शब्द कठ है। भारत म कठ नामक गण भी था, काठियावाड जसे नामो म उसकी स्मृति बनी हुई है। कठ का अर्थ पुत्र है, इसलिए उसके गणवाचक होने की बात समझ म आती है। यह कठ कश्मीर के कश का रूपान्तर हो सकता है। तब गणवाचक कश का अर्थ होगा पुत्र, युवा। लडकी के लिए कश्मीरी कूरु पजाबी कुडी की याद दिलाता है। प्रसिद्ध गणवाचक कुरु शब्द युवा और योद्धा का सूचक था, इस धारणा की पुष्टि युवती के लिए प्रयुक्त कश्मीरी कूरु से होती है। बच्चे के लिए कठ के समान एक शब्द शुर् है। शूरसेन नाम का प्रसिद्ध जनपद था। शूर का अर्थ योद्धा है। उसका एक अर्थ बच्चा भी रहा होगा। सहोदर भाइयो या बहन भाइयो के लिए कश्मीरी शब्द बारनि का सम्बन्ध भर से प्रतीत होता है। भ्रातृ शब्द का आधार भर था यह बात अन्यत्र कही गई है। गृहस्वामी के लिए बुगिय और गृहस्वामिनी के लिए बुगिन्य शब्द है। इनका आधारभूत शब्द भग है जो ऐश्वर्य और स्वामित्व का सूचक है। मातसत्ताक समाज म गृहस्वामिनी स्त्री होगी। भगिनी का मूल अर्थ यही प्रतीत होता है। पिता के लिए मोलु शब्द इडो-यूरोपियन परिवार के पितृ शृखला के शब्दो से भिन्न है किन्तु मातृ शब्द शृखला से भिन्न नही है। मातृ और पित, दोनो की मूल क्रिया का अर्थ है जन्म देना। इनम एक रूप जनक और दूसरा रूप जननी के लिए निश्चित हो गया। जसे पति शब्द इडोयूरोपियन परिवार की कुछ भाषाओ म स्त्री के लिए प्रयुक्त होता है वसे ही मातृ शब्द कुछ प्राचीन आर्य भाषाओ म जनक के लिए प्रयुक्त होता था। मोलु का एक रूप मालु होगा और यहाँ त अथवा उसका सघोष रूप द ल म परिवर्तित हुआ है। मोलु का स्त्रीलिंग रूप माजि माल म य जोडने पर बना है। इस प्रकार माता पिता दो अलग रूपो का व्यवहार न करके, जनक और जननी के समान, कश्मीरी एक ही शब्द के दो रूपो मोलु और माजि का व्यवहार करती है। कश्मीरी म खेल, ख्यलु शब्द समूहवाचक है। जन-समूह, सेना या दल के लिए खेल शब्द है। खेल शब्द का यह समूह वाला अर्थ वैसे ही निश्चित हुआ है जसे ग्राम शब्द का। ग्राम का मूल अर्थ है खेती, खेती की भूमि पर या उसके निकट रहने वाले जन समूह ग्राम कहलाये। ग्राम कृषिगत अर्थ से पूर्ण मुक्त होकर समूह का अर्थ देने लगा। खेल शब्द खेत का रूपान्तर है। अवधी खेरु, मानक हिन्दी मे खेडा खेत और खेल से सम्बद्ध है। कश्मीर के पडोस म स्थानो के पश्तो नामो के साथ खेल अक्सर जुडा दिखाई देता है। कश्मीरी ख्यलु पशु समूह के लिए प्रयुक्त होता है। गुपुन ख्यलु अर्थात पशुओ का बडा समूह, यह ख्यलु उसी खेल से सम्बद्ध है। सस्कृत के अखिल, निखिल शब्दो का आधार खिल है जिससे कश्मीरी ख्यलु सम्बद्ध है। पशु-समूह के लिए कश्मीरी का एक शब्द जब है, पशु समूह के स्वामी को जब वोलु कहते है। स्वामी का अर्थ देने वाला एक प्राचीन भारतीय शब्द आल है जो पचाल म विद्यमान है।

संस्कृत **जबाल** का अर्थ होगा गोपाल, पशुओं का स्वामी, **जबाल** के पुत्र का नाम होगा **जाबालि**। जैसे **गोस्वामी**, वैसे ही पशुओं के स्वामी **जाबालि**। **नाग** शब्द संस्कृत में सर्प का अर्थ देता है किन्तु इसका प्रथम अंश **ना** जलसूचक था, **स्नान** और **नाव** में **ना** का वह जल वाला अर्थ समग्र विद्यमान है। कश्मीरी में **नाग** शब्द का अर्थ झरना है और अनेक स्थानों के नाम के साथ **नाग** शब्द लगा हुआ है।

अब कश्मीरी के ऐसे शब्द लेते हैं जो संस्कृत में हैं किन्तु हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होते। इनसे भी प्राचीन आर्य भाषाओं की स्थिति और उनसे कश्मीरी का सम्बन्ध समझने में सहायता मिलेगी। संस्कृत **विश** जनसमूह निवास स्थान का सूचक है। इसका रूपान्तर कश्मीरी में **बिठ्** (सभा) है। हिन्दी क्षेत्र के प्रसिद्ध स्थान **बिठूर** की व्याख्या इस **बिठ** के आधार पर बहुत अच्छी तरह हो जाती है। दूकानदार के लिए कश्मीरी **वाँज़ु** का सम्बन्ध **पण्य** से है। हिन्दी **बनिया वाज़ु** से काफी दूर प्रतीत होता है किन्तु दोनों का स्रोत एक है। कश्मीरी **वन्** (कहना) का पूर्व रूप **पन** होगा जो द्रविड भाषाओं में, **पण्** रूप में, अब भी प्रयुक्त होता है। **पण्य** के **प्** के समान यहाँ भी **प व्** में परिवर्तित हुआ। **पन्** का पूर्व रूप था **भन** या **भण्**। **पथ** के कश्मीरी प्रतिरूप **वथ** में पुनः **प** ध्वनि **व** में परिवर्तित हुई है। **वुछन** (देखना) का सम्बन्ध **वीक्षण** से है, पहले कहा जा चुका है। जोर से शब्द करने के लिए **वाख** का पूर्वरूप **नाथ** हो सकता है, **वाक्** भी। कश्मीरी में देखने के लिए **पश्** (**पश्य**) और **वश** के आधार पर **पशुन** और **डेशुन** दोनों क्रिया रूप हैं। **श्राबुर** (बादल) का मूल रूप **अभ्र** है। पुकारने के लिए **नाद** क्रिया है। हिन्दी में **नाद** शब्द संज्ञा रूप में तो प्रयुक्त होता है किन्तु क्रिया रूप में उसका व्यवहार नहीं होता। **ब्रजन्** (शोभित) का आधार **भ्राज्** क्रिया है। **अटि अटि** का अर्थ है देश विदेश भ्रमण। इसमें **पर्यटन** वाली **अट** क्रिया है। कुत्ते के लिए **श्वान** का तद्भव रूप **हून** है जिससे जर्मन **हुंट** अंग्रेजी **हाउंड** सम्बद्ध है। कुबड़े के लिए **कोम्ब** शब्द है जिसका आधार **कुंभ** है, **कुबेर** में **भ** ध्वनि की महाप्राणता लुप्त हो गई है, **कुब्ज** में भी। कश्मीरी **चश** एक मछली है, यह शब्द **झष** का रूपान्तर है। हिन्दी में **झख** मारना मुहावरे में **झख** है किन्तु मछली के लिए अलग से उसका व्यवहार नहीं होता। हिन्दी तथा अन्य आर्य भाषाओं में **शत** के तद्भव रूप **सौ** का चलन है, कश्मीरी **हथ**, **श्रथ** में दूसरे वर्ण की स्पर्श ध्वनि का लोप नहीं हुआ।

वगुन (गर्म) का मूल रूप **उष्ण** है। वेश्या के लिए **गाज़ू** शब्द है। जैसे **वेश्या** का आधार **विश** है, वैसे ही **गणिका** का आधार **गण** है। सामन्ती व्यवस्था के सुदृढ़ होने पर सम्पत्तिशाली वर्ग गण समाजों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। उस समय नये अर्थ में **वेश्या**, **गणिका** इन शब्दों का चलन हुआ। **श्राचमन** की **चम** क्रिया संस्कृत में भी पीने के लिए सामान्य सन्दर्भों में प्रयुक्त नहीं होती। **च्योनु** (पीना) कश्मीरी की सामान्य क्रिया है। **गच्छ** क्रिया हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होती किन्तु **गछ** कश्मीरी की बहुप्रयुक्त क्रिया है। इसका व्यवहार पश्चिमी पंजाब के कुछ भागों में भी होता है। **तृषा** (प्यास) हिन्दी में उच्चस्तरीय शब्द है, **तष** के आधार पर कश्मीरी में **त्रेश** (पी चुका) रूप है।

प्रास (मुख) का मूल रूप संस्कृत प्रास्य है। यित्शान (इच्छा करना) का आधार इर्ष क्रिया है। वोवुन (होना) का आधार भू क्रिया है, इसके साथ संस्कृत प्रास के आधार पर प्रासुन् (होना) क्रिया का व्यवहार भी होता है। प्रसन्न होने के लिए प्रयुन् का आधार प्रीति और प्रिय की प्री क्रिया है। दघ मूल रूप के आधार पर संस्कृत में दह् क्रिया है, कश्मीरी में इसका प्रतिरूप दज् (जलाना) है। संस्कृत के समान कश्मीरी में घ ध्वनि ह् में परिवर्तित नहीं हुई, वह अन्य सघर्ष ध्वनि ज में परिवर्तित हुई है। कश्मीरी की कुछ क्रियाएं संज्ञा अथवा कृदंत रूपों के आधार पर बनी हैं। शोदुन् (शुद्ध होना) का आधार शोध है। इसी प्रकार पुनुन् (पूर्ण होना) का आधार पूर्ण है। गिरने के लिए प्योनु का आधार पत् के रूपांतर पर से बना कृदंत रूप है। सो जाने के लिए शोङ्ग् क्रिया स्पष्ट ही कृदन्त है, यह उन थोड़े से रूपों में है जिनमें कृदन्त चिन्ह ग है।

कश्मीरी के कुछ शब्द द्रविड़ भाषाओं की याद दिलाते हैं। चलने के लिए कश्मीरी क्रिया वल द्रविड़ भाषाओं की वर का प्रतिरूप है। संस्कृत वल में यही वर् क्रिया है। किसी स्थान पर पहुँचने के लिए कश्मीरी की वोतुन क्रिया का आधार भी वर है। वर के रूपान्तर वो में त कृदन्त प्रत्यय जोड़ा गया। चलने के लिए पकुन क्रिया का आधार कृदन्त पग या पक है जो द्रविड़ क्रिया पो से संबद्ध है। जाने के लिए युयु क्रिया भी है जिसका सम्बन्ध संस्कृत की या क्रिया में है। या और वा दोनों क्रियाएँ परस्पर सम्बद्ध हैं। जैसे वा से वारि शब्द बनता है वैसे ही या से यार बनता है। तमिल और कश्मीरी दोनों में यार अथवा भ्रार नदी वाचक शब्द है। बाल के लिए कश्मीरी में एक शब्द मस है। मस के रूपान्तर मह् और मह् के रूपान्तर मय के आधार पर तमिल का मयिर (बाल) शब्द बना है। इसी मय से संस्कृत मयूर बना है। गाँव, नगर आदि जन-स्थानों के लिए पुर का रूपान्तर वुर, उर, ऊर कश्मीरी और द्रविड़ भाषाओं में प्रयुक्त होता है। कश्मीरी मित्रों ने मुझे बताया था कि शेख अब्दुल्ला के गाँव का नाम स्ववुर है। ससुराल के लिए हहवुर में यही उर शब्द है। उत्तरापथ के लिए कश्मीरी ब्वटनु का आधार शब्द भोट है जो तिब्बत के लिए प्रयुक्त होता रहा है। भोट और ब्वट के आधार पर तमिल शब्द वड बना जिसका अर्थ है उत्तरापथ, वडच्चोल अर्थात उत्तर की भाषा। यह शब्द स्पष्ट ही तमिल जन उत्तर से अपने साथ दक्षिण ले गए हैं। वड के पूर्वरूप ब्वट, ब्वट के पूर्वरूप भोट का आधार रूप बोध है। महाप्राणता दूसरे वर्ण से पहले में स्थानान्तरित हुई, द अघोष और मूर्धन्य हुआ। कश्मीरी अर से तुलनीय है तमिल अरि (काटना), लकड़ी चीरने के उपकरण हिन्दी में आरा आरी कहलाते हैं। धान की बाली के लिए कश्मीरी अलक का सम्बन्ध तमिल क्रिया अल से हो सकता है जो अलचु, अलुक्कु, अलङ्ग् आदि रूपों में विद्यमान है और जिसका अर्थ हिलना है।

शीन (बर्फ) हिम से सम्बद्ध है, शिमला का निम शीन् का प्रतिरूप है। स्तंभ के लिए कश्मीरी शब्द थेन का आधार स्त क्रिया है, इससे तुलनीय है रूसी स्तेन् (दीवाल)। दूध दुहने के लिए आधुनिक आर्य भाषाओं में दुह क्रिया का व्यापक व्यवहार

होता है। कश्मीरी चावज् अथवा च्यावज् (दोहन) का सम्बन्ध दुहने का अर्थ देने वाली प्राचीन सू क्रिया से ही सकता है। स्तन के लिए कश्मीरी का मम शब्द स्तनपाई जीवों के लिए प्रयुक्त लैटिन मम्मालिग्रा में विद्यमान है। मुख का अंग्रेजी प्रतिरूप माउथ है, कश्मीरी बुथ (चेहरा) माउथ से सम्बद्ध जान पड़ता है। अंकुर के लिए गब का पूर्वरूप गभ होगा और यह गर्भ संस्कृत दर्भ का वैकल्पिक रूप लगता है। ग्रियर्सन ने कश्मीरी गेल् (जार की आवाज) का सम्बन्ध वैदिक गल्द से जोड़ा है। इन दोनों का आधार गद क्रिया होगी जिसका रूपान्तर गल है। संस्कृत चषक का प्रतिरूप कश्मीरी खसि है, इसका पूर्वरूप कश हो सकता है जैसे फारसी मकश (शराब पीने वाला) में। नदीवाचक ग्वल संस्कृत कुल्या से सम्बद्ध है। कुल्या रूप किसी पुल्लिंग कुल्य जैसे रूप के आधार पर बनाया हुआ स्त्रीलिंग रूप है। सोने के लिए न्यह का सम्बन्ध निशि से हो सकता है, निशि शब्द में शि शयनसूचक क्रिया होगी और नि उपसर्ग होगा।

कश्मीरी द्रव क्रिया का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में करती है, गरद्राव् अर्थात् घर से गया हुआ। भूखे के लिए ब्वछु शब्द भिक्षु की याद दिलाता है। दांत के प्रतिरूप वाद से कश्मीरी में वादुन (शक्तिशाली) विशेषण बनता है। द्रह (दिन) का आधार द्योस का द्रौस जैसा वैकल्पिक रूप होगा। उसका पर्यायवाची द्यन (दिन) भी प्रयुक्त होता है। चकोर के लिए ककव शब्द में तालव्यीकरण नहीं है, ककव और चकवा दोनों में क की आवृत्ति हुई है। कश्मीरी पिशुल का संस्कृत प्रतिरूप पिच्छल है, हिंदी फिसलन, अवधी बिछुलहर का पूर्वरूप पिशल होगा। संस्कृत में श् के स्थान पर च्छ् है किंतु कश्मीरी में मूल ध्वनि बनी हुई है। निदेश के लिए कश्मीरी में म, मा अब भी प्रयुक्त होते हैं, हिंदी आदि में न् वाले रूपों का चलन है। अंग्रेजी निअर, पंजाबी नेडे का कश्मीरी प्रतिरूप निग्रोड है। इन सबका मूल रूप नेदिष्ठ है।

कश्मीरी की कृषि सम्बन्धी शब्दावली अलग से विचारणीय है। खेती और गावों से सम्बद्ध काफी शब्द हिंदी प्रदेश की जनपदीय शब्दावली से मिलते-जुलते हैं। खेत के लिए खोति और खाह शब्द है जो परस्पर सम्बद्ध है। हल के लिए अल और आल शब्द है। हल का फाल अलफाल कहलाता है, हिंदी हल माची की तरह किसानी के उपकरणों के लिए भी अलफाल का प्रयोग होता है। खलिहान के लिए खल शब्द है। किसान ग्रूस्तु (गृहस्थ) है, खेत मजदूर सिंधी हाली की तरह हालि है। ग्वाला गूर है, ल ध्वनि र् में बदल गई है। छोटा खेत हिंदी में बारी कहलाता है, खेती के साथ उसे मिलाकर खेती बारी का व्यवहार होता है। कुछ लोग बाड़ी भी कहते हैं। कश्मीरी में साग उगाने का छोटा खेत हाखवारु (शाकवारी) कहलाता है। खेत में पानी देने के लिए हिंदी ढेंकली कश्मीरी में ढेंकली है। गेहूँ के लिए कनक का रूपान्तर कनुख प्रचलित है। गाँव के लिए गाम, गुठ्, ग्वड, पुर, उर अनेक शब्द हैं। गुठ का आधार गोष्ठ है, गुठ विशेष रूप से वह स्थान है जहां पशु एकत्र होते हैं। ग्वड का अवधी प्रतिरूप ग्वाड़ा है जहां पशु बांधे जाते हैं। हल के लिए खाजु, फसल काटने के लिए लाव पशुओं का अनगाया चारा गुगुल, बैल के लिए हगरु आदि कश्मीरी के अपने शब्द हैं। बोने के लिए प्राचीन वप् क्रिया से

वाप सज्ञा शब्द बना जिसका कश्मीरी रूपान्तर हुआ **वाफ**, **हरुदवाफ** अर्थात् शरदकालीन बुवाई। अवध म कडे पाथ कर स्तूप सा बना देते है और उस पर गोवर का पलस्तर कर देते है। इसे अवधी मे **बठिया** कहते हैं। यह स्त्रीलिंग रूप है, इसका पुल्लिंग रूप **बठु** रहा होगा। कश्मीरी मे **बठु** शब्द है और उसका वही अर्थ है जो **बठिया** का है। हिन्दी डोल के लिए कश्मीरी **डुल** शब्द है। **बछवा** कश्मीरी म **वाच** है।

कश्मीरी के सवनाम शब्द महत्वपूर्ण हैं। इनमे सबसे पहले उल्लेखनीय है अन्य पुरुष एकवचन रूप **सु**। अनेक आय भाषाओं म इस सवनाम का लोप हो गया है किन्तु कश्मीरी म वह विद्यमान है। व्यक्तिवाचक और निर्देशक सवनाम परस्पर सम्बद्ध रहे हैं। ग्रियसन ने **सुह** और **हुह्** रूप दिए हैं जो निर्देशक सवनाम हैं। **सु** का रूपान्तर **हु** है और कश्मीरी दोनो का उपयोग करती है। निर्देशक सवनामो की जो रचना प्रक्रिया इस पुस्तक म बताई गई है उसकी पुष्टि **हुह** के सम्प्रदान रूप **हुथ** से होती है। **हुह** का मूल रूप होगा **सुध**। इससे **सुह हुह**, **हुथ** रूप बन है। इसी प्रकार **यिह्** का पूर्वरूप **इध** और मूल रूप **सिध** होगा। निर्जीव पदार्थों के लिए **यिह** का सम्प्रदान रूप **यिथ** है। एक जगह **ध** ध्वनि **ह** म परिवर्तित हुई, दूसरी जगह **थ** मे। **यिह्**, **हुह** और **सुह** रूपो के अथ की विशषता यह है कि ये वक्ता से निर्दिष्ट वस्तु की निकटता या दूरी वतलात हैं। ग्रियसन न इन रूपा को भारतीय सवनामो से बिल्कुल भिन्न बताया है, फिर निकटता और दूरी वाले भेद के लिए कहा है कि वह भारतीय भाषाओ मे है ही नही। दोना बातें गलत हैं। कश्मीरी सवनामो का आधार **सि** और **सु** रूप ह। हिन्दी का **सो** कश्मीरी **सु** से सम्बद्ध है, बँगला से इसी का प्रतिरूप है। कोई यह बात न मान, तो भी हिन्दी **यह** और कश्मीरी **यिह्** की समानता को कसे अनदेखा किया जा सकता है? **यह** निकटवर्ती वस्तु के लिए ही प्रयुक्त होता है। **सि सु स** के आधार पर **इ**, **उ**, **अ** सवनाम मूलो का व्यवहार निकट, कुछ दूर और अधिक दूर की वस्तु बताने के लिए द्रविड भाषाओ में अब भी होता है। कश्मीरी मे **उ** और **अ** के बदले **हु** और **सु** स कुछ दूर और अधिक दूर का अथ भेद किया जाता है। अथ विचार की दष्टि से कश्मीरी के निर्देशक सवनामो की शृखला उस भारतीय सवनाम व्यवस्था के अन्तगत है जिसम आय और द्रविड दोना परिवारो के रूप शामिल हैं।

इन्हीं सर्वनाम् मूला के आधार पर कश्मीरी म स्थान सूचक विशेषक बनते हैं। **हुत्यन**, **हुतिनस हुतिनन**, इन तीनो रूपा का अथ है उस जगह। इनम **हु** सवनाम मूल दूरस्थ वस्तु सूचित करता है। उसम **ति** स्थानवाचक प्रत्यय लगा है जिसका आधार **ध** है। इसी प्रकार **हुतित्यठि** अथात वहा से, यहा **हुति** का स्वतत्र रूप देखा जा सकता है। हिन्दी **क्या** के लिए ग्रियसन ने कश्मीरी **क्यह** और **क्याह** रूप दिए हैं। इसी प्रकार अन्य पुरुष एकवचन **सु** का रूप **उ** होने **सुह** दिया है। उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष सवनामा के एकवचन रूप **ब्वह** और **चह** दिए है। उत्तम पुरुष बहुवचन का सम्बन्ध कारक रूप **सोन** पजाबी **साडडा** स सम्बद्ध हो सकता है। अपना के लिए कश्मीरी म **पनुनु** रूप है। या तो **अपन** के **अ** का लोप हो गया है या यह स्वतत्र सवनाम बन है।

ग्रियसन ने कश्मीरी **पान** का अर्थ शरीर बताया है और लिखा है कि हिन्दी **प्राप** के समान **पान** का अर्थ स्वयं है। संभव है **पन** और **पान** का आधार **पध** रूप हो।

कश्मीरी के परिवार संबंधी शब्द ध्यान देने योग्य हैं। **हहर्** (साला), **हिहुर** (ससुर), **हहरन** (ब्याहना) परस्पर सम्बद्ध शब्द हैं। संस्कृत **श्वशुर** से सम्बद्ध शब्दों की शृंखला किसी समय काफी बड़ी रही होगी।

हिन्दी के कुछ शब्दों का मूल अर्थ कश्मीरी की सहायता से विदित होता है। झगड़े के लिए कश्मीरी में **हर** शब्द है, झगड़ालू आदमी **हरिबाज्** है। जो झगड़े में फँसा है, वह **हरुवोलु** है। हिन्दी **हड़प्रोग** का अर्थ झगड़े वाले **हर** से खुलता है। हिन्दी **अखाड़ा** कश्मीरी में **हक्हार** है यहाँ भी **हार** का आधार युद्धसूचक **हर** है। बँगला में हल के लिए **लाङ्गल** शब्द है। यह **लङ्ग** से बना है। कश्मीरी में **लङ्ग** का अर्थ है पेड़ की डाल। हिन्दी **लँगड़े** में भी **लङ्ग** शब्द है। कश्मीरी **लॉङ्ग** रूप लँगड़े के लिए प्रयुक्त होता है। डाल और लँगड़े का अर्थ देने वाले शब्द मूलतः एक हैं। **लन** क्रिया में **ग** प्रत्यय जोड़कर ये शब्द बनते हैं। इनका मूल अर्थ हुआ कटा हुआ। **उ** प्रत्यय जोड़ने पर हिन्दी में लिंगसूचक शब्द बनता है। कश्मीरी में वह स्त्रीलिंग रूप है जिसका अर्थ शाखा और लँगड़ी दोनों हैं। पहले पेड़ की डाली काटकर खेत जोतते होंगे, इसलिए **लाङ्गल** शब्द हल के लिए प्रयुक्त हुआ।

हिन्दी के समान कश्मीरी समानार्थी शब्दों के जोड़े इस्तेमाल करती है जैसे **अलडल** जिसका हिन्दी रूपांतर होगा **हालाडोला**। दोनों का अर्थ एक ही है। **गाम गुठ** अवधी के **गाव गँरावँ** के समान है, दोनों का अर्थ है गाँव। सूखे हुए चमड़े के लिए **वस्त खलरु** शब्द है जिसमें **वस्त** और **खलरु** दोनों का अर्थ है खाल। यद्यपि **शत** का रूपान्तर कश्मीरी में **हथ** है किन्तु **हथशथ** में दोनों रूप विद्यमान हैं और हिन्दी **सौ सौ** की तरह यहाँ एक ही शब्द की आवृत्ति हुई है। कुछ शब्दों के जोड़े मूल शब्दों से भिन्न अर्थ देते हैं जैसे हिन्दी में **अन्न** और **जल** शब्दों को मिलाकर अन्नजल का व्यवहार होता है। **अन्नजल** का कश्मीरी रूपान्तर है **अन जल्**।

कश्मीरी में हिन्दी के समान शब्द की आवृत्ति करते हुए प्रथम वर्ण का व्यंजन बदल देते हैं और बहुधा बदला हुआ व्यंजन, हिन्दी के समान, **व** होता है। **दुकान वुकान श्यामि वामि** (श्याम वाम), **ब्रति वति** (भात वात) **ओलव् वोलव** (आलू वालू), **ग्यवुन व्यवुन** (गाना वाना) यहाँ दोहराये हुए शब्दों में **व** की स्थिति हिन्दी के अनुरूप है। यदि शब्द के प्रथम वर्ण में **ब** अथवा **श्र** है तो हिन्दी के विपरीत दोहराते समय उसके स्थान पर **प्** का व्यवहार हो सकता है यथा **वाव् पाव** (हवा-ववा), **असुन पसुन** (हँसना-बसना)। **मनाप गनाप गप नप अंट शंट** आदि भी हिन्दी क्षेत्र से कश्मीर पहुँच गए हैं।

दो शब्दों को जोड़ते समय कश्मीरी कहीं तो नये मुहावरे गढ़ता है, कहीं वह पुराने शब्दों का बहुत व्यापक प्रयोग करती है। **ख्यव् च्यव** (खा पीकर) **'ल्वह लगर** (लोहा लगर) हिन्दी मुहावरों के समान हैं। **बतख्यव** (भात का भोजन) अवधी **भतखवा** की याद दिलाता है। **ब्रागृ पितुरु** (नातेदार) कश्मीरी का अपना मुहावरा है जहाँ पिता को व्यापक अर्थ दिया गया है। **ब्रच** का अर्थ है प्रबंध करना और **नेर** का अर्थ

है बाहर जाना, इनसे मिलकर प्रवेश और निकास का अथ दने वाला **अच नेर** शब्द बनता है। आगरे मे और उसके आस पास स्थानो के नाम के साथ नेर शब्द जुडा दिखाई देता है। इसलिए व्रज प्रदेश के **अछनेरा** का सम्ब ध **अच नेर** मे होगा यह बहुत सदिग्ध है। किन्तु **नेर** के साथ **अछ** की साथकता स्पष्ट नही है अत **अच नेर** से उसकी समानता ध्यान म रखनी चाहिए। कश्मीरी जीवन म घर का स्थान महत्वपूण है। अत अनक शब्दो के साथ प्रयुक्त होकर यह विशिष्ट अथ देता है। **गरद्राव**—घर छोडकर गया हुआ, **गरयिनु**—घर आना, **गरबुगिय**—गृहस्वामी, **गरबुगिज**—गृहस्वामिनी, **गरकुलि**—घर का वना, **गरवेठ**—घर के वामी। इसी प्रकार पशुओ से सम्बधित **गुपुन्** शब्द सयुक्त होता है **गुपुनगुरु**—ग्वाला **गुपुनख्यलु**—पशुयूथ (अवधी म हरहागोरू के समान), **गुपुन य द**—पानी से भरे धान के खेतो मे पशुओ को चलाना, **गुपुनरोछु**—गोरक्षक, **गुपुनवोलु**—बहुत सी गायो वाला। ऐस सयुक्त शब्द हिन्दी कश्मीरी क्षेत्रो के मिलते-जुलते सामाजिक जीवन की ओर सकेत करते है।

आशा के पतिरूप **आश्** के साथ विभिन्न शब्द जोडकर कश्मीरी ने अनक मुहावरे रचे है यथा **आश बरज्**—आशा पूरी होना (भरण के आधार पर कश्मीरी **बरज** रूप बना है), इसी प्रकार **धारण** और **स्थापन** के रूपान्तर जोडकर **आशदारज्** तथा **आश थवज्** मुहावरे बनते है। **पण्य** का रूपान्तर **वज** अनेक शब्दो के साथ सयुक्त होता है यथा **च्यव वज्**—पीने का मूल्य, **लोनवज्**—कटाई की मजूरी और इसी **पण्य** से सम्बद्ध **वान** शब्द बाजार के लिए प्रयुक्त होता है यथा **गानवान**—वेश्या बाजार। **चसविठ** मौलिक शब्द योजना है, प्राचीन **विश** का रूपान्तर **विठ** तो सभा का अथ देता है और उसका सयोग हुआ है आधुनिक **चरस** से **चसविठ** अर्थात चरस प्रेमियो की मण्डली।

हिन्दी के समान कश्मीरी म उपसर्गो का प्रयोग कम होता है किन्तु कुछ उपसग सामान्य है और उनका व्यापक प्रयोग होता है। इनमे एक है कु। **ववकठ** अथात कुपूत, **कपूत** का पछाही हिन्दी रूप **कपूत** भी कश्मीरी म प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार **ववखडु** अथात कुयोनि। प्रत्ययो म अधिक समानता है। स्त्रीलिंग रूप बनान के लिए हिन्दी के समान **इनि** प्रत्यय का व्यवहार होता है। **ब्वटु** स **बोटिनि**—**बोट** अथात लद्दाखी और **बोटिनि** लद्दाखिनी। मानक हिन्दी म अन्तिम स्वर दीघ होगा किन्तु अवधी आदि जनपदीय भाषाओ म ह्रस्व **नि** का ही व्यवहार होता है। मुसलमान का स्त्रीलिंग रूप **मुसलमानेनि** अवधी **मुसलमानिनि** के समान है। इसके अतिरिक्त पुल्लिग उकारान्त शब्दो के उ के स्थान पर इ का व्यवहार करके स्त्रीलिंग रूप बनाये जाते है यथा **गागुर** (चूहा) **गागिरि** (चुहिया), (यहाँ अन्तिम उ और इ मात्रा स्वर है और बहुत हल्के सुने जाते हैं किन्तु लिंग भेद व्यक्त करने म उनकी स्पष्ट भूमिका है)। मानक हिन्दी म स्त्रीलिंग रूपो की रचना म जहा ई का व्यवहार होता है, वहा अवधी म बहुधा इ स काम लिया जाता है। कश्मीरी म **नाग्** (झरना) स **नागिन्य**, **कोन** (काना) स **काय** स्त्रीलिंग रूप बनते हैं जहाँ अन्तिम स्वर इ य मे परिवर्तित हुआ है।

कश्मीरी मे एक **इल्** प्रत्यय है जिसका व्यवहार अनक प्रकार स होता है। जस

संस्कृत म जटिल और हिन्दी मे बोझिल विशेषण बनाये गये हैं, उसी प्रकार कश्मीरी मं गासिल (घासयुक्त) शब्द है। संस्कृत हिन्दी स भिन्न कश्मीरी इस प्रत्यय से भाववाचक सज्ञा भी बनाती है यथा शुर (बच्चा) से शुरिल (बचपन)। इसी का एक प्रतिरूप उल है और विशेषण बनाने के काम आता है यथा गाटि (बुद्धि) से गाटुल (बुद्धिमान)। कश्मीरी पिशुल का संस्कृत प्रतिरूप पिच्छल है और दोनो शब्द पिश, पिच्छ म उल, अल प्रत्यय जोडकर बनाय गये है। इल् और इन दोनो सम्बद्ध प्रत्यय है। तमिल म ये दोना सम्बन्ध कारक के चिह्न है, इनका मूल रूप स्थानसूचक इद था। संस्कृत म स यासिन जैसे शब्दो मे इन अधिष्ठान की सूचना देता है। जिसम संयास का भाव है, वह स यासिन। इसी का स्त्रीलिंग रूप इनी है यथा संस्कृत भगिनी (सम्पत्ति की स्वामिनी) मे, अवधी बहिनि के समान भगिनि जसे रूप से कश्मीरी बुगिज (स्वामिनी) रूप बना।

अल प्रत्यय इल का प्रतिरूप है। हिन्दी ददियल का कश्मीरी प्रतिरूप दायल है। दोनो म अल प्रत्यय है। इसी तरह छिनाल के लिए कश्मीरी का छिनल शब्द है। कश्मीरी मे छिनाल् भी है, पुरुष व्यभिचारी के लिए। इल के समान ८ ल की भूमिका भी व्यापक है यथा डूगल (डूग—नाव, डूगल्—डुबकी लगाने वाला)। कश्मीरी का एक महत्वपूर्ण प्रत्यय तोन है जो प्राचीन वैदिक प्रत्यय त्वन स सीधे सम्बद्ध है। दोना का ही व्यवहार भाववाचक सज्ञा बनाने के लिए किया जाता है यथा बोय (भाई) स बायतोन (भाइपना), बेनि (बहिन) से बेनितोन (बहनापा)। म्यतरुत (मित्रत्व), पितरुत (पितत्व, किन्तु पित चचेरे के अर्थ म, पितुरुत अर्थात चचेरापन), यहा कश्मीरी का उत प्रत्यय संस्कृत ता क आधार पर निर्मित हुआ है।

कश्मीरी के कुछ शब्दा म सभवत हार या हर प्रत्यय लगता था। हिन्दी पनिहार, पनिहारिन के समान कश्मीरी मे पान्युर पान्युरेन रूप है। अनेक शब्दा म हिन्दी वाला का रूपान्तर वोल प्रयुक्त होता है यथा गाडिवोल (गाडीवाला)। हिन्दी म जैसे र या ल जोडकर किसी वस्तु की लघुता बताई जाती है, वैसे ही कश्मीरी म रु प्रत्यय का व्यवहार होता है। लटना क्रिया स जस हिन्दी लटा बनता है, वसे ही कश्मीरी म लट् क्रियामूल स लटु लटरु रूप बनत है, गुरु लटु—छोटा घोडा, गुरु लटरू—महातुच्छ घोडा। संस्कृत मत्स्य स हिन्दी मच्छ और माछ, फिर लघुत्व सूचक मछली, अवधी म सूत स सुतरी (रस्सी) इसी प्रकार बनती है। खाल मे अवधी आदि म जैस खलरी रूप बनता है, वस ही कश्मीरी म खलरु (सूखी खाल) रूप बना है। कश्मीरी म कुछ फारसी के प्रत्यय उर्दू के माध्यम स पहुँचे है। जिन्दगी, बन्दगी के समान कश्मीरी ने अपन शब्दा म गी प्रत्यय जोडकर गोरगी (गुरुआई, पुरोहिताइ), हालिगी (मजदूरी) जैस शब्द बनाय है। सितमगर बाजीगर का गर संस्कृत कर का रूपान्तर है। इसके सहारे कश्मीरी न ग्यवगार (गवया) गिन्दगोर (नतक) शब्द बनाये है। इनके अतिरिक्त कश्मीरी न अपन बहुत से प्रत्यय हैं जो, सभव है कुछ भिन्न रूपा म पहले आय भाषाओं म प्रयुक्त होत रहे हो। पण्डिताज (पण्डिताई) म आज प्रत्यय का पूवरूप आस्य हो सकता है, पाश्चात्य जैसे शब्दा मे आत्य विशेषण रूप बनाता है किन्तु यह आज् स सम्बद्ध हो सकता

है क्योंकि कश्मीरी एक ही प्रत्यय से बहुत से काम लेती है। कृदन्त प्रत्ययों की चर्चा अलग से करना उचित होगा।

(ग) रूपतंत्र

संस्कृत कारक रचना को देखते हुए भाषा विज्ञानी आधुनिक आर्य भाषाओं की कारक रचना से खिन्न हो जाते हैं। उन्हें यह देखकर प्रसन्नता होनी चाहिए कि कश्मीरी, यूरप की प्राचीन और नवीन भाषाओं की अपेक्षा, कारक भेद अधिक करती है और उसके विभक्ति चिन्ह भी मूल शब्द से अलग नहीं हैं। चोर के कश्मीरी प्रतिरूप चूर् के कर्ता, करण, सम्प्रदान और अपादान कारकों के एकवचन रूप चूर, चूरस, चूरन और चूर हैं। कम से कम ये चार कारक रूप एक दूसरे से स्पष्टतः भिन्न हैं। हिन्दी और कश्मीरी कारक रचना के बारे में ग्रियर्सन ने महत्वपूर्ण बातें कही हैं। कश्मीरी अपादान कारक की तुलना उन्होंने लैटिन कारक से की है। उनके इस विवेचन में फारसी का उल्लेख नहीं है। यदि कश्मीरी और लैटिन के अपादान कारक मिलते जुलते हैं, तो इससे कश्मीरी की आधारभूत आर्य भाषाओं की प्राचीनता सिद्ध होती है। यदि कश्मीरी की कारक रचना हिन्दी कारक-रचना से मिलती-जुलती है, तो इससे हिन्दी कश्मीरी की घनिष्ठता, दोनों की आधारभूत गणभाषाओं की प्राचीनता प्रमाणित होती है। ग्रियर्सन ने **स्टैंडर्ड मैनुअल ऑफ द कश्मीरी लैंग्वेज** (लाइट ऐंड लाइफ पब्लिशर्स, जम्मू) में लिखा है कि कश्मीरी में चार कारक होते हैं : एक सीधा कारक या कर्ता और तीन तिर्यक, सम्प्रदान, करण और अपादान। फिर कहते हैं "सम्प्रदान कारक हिन्दुस्तानी के को वाले सम्प्रदान के अनुरूप है और उसके समान निश्चित कर्म के लिए प्रयुक्त होता है। जब कर्म इतना निश्चित नहीं होता, तब, फिर ठीक हिन्दुस्तानी की तरह, कर्म का वही रूप होता है जो कर्ता का होता है। करण कारक इसी प्रकार हिन्दुस्तानी के करण कारक के अनुरूप होता है। हिन्दुस्तानी में यह कारक ने प्रत्यय जोड़कर बनाया जाता है। कश्मीरी में प्रत्यय आवश्यक नहीं होता वरन संज्ञा स्वयं अपना अन्त्य वर्ण बदलती है। इस कारक का उपयोग उन सकर्मक क्रियाओं के कर्ता के लिए उन लकारों में होता है जो भूतकालिक कृदन्त के आधार पर बने हैं।' यहां तक कश्मीरी में हिन्दी कारक रचना की समानता हुई। आगे लैटिन का उल्लेख करते हुए कहते हैं "अपादान कारक लैटिन के इस कारक से बहुत मिलता जुलता है यथा **तमि लेखानोवु में अथि खय्** उसने मेरे हाथ से खत लिखाया, यहां **अथि** अपादान कारक में है जैसे कि लैटिन **मनु** अपादान कारक में होगा। इसी प्रकार **वडि ज़ोर**—बड़े जोर से, **हुक्म**—हुक्म से, **दाह**—प्रतिदिन, **सुलि**—सबेर, तथा **अकि समयें**—एक बार। (पृष्ठ २५)। अपादान और करण कारक मिलते जुलते हैं। लैटिन से रूपगत समानता महत्वपूर्ण है। लैटिन और कश्मीरी के क्षेत्र एक दूसरे से जितनी दूर आज चलकर हुए उतनी दूर पहले नहीं थे।

कारक रचना और सम्बन्धकों के प्रयोग के बारे में फिर हिन्दी का स्मरण करते हुए ग्रियर्सन कहते हैं कि अन्य भाषाओं में जो विविध सम्बन्ध कारकों द्वारा व्यक्त किये

जाते है, व कश्मीरी म हिदुस्तानी की तरह, सम्बधको (पोस्टपोजीशनो) द्वारा प्रकट किये जाते हैं। कुछ सम्बधक सम्प्रदान के साथ और कुछ अपादान के साथ प्रयुक्त होते हैं। यहा ध्यान देने की पहली बात यह है कि समस्त भारतीय भाषाओ के समान कश्मीरी म भी सम्बधक मूल शब्द के बाद ही आते है, पहले नहा। वे पश्च सम्बधक होते है पूर्व-सम्बधक नही। दूसरी बात यह है कि सम्बधक का व्यवहार कारक रूप के साथ होता है, मूल शब्द विभक्तिचिह्न से विलग होकर सम्बधक के साथ नही जुड जाता। इसका अर्थ यह है कि कश्मीरी की प्रकृति सश्लिष्ट भाषाओ की है और वह प्रकृति बहुत कुछ अब भी बनी हुई है। जिस तरह के प्रभाव अन्य भारतीय भाषाओ पर पडे हैं, उस तरह के प्रभावा से कश्मीरी एक सीमा तक मुक्त रही है। उसकी स्थिति प्राचीन भाषाओ म ग्रीक और लैटिन और आधुनिक भाषाओ मे रूसी से काफी मिलती जुलती है जहा कारक रचना मे शब्द के साथ विभक्ति चिह्न है और सम्बधक का प्रयोग भी होता है।

एक शब्द है चूर (चोर)। कर्ता, करण, सम्प्रदान और अपादान कारको म इसके एकवचन रूप इस प्रकार होग चूर, चूरन, चूरस चूर। यहा चारो रूप एक दूसरे से भिन्न हैं। विभक्ति चिह्न मूल शब्द से सयुक्त है, भाषा का यह सश्लिष्ट रूप है। सम्बध कारक को शेष कारका से अलग रखा गया है। ग्रियर्सन का तर्क यह है कि सम्बध-कारक रूप विशेषण है। उन्हाने लिखा है कि इनका व्यवहार बहुत कुछ वैसे ही होता है जैसे हिदुस्तानी मे, और वे विशेष्य के अनुरूप लिंग वचन और कारक बदलते है। सम्बध कारक के लिए जिन शब्दा का प्रयोग होता है वे तीन है हान्दु उकु और उनु। इनम हॉन्दु ही स्वतत्र सम्बधक प्रतीत होता है, शेष विभक्ति चिह्नो के समान हैं। होना क्रिया का भूतकालिक कृदन्त रूप सम्बध सूचक चिह्न के लिए प्रयुक्त होने लगा। चूर् का सम्प्रदान रूप चूरस, इसमे हान्दु जुडा, फिर सधि से चूरसान्दु (चोर का) रूप बना। ऐसा लगता है कि सम्प्रदान कारक का स् वास्तव म सम्बध कारक का प्राचीन स् है। हॉन्दु के प्रयोग से सम्बध कारक अलग दिखाया जाने लगा, स चिह्न बना रहा, जो पुराना सम्बध कारक था, वह अब सम्प्रदान कारक की भूमिका निबाहने लगा।

दूसरा सम्बधक उनु पुरुषा के नाम के साथ एकवचन रूपा म प्रयुक्त होता है। रैम शब्द का सम्बधकारक रूप हुआ रामुनु। यहा नु गुजराती आदि भाषाओ का सम्बधक चिह्न है। जो निर्जीव पदार्थ हैं, उनके साथ उकु सम्बधक का व्यवहार होता है। प्रीम (प्रेम) का सम्बध कारक एकवचन रूप हुआ प्रीमुकु। यहा कु सम्बधक वही क है जो बागरू से लेकर मैथिली तक समस्त हिदी क्षेत्र म प्रयुक्त होता है। इस प्रकार कश्मीरी ने स न, क आय भाषाओ के इन तीना सम्बध चिह्ना को अपना लिया है और शब्दा के साथ उनके विशिष्ट व्यवहार के लिए अलग अलग स्थितियाँ निर्धारित कर दी हैं। हिदी म कश्मीरी की भिन्नता इस बात म है कि सम्बध-कारक रूप को विशेषण मानकर फिर प्रत्येक कारक म उसके रूप बदले जाते हैं। चूरन् हॉन्दु कर्ताकारक का

एकवचन रूप है। करण, सम्प्रदान और अपादान कारकों में इसके रूप हैं चूरन हृंद, चूरन हृंदिस, चरन् हृंद (करण कारक के हृंद की इ मात्रा स्वर है, सम्प्रदान कारक के हृंद की इ पूर्ण स्वर है।) चूरनहांदु का बहुवचन रूप हुआ चूरनहृंद। यह पुल्लिग रूप है। कर्ताकारक में स्त्रीलिंग का एकवचन रूप है चूरन हिंज़ि। फिर इस स्त्रीलिंग के बहुवचन रूप हैं। चार कारकों में स्त्रीलिंग पुल्लिंग रूपों के एकवचन, बहुवचन वाले भेद हैं। इस प्रकार कश्मीरी की कारक रचना हिंदी ही नहीं, संस्कृत की तुलना में भी अत्यन्त जटिल है।

कश्मीरी के कुछ सम्बन्धक शब्द हिंदी में मिलते जुलते हैं और कुछ भिन्न हैं। मूलस अंदर—जड़ के अन्दर, यहां अंदर हिंदी के समान है। मूलस का अर्थ मूल के किया जाय तो हिंदी से रचना के अनुकूल होगा। मूलस मंज—जड़ के बीच, यहाँ मध्य का प्रतिरूप मंज है। किलसनिशें—किले के पास, यहां निश संस्कृत नेदिष्ठ का संक्षिप्त रूप है। थालस कॅथ—थाल के बीच, यहां कॅथ कश्मीरी का अपना सम्बंधक है। मध्य का पूर्व रूप मध माना जाय तो कॅथ का मूल रूप कध ही सकता है। कुलिस पॅठ—पेड़ के ऊपर, पॅठ् संस्कृत पष्ठ का रूपान्तर है। मालिस शान्—पिता के साथ, यहां शान हिंदी संग से सम्बद्ध जान पड़ता है। इन सब रूपों में से सब ध कारक चिह्न का अर्थ देता है। अथ् सीतिन—हाथ से, यहां हिंदी का पुराना सेंती अपने कश्मीरी रूप में प्रयुक्त है। यह बात आश्चर्यजनक है कि पर, ऊपर जैसे सम्बंधक भारत और यूरप की अनेक भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं किंतु कश्मीरी में उनका व्यवहार नहीं होता। इसका एक कारण यह है कि विभिन्न आर्य भाषाओं में अनेक सम्बन्धक थे और उनका अलग अलग क्षेत्रों में व्यवहार होता था। कश्मीरी के अपने सम्बंधक भी थे। इनमें से अनेक अन्य क्षेत्रों में भी पहले प्रयुक्त होते होंगे किंतु अन्य प्रभावों से वे विस्थापित हो गए, कश्मीरी में सुरक्षित रहे। दूसरा कारण यह है कि कश्मीरी अन्य आर्य भाषाओं से अधिक संश्लिष्ट है। विश्लिष्ट प्रकृति की भाषाओं में सम्बंधकों की जितनी आवश्यकता होती है उतनी कश्मीरी को नहीं थी, अतः इन भाषाओं के सम्बन्धकों का भी व्यवहार वहां अधिक नहीं हुआ।

अब क्रियापद रचना पर विचार करें। सबसे पहले क्रियार्थी संज्ञा रूप देखें जिनमें न् ध्वनि वाले प्रत्यय का व्यवहार होता है। ग्रियर्सन ने लिखा है कि गुप (छिपना) क्रियामूल से क्रियार्थी संज्ञा रूप गुपुन् बनता है। यहां जो उन प्रत्यय लगा, उसके दो रूपान्तर हैं, उनु और ऑनु। इन दोनों रूपान्तरों का अंतिम उ मात्रा-स्वर है। अतः गुपुन और गुपुनु दोनों रूप सुनने में बहुत भिन्न प्रतीत न होंगे। मेरी समझ में गुपुनु रूप पुराना था, वह मध्य देशीय करन, चलन के समान कृदन्त चिन्ह न ही नहीं लगाता था वरन अवधी की प्रकृति के अनुरूप उसे उकारान्त भी करता था। मागधी प्रभाव से कश्मीरी भाषा के ध्वनितंत्र में जब काफी परिवर्तन हुए और बलाघात प्रथम वर्ण पर होने लगा तब गुपुनु का पूर्ण उ मात्रा-स्वर रह गया। मात्रा-स्वर का लोप करके गुपुन् रूप बना। गुपॉन् का ऑकार उ का ही विवृत रूप है। कश्मीरी में इन क्रियार्थी संज्ञा

का व्यवहार हिन्दी के समान होता है, पुल्लिंग के अलावा स्त्रीलिंग रूप अलग होता है, **गुपिन्नि** स्त्रीलिंग रूप है। जैसे हिंदी में कहें, **किताब पढ़नी है**, वैसे ही। हिन्दी से दूसरी समानता यह है कि यह क्रियार्थी संज्ञा रूप भविष्य काल के लिए भी प्रयुक्त होता है। ग्रियर्सन ने **गुपुन्** को भविष्य कालिक कर्मवाच्य कृदन्त माना है।

कश्मीरी का वर्तमान कालिक कृदन्त रूप अपरिवर्तित रहता है। मैं छिपाता हूँ, हम छिपाते हैं, मैं छिपाती हूँ, हम छिपाती हैं आदि विभिन्न पुरुषों और लिंगों में **गुपान** अपरिवर्तित रहता है। **ब्राह् छुस गुपान**—मैं छिपाता हूँ, **असि छिहि गुपान**—हम छिपाते हैं, **तिम छेंह् गुपान**—वे छिपाती हैं। सभी पुरुषों और दोनों लिंगों में कृदन्त रूप बदलता नहीं है। मलयालम के कृदन्त रूप **वर्न्नु** (आया) से **गुपान्** की स्थिति की तुलना की जा सकती है। हिंदी में **मैं छिपाता हूं** और **मैं छिपाता था**, इन दो वाक्यों में काल भेद से कृदन्त नहीं बदलता किन्तु भविष्य काल के लिए कहेंगे **मैं छिपाऊँगा**। यहां **छिपाऊँ** कृदन्त के स्थान पर है किन्तु मूलतः कृदन्त नहीं है। इसके विपरीत कश्मीरी में इस **गुपान** का व्यवहार तीनों कालों में होगा। **बोंह् ओसुस् गुपान**—मैं छिपाता था, **बोंह् आस गुपान**—मैं छिपाऊँगा अथवा मैं छिपाता होऊँगा।

गुपान् रूप को वर्तमानकालिक कृदन्त कहा गया है। वास्तव में यह विशुद्ध कृदन्त है जिसका व्यवहार सहायक क्रिया के साथ किसी भी काल में हो सकता है। भूतकालिक कृदन्त लिंगानुसार रूप बदलते हैं। कश्मीरी कृदन्तों की एक विशेषता यह है कि ये एक ही काल के अन्तर्गत सूक्ष्म भेदों की सूचना देते हैं। **गुपु**—यह हुआ निकटवर्ती अतीत, **गुप्याव**—यह हुआ दूरवर्ती अतीत, **गुप्योव**—यह हुआ सामान्य अतीत जहाँ निकट और दूर का प्रश्न नहीं है। संभव है **गुप्योव** कभी मध्यवर्ती अतीत के लिए प्रयुक्त होता रहा हो। तमिल में जैसे **इ, उ, अ** सर्वनाम चिह्न वक्ता से निर्दिष्ट पदार्थ की थोड़ी या अधिक दूरी सूचित करते हैं वैसे यहां काल भेद है। निर्देशक सर्वनामों का सम्बन्ध देशगत दूरी से है, इन कृदन्तों का सम्बन्ध कालगत दूरी से है।

भूतकालिक कृदन्तों में लिंगानुसार परिवर्तन होता है किन्तु विशेषण के रूप में सहायक शब्द के बिना इनका व्यवहार नहीं होता। जैसे हिन्दी में **छिपा चोर** कहने के बदले **छिपा हुआ चोर** कहना मुहावरा है, उसी तरह कश्मीरी में **गुपु चूर** कहने के बदले **गुपु मातु चूर** कहना मुहावरा है। हिन्दी के जाता है जाता था की तरह कश्मीरी में **होना** क्रिया के साथ कृदन्त लगाकर क्रिया रूप बनाते हैं। ग्रियर्सन ने लिखा है कि वर्तमान काल में सहायक क्रिया **छुस** का प्रयोग हिन्दुस्तानी **हूँ** के समान है, भूतकाल हिन्दुस्तानी **था** के समान है अन्य काल हिन्दुस्तानी **होना** के कालों के अनुरूप हैं अर्थ की दृष्टि से और प्रयोग की दृष्टि से भी। ग्रियर्सन के इस कथन से विदित होगा कि कश्मीरी की क्रियापद रचना हिन्दी क्रिया पद रचना से काफी मिलती है। हिन्दी **हूँ** के विपरीत कश्मीरी **छुस** में लिंगानुसार परिवर्तन भी होता है। इसी प्रकार हिंदी **था** के विपरीत कश्मीरी **आसुस** में पुरुष के अनुसार परिवर्तन होता है, लिंग के अनुसार तो होता ही है। भविष्यकालिक रूपों में **होना** क्रिया लिंगानुसार परिवर्तन नहीं करती।

रचना के कुछ उदाहरण यहाँ देता हूँ। **दुकुम**—खाया मैंने, **दुकुस्**—खाया मैंने उसको, **दुकुन्**—खाया उसने, **दुकुन**—खाया उसने हमको, **करय्**—करूँगा मैं तुमको, **करस**, करूँगा मैं उसको, **करख**—करूँगा मैं उनको, **करहा**—करता मैं, **करहाय**—करता मैं तुमको, **करहास**—करता मैं उसको, **करहाख्**—करता मैं उनको। आज्ञार्थी रूपों में भी कर्मसूचक सर्वनाम चिह्न जोड़ा जा सकता है यथा **करिन्**—कर वह, **करिनम्**—कर वह मुझको, **करिनय्**—कर वह तुझको। तछल के उदाहरणों में अकर्मक क्रियाओं के साथ भी कर्मसूचक सर्वनाम चिह्न लगाने के उदाहरण हैं यथा **पोकुस**—चला मैं, **पोकसय**—चला मैं तुमको। यहाँ सर्वनाम चिह्न सीधे कर्म का अर्थ न देकर क्रिया से उसके किसी प्रकार सम्बद्ध होने का भाव बताता है। ग्रियर्सन ने सकर्मक कृदन्तों के साथ करणकारक के व्यवहार की बात लिखी है। तछल ने करण कारक का व्यवहार अकर्मक क्रियाओं के साथ भी दिखाया है। **लडकव् प्यठ गव वड्यनकुन्**, लड़के बड़ों की ओर गये। तछल ने इसका हिंदी रूपान्तर इस प्रकार दिया है लड़कों से से गया बड़ों की ओर। वास्तव में जिसे ग्रियर्सन करण कारक कहते हैं, वह हिन्दी और कश्मीरी बोलने वालों की चेतना में कर्ता है। इसीलिए वह अकर्मक क्रियाओं के साथ भी प्रयुक्त होता है। ऊपर के वाक्य में **गव्** क्रिया का कर्म तो हो नहीं सकता, जो कर्म जैसा प्रतीत होता है, वह क्रिया से अन्य प्रकार से सम्बद्ध है। इसी तरह चलना क्रिया के साथ जो कर्म सूचक चिह्न अन्य उदाहरण में लगा है, क्रिया से उसका सम्बन्ध कर्म से भिन्न प्रकार का है।

क्रिया के बाद कर्ता कर्म सूचक सर्वनाम चिह्न जोड़ने की प्रथा प्राचीन है और एक से अधिक भाषा-परिवारों में पाई जाती है। ग्रियर्सन ने बताया है कि क्रिया के बाद कश्मीरी में अनेक प्रत्यय जोड़े जाते हैं यथा **गुपुन**—उसने छिपाया **गुपुनस**—उसने मुझे छिपाया, **गुपुनसत्या**—क्या उसने मुझे भी छिपाया? क्रिया के बाद इस तरह प्रत्यय कोल भाषाओं में जोड़े जाते हैं और कश्मीरी की अपेक्षा अधिक संख्या में जोड़े जाते हैं। जिन लोगों ने मैथिली और मगही की क्रियापद रचना पर कोल प्रभाव का उल्लेख किया है, उनके लिए उचित है कि उनके साथ कश्मीरी क्रिया पद रचना का भी विवेचन करें। तब कश्मीरी दरद समुदाय की भाषा है या नहीं, यह निर्णय करने में सुविधा होगी।

कश्मीरी प्रेरणार्थक क्रियारूप हिंदी की तरह बनाती है। कोमल विशेषण से उसने क्रिया बनाई कुमलुन, फिर प्रेरणार्थक रूप बनाया कुमलावुन जैसे अवधी में कोई वह कामलावत है। कर्मवाच्य बनाने में गति सूचक सहायक क्रिया हिंदी के समान जोड़ी जाती है। **गुपनयिम**—मैं छिपाया जाऊँगा। हिंदी में जाना क्रिया का व्यवहार होगा, कश्मीरी यिनु का अर्थ है आना। गतिसूचक दोनों हैं। ग्रियर्सन ने अनियमित प्रेरणार्थक क्रियाओं के जो उदाहरण दिए हैं, उनमें अनेक हिन्दी के समान हैं मरुन, मारुन—मरना, मारना, तरुन तारुन्—तरना, तारना, फटुन, फाटवुन्—फटना, फाड़ना। कश्मीरी में संज्ञा के साथ क्रिया जोड़कर क्रियारूप बनाने की पद्धति, ग्रियर्सन के अनुसार,

हिंदुस्तानी के समान है यथा करद् अर्ज —अर्ज करना। सहायक क्रिया लगाकर मूल क्रिया के अर्थ में अन्तर पैदा करने की विधि हिंदी के समान है। प्योनुवसिथ् का ठेठ हिंदी अनुवाद ग्रियर्सन ने दिया है, गिर पडना। हेंकुन्करिथ का अर्थ हुआ कर सकना। इसी प्रकार काम में लगना, ठढ लगना, ठेस लगना, फिक्र लगना, जग लगना आदि की तरह कश्मीरी में भी लग क्रिया के साथ मुहावरे बनते हैं।

कश्मीरी वाक्यतंत्र में क्रिया सदा वाक्य के अंत में नहीं आती। दर्वाजस प्यठ छुह् फकीर—दरवाजे पर फकीर है। यह वाक्य कश्मीरी की पुरानी पद्धति के अनुरूप है, क्रिया पहले है कर्ता उसके बाद आया है। हाकिमस निशाँकारुतम अरज—हाकिम के यहाँ उसने अर्जी की। यहाँ भी पुरानी पद्धति है, क्रिया के बाद कर्ता और कर्म दोनों आये हैं। कोल भाषाओं के बारे में पिनोव् ने लिखा है कि कर्ता-कर्म सूचक सर्वनाम चिह्न क्रिया के बाद अब भी लगते हैं, किसी समय कर्ता कर्म सूचक संज्ञा शब्द भी क्रिया के बाद प्रयुक्त होते होंगे। कोल भाषाओं के लिए जो संभावना मात्र है, वह कश्मीरी के लिए प्रत्यक्ष सत्य है। प्राचीन आर्य भाषाओं में क्रिया के बाद कर्ता कर्म सूचक शब्दों का व्यवहार होता था, इसका प्रमाण कश्मीरी भाषा है, सामान्यतः अन्य आर्य भाषाओं के समान कश्मीरी वाक्य-रचना में कर्ता पहले आता है क्रिया बाद में। इसका अर्थ यह है कि अन्य आर्य भाषाओं के समान कश्मीरी भी ऐसे वाक्यतंत्र से प्रभावित हुई है जिसमें उद्देश्य पहले है, विधेय बाद को। गामकिमहनिवि समयेय्—गाँव के लोग एकत्र हुए, यह वाक्य रचना हिंदी के अनुरूप है, कर्ता पहले और क्रिया वाक्य के अंत में। कश्मीरी दोनों पद्धतियों का समन्वय करती है। सुह छुह छान्—वह है बढई, यहाँ कर्ता तो पहले आया किंतु क्रिया वाक्य के अन्त में न होकर मध्य में है। बाह् छुस तातु गछन खोचान—मैं वहाँ जाने में डरता हूँ। यहाँ कर्ता आरम्भ में है क्रिया के दो भाग कर दिए गए हैं, एक भाग छुस (हूँ) कर्ता के तुरंत बाद आया है और दूसरा कृदंत भाग खोचान् (डरता) वाक्य के अंत में आया है। जर्मन भाषा में अनेक वाक्य ठीक इसी तरह क्रिया के दो भाग करके रचे जाते हैं, कृदंत रूप वाक्य के अन्त में आता है और मूल क्रिया कर्ता के बाद वाक्य के प्रथम अंश में। इसी प्रकार क्रिया के बाद कर्म की स्थिति अंग्रेजी के समान है। में वुछु गगायें मज अख् मगर मछ —मैंने गंगा में एक मगर मच्छ देखा। यहाँ कर्म क्रिया के बाद आया है। कश्मीरी, जर्मन और अंग्रेजी के वाक्य तंत्रों में जो समानता है, उसका कारण दो पद्धतियों का मिलन है। यहाँ इस बात की याद दिलाना अप्रासंगिक न होगा कि अंग्रेजी की पडोसी केल्ट भाषाएँ अपना वाक्य अब भी क्रिया से आरम्भ करती हैं।

(घ) कश्मीरी और शीना

यद्यपि ग्रियर्सन ने हिंदुस्तानी और कश्मीरी में अनेक समानताएं दिखाई हैं किन्तु अपने व्याकरण की भूमिका में उन्होंने कश्मीरी से उत्तर-पश्चिमी भाषाओं के विशेष सम्बन्ध की ओर संकेत किया है। उन्होंने लिखा है कि कश्मीरी आर्य भाषा है

किन्तु अपने दक्षिण म पंजाब की भाषाओं से सम्बन्धित होते हुए भी वह अपने उत्तर और उत्तर पश्चिम म बोली जाने वाली भाषाओं से अधिक घनिष्ठ रूप म सम्बद्ध है। ये भाषाएँ शीना, खोवार और विभिन्न काफिर बोलियाँ ह। वह यह भी कहते हैं कि प्राचीन काल म कश्मीर को अपनी सभ्यता भारत से मिली, अत वहा की भाषा म संस्कृत स्रोत से बहुत से शब्द आये। किन्तु उनकी समझ म भाषा का मूल ढाचा दरद ह, संस्कृत का प्रभाव उस पर बाद म पडा ह। अपने भाषा सर्वेक्षण ग्र थ के आठवें खंड म उन्होंने दरद और पिशाच भाषाओं का विवेचन किया है। इसम उन्होंने कश्मीरी के लिए लिखा है कि इसने सभ्यता के साथ शब्द-भंडार भारत से इतना अधिक लिया है कि वह ठेठ दरद भाषा नहीं रह गई। कोहिस्तान की भाषाओं के लिए लिखा है कि इन पर भारतीय भाषाओं और पश्तो का प्रभाव ह। तब गिलगिट और आसपास की घाटी म बोली जाने वाली शीना ही ठेठ दरद भाषा रह जाती है। अत कश्मीरी क प्रसग म शीना पर दष्टिपात करना उचित होगा।

इसके ध्वनितंत्र म पहली बात ध्यान देने की यह है कि शब्द का अंतिम स्वर बहुधा अनुच्चारित रहता है। इसका अर्थ यह है कि शब्दों क अन्त म स्वर थे तो, पर किसी कारण उनका उच्चारण क्षीण होता गया है। यह स्थिति कश्मीरी के मात्रा-स्वरों की याद दिलाती है। गुरेजी नाम की घाटी म रहने वाले अपने को दाद (अर्थात दरद) कहते है और उनकी भाषा शीना की एक बोली है। ग्रियर्सन न लिखा है कि यह कश्मीरी से बहुत भिन्न है 'सरचना और वाक्यतंत्र म" पंजाबी और उर्दू से मिलती-जुलती है। ऐसा लगता ह कि दरद भाषाओं का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहा उत्तर भारतीय आर्य भाषाओं का प्रभाव न पहुँचा हो। इस प्रभाव से मुक्त ठेठ दरद भाषा के उदाहरण शीना क्षेत्र म भी नहीं हैं। कश्मीरी की तो साहित्यिक परम्परा ह कश्मीरी साहित्यकारों ने भारतीय भाषा-तत्व लिए होगे किन्तु हिमालय पहाड की दुर्गम घाटियों म रहने वाले अपढ और पिछडे हुए शीना भाषी भी भारत के भाषाई प्रभाव से बच नहीं पाये। शीना भाषा की सरचना यदि कश्मीरी से भिन्न है और उर्दू पंजाबी की सरचना से मिलती है, तो इससे यही निष्कर्ष निकल सकता ह कि ठेठ दरद भाषा की सरचना शीना म नहीं, कश्मीरी म देखनी चाहिए और उर्दू-पंजाबी म कश्मीरी जितनी प्रभावित हुई है, शीना उससे और भी अधिक प्रभावित हुई है।

यहाँ बात है ध्वनितंत्र की। शीना क सदर्भ म ग्रियर्सन को कश्मीरी ही नहीं, हिन्दी की पूर्वी बोलियाँ भी याद आती है। इसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोडी ह। शीनाभाषी शब्द के अन्त का स्वर कभी कभी अनुच्चारित छोड देते हैं। ये स्वर कौन से है ? ग्रियर्सन कहते हैं कि शब्द क अन्त म आ उ और इ स्वर आते हैं, 'और जो पूर्वी हिन्दुस्तान की कुछ भाषाओं म भी पाए जाते हैं,' आधे उच्चारित होते हैं जैसा कि कश्मीरी म सामान्यत होता है (पृष्ठ १७४)। उ पुल्लिंग शब्दों क साथ प्रयुक्त होता है, इ स्त्रीलिंग शब्दों के साथ। अवधी म ये स्वर बहुत स्पष्ट अब भी सुन जा सकते हैं। यही कश्मीरी के मात्रा-स्वर हैं यही शीना के अर्ध उच्चारित या

अनुच्चारित स्वर हैं। कश्मीरी और शीना में ये स्वर अर्थभेदक थे, मागधी ध्वनि-तन्त्र के प्रभाव से, बलाघात की आवश्यकता के कारण, उनका उच्चारण क्षीण होता गया। हिन्दी प्रदेश की भाषाओं से कश्मीरी ही नहीं, पड़ोसी शीना भाषा का भी गहरा सम्बन्ध है।

शीना ध्वनितन्त्र की दूसरी विशेषता यह है कि जिन शब्दों के मूल रूपों में महाप्राण ध्वनि थी, उनके बोलचाल वाले रूपों में महाप्राणता का लोप हो गया है। मुख, खाना, खोजना, नाग, साथ शीना में क्रमशः मुक्, कोइकी कोजोइकी, बागो, साति हैं। इससे पता यह चलता है कि कश्मीरी की अपेक्षा शीना पर द्रविड प्रभाव और भी गहरा है। कश्मीरी अघोष महाप्राण ध्वनियों की रक्षा करती है, शब्द के अन्त में अघोष अल्प प्राण ध्वनि हो तो उसे महाप्राण भी कर देती है किन्तु शीना नाग के न को ब् तो करती ही है, मुख और खाना के ख को क् भी कर देती है। शीना में ठेठ दरद मूल के कोई शब्द नहीं है जिनमें पहले महाप्राणता रही हो और बाद को नष्ट हो गई हो। महाप्राण-ध्वनियों वाले शब्द वहाँ भारत से पहुँचे हैं।

शीना ध्वनितन्त्र की तीसरी विशेषता यह है कि अनेक शब्दों में सघोष ध्वनियों को अघोष कर दिया जाता है। सर्वत्र ऐसा नहीं होता किन्तु यह प्रवृत्ति है अवश्य। ग्रियर्सन ने उदाहरण दिया है कि रुपये के लिए तिब्बती शब्द गिर्मो यहाँ किर्मो बोला जाता है। यह प्रवृत्ति भी द्रविड प्रभाव की ओर संकेत करती है। शीना ध्वनितन्त्र की चौथी-विशेषता तालव्यीकरण की प्रवृत्ति है। स्त्री के लिए चेइ, चई आदि रूप त का च में रूपान्तर होने से बने हैं। यह प्रवृत्ति कश्मीरी में भी है। साथ ही नाग भाषाओं के समान शीना तालव्य ध्वनियों को संघर्षी रूप भी देती है। रेगो (उसने कहा) का रूपान्तर रभ्रउ भी प्रचलित है। कुछ शब्दों में व के स्थान पर प का व्यवहार होता है। अश्व का प्रतिरूप अश्पु है जो फारसी अस्प के समान है। ऐसा सर्वत्र नहीं होता। कश्मीरी के समान शीना में भी यू ध्वनि सुप्रतिष्ठित है। इस भाषा में र का उच्चारण ह् जैसा अवश्य होता होगा। संस्कृत में स, र ह् (अघोष रूप) एक दूसरे का स्थान लेते हैं। कुछ ऐसी ही स्थिति शीना में है जो उसे प्राचीन आर्य भाषाओं से जोड़ती है। शीना में संख्यासूचक त्रे (तीन) का वैकल्पिक रूप है छे। यहाँ त तो च में परिवर्तित हुआ और र ह् में इस प्रकार त्र् का रूपान्तर छ हुआ। इसी तरह देखने के लिए एक शब्द है त्रिकोइकी, इसका वैकल्पिक रूप है छकोइकी। अधिकतर त ध्वनि ही च् में बदलती है, स और श अपरिवर्तित रहते हैं। अनेक शब्दों में त का व्यवहार भी होता है। शीना पर तालव्यीकरण का आंशिक प्रभाव ही है।

शब्दतन्त्र की दृष्टि से शीना भाषा का ऐतिहासिक महत्त्व है। रेगो (उसने कहा) में ऋग्वेद वाली रेक क्रिया है जिसका अर्थ है बोलना। यह क्रिया अनेक स्लाव भाषाओं में अब भी प्रयुक्त होती है। पंजाबी, हिन्दी आदि में उसका व्यवहार अब नहीं होता। रभ्रउ क्रिया इसी रेगो का रूपान्तर है। रेग का ओकारान्त रूप रेगो है, रेग में ग कृदन्त प्रत्यय है जो भूतकाल के अर्थ से सम्बद्ध हो गया है। रेग की रचना ठीक वैसे ही हुई है

जैसे तमिल कृदन्त पोग की। इसी प्रकार वे क्रिया मूल म कृदन्त प्रत्यय जोडकर देगो (दिया) रूप बना। कृदन्त रूपा का तिङन्तीकरण कैसे होता है, इसके उदाहरण शीना म हैं। देगो का अथ है उसन दिया किन्तु देग का अथ है तून दिया। प्रत्यय का स्वर बदलकर पुरुष की सूचना दी गई। हिन्दी भाग को क्रियामूल मानकर उसे कृदन्त रूप बनाया बागेगो (उसने बाटा)। एक क्रिया है ते जिसका अथ है करना। तेगो (उसन किया), तेगस् (मैंने किया), सज्ञा शब्दो के साथ इसे जोड कर नये क्रिया रूप बनाये जाते हैं जैसा कि हिन्दी म होता है यथा खरच तेगो (उसने खच किया), खिम्रालतेगो (उसने खयाल किया)। यह ते क्रिया वही है जो रूसी म देलात (करना), अग्रेज़ी मे डू है, जिसम मूलत सघोष महाप्राण ध्वनि थी जो हिन्दी धधा म विद्यमान है। शीना मे जाने के लिए बोझोइकि क्रिया है, यहा क्रियामूल बो तमिल पो का प्रतिरूप है। साथ ही शीना म गो, गम्रो (गया) म ग ध्वनि वाली क्रिया भी है। पुन बम् (मैं जाता हूँ), बन (व आते हैं) म ब क्रिया मूल वही है जो तमिल कृदन्त व द म है।

शीना के सवनाम रूप कश्मीरी से काफी मिलते-जुलते है। उत्तम पुरुष एकवचन व्यक्तिवाचक सवनाम के मा, माँह मो, मि मूल रूप मध के आधार पर निर्मित हुए हैं। इसी सवनाम का सम्बन्धकारक रूप मेइ, मई अग्रेजी माई से मिलता है। इसका प्रतिरूप है मिम्रानो, मिम्रानो, जो अग्रेज़ी माइन से मिलता है। न सम्बन्ध सूचक प्रत्यय है, शीना म प्रत्यय का ओकारान्त रूप है, अग्रेजी मे अकारान्त। उत्तम पुरुष का बहुवचन रूप बे बेह, बा, बेंग् सस्कृत वयम स सम्बद्ध है और अग्रेजी वी से मिलता है। मध्यम पुरुष एकवचन तू का प्रतिरूप तो भी है, इस तो से मिलता रूप रूसी म है। इसका सम्बन्ध कारक रूप ते सस्कृत म है, थइ अग्रेजी दाई (तेरा) के समान है। एक रूप थानो भी है, नो प्रत्यय वाले मियानो क समान, अग्रेजी का दाइन इस थानो स मिलता है। थइ और थानो रूप देखकर अनुमान होता है कि सस्कृत त्वम का मूल रूप ध्वम था जो क्रिया पदो के अन्त मे जहा तहा मिलता है। अन्य पुरुष एकवचन सवनाम श्रनो है जो रूसी श्रन् से मिलता है।

शीना म सवनामो के आधार पर स्थान सूचक विशेषण भारतीय पद्धति से बनते है। कदात (कैसे) ग्रदात् (एस) आदि म सवनाम मूल के बाद स्थान काल-सूचक द चिह्न का व्यवहार हुआ है। ग्रध का रूपान्तर ग्रन्क है, अथ है ऊपर, सस्कृत ग्रध के अथ से उल्टा। ग्रध का मूल अथ था वह स्थान, वह स्थान नीचे भी हो सकता है, ऊपर भी। इसी प्रकार पराद (आगे वहा) अदो (वहा स), ग्रनात (इस प्रकार), सरस रोचक रूप है सद (वहा)। यहा स सवनाम अपने मूल अपरिवर्तित रूप म विद्यमान है और दूरस्थ वस्तु की ओर सकेत करता है। स म जोडा गया द, स्थान-सूचक ध का रूपान्तर है। को (पुल्लिग वह), के (स्त्रीलिंग वह) के आधार धो, घे जैसे रूप थ।

शीना क क्रियारूप मागधी भाषाओ की छाप लिए हुए है। को एक मनुजरो के दू बारे प्रालिले—किसी आदमी के दो बेटे थे। एक मुशात दू बाल प्रसिल्। इस वाक्य का भी वही अथ है। प्रसिल् और प्रसिले प्रस् क्रिया के भूतकालिक कृदन्त रूप हैं। प्राना के प्रा क्रिया मूल या कृदन्त रूप ग्राल बनता है, फिर उसका तिङन्तवत् प्रयोग

होता है। मो आलुस्—मैं आया, भो भ्रालु—वह आया। मानना होगा कि शीना पर मागधी प्रभाव कश्मीरी से भी अधिक है। इसकी वाक्य रचना कश्मीरी की अपेक्षा हिन्दी के और भी निकट है। मेई गाम्रो पशॅस् हुँस्—मैंने गायें देखी हैं। क्रिया वाक्य के अन्त में है, उससे पहले कर्म है, क्रियापद की रचना होना क्रिया के साथ कृदन्त जोडकर की गई है। कर्ता वाक्य के आरम्भ में है।

ठेठ दरद भाषाओं की विशेषता का पता लगाना बहुत कठिन काम है। कश्मीरी दरद भाषा है पर उस पर संस्कृत की छाया पडी है, उससे और भी विशुद्ध दरद भाषा शीना है, उस पर आर्य भाषाओं की छाया और भी गहरी है।

सिन्धी, कश्मीरी तथा दरद क्षेत्र की भाषाएँ हिन्दी प्रदेश की प्राचीन गण भाषाओं से घनिष्ठ रूप में संबद्ध हैं। इनके विश्लेषण से संस्कृत की निर्माण प्रक्रिया समझने में सहायता मिलती है, साथ ही इस बात का ज्ञान होता है कि मागधी, कौरवी, मध्यदेशीय भाषा-समुदायों की अनेक विशेषताएँ प्राचीन हैं और वे भारत के सीमान्त प्रदेशों की भाषाओं में प्राप्त हैं। संस्कृत के साथ आधुनिक आर्य भाषाओं के विवेचन से प्राचीन आर्य गण भाषाओं की विविधता का बोध होता है, विशेषरूप से सीमान्त भाषाओं के अध्ययन से आर्य-द्रविड भाषाओं के संपर्क से उत्पन्न होने वाली विशेषताओं का ज्ञान होता है। क्रमशः हम उस भूमि पर पहुँचते हैं जहाँ इंडोयूरोपियन परिवार के अनेक भाषा समुदायों का निर्माण हुआ था। इंडोयूरोपियन भाषापरिवार की भारतीय पृष्ठभूमि समझने में आधुनिक आर्य भाषाओं के विवेचन से सहायता मिलती है।

६

आर्य भापा केन्द्र और पुराण-कथाएँ नवीन और प्राचीन

(क) वहुकेन्द्रीयता और पुराण कथाएँ

भापाविज्ञानी और इतिहासकार जव आर्यों की चर्चा करते हैं तव उनके मन मे एकरूप भापा वालने वाला जनसमुदाय होता है। इतिहासकार गणसमाजा का उल्लेख अवश्य करते हैं पर यह मान लेत है कि इन सवकी भापा एक ही थी। एक आय वे थे जो प्रश्न शब्द मे तालव्य श का उच्चारण करते थे और एक आय वे थे जो पृच्छति रूप मे इसी श को च्छ म वदल देते थे। एक आय तालव्य श को क म वदल देते थे, इसलिए दिश के साथ दिक् वैकल्पिक रूप भी था, दूसरे आय इस श या स को ह मे वदल देते थे, इसलिए श्रद्धा का श्रद हृदय म परिवर्तित हो गया। ऐसे परिवतन आर्येतर प्रभावा के कारण भारत म हो गए, यह नही कहा जा सकता क्योकि हृदय के समाना तर अग्रेजी हार्ट मौजूद है और श्रद् के समाना तर रूसी सेद त्से है। जैसे दिश् के साथ दिक है, वैसे ही श्रद के साथ लैटिन कोद है। एक आय वे थे जो द त्य न का व्यवहार करत थे, एक आय वे थे जो द त्य न वाले शब्दा म वार वार ण का व्यवहार करत थे। ऐसे वहुत से उदाहरण दिए जा सकत है। पौराणिक कथाएँ निराधार कल्पना, मनगढन्त वाता के लिए वदनाम हैं किन्तु इतिहासकारो और भापाविज्ञानियो न एक अपनी पौराणिक परम्परा वना डाली है। इस परम्परा के अनुसार आर्यों का एक विशाल समुदाय एक ही भापा वोलता था और यह भापा एक कल्पित भारत ईरानी शाखा की प्रशाखा थी।

भापा के समान व सभी आर्यों की एक ही सस्कृति की कल्पना करते है। यद्यपि अथववेद और ऋग्वेद म सास्कृतिक अन्तर यथेष्ट है पर भापा के समान अथववद म भी आर्येतर प्रभाव स्वीकार कर लिया जाता है। वदिक सस्कृति सभी आयगण समाजा की सस्कृति थी, यह धारणा दृढतापूवक लोगा के मन मे जड जमाए हुए है। व्रज प्रदश म कृष्ण को लेकर जिस तरह क काव्य लिखे गए हैं, उनम कृपि म अधिक पशुचारण वाली सस्कृति है। इस मध्य एशिया स आन वाली जातियो का परवर्ती प्रभाव कहा जाता है। मगध वदिक काल स वैदिक सस्कृति से वाहर रहा है। वौद्ध और जैन धर्मों का मुख्य विकास क द्र मगध था। अनक प्रकार क नास्तिक दशना, शव और शाक्त मता का

प्रसार-केंद्र मगध रहा है। यह सब आर्येतर प्रभाव होगा। किंतु मगध समुदाय की भाषाओं में जो अकार के वृत्ताकार उच्चारण की पद्धति है, वह द्रविडों में नहीं, रूसवासी दक्षिणी स्लावजनों में है। मागधी समुदाय की एक भाषा असमिया है। असमिया में दन्त्य स का अभाव है। संस्कृत शब्दों में जहां स् है, वहां असमिया ह् या ख का व्यवहार करती है। यह प्रवृत्ति द्रविडों में नहीं है, ईरानी शाखा के अहुर पूजकों में थी, सप्ताह को हफ्ता कहने वाले फारसी भाषियों में थी। और असम प्रदेश शाक्त मत तथा तान्त्रिक चमत्कारों के लिए प्रसिद्ध था। कोसल के कवियों ने वैदिक देवताओं के स्थान पर मनुष्य को देवता बना कर प्रतिष्ठित किया। रवींद्रनाथ ठाकुर ने भाषा और छंद कविता में यह तथ्य बहुत स्पष्ट प्रतिपादित किया है। वाल्मीकि कहते हैं, अब तक काव्य में देवताओं की प्रतिष्ठा हुई है, मैं उनके स्थान पर मनुष्य को प्रतिष्ठित करूँगा। इतिहासकारों और भाषाविज्ञानियों की पौराणिक परम्परा के अनुसार उत्तर पश्चिम से आकर आर्य पहले पंजाब में बसे फिर गंगा जमुना के मैदानों में फैल गए, क्रमशः मगध पहुँचे। हर जगह वे यज्ञ और मंत्र पाठ वाली आर्य संस्कृति अपने साथ ले गए। इस अभिनव पौराणिक परम्परा के अनुसार मगध कोसल और कुरु जनपदों की संस्कृति में कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं था। पर भाषा में द्रविड प्रभाव उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में अधिक दिखाई देता है। इतिहासकार और भाषाविज्ञानी दोनों मानते हैं कि उत्तर पश्चिमी भारत में द्रविडों की घनी बस्तियां थीं पर वैदिक संस्कृति का सबसे साफसुथरा रूप यहीं विकसित हुआ। यज्ञ वाली संस्कृति का जैसा रूप यहां विकसित हुआ, वैसा आर्यों के किसी कल्पित आदि देश में नहीं हुआ। ईरान की यज्ञ-मंत्र संस्कृति अधिकतर वैदिक संस्कृति का रूपान्तर है जैसे कि प्राचीन ईरानी भाषा वैदिक भाषा का ध्वनिगत—मुख्यतः ध्वनिगत, गौणतः रूपगत, प्राकृतों के समान—रूपान्तर है। और यूनान की यज्ञ संस्कृति वैदिक यज्ञ संस्कृति की छाया है। रोम की यज्ञ संस्कृति इस छाया की छाया है।

यज्ञ संस्कृति का मुख्य प्रसार केंद्र कुरु जनपद था। वहां से वह ईरान, यूनान और रोम पहुँची। जो लोग इंडोयूरोपियन भाषा को इंडोजर्मैनिक कहते थे वे मानते थे कि अति प्राचीन काल में वैदिक आर्यों के साथ प्राचीन जर्मन भी वही आदि इंडोजर्मैनिक भाषा बोलते थे। पर प्राचीन जर्मन, वैदिक आर्यों तो क्या, यूनानियों और रोमनों के समान यज्ञ करते रहे हों, इसका प्रमाण नहीं मिलता। मगध बौद्ध धर्म का केंद्र था जहाँ से वह सारी दुनियाँ में फैला। कोसल रामायण महाभारत का काव्य-रचना-केंद्र था। इन काव्यों ने समस्त भारत और दक्षिण पूर्वी एशिया के अनेक देशों को भी प्रभावित किया है। इससे मिलती-जुलती स्थिति उस समय थी जब वैदिक आर्यों की यज्ञ संस्कृति ने पश्चिमी एशिया और दक्षिणी यूरप के कुछ देशों को प्रभावित किया था।

(ख) गण देवता की पूजा

भारतवासी आर्यों के अनेक गण थे। इन गणों की संस्कृति में यथेष्ट भेद था। इनकी भाषाओं में काफी समानता थी, फिर भी मौलिक भेद थे। ये सब आर्य इसलिए

हैं कि इनकी भाषाओं में समानता है और ये भाषाएँ एक ही परिवार के अन्तर्गत मानी जाती हैं। इन भाषाओं के विकास केन्द्र अनेक थे, उनमें मौलिक अन्तर था, परस्पर सम्पर्क से एक भाषा परिवार का निर्माण हुआ। सांस्कृतिक स्तर पर इसी प्रकार इन गण समाजों में परस्पर आदान प्रदान होता रहा। प्राचीन यूनान के बारे में विदित है कि जब एथेन्स नगर संस्कृति का महान केन्द्र बन चुका था, तब भी पिछड़े हुए यूनानी समाजों में नरबलि की प्रथा प्रचलित थी। भारत के जो गण समाज मिलती जुलती भाषाएँ बोलते थे, उन सबका सांस्कृतिक विकास समान गति से न हुआ था। यहाँ गण का नाम रखने की दो पद्धतियाँ थीं। एक पद्धति में वीर, योद्धा, युवक के लिए प्रचलित शब्द गण का नाम हो जाता था। कुरु, पुरु, मग (मगध का मग) आदि नाम इस पद्धति के अनुरूप हैं। मगध में मूल शब्द मग पौरुष वाचक है। दूसरी पद्धति वह है जिसमें किसी मानवेतर प्राणी को गण देवता मान लिया जाता है, गण के सभी सदस्य उसे पवित्र मानते हैं उससे तादात्म्य स्थापित करते हैं, उसकी पूजा करते हैं। अंग्रेजी में इसके लिये टोटम शब्द प्रचलित है जो अमरीकी आदिवासियों की भाषा का शब्द है। इस तरह के गण नाम भारत में भी प्रचलित थे और यह मानने का कोई कारण नहीं कि ये लोग आर्य नहीं थे। वैदिक आर्यों की देव कथाओं पर मैकडनल ने वैदिक मिथोलोजी पुस्तक लिखी है। इसमें उन्होंने टोटम पद्धति के चलन का उल्लेख भी किया है। वह मानते हैं कि यह पद्धति आर्येतर थी और भारत में आर्यों के आने के पहले से प्रचलित थी।

टोटम-पंथ को आर्येतर मानने के बाद मैकडनल कहते हैं कि सम्भव है कि टोटम पंथ के कुछ अवशेष ऋग्वेद में विद्यमान हों अर्थात् कुछ गणों या वंशों का उद्भव पशुओं या वनस्पतियों से हुआ है, यह विश्वास प्रचलित था। कश्यप एक वैदिक ऋषि का नाम है। इस शब्द का अर्थ है कछुआ। यह शब्द अथर्ववेद में तथा उत्तरकालीन वैदिक साहित्य में आता है। कश्यप को प्रजापति माना गया है। मैकडनल कहते हैं कि ऋग्वेद में मत्स्य, अज, गोतम, वत्स, शुनक, कौशिक, माण्डूकेय नाम आते हैं अर्थात् मछली, बकरा, बैल, बछड़ा, कुत्ता, उल्लू और मेढक गण नामों के लिए प्रयुक्त हुए थे।

ऐसे गण नामों के लिए भी यह कहा जा सकता है कि ये अवैदिक नाम भारत में आर्येतर प्रभाव के कारण रखे गए। भारत के बाहर पश्चिमी एशिया में एक शक्तिशाली हित्ती गण था जिसकी भाषा वैदिक भाषा से मिलती-जुलती थी। हित्ती शब्द हत्ती का हीत्र रूपान्तर है। हत्ती शब्द हस्ति का तद्भव रूप है। इस नाम से पता चलता है कि यह गण किसी समय हाथी को अपना गणदेवता मानता था। भारत के प्राचीन नगर हस्तिनापुर की एक ही व्याख्या सम्भव है, कि वह हस्ति गण का नगर था। अनेक इतिहासकार और भाषा विज्ञानी हित्तियों की सभ्यता को वैदिक सभ्यता से प्राचीन मानते हैं और हित्ती भाषा को वैदिक भाषा से प्राचीन मानते हैं। उन्होंने हित्ती और हत्ती शब्दों की व्याख्या नहीं की, उनके लिए वे निरर्थक से शब्द हैं जो किसी कारण गण समाज से जुड़ गए थे। किन्तु गणसमाजों के नाम रखने की अपनी पद्धतियाँ हैं और हत्ती और हस्ति का सम्बन्ध बहुत स्पष्ट है। हाथी गण विशेष का देवता था, यह तथ्य

सभ्यता का नाश किया, उस ऐतिहासिक तथ्य की झलक वृत्र सम्बन्धी कथा में है। सिन्धु घाटी की सभ्यता में अनेक मुद्राएँ मिली हैं, उनमें सर्प अंकित हैं। इसलिए विद्वानों ने यह कल्पना भी आसानी से कर ली कि सिन्धु घाटी की आर्येतर सभ्यता को आक्रमणकारी आर्यों ने नष्ट कर दिया। नाग और गरुड़ का वैर प्रसिद्ध है। महालिंगम ने हड़प्पा के तावीज का उल्लेख किया है जिसमें गरुड़ के दो ओर नाग हैं। तब यह क्यों न माना जाय कि सिन्धु घाटी की सभ्यता में नागगण के साथ उसके शत्रु गरुड़ गण का अस्तित्व भी था और दोनों ने आपसी युद्ध में इस सभ्यता का नाश कर दिया जैसे महाभारत युद्ध से कौरवों ने अपना नाश किया और एथेन्स तथा स्पार्टा के युद्ध से प्राचीन यूनानी सभ्यता का विनाश हुआ ?

महालिंगम् ने सामन्ती समाज के नागपूजकों और सर्प को गणदेवता माननेवाले पुराने कबीलों को मिलाकर एक कर दिया है। दोनों में अन्तर करना आवश्यक है। लिंग पूजा के समान नागपूजा अनेक देशों में प्रचलित रही है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सर्वत्र सर्प को गणदेवता माना जाता था या उसे पूजनेवाले गणसमाजों में संगठित थे। महालिंगम ने यह भी कहा है कि नाग सम्बन्धी कहानियाँ मिस्र और पश्चिमी एशिया में फैली हुई थीं, वे भारतीय समाजों से विशेष सम्बन्धित हों, ऐसा नहीं है। मेरा अनुमान है कि नाग सम्बन्धी कथाओं का प्रसार केन्द्र भारत था। यूरप में अब हर देश के लोग कपड़े पहनते हैं और शक्कर खाते हैं, इससे यह सिद्ध नहीं होता कि गन्ने और कपास की खेती का कौशल भारत से यूरप में न पहुँचा था।

सबसे पहले सर्प और जल के सम्बन्ध पर ध्यान दें। वृत्र जल को घेरे रहता है या जल को ढक लेता है। पश्चिमी एशिया में जहाँ जहाँ सर्प के साथ जल का सम्बन्ध है, वहाँ वहाँ उस कल्पना का भारतीय आधार सिद्ध किया जा सकता है। अन्य भाषाओं में कोई ऐसा शब्द नहीं है जो सर्प और जल की एक साथ व्यंजना कर सके। ऐसा शब्द **नाग** है और वह भारतीय शब्द है। **ना** शब्द मूल जलवाचक है। इसी से संस्कृत **नौका**, ग्रीक **नउस्**, अंग्रेजी **नेवी** शब्द बने हैं। स्नान का **स्ना** जलवाचक है। शब्द मूल **ना** में **स्** लगाया गया है। इसी की सहायता से **नाग** का अंग्रेजी प्रतिरूप **स्नेक** बना है। मगर के लिए संस्कृत **नक्र** उसी शब्दमूल के आधार पर बना है। पौराणिक कथाओं में शेषनाग जल में रहते हैं और विष्णु भगवान उन पर सोते हैं। शेषनाग अपने सहस्र फनों पर पृथ्वी को धारण किए हुए हैं। कश्मीरी भाषा में नाग शब्द अब भी झरनों की ओर संकेत करता है। वेरीनाग जैसे शब्द सर्पों के सूचक नहीं हैं। सर्प के लिए दूसरा शब्द **अहि** है। इसका पूर्वरूप **अभि** था। **अम्भ**, **अभ्र**, **अभि** में **अभ** शब्दमूल **अभ** जलवाचक है। इस **अभ** में रहने वाला **अभि** अथवा **अहि** है। जमीन खोदने से पानी निकलता है। साँप जमीन में बिल बनाकर उसके भीतर रहता है। धरती के नीचे पाताल है और पाताल में पानी है, नाग लोग पाताल में रहते हैं। पृथ्वी के भीतर पाताल के जल से उनका सम्पर्क है, पृथ्वी की सतह पर नदियों और झीलों में या उनके पास उनका निवास है। जब राम और लक्ष्मण सीता की खोज करते हुए ऋष्यमूक पर्वत पहुँचे तो

के अनुसार मोहम्मद शब्द के दो टुकडे हुए और उनसमोझो ओरमाहूभूता की सष्टि हुइ।

(ग) मग, नग, नाग

महाभारत की कथा म गरुड और नाग एक ही प्रजापति कश्यप की सतान हैं। नाग कद्रू के पुत्र हैं और गरुड विनता क। महाभारत की कथा स सिधु घाटी की प्राचीन मुद्राआ म गरुड और नाग गणा के सहअस्तित्व की बात पुष्ट होती है। गरुड और नाग गणा का वैर अवश्य पुराना रहा होगा और वही परम्परा महाभारत तक चली आई है। ऋग्वेद म वत्र और इन्द्र के युद्ध को इसी कथा-परम्परा क सदभ म देखना चाहिए। इस विश्लेषण स सिधु घाटी की सभ्यता, ऋग्वेद और महाभारत काव्य परस्पर विच्छिन न होकर एक ही एतिहासिक परम्परा म परस्पर सम्बद्ध दिखाई दत हैं।

यहाँ यह कह दना आवश्यक है कि नाग गण सघ का नाम भी था, उसम एक से अधिक गण सम्मिलित थे। पुरान समय स अब तक कुछ गणवाचक शब्द एस हैं जो एक से अधिक गणा की ओर, गण सघा की ओर सकेत करते हैं। भरत गण म कुरु, पाञ्चाल आदि अनेक गण सम्मिलित थ। पाञ्चाल स्वय पाँच गणा स मिलकर बना था। आधुनिक काल म पूर्वी अञ्चल के जो लोग नगा कहलात हैं, उनम अगामि, समा और आओ गण शामिल हैं। इसी प्रकार प्राचीन समय म नाग अनक गणा का सघ था। गणदेवता पूरे गणसमाज का प्रतीक होता है, वह एक पीढी स दूसरी पीढी तक गण के अस्तित्व की सूचना देता है अनेक गणा को मिलाकर उनका सघ बनान का साधन भी वह हो सकता है। यदि वह गणसघ का देवता बनगा तो उसकी उपासना अनक गण करेंगे और वह अधिक शक्तिशाली माना जाएगा। गणसमाजो क विकास म गणदवता की कल्पना किसी न किसी रूप म अनिवाय है। उसकी स्थिति कुछ वसी है जसी आधुनिक काल म राष्ट्रीय पताका की है। उस सब लोग सम्मान की दष्टि स दखत हैं उस नमस्कार करते हैं और कोई भी राष्ट्रीय पताका के प्रति असम्मान का भाव दिखाए तो लोग इसे सारे राष्ट्र का अपमान समझत हैं। युद्ध मे शत्रु की पताका छीन लाना विजय का चिह्न है उसी प्रकार किसी गणसमाज की पराजय उसके गणदवता की पराजय है। कालीदह म कृष्ण ने कालिय नाम के सप के फना पर नत्य किया और उसे यमुना छोड कर समुद्र म रहने पर विवश किया। इस कथा म नाग और जल का सम्बन्ध बना हुआ है। यमुना का एक नाम कालिन्दी है। इस शब्द की अनेक प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। कालिय गण यमुना के किनार रहता था, इसलिए यमुना का यह नाम पडा हो, सम्भव है।

पौराणिक गाथाओ म नागो के पास सम्पत्ति होन का उल्लेख रहता है। व सुन्दर नगरो और भवनो म रहते हैं। उनकी स्त्रियाँ सदा सुन्दर बताई जाती हैं। अप्सराओ की कहानिया नागा के ससग स उत्पन्न हुई हैं। नाग शब्द के समान अप्सरा शब्द भी जल ससग की सूचना देता है। पहल ये अप्सराएँ नदियो सरोवरो म रहती थी और कभी कभी इक्का दुक्का किसी तपस्वी को पाकर उस परेशान करती थी।

जब देवता धरती से दूर स्वर्ग मे रहने लगे, तब अप्सराओ पर इन्द्र का एकाधिकार या। जिन गाथाओ का सम्बन्ध व्रज, कुरु आदि उत्तर पश्चिमी जनपदों से है, उनमे क़तर नागा से सघर्ष की कहानिया मिलती है। वदिक काल के इन्द्र वृत्र सघर्ष से र कृष्ण और कालिय नाग के द्वन्द्व तक वह परम्परा चली आती है। इसस स्वभावत ान यह निष्कर्ष निकालते हैं कि नागपूजक आर्यों मे अनार्यों का सघर्ष हुआ। किन्तु । गाथाओ का सम्बन्ध मगध आदि पूर्वी जनपदा से है, उनम नागा के प्रति मैत्री । अधिक है। बौद्ध ग्रन्थो म, और बुद्ध से सम्बन्धित शिल्प चित्रा मे, नाग बुद्ध के । भक्ति भाव दिखाते है। वुद्ध उतने ही आय थे जितने पुराणा और भागवत के नाकार। यदि बौद्ध गाथाआ पर द्रविड प्रभाव माना जाय तो पौराणिक गाथाआ भी द्रविड प्रभाव माना जायगा। आय भाषाएँ बोलने वाले समुदायो म नागा के ते दो भिन्न दृष्टिकोण है, यह तथ्य ध्यान म रखना चाहिए। महालिगम ने पूर्वोल्लि-त निवध म बताया है कि बौद्ध साहित्य के अनुसार बुद्ध के जीवन म नागा की त्वपूर्ण भूमिका थी किन्तु हिन्दू और बौद्ध मता मे उनकी चचा भिन्न भिन्न प्रकार की गई है। बाद्ध साहित्य म वे बुद्ध के परम उपासक बताए गए हैं। इसी प्रकार जन । म उनकी चचा मैत्री भाव से की जाती है। जब पार्श्वनाथ, तेईसवें तीर्थकर तपस्या र रहे थे, तब उनके शत्रु न उन पर तीव्र जल वष्टि की। तब धरणीवर नाग न आकर नके सिर पर छत्र की तरह फन फैलाकर वष्टि से उनकी रक्षा की। एक अन्य कथा अनुसार जब पार्श्व तपस्या कर रहे थे, तब नागराज ने आकर अपने फन को छत्र नाकर उनकी सेवा की। कहा जाता है कि अहिच्छत्र नगर का नाम इसीलिए पडा । नागराज न अपने फन को छत्र बनाया था। अहिच्छत्र नाग गण का नगर भी हो कता है छत्र यहा सत्ता का सूचक होगा। महालिगम न लिखा है कि जन मत से म्बन्धित मूर्तियो और चित्रा म पार्श्वनाथ के आसन पर नाग दिखाया जाता है और ह उनके सिर पर अपने फन का छत्र बनाए रहता है। सिन्धु घाटी की सभ्यता म नाग ौर मनुष्य के बीच जैसा सम्बन्ध है वसा ही सम्बन्ध यहा है। सिन्धु घाटी की मुद्राआ । सप के साथ वक्ष चिन भी कही कही रहता है। दक्षिण म श्रवण बळगोल नामक थान मे गोमतेश्वर की मूर्ति के आसपास सर्पो के अतिरिक्त एक पौधा भी है जो मूर्ति की ाहा और परा म लिपटा हुआ है। महालिगम ने लिखा है कि ऐसी ही मूर्ति एनूर ामक स्थान मे है। मूर्ति के हाथ नाग के फन पर हैं और हाथा और पैरा म एक लता लिपटी हुई है। जैन और बौद्ध दोनो मता का प्रमुख केन्द्र मगध रहा है। मगध और कुरु जनपदा क सास्कृतिक अन्तर की जो बात पहले कही गई है, उसे इस नाग प्रसग म स्मरण करना चाहिए।

महालिगम् ने लिखा है कि बौद्ध साहित्य म नागा का सम्बन्ध जल से नहीं दिखाया जाता किन्तु उन्होंने इस धारणा के विरुद्ध अपने निबध म ही अनेक तथ्य दिए हैं। जब बुद्ध का जन्म हुआ तब नन्द और उपनन्द नाम के दो नागा न बोधिसत्व को शीतल और उष्ण जलधाराआ स स्नान कराया। ह्वेन त्साङ ने इसी कहानी का उल्लख

किया है। उसे विश्वास था कि जिस स्थान पर दोनो नागों ने बुद्ध को स्नान कराया था, वहाँ सम्राट अशोक ने एक स्तूप बनाया था। उस स्तूप के पास पानी के दो झरने थे, दोनो नाग जिस स्थान पर धरती के भीतर से निकले थे, वहाँ भी दो स्तूप बनवाए गए थे। बौद्ध शिल्प मे नागो द्वारा बुद्ध के स्नान का चित्रण है। एक शिल्प म नन्द और उपनन्द दो कुओ से निकलते दिखाए गए हैं। सारनाथ के शिल्प म कमल पर बैठे हुए बुद्ध के शीश पर वायु मे स्थित दो नाग कलशो से जल गिरा रहे हैं। बोधिवृक्ष के नीचे तपस्या करने के बाद वह स्नान के लिए नरजन नाम की नदी म उतरे। यह नागो की नदी थी। जब वह नदी किनारे रत्न पर बैठने लगे, तब नदी से नागकन्या उनके लिए रत्न जटित सिंहासन लेकर आई। इस सिंहासन पर बैठकर बुद्ध ने भोजन किया और भोजनपात्र नदी मे फेंक दिया। नागराज सागर उसे उठाकर अपने घर ले जाना चाहते थे किन्तु इन्द्र ने गरुड रूप धरकर चोच म वज्र दबाए हुए वह भोजनपात्र छीनने का प्रयत्न किया। बल प्रयोग द्वारा पात्र न पाकर अपना वास्तविक रूप दिखाकर इन्द्र ने भोजनपात्र के लिए याचना की। नागराज ने वह पात्र उन्हे दे दिया और इन्द्र उसे स्वर्ग ले गए। नागकन्या वह सिंहासन ले गई जिस पर बुद्ध बठे थे। इस गाथा मे नागो का सम्बन्ध जल से स्पष्ट है।

नैरजन नदी से जब बुद्ध बोधिवृक्ष की ओर चले तो उनके पीछे एक काल अथवा कालिक नाम का नागराज भी था। उसने उनके बुद्धत्व प्राप्ति की भविष्यवाणी की थी। यह कालिक नागराज कृष्ण कथा के कालियनाग का प्रतिरूप है। कालिय शब्द कालिक का तदभव रूप है। इस नाग गण से मगध गण की मैत्री रही होगी और वृष्णि गण से वैर। जरासन्ध मगध का राजा है, कस का सम्बन्धी है। कस और जरासन्ध दोनो से कृष्ण का वैर है। मगध और उत्तर-पश्चिमी जनपदो के आपसी सघर्ष म नागो की भूमिका दो प्रकार की है वे मगध के मित्र हैं और वृष्णि, कुरु आदि उत्तर पश्चिमी गणो के शत्रु। गरुड और नाग गणो के सघर्ष का उल्लेख बौद्ध साहित्य और पुराणो म दो प्रकार से है। पुराणो मे गरुड नागो का नाश करता है, बौद्ध कथा म गरुड नाग राज सागर का कुछ बिगाड नही पाता। बौद्ध कथा म इन्द्र ही गरुड रूप धरकर आया है, वह अपनी चोच म वज्र दबाए है। यहाँ गरुड-नाग सघर्ष कथा मे इन्द्र और वृत्र की वदिक कथा घुलमिल गई है।

एक अन्य बौद्ध कथा मे बुद्ध के एक साथी वज्रपाणि हैं। अपलाल नाम का नाग लोगो को बहुत परेशान करता है। वह जल के निकट रहता है। वज्रपाणि पास के पर्वत का ध्वस करने की बात करते है तब वह नाग लोगो को सताना छोडता है। यह कथा मगध म नही पठान देश म प्रचलित थी और गन्धार शिल्प म चित्रित है। महालिगम् ने लिखा है कि नागराज बुद्ध के पास खडा दिखाया जाता है या उस जलस्रोत म स्थित चित्रित किया जाता है जिसका वह देवता है। बौद्ध धर्म मगध से जब पठान देश पहुचा, तब उसम स्थानीय कथा परम्पराओ के अनुसार परिवर्तन हुए। इन्द्र और वृत्र के सघर्ष वाली कथा-परम्परा वहाँ जीवित थी। इन्द्र बुद्ध के साथी वज्रपाणि बन गए। इन्द्र

व्युत्पत्ति भारतीय मग शब्द के आधार पर ही की जा सकती है। जैसे मगर से मेर रूप बना, वैसे ही नगर से नेर बना। बीकानेर आदि स्थान वाचक शब्दों में यही नर शब्द है।

मग का एक विकास मय होता है, नग का एक विकास नय होगा। प्रक्रिया यही है मघ—मग—मह—मय। मय एक स्थिति में मे हो गया, दूसरी स्थिति में य कायम रहा। प्रसिद्ध है कि मेरठ शब्द का पूर्वरूप मयराष्ट था। मग गण जहाँ रहते थे, वह भूमि मरठ कहलाई। केरल में जो नायर कहलाते हैं वे नागर थे, यह बात विद्वान पहले कह चुके हैं। लंका का एक पुराना नाम नागद्वीप है। नाग शब्द लंका की पुरानी भाषा में नाय भी बोला जाता था। इसलिए नागर और नायर के सम्बन्ध के बारे में सन्देह की गुंजाइश नहीं है। मय शब्द माया, मायावी आदि रूपों का जनक है। मगध प्राचीन काल से तान्त्रिक साधना की केन्द्रभूमि रहा है। तान्त्रिक जन अनेक प्रकार के चमत्कार दिखाते थे, इसलिए यह स्वाभाविक था कि मग के प्रतिरूप मय से चमत्कारसूचक माया शब्द बने। माया का अर्थ हुआ मग जनों का तान्त्रिक चमत्कार। मग लोगों में से कुछ ईरान पहुँचे थे और वहाँ वे अपनी चमत्कार साधना के कारण पुरोहित बने। उनके चमत्कार इतने प्रसिद्ध हुए कि उनकी ख्याति यूरुप तक पहुँची। अंग्रेजी में जादू के लिए जो मजिक शब्द है वह यूनानी भाषा के मागीकोस शब्द से सम्बद्ध है। मागीकोस मग या माग शब्दों से सबद्ध है। जैसे नग और नाग, वैसे ही मग और माग। ग्रीक भाषा में मागोस शब्द भी है। इसका अर्थ है ईरान का द्रष्टा जो स्वप्नों की व्याख्या करता है, उसका एक अर्थ जादूगर भी है। इनके अतिरिक्त मागोस गण विशेष के सदस्य को भी कहते थे। स्पष्ट ही यह ग्रीक शब्द भारतीय मग से सम्बद्ध है और उसके साथ माया, जादू आदि का संसर्ग बना हुआ था। जादू शब्द यातु का तद्भव रूप है और यातुधान में प्रतिष्ठित है। मध्यदेश के लोग तान्त्रिकों की माया से डरते थे, उन्हें यातुधान, मायावी, दानव आदि की संज्ञा प्रदान करते थे। पुराणों तथा महाकाव्यों में दैत्यों और राक्षसों की जो कथाएँ हैं, उनका कहीं न कहीं सम्बन्ध मगध से, अथवा मग कहलाने वाले गणों से, है। दैत्य दिति की संतान हैं विप्रशाप से वे दैत्य बने। विप्रशाप की बात में ऐतिहासिक सत्य का यह अंश है कि जो लोग वैदिक संस्कृति का विरोध करते थे, उन्हें ब्राह्मण दैत्य, दानव, राक्षस आदि कहते थे।

दिति के दो पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दैत्य थे किन्तु हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद विष्णु के भक्त थे। प्रह्लाद का दैत्य रूप में शायद ही कोई स्मरण करता हो। जरासंध दैत्य था, कंस उसका सम्बन्धी था। कंस की बहन कृष्ण की माँ थी। देवकी को कोई दैत्य नारी के रूप में स्मरण नहीं करता। देव और दैत्य दानव और मानव, सभी मनुष्य हैं कर्म के अनुसार उन्हें भिन्न संज्ञाएँ प्रदान की गईं। इस प्रकार देवासुर संग्राम, समुद्र मंथन आदि की कहानियाँ आर्य गण समुदायों के आपसी संघर्ष की कहानियाँ हैं। ये गण मिलती जुलती भाषाएँ बोलते थे, इनमें विभिन्न रंग रूपवाले लोग घुलमिल गए थे। राम और कृष्ण दो महाकाव्य नायक श्यामवर्ण आर्यों के प्रतीक हैं। हिरण्य

वाल्मीकि रामायण के लकाकाण्ड म एक स्थान पर गरुड और नागा का उल्लेख है। राम और रावण की सेना म युद्ध हुआ और राम की सेना बाणा स बिंध कर धरा शायी हो गई। राम और लक्ष्मण भी शरशैया पर सो गए। बाण रूप मे माना नागा न समस्त योद्धाओ को बाध लिया हो। उस समय वहा गरुड आए। गरुड क आते ही व समस्त बाण योद्धाओ का शरीर छोडकर भाग खडे हुए।

तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्र दुद्रुवु ।
यस्तौ सत्पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलौ ॥

बाण नागा के समान थ, यहा तक तो अलकार है किन्तु गरुड के आने पर व नाग खड होते हैं, यहा अलकार की बात नहीं रह जाती। पौराणिक परम्परा के अनुसार गरुड को देखकर वास्तविक नाग ही भाग सकते हैं, शरीर म घुस हुए बाण अपने आप निकल कर उड नहा सकत। इस कथा स यह सकेत मिलता ह कि नागगण रावण क सहायक थे और गरुडगण राम क। लका पहुचन स पहले राम को जटायु मिलत है। य जटायु भी गरुड गण के प्रतीक है। जटायु का भाई सपाति हनुमान आदि को लका जाने का मार्ग बताता है। इस प्रकार गरुडपूजक गण समुदाय राम की सहायता निरतर करत हैं। स्वभावत नाग रावण की ओर हाग। पश शब्द नागवाचक है, इसका उल्लेख पहले हो चुका है। सम्भव है बालि नाग रहा हो और वानर गण स उसका युद्ध हुआ हो। वानरो मे अनेक पिंगलाक्ष हैं, यह बात ध्यान देने की ह। रावण भी पिंगलाक्ष है। रामायण कथा म जिन्ह वानर और राक्षस की सज्ञा दी गई है, व मध्य भारत के पडोसी गण समुदाय है। रावण क जितन ब धु बा धव कासलक पूर्व म हैं, उतन वि ध्याचल क दक्षिण म नही। जो लोग कहत ह कि लका नगरी कहीं मध्यभारत म थी और उसका वतमान श्रीलका नाम के द्वीप स कोई सम्ब ध नहीं ह, उनकी बात तर्कसगत ह। किष्किंधा और लका म एक समानता ह जिस पर ध्यान देना चाहिए। किष्किंधा ऋष्यमूक पवत पर है और उसक नीचे पम्पा सरोवर है, लका त्रिकूट पवत पर है और उसके नीचे समुद्र ह। नागा का सम्पर्क जल स ह और पवता स भी। वे एस पवता पर रहत हैं जिनके पास कोई नदी, झील या सरोवर हो। इसलिए इ द्र वृत्र नाग का शत्रु है और पवता का भी। नग शब्द पवत का अर्थ भी देता ह, यह एक मनोरजक तथ्य ह। वह अचल रहता है इसलिए नग कहलाता है यह एक व्याख्या हुई। उस पर नग गण रहते है, इसलिए वह नग कह लाया, यह व्याख्या भी सम्भव है। नगा और भर्गो के महादेव पवत पर निवास करते हैं, यह स्वाभाविक ही है। रावण शिवपूजक है, यह उसके नग या भग होन का अतिरिक्त प्रमाण है।

इस पुस्तक म जिन्ह नाग भाषाएँ कहा गया है, व नागपूजक गणो की भाषाओ स भिन्न है। नागपूजक गणो की भाषाएं आर्य परिवार के अतगत है अन्य आर्य भाषाओ के समान उन्होंने भी आर्येतर परिवारा स भाषा-तत्वो का आदान प्रदान किया है किन्तु उनकी गणना आर्येतर परिवारा म न होगी। सर्पो की पूजा सभी महाद्वीपा म फली हुई है, नाग को अपना गणदेवता मानना भारत के कुछ आर्य गण समुदायो की विशेषता

है। महाभारत के आदि पर्व में सर्प-पूजक गणों में लिग लिया है कि व गगा नदी के उत्तर तट पर रहत थे, तक्षक और अश्वसेन दो नाग कुरुक्षेत्र म इक्षुमती नदी क तट पर रहत थे। खाण्डववन कुरुक्षेत्र के पास था, वहा भी नाग रहत थे। कुरुगण के पडोसी नागगण अवश्य थे। कुरुक्षेत्र स लेकर मगध तक इनकी वस्तिया थी। हिरण्यकशिपु को अग भी कहा गया है। महाभारत म कर्ण को अगदेश का राज्य दिया गया था। अग नामक गण भी नागपूजक रहा होगा। शैवमत के प्रसार और नागपूजा क चलन से अनेक स्थानो और मनुष्यो क नाम नाग शब्द को मिलाकर रखे गए। इसस यह न समझना चाहिए कि ऐसे मनुष्य और स्थान किसी एक गण स सम्बद्ध थे जो सर्प को अपना गणदेवता मानता था। ऐस नाम अधिकतर भिन्न सामाजिक परिस्थितिया म रखे गए हैं जब पुरानी गण व्यवस्था टूट चुकी थी और उसका स्थान सामन्ती समाज त न ने ल लिया था। फिर भी इनम कुछ नाम अवश्य हो सकत है जिनका सम्ब ध पुरान नागपूजक गणो से था। नग और नाग की अपेक्षा मग शब्द अधिक विश्वसनीय है क्योंकि इसका सम्बन्ध किसी उपासना पद्धति से नही है। बिहार म एक स्थान मघड़ा है। सभवत इसम मग का पूर्व-रूप मघ सुरक्षित है। अवध म मगडायर और मगरवारा पुरानी मग वस्तियो की ओर सकेत करते है। मग का बहुवचन मगर, मग लोगो की वस्ती हुई मगरवारा। मगडायर को महावीर प्रसाद द्विवेदी और निराला मगरायर लिखत थ। शब्द को शिष्ट रूप देन के लिए र को ड पश्चिमी प्रभाव से किया गया है। आयर पुराना स्थानवाचक शब्द है। मगरायर अर्थात मग जनो की वस्ती। मराठी, मराठा आदि शब्दो को सस्कृत महाराष्ट्र के आधार पर सिद्ध किया जाता है। प्राकृत रूप मरहट्ठ है। यह रूप वर्णविपर्यय से बना है, पूर्वरूप था महरट्ठ। महरट्ठ म मह है, महा नही। मह शब्द, महा स भिन्न, मघ का रूपा तर है। जस मय का राष्ट्र वास्तव म मघ का राष्ट्र था और मेरठ बना, वस ही महरट्ठ मघ का राष्ट्र है और उसस मराठ, मराठा रूप बने। महरट्ठ म मह का सम्बन्ध मग से रहा होगा, यह वात व्युत्पत्ति शास्त्रियो के लिए कल्पनातीत थी, इसलिए उन्होने उसका पूर्वरूप महाराष्ट्र होगा यह कल्पना की। मराठी और मगही दोनो ह क्रिया वाली भाषाएँ है यह वात मघ वाली व्युत्पत्ति को पुष्ट करती है।

पौराणिक उपाख्यानो से चमत्कारी कल्पना हटाकर उनका सार तत्व ग्रहण किया जाय तो विदित होगा कि अत्यन्त प्राचीन काल स पूर्वी मग गण समुदाय तथा मध्यदेशीय और उत्तरी गणसमुदायो म सघर्ष होता रहा है। उपाख्यानो म जिन्हे नाग कहा गया है, व मग समुदाय क गण है। वृत्र मग था जिसस इन्द्र न युद्ध किया। हिरण्य-कशिपु मग था जिसका वध नृसिंह न किया। रावण मग था जिसस गरुड, ऋक्ष, वानर आदि गणो के सहयोग स कोसल गण न युद्ध किया।

सिन्धु घाटी की सभ्यता का सम्बन्ध नगरो से है इस सभ्यता के वाहक नगर-निर्माण म दक्ष है। व व्यापारी भी हैं और दूर दूर तक उनका व्यापार फला हुआ है। इनकी मुद्राओ म गरुड और सर्प दोनो प्रकार के गण चिन्ह हैं। अधिकाश मुद्राओं म जो एक सीग वाला वृषभ जसा पशु दिखाई दता है यह अवश्य ही गणदेवता होगा। इस

सभ्यता म लिङ्गोपासना और योगसाधना के चिह्न भी मिलत है। बहुत सम्भव है कि सिन्धु घाटी की मुद्राआ का सम्बन्ध तान्त्रिक साधना म हो और उन पर अकित अक्षर बीजमन्त्र हो। बीजमन्त्र वसे ही समझ म नही आत, अज्ञात लिपि और भाषा क मन्त्र पढना और भी कठिन होगा। जो लोग उपाख्यानो म मायावी राक्षसो और दत्यो से लडत बताए जात ह, वे उनक स्थापत्य, नगर निर्माणकला और सम्पत्ति का उल्लख हमेशा करत है। मह्यालिगम न नागो पर अपन निबन्ध म लिखा है कि उपाख्यानो म इनकी अपार सम्पदा, भव्य नगरो म इनक निवास, सुन्दर स्त्रियो क साथ उनकी कामक्रीडा का वणन होता है। रावण के पास इतना धन था कि उसकी लका ही सोन की लका बन गई।

धन वभव होत पर भी मध्यदशीय कवियो न मग जनो को दत्य और राक्षस बनाया, मगध को अपवित्र भूमि माना, वहाँ की भाषा को राक्षसो की भाषा कहा। डा० विश्वनाथ प्रसाद न **मगही सस्कार गीत** की भूमिका म लिखा है "वदिककाल स ही मगधदेश असस्कृत समझा जाता था। बौद्ध सम्पक क कारण यह हीनता की भावना और भी दढ हो गई। सस्कृत नाटको म मागधी हीन चरित्रो की ही भाषा के रूप म स्वीकार की गई। मागधी राक्षसादे स्यात् इति भरतोक्त ।" मग लोग राक्षस मान गए तो नाटको म राक्षस पात्रो की भाषा मागधी होगी ही। राक्षसो और नागो का सम्बन्ध मगो स है, यह बात समझ लेन पर पौराणिक उपाख्यानो और भाषा विज्ञान की बहुत सी बातें समझ म आन लगती ह। कस मथुरा का राजा था, इसका अथ है मथुरा पर मगो का प्रभाव था। मथुरा का पूवरूप मधुरा ह। मधु नामक गण दत्य म बदल गया और विष्णु न उसका सहार किया। वस कृष्ण भी माधव कहलात है और मधु के बिना माधव शब्द बन नही सकता। जब उत्तर भारत स अनक गण समाज दक्षिण भारत पहुँचे तब उन्होन तमिलनाडु का प्रमुख नगर मदुरइ बसाया। वदिक जन पणि नामक लोगो स घणा करत ह। ये पणि धनी और व्यापारी है, पण्य, वणिज आदि शब्दो म पणिजनो की स्मति सुरक्षित है और पाणिनि नाम ने उन्ह अमर कर दिया है। जस मागधी राक्षसो के लिए उपयुक्त भाषा कही गई, वैस ही उत्तर-पश्चिमी प्रदश की एक भाषा को पशाची कहा गया। इस पशाची भाषा के बोलने वाले उतन ही आय थे जितने वदिक भाषा बोलन वाले। जसे बौद्ध साहित्य म नागो के प्रति वरभाव नही ह वसे ही विशाखदत्त के नाटक **मुद्राराक्षस** मे राक्षस पात्र को अत्यन्त बुद्धिमान और स्वामिभक्त दिखाया गया है जिसकी तुलना म चाणक्य कौटिल्य हो गए है। राम और रावण का युद्ध हुआ, इसका अथ यह है कि कोसल गण न, अनक गण समुदायो को मिलाकर, मध्यभारत में मग प्रभाव समाप्त किया।

व्रज और कोसल शक्तिशाली कुरु और मगध गणसमुदायो स घिर थे। कृष्ण ने अपनी नीति से कौरवो का नाश करा दिया और वह इश्वर का अवतार मान गए। कुरुगण के नष्ट होन स वैदिक भाषा बोलन वाला मुख्य समुदाय भी नष्ट हुआ। राम ने विभिन्न गणो को मिलाकर मग प्रभुत्व समाप्त किया। वह भी इश्वर के अवतार हुए।

भाषावैज्ञानिक परिणाम यह हुआ कि इस उथल पुथल के बाद कोसल की भाषा स
उत्तर भारत म जन सम्पर्क की भाषा बन गई। किन्तु इससे पहले मगध की भाषा
कोसल और कुरु गण दोनो की भाषा को काफी प्रभावित कर लिया था।

(घ) दास और दस्यु

ऋग्वेद के आधार पर ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के आचार्यों ने जो अनेक पुरा
कथाएँ रची हैं, उनम एक का सबध दासो से है। दास काली चमडी के लोग थे, इन
चेहरे पर या तो नाक थी नही या थी तो चपटी थी, इनकी बोली आर्य विजेताओ क
समझ म न आती थी, विजेताओ ने इन आदिवासियो को अपना सेवक बना लिया, इस
लिए उन्हे दास सज्ञा दी। दासो के प्रसग म मैकडनल ने वेदिक मिथोलोजी पुस्तक म य
मत प्रकट किया है कि दास शब्द भारत के काले आदिवासियो के लिए प्रयुक्त हुआ
जिनका रंग गोरे आर्य विजेताओ के रंग से भिन्न था। कन्हैयालाल माणक लाल मुशी क
देख रेख म प्रकाशित वैदिक एज ग्रथ के इतिहासकारो ने इसी मत की पुष्टि की। आदि
वासी होने का दावा सबसे पहले द्रविडो का है, इसलिए दास मिथक की मूल कल्पना य
है कि गौराङ्ग आर्यों ने काले द्रविडो को दास बनाया।

इस मिथक को ऐतिहासिक सत्य मानने म कुछ कठिनाइया है।

बरो जैसे विद्वान मानते हैं कि भारतीय द्रविड फिनोउग्रियन परिवार की एक
शाखा है। इस परिवार की अन्य शाखाए यूरप के फिनलैण्ड जैसे देश मे तथा सोवियत स
के अनेक भागो म निवास करती है। यह स्थापना सही मानी जाय तो फिनो उग्रियन
परिवार के लोगो को काले आदमी कहना युक्तिसगत होगा। किन्तु फिनो उग्रियन
भाषाएँ बोलने वाले काले थे या है, यह कोई नही कहता।

जो लोग भारतीय द्रविडो को फिनो उग्रियन परिवार की शाखा नही मानते, वे
यह तो स्वीकार करते ही है कि बलूचिस्तान मे ब्राहुइ बोलने वाले जन द्रविड है। अब
कठिनाई यह पैदा होती है कि ये बलूची द्रविड काले नही है, द्रविडेतर बलूचियो—अथवा
आर्य बलूचियो—जैसे श्वेताङ्ग है। बलूचिस्तान म एक से रगरूप वाले जन दो भिन्न
परिवारो की भाषाएँ बोलते है एक समुदाय इडोयूरोपियन परिवार के अतर्गत ईरानी
शाखा की एक भाषा बोलता है दूसरा समुदाय द्रविड परिवार के अतर्गत उत्तरी शाखा
की एक भाषा बोलता है। क्या हुआ या बलूचिस्तान म ? या तो द्रविडो म काले और
गोरे दोनो रँगो के लोग थे या फिर वहा के गोरे आर्यो ने काले द्रविडो की भाषा स्वीकार
कर ली और उन्हे दक्षिण भारत की ओर ठेल दिया। दक्षिण भारत म एक गणसमाज
तोद लोगो का है। इनकी भाषा द्रविड परिवार के अतर्गत दक्षिणी शाखा की है।
इनका रगरूप आर्यों के कल्पित रगरूप स काफी मिलता है। य काले नही है नाक इनकी
ऊँची है, इतनी कि नतत्त्वविशारद इन्हे देखकर रोमन जनो का याद करने लगते है। यहा
भी मानना होगा कि या तो द्रविडो म, रगरूप मे एक दूसरे से भिन्न, कई तरह के कबील
थे या फिर यह कल्पना करनी होगी कि बलूची आर्यों की तरह तोद आर्यों ने भी न केवल

द्रविड दासों की भाषा सीख ली वरन जब ये दास उत्तर में दक्षिण की ओर ठेले जा रहे थे, तब वे सुर भी उनके साथ रेल में दक्षिण चल आये और नालगिरि की उपत्यकाओं में बस गए।

दास शब्द कुछ गणसमाजों के लिए प्रयुक्त होता था। अनेक जर्मन विद्वानों ने दास का सम्बन्ध दहाअ्रे से जोड़ा है, उन्हें ईरान और पड़ोसी प्रदेश में रहने वाला बताया है दहाअ्रे जनों का उल्लेख यूनान के इतिहासकार हरोदोतुस के ग्रंथ में है। इस स्थापना को पुष्पित और पल्लवित करते हुए डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने द वेदिक एज में लिखा है कि दाह शब्द दास का ईरानी रूपान्तर है, वैसे ही जैसे दस्यु का रूपान्तर दह्यु है। आर्य अपने द्रविड शत्रुओं को दास कहते थे, दस्यु भी। दह्यु से आधुनिक फारसी का दिह शब्द चला जो दिहात रूप में देखा जा सकता है। डा० चाटुर्ज्या ने कल्पना की है कि दस्यु पहले एक कबीले का नाम था। ईरान में दह्यु शब्द दिहात के लिए प्रयुक्त होता रहा, भारत में दास और दस्यु गुलाम और लुटेरे के अर्थ में प्रयुक्त होने लगे। डा० चाटुर्ज्या के अनुसार दोनों शब्द परस्पर सबद्ध हैं और दास अथवा दस क्रिया से व्युत्पन्न है। इस व्युत्पत्ति पर यहां विचार न करके ध्यान इस बात पर देना है कि ये दास गण ईरान में भी रहते थे। इनका रंग भी काला रहा होगा क्योंकि डा० चाटुर्ज्या ने विश्वासपूर्वक लिखा है कि आर्य लोग जब भारत में आये और यहां उन्हें आर्येतर जन मिले, तब उनके लिए यह कोई नयी बात नहीं थी, पूर्वी ईरान में जो आर्येतर जन उन्हें पहले ही मिले थे, उनसे ये भारतीय आर्येतर जन विशेष भिन्न न थे। इस प्रकार डा० चाटुर्ज्या इस संभावना पर भी विचार करते हैं कि आर्य तथा दास-दस्यु जनों का मिश्रण भारत के बाहर, ईरान में ही होने लगा था, यह मिश्रण रक्त का था, संस्कृति का था और उसमें परस्पर भाषाई प्रभाव शामिल है ('रेशल एंड कल्चरल फ्यूजन इन्क्लूडिंग लिंग्विस्टिक इन्फ्लुएंसिंग')। ऐतिहासिक भाषाविज्ञानियों का बहुत सा चिन्तन नस्ल सिद्धान्त पर आधारित है, इसलिए उस चिन्तन के अनुरूप ही यह कल्पना है कि दास गण भारत के बाहर थे तो उनका रंग वही रहा होगा जो भारत के दासगण का था अगर आर्यों को काले द्रविड भारत में ही नहीं, भारत के बाहर भी मिले थे और रक्त मिश्रण की प्रक्रिया ईरान में ही आरंभ हो गई थी। यदि यह कल्पना सत्य है तो वैदिक आर्य भारत में कृष्णवर्ण के लोगों से विदक्ते थे, उन्हें अपना दास बनाते थे यह स्थापना निराधार हो जाती है।

डा० चाटुर्ज्या मानते हैं कि मूर्धन्य व्यंजन—ट, ड ण, ळ ष—विशिष्ट द्रविड ध्वनियां हैं। इन्हें आर्यों ने द्रविडों से पाया। रक्त मिश्रण और भाषाई प्रभाव की प्रक्रिया ईरान में शुरू हो गई थी पर ये मूर्धन्य ध्वनियां न तो ईरान की किसी प्राचीन भाषा में प्रयुक्त हुई हैं, न उनका अस्तित्व फारसी में है। (वैसे ष का व्यवहार तोद भाषा को छोड़ अन्य द्रविड भाषाओं में नहीं होता यानी उस शब्दावली में इस ध्वनि का अभाव है जो अनेक द्रविड भाषाओं की अपनी सामान्य सम्पदा है और आर्य शब्दावली से भिन्न है।)

दासों की एक विशेषता यह भी है कि वे दुर्गों में रहते हैं, उनके पास बहुत सी सम्पत्ति है और वे आर्यों से लड़ते भी हैं। इस स्थिति में वे अभी मुक्त थे, विजित न हुए

दसा न बनाये गये थे। फिर भी उन्हें दास और दस्यु कहा गया था। इन शब्दों के मूल अर्थ क्या था? केवल एक कबीला भारत से ईरान तक न फैला हुआ था, अनेक कबीलों को दास कहा गया था। आर्य की तरह दास शब्द भी अनेक गणों का बोध कराता था। इन गणों की वह कौन सी विशेषता थी जो दस शब्द द्वारा व्यंजित होती थी?

दास शब्द दस क्रिया से बना है और यह दस क्रिया वही है जो फारसी दस्त में विद्यमान है। इसका अर्थ है करना। दस्त और हस्त के मूल रूप धस्त में यह क्रिया धस है। दास और दस्यु दोनों शब्दों को परस्पर सबद्ध मानकर उन्हें दस क्रिया से व्युत्पन्न कहा गया है। यदि दस का अर्थ लूटना है तो दस्यु का अर्थ लुटेरा होगा पर दास इस क्रिया से कैसे व्युत्पन्न होगा? दास और दस्यु के समानान्तर एक शब्द है पणि। इसका सम्बन्ध पाणि से वैसे ही है जैसे दास का दस्त और हस्त से है। पण क्रिया का अर्थ है करना। फिर हाथ से जो विशेष कौशल के काम किये जाते हैं, वे भी इस शब्द की अर्थ-परिधि में सिमट जायें। तमिल में पण का यह अर्थ विस्तार सुरक्षित है। पण्—कर्म, सेवाकार्य, पणिक्कन—उस्ताद कारीगर बढई, पणिनर—नौकर चाकर। कर्म, विशेष कर्म, फिर सेवाकर्म धंधा (धस क्रिया से) दस्तकारी, दास—यह अर्थ वृत्त ठीक वैसा ही है जैसा पण का तमिल में है। पणि और दास उन गण समाजों को कहा गया जो हस्तशिल्प में विशेष योग्यता का परिचय दे रहे थे। गण समाजों में नये श्रम-विभाजन के आधार पर जैसे जैसे एक अवकाश भोगी वर्ग का निर्माण हुआ, वैसे वैसे हाथ से काम करने वाला जन समुदाय घृणा का पात्र बनता गया, दास, दस्यु जैसे शब्द, कमीन की तरह, गाली बन गये। पण का अर्थ विस्तार एक अन्य दिशा में भी हुआ देना और लेना, ये दो क्रियाएँ हाथ से सम्पन्न होती हैं, अतः दस क्रिया और पण क्रिया, लेन देन, व्यापार, बाजार आदि के भाव व्यक्त करने वाले शब्दों के निर्माण में सहायक हुई। जैसे कर क्रिया से क्रय विक्रय सबद्ध है, वैसे ही पण से पण्य, पणन, विपणि आदि सबद्ध हैं। मैकडनल और कीथ ने वेदिक इंडेक्स में पण शब्द से वणिज की तुलना करने को कहा है (वणिज का वण पण का ही रूपान्तर है) और बताया है कि शतपथ ब्राह्मण में पणन का अर्थ क्रय विक्रय है। दस क्रिया भी लेन देन और व्यापार से कभी सबद्ध थी। दस्यु वह जो ब्याज खाये, ब्याज खाने वाला लुटेरा समझा गया हो तो इसमें आश्चर्य क्या? दास वह जो बेचा जाय, खरीदा जाय। ऋग्वेद में पणिजनों को बेकनाट कहा गया है। मैकडनल और कीथ ने सुझाया है कि इस शब्द का अर्थ सूदखोर रहा होगा। उनका यह सुझाव सही मालूम होता है। इन पणिजनों को ऋग्वेद में ही दस्यु भी कहा गया है। इससे दस्यु शब्द का सूदखोर वाला अर्थ पुष्ट होता है।

जैसे दस् क्रिया मूलतः धस थी, वैसे ही पण क्रिया मूलतः भण थी। भाण्ड वह जो बनाया जाय, भाण्डार वह जहाँ वस्तुओं का जमा किया जाय, फिर मराठी का भांडवलशाही अर्थात् पूँजीवाद। भण के आदिस्थानीय व्यंजन की महाप्राणता का लोप होने से वण् से वणिक, वणिज् शब्द बने जिन्हें 'शुद्ध' करके वणिक, वणिज किया गया।

आदि स्थानीय ब की सघोषता का लोप होने पर पण रह गया। इसी प्रकार धस् स दस और दस से तस का विकास हुआ। यह तस तक्षन के तक्ष का आधार है। तस पहले सम्भवत मागधी रूप म तश बना, फिर 'केतुम' वादियो न उस तक किया, पुन स प्रत्यय जोडकर सज्ञा रूप तक्स, मूर्धन्यीकरण के बाद तक्ष बनाया गया, इसग पुन तक्ष क्रिया की कल्पना की गई। तक्षन शब्द सामान्यत कारीगर, और विशेषत बढ़ई क लिए वैसे ही प्रयुक्त हुआ जैसे तमिल पणिक्कन कारीगर और बढ़ई के लिए प्रयुक्त हुआ। तस से तक्षन की रचना वैसे ही हुई जैसे दस से दक्ष की हुई। और दस् स दस्यु का सम्बन्ध वैसा ही जैसा तस मे तस्कर का है।

वैदिक देवता त्वष्ट का नाम निर्माण का अर्थ देने वाली तस क्रिया के आधार पर रखा गया होगा। त्वष्टृ का एक अर्थ बढ़ई था, इसम सन्देह नही। वेदिक इण्डेक्स मे बताया गया है कि अथर्ववेद म त्वष्ट देव का नाम श्लिष्ट अर्थ म प्रयुक्त ह, देवता के अतिरिक्त दूसरा अर्थ बढ़ई है। त्वष्टृ क साथ वेदिक इण्डेक्स के लेखक तष्टृ शब्द की ओर ध्यान दिलाते हैं। इस तष्ट क लिए लिखा है कि ऋग्वेद मे यह शब्द बढ़ई के आशय मे प्रयुक्त हुआ है और तक्षन की भाति वह तक्ष धातु स बना है। यहा तक्ष का रचना क्रम देखे तो विदित होगा कि यह तक्ष धातु स्वय प्राचीन तस धातु स बनी है। त्वष्टृ और तष्टृ परस्पर सबद्ध हैं एक ही अर्थ द रहे है दोनो तस क्रिया से बने है। पर त्वष्टृ म त के स्थान पर त्व क्या है? इसका कारण यह हो सकता है कि तस का मागधी रूप ताश था। यह ह्रस्व ओकार कुछ गणसमाजो द्वारा वकार बोला जाता था जैसे अवधी म अब भी होता है बोलावत है—ब्वलावत है (हिन्दी का मानक रूप—बुलाता है)।

अब त्वष्ट की विशेषताएँ देखिए। मक्डनल वेदिक मियोलोजी म कहते है कि त्वष्टृ देवता अत्यन्त कुशल कारीगर हैं, उन्होंने इन्द्र क लिए उनका वज्र बनाया था, देवताओ के लिए पानपात्र बनाये थे। ससार मे जो कुछ रूपायित होता है वह सब त्वष्टा का कार्य है। इस प्रकार वह अग्नि के भी जनक है। किन्तु सोम पर अधिकार करने के लिए इन्द्र उनका शत्रु हो जाता है, इसी प्रकार गायो पर अधिकार करने के लिए इन्द्र उनके पुत्र विश्वरूप का शत्रु हो जाता है। तब कोई आश्चर्य नही कि त्वष्टा को दस्यु भी कहा गया है। दास और दस्यु के प्रसग मे मैकडनल ने ही वेदिक मियोलोजी म लिखा है कि ऋग्वेद म त्वष्टा को एक बार (२-११-१६) दस्यु कहा गया है। यहाँ आर्य और दस्यु शब्द एक दूसरे स भिन्न अर्थ व्यक्त करने के लिए आये ह। आर्य वह ह जो खेती करता है दस्यु वह है जो व्यापार करता है या कुशल कारीगर ह। त्वष्टा देवता है, दस्यु भी है।

दास और दस्यु का सबध भारत के कल्पित काले आदिवासियो—द्रविडो—स प्रमाणित नही होता।

दस्यु शब्द निन्दा के भाव स उन सब लोगो क लिए प्रयुक्त होने लगा जो वैदिक कर्मकाण्ड, विशेष रूप मे यज्ञ-कर्म, पर विश्वास न करते थे। जो अकर्मन है अदेवयु है

अब्रह्मन् है, अयज्वन् है, अव्रत अथवा अन्यव्रत है, वे सब दस्यु है। जो लोग यह मानकर चलते है कि आर्यों का एक विशाल समुदाय था जो एक परिनिष्ठित भाषा बोलता था, एक परिनिष्ठित कर्मकाण्ड निबाहता था, वे वैदिक आर्यों से भिन्न आर्य भाषाएँ बोलने वाले अन्य आर्यगण समाजो की कल्पना नही कर सकते। पर जो आर्य रथो पर चढकर घूमते थे, युद्ध करते थे, उनके साथ अन्य आर्य रथ बनाने का काम भी करते थे, ये तक्षन, दास, दस्यु भी आर्य थे, आर्य परिवार की भाषाएँ बोलते थे भले ही उनकी संस्कृति वैदिक संस्कृति से भिन्न रही हो। ऐसे लोगो को मन्त्र रचने वाले कवि ऋषि मृध्रवाच कहते थे। मृध्रवाच का अर्थ हकलाने वाला हो, अस्पष्ट वाणी वाला हो, आक्रामक वाणी वाला हो या अन्य कुछ हो, रोचक तथ्य यह है कि यह विशेषण दस्युओ के लिए प्रयुक्त है, पणिजनो के लिए प्रयुक्त है और पुरुगण के लिए भी प्रयुक्त है जो आर्य थे। मृध्रवाच का आशय आदिवासी भाषा बोलने वाला है यह प्रमाणित नही होता।

दस्यु मृध्रवाच है अनास भी है। अनास का एक अर्थ होता है मुखविहीन (अन् आस), दूसरा अर्थ होता है नासिकाविहीन (अ नास)। मुखविहीन होते तो मृध्रवाच कैसे कहलाते? बोलने के लिए मुह तो चाहिए ही। नासिकाविहीन को आलकारिक रूप मे ग्रहण करके उसका अर्थ किया गया चपटी नाक वाला। इन चपटी नाक वालो को तुरन्त द्रविड करार दिया गया। अनास शब्द का सबध अनस से भी हो सकता है और अनस का अर्थ है गाडी। मूल क्रिया नस होगी। संस्कृत मे इसका अर्थ है निकट पहुँचना, सयुक्त होना। रूसी क्रिया नासीत का अर्थ है ले जाना, ढोना। वैदिक इंडेक्स के अनुसार रथ से भिन्न अनस का प्रयोग खीचने वाली गाडी के लिए किया गया है। नस क्रिया के इसी मूल अर्थ के अनुरूप रूसी शब्द नासील्कि का अर्थ है, गाडी, पालकी, स्ट्रेचर (कोई भी चीज जिस पर अन्य को ढोया जाय), नासीलश्चिक अर्थात कुली, नासीतेल अर्थात् वाहक। दस्यु, रथ से भिन्न, अनस गाडी पर बैठने वाले हो सकते है (कभी-कभी देवता भी अनस की सवारी करते हैं अनस मे बैल नद्धे जाते हैं, रथ खीचने का काम घोडे करते है।) दस्यु गाडी बनाने वाले कारीगर हो सकते है, गाडी लादने वाले व्यापारी भी हो सकते है। अनास का अ निषेधक न होकर अर्थसवर्धक है (घोर और अघोरी की तरह)। अनास जन नासिकाविहीन नही थे। वैदिक इंडेक्स मे वृत्र के रुजानास होने का उल्लेख इसी प्रसग मे हुआ है। वृत्र की नाक टूट गई, इस कल्पना के बदले उसकी गाडी टूट गई, यह अर्थ अधिक सगत है।

वैदिक काल से बाद की अनेक शताब्दियो तक प्राचीन शब्दो के अर्थ का अवमूल्यन होता रहा, इसके अनेक उदाहरण है। वैदिक देवता वरुण और मित्र असुर है, साथ ही इन्द्र और अग्नि जैसे वैदिक देवता असुरो का विनाश करने वाले भी हैं। असुरो के प्रति आदरभाव और अनादर भाव, दोनो बातें ऋग्वेद मे है। यदि दासो से सबधित विवेचना-पद्धति यहा लागू की जाय तो कहना होगा कि असुर तो उच्चतर द्रविड सभ्यता के प्रतीक है, उनके शत्रु इन्द्र और अग्नि आर्य सभ्यता के प्रतीक है। जो आर्य द्रविडो की इस उच्चतर सभ्यता से प्रभावित हुए वे वरुण और मित्र को असुर मानकर उनकी पूजा

करने लगे। देवकथाओ की इस व्याख्या से बडा झमेला पैदा होता, आर्य और द्रविड परस्पर विभाजित दो दलो म स्पष्ट न दिखाई देते, इसलिए विद्वानो न असुरो को द्रविडो से अलग रखा। उन्होंने उनका सबन्ध ईरानियो स जोडा। देवपूजा ईरान के उन आर्यों मे प्रचलित थी जो सभ्यता म पिछड़े हुए थ और लूटमार करके पुरान ढंग स जीवन बिताते थे। असुर पूजा ईरान के उन आर्यों म प्रचलित हुई जिनम कृषि और पशुपालन की सस्कृति का विकास हुआ। अभी भारत इरानी शाखा विभाजित न हुई थी, सभी आर्य एक ही शाखा म थे। जो आर्य अधिक सभ्य थ, व पीछे रह गये, जो कम सभ्य थ, वे भारत आ गये। वेदिक एज म भारत ईरानी मतभेदो का विवेचन करते हुए यह मत बटकृष्ण घोष न व्यक्त किया है। वह यह भी कहते है कि विचित्र परिस्थिति यह है कि भारत मे पहले सभी महान देवताओ को असुर उपाधि म विभूषित किया जाता था किन्तु बाद को असुर शब्द केवल निन्दासूचक रह गया। इससे पूर्वमत खडित हो जाता है। यदि असुरपूजक ईरान म रह गये थे तो भारतीय आर्य अपन देवताओ को असुर क्या कहते थे? मान लीजिए, ये भारतीय आर्य अर्द्ध सभ्य थे, लूटमार करते थ, न खेती करना जानते थे, न पशुपालन स परिचित थे, तब यह और भी आश्चर्य की बात होगी कि अर्द्ध सभ्य अवस्था मे तो वे असुर-पूजक बने रह पर जसे-जसे कृषि और पशुपालन के कौशल मे दक्ष हुए, वस वसे जिन देवताओ को असुर कहते थे, उन्ही को अब असुरो का शत्रु कहने लगे।

असुर पहले प्रतिष्ठा सूचक शब्द था आगे चलकर वह निन्दा-सूचक बना, इसम सन्देह नही। यही तरह दास और दस्यु शब्दो को भी समझना चाहिए। दासो म पिप्रु की गिनती भी है। अब इस पिप्रु को ऋग्वेद (१०-१३८-३) म असुर कहा गया है। एक अन्य दास का नाम वर्चिन है। वर्चिन को भी ऋग्वेद(७ ९९-५)म ही असुर कहा गया है। जो लोग दासो का सबन्ध द्रविडो से जोडते हैं, उन्हें एस सन्दर्भो की अनदेखी न करनी चाहिए जहा दास पिप्रु दास वर्चिन को असुर भी कहा गया है। जो लोग असुर पूजा को ईरान के कृषक पशुपालक सभ्य आर्यों की सस्कृति का अग मानते हैं उन्हें भी उचित है कि कहे कि जो असुर थे वे दास भी थ, ये दास नामक गण भारत और इरान दोनो जगह फले हुए थे और आर्य नही थे, अत यह निष्कर्ष निकालें कि ईरान मे असुरपूजा अनार्यों की देन थी।

पर वैज्ञानिक' विवेचन की विशेषता यह है कि पिप्रु और वर्चिन् को जब दास कहा जाय, तब उन्हें द्रविड मान लिया जाय, जब उन्हें असुर कहा जाय तब उसके बारे म चुप रहा जाय। एक बात स्पष्ट है कि असुर, दास, दस्यु सभी सम्पत्तिशाली है। यदि नस्लपथी चश्मा थोडी देर को उतार दें तो विद्वज्जन देखेंगे कि जसे जसे कृषि आधारित सामन्ती व्यवस्था सुदृढ होगी, वैसे वसे कर्मकाण्ड का महत्व बढेगा कुछ देवता श्रेष्ठ, कुछ साधारण मान जायेंगे। जो लोग दस्तकारी और व्यापार से धन कमाते है, उन पर भूस्वामियो की कोपदृष्टि होगी, इस कोपदृष्टि को उचित ठहराने के लिए पुरोहित वर्ग व्यवस्था देगा। यह वर्ग क्रमश गठित होता है, व्यवस्था देने वाले

अनेक पुरोहित होते है और सबकी व्यवस्था एक सी नही होती। ऋग्वेद की भाषा जैसे एक अतिदीर्घकालीन भाषाई विकास-परपरा का परिणाम है, वैसे ही ऋग्वेद की सस्कृति एक सुदीर्घ विकास-परपरा का परिणाम है। मैक्डनल आदि जब वैदिक मिथोलोजी जैसा ग्रथ लिखते हैं, तब उनके सामने यूनानी मिथकों का नमूना रहता है। उन्हे इस बात से निराशा होती है कि वैदिक मिथकों मे देवताओ की आकृति स्पष्ट नही है। कही तो देवता इस धरती पर किसी प्राकृतिक शक्ति या प्रपच का प्रतीक जान पडता है, कही वह धरती से ऊपर आकाश, अन्तरिक्ष या अन्य लोक मे विचरण करने लगता है। ग्रीक मिथक बहुत व्यवस्थित जान पडते है पर इसी कारण उनमे सास्कृतिक विकास का वह इतिहास नही है जो ऋग्वेद मे निहित है। दास दस्यु असुर पणि सपत्तिशाली है, सपत्ति रक्षा के लिए दुर्गों मे रहेगे ही। व्यापार के साथ उनमे सूदखोरी भी प्रचलित हो तो भूमिधर उन्हे घृणा की दृष्टि से देखेगा। इससे यह निष्कर्ष न निकालना चाहिए कि ये सब एक खास काले रग वाली नस्ल के थे और गोरे आर्यों से उनकी भाषा मूलत भिन्न थी। भाषा एक ही हो पर यदि पुरोहितो की व्यवस्था कोइ न माने तो उसे किसी निन्दासूचक शब्द से याद किया जाता था। ऋग्वेद की विशेषता यह है कि ऐसे शब्द सदा सर्वत्र निन्दासूचक नही थे, इसके प्रमाण उसी मे मिल जाते है। वरुण और मित्र असुर हैं, साथ ही अन्य देवता असुरहन हैं, पिप्रु और अर्चिन दास है, ऋग्वेद मे ही वे असुर भी है।

जो लोग कर्मकाण्ड-विशेष का विरोध करते थे, उन्हे दैत्य, दानव, असुर, मायावी आदि की सज्ञा दी जाती थी। जो अयज्वन, अब्रह्मन, अन्यव्रत हैं वे दस्यु है, इससे सिद्ध है कि कर्मकाण्ड की अवज्ञा करनेवाला को दस्यु कहा गया है। ऋग्वेद में जिन्हे शिश्नदेवा कहा गया है, उन्हे भी आदिवासी द्रविड मान लिया गया है किन्तु शिश्नपूजा यूनान के गौराङ्ग 'आर्यो' मे भी प्रचलित थी, उसका कोई विशेष सबध काली चमडी के लोगो से नहीं है। दानव लोग यज्ञ के विरोधी थे। दानव से मिलता जुलता शब्द दानाओइ ग्रीक भाषा मे प्रचलित था। आर्गोस् के राजा दानाओस् की प्रजा दानाओइ कहलाई पर होमर के काव्य मे समस्त यूनानियो के लिए दानाओई शब्द प्रयुक्त हुआ है। दानव नामक कोई गण उत्तराखण्ड मे यदि वैदिक कर्मकाण्ड को अमान्य करता रहा हो तो वैदिक परपरा मे वह शब्द निन्दासूचक बन ही जायगा।

भारत के उत्तर पश्चिमी सीमान्त पर दरद भाषाओ का क्षेत्र है जहा के रहने वालो को वैदिक ऋषियो ने पिशाच सज्ञा दी थी। ग्रियर्सन ने अपने सर्वेक्षण ग्रथ मे लिखा है कि भारत की सीमाओ और हिन्दूकुश पर्वत के बीच का क्षेत्र अब भी दर्दिस्तान कहलाता है, ग्रीक और रोमन लोगो ने यहा के दरद निवासियो का उल्लेख किया था। ग्रियर्सन ने लिखा है कि दरद या पिशाच भाषाएँ आर्य परिवार की उपशाखा के अन्तर्गत है, वे ब्रिटिश भारत की सीमा के उस पार उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में बोली जाती हैं। ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा को दरद आधार पर विकसित कहा है। दरद भाषाओ को सस्कृत समुदाय से भिन्न वर्ग मे इसलिए रखा है कि उन पर ईरानी प्रभाव

माना गया है। संस्कृत समुदाय की अपेक्षा दरद समुदाय पर ईरानी प्रभाव अधिक हो तो उसम आर्यत्व की मात्रा भी कुछ अधिक रही होगी।

दरद भाषाएँ फारसी और संस्कृत के समान आर्य भाषाएँ है। इनके बोलन वाले प्राचीनकाल से हिमालय पर्वतमाला की उस भूमि म रहत आय हैं जिसम काले आदमी भी शीत के प्रभाव स गोरे या लाल दिखन लगत हैं। इस शीतप्रधान हिमाच्छित भूमि के गोरे निवासियो को भारतीय आर्य परपरा म पिशाच कहा गया है। कोई भाषाविज्ञानी यह नही कहता कि दरद क्षत्र के मूल निवासी द्रविड या कृष्णवर्ण थे, कोई भाषाविज्ञानी यह नही कहता कि इनकी भाषाएँ आर्य परिवार न बाहर की हैं। पर इन गौरवर्ण आर्य भाषाभाषियों को वदिक ऋषियो और उनके उत्तराधिकारियो ने पिशाच कहा। पिशाच शब्द निन्दासूचक है सभी मानत है। वदिक आर्यों का यदि कृष्णवर्ण से घृणा थी तो इन गौरवर्ण आर्यभाइयो को उन्होने पिशाच क्या कहा ?

ग्रियर्सन का कहना है कि दरद की अपक्षा पिशाच शब्द अधिक उपयुक्त है किन्तु लोग उसके प्रयोग पर आपत्ति करते है क्योकि पिशाच नरभक्षी मान जात है, कच्चा मास खाते है। इसलिए इन्होने दरद शब्द का प्रयोग किया है। मान लीजिए पिशाच शब्द का यही अर्थ है नरमास भोजी कच्चा मास खानेवाला। प्रश्न यह है कि भारत के उत्तर पश्चिमी सीमान्त पर पिशाच रहत थे या नही, इनका रग गोरा था या नहीं। पैशाची प्राकृत का क्षत्र यही है, इसम तो सन्देह नही। यह भाषा अन्य प्राकृतो स मिलती जुलती है किन्तु संस्कृति मे भेद है इस कारण पिशाच शब्द निन्दासूचक बना। इसी प्रकार भाषा मिलती जुलती हो पर संस्कृति म भिन्नता हो तो दास शब्द निन्दासूचक बनेगा। पिशाच गोरे, दास काले, रग के कारण किसी की निन्दा नही की गई। निन्दा का आधार सांस्कृतिक भेद है। निन्दा करनेवाले स्वय गोरे थे या काले, इसका निर्णय दास-दस्यु विवेचन के आधार पर नही हो सकता।

ऋग्वेद मे एक बार पिशाचि शब्द आया है पिशङ्गभृष्टिमम्भृण पिशाचिमिन्द्र स मृण। सर्वं रक्षोनि बर्हय। (१-१३३ ५)। यहा इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि पिशगभृष्टि अर्थात ईषत रक्तवर्ण अम्भृणम् अर्थात भयकर शब्द करनेवाले पिशाचि को वह मारें। यहा पिशगभृष्टि और पिशाचि शब्द एक साथ आय है और इससे पिशाच की व्युत्पत्ति समझने म सहायता मिलती है।

अन्यत्र पिशग शब्द गौरवर्ण का सूचक है, इसम सन्देह नही। प्र वा निचेरु ककु हो वशा अनु पिशङ्गरूप सदानि गम्या (१-१८१-५)। सायण ने पिशङ्गरूप का अर्थ हिरण्यरूप पीतवर्णो वा किया है। पिशगरूप सुभरो वयोधा (२-३ ६) यहाँ सायण न सुवर्णवर्णो नानारूपो वा लिखकर पिशगरूप का भाष्य किया है। पिश एक प्रकार का हरिण था उसे यह नाम अपने सुन्दर रूप के कारण दिया गया होगा। पिश क्रिया संस्कृत तथा इडोयूरोपियन परिवार की अन्य भाषाओ मे अलकरण के लिए प्रयुक्त होती थी। पिश का अर्थ कच्चा मास नही है। जब पिशाच को कच्चा मास खानेवाला बताया गया तब अलग मे क्रव्याद शब्द का प्रयोग किया गया, यथा अथर्ववेद मे

आरादराति निऋ तिं परो ग्राहिं क्रव्याद पिशाचान (८-२ १२)। पिशुन का एक अथ है पीतवण, सामा य अथ हो गया कपटी। उसी तरह पिशाच का मूल अथ था सुवण, ईषत् रक्त या पीतवण वाला मनुष्य। क्रमश पिशाच नरमासाहारी राक्षस बन गया। उल्लेखनीय है कि अथववेद मे एक जगह अप्सराओ और ग धर्वों के साथ पिशाचो का नाम आता है य ग धर्वा अप्सरसा ये चाराया किमीदिन। पिशाचा त्सर्वा रक्षासि तानस्मद भूमे यावय।। (१२-१ ५०)। जैसे राक्षस, किमीदिन (दुष्ट प्रेतादि) और अप्सराएँ, वैसे ही पिशाच। गधव सोम के रक्षक हैं, अच्छे वैद्य हैं, दैवी रहस्यो के ज्ञाता और उद्‌घाटक हैं, स्त्रिया को आसानी म वश मे कर लेत है फिर भी उनसे भय है, उनसे रक्षा करन की प्राथना की गयी है।

ग धव किसी गणसमाज का नाम था या नही, इस बारे मे स देह हो सकता है कि तु ग धार के बारे मे एसा कोई स देह नही है। ऋग्वेद मे जैसे पिशाच के लिए पिशाचि रूप है, वैसे ही ग धार के लिए ग धारि रूप है। ग धार जन ईरानी सेना के साथ यूनानिया के विरुद्ध लडे थे। ये लोग कुभा और सि धु नदिया के आसपास की भूमि मे रहते थे—एसा कुछ विद्वानो का मत है। अथववेद मे मगधो क साथ इनका उल्लेख है। मगध एक जनसमुदाय का नाम था, इस बारे मे कोई स देह नही। अथववेद म प्राथना यह की गई है कि ज्वर ग धारियो और मगधो के यहा चला जाय। ग धारिया के साथ मूजवन्त भी है, दोना का प्रदेश उत्तर म है, मगधो के साथ अग हैं, इन दोनो का प्रदेश पूव म है। पूव मे मगध और अग शुद्ध आय न रहे हो, यह सभव है, पर उत्तर के ग धार और मूजव त आय नही थे, यह कसे कहा जा सकता है? उत्तरी और पूर्वी गणसमाजो के बीच जहा वदिक सस्कृति का विकास हो रहा है, वहाँ ऋषि, दोनो को धमक्षेत्र से बाहर मानकर, निश्चिन्त मन से उनके यहाँ ज्वर को भेज रहे है। ग धव पिशाचो के समान, बदनाम न हुए। अप्सराएँ तो इ द्र की अमरावती की शोभा बढाने पहुँच गइ। मूजवन्ता की ओर भी ऋषियो ने विशेष ध्यान न दिया पर मगधवाला की शामत आ गई। इनके पडोसी विदेह तो मध्यदेशीय ऋषियो के कृपा पात्र बने रहे पर मगध—, वेदिक इ डक्स के अनुसार यजुर्वेद म दी हुई पुरुषमध के बलिप्राणियो की सूची मे मागध भी है। जो यज्ञ सस्कृति के विरोधी थे, वे व्रात्य थे और इनके साथ अथववेद म मागधा को गिना गया है। ऋग्वेद मे कीकट जन यज्ञ-सस्कृति के विरोधी है। कीकट या तो मागध ही थे या उनके समान ऋषियो के कोप भाजन थे। वेदिक इ डेक्स की कीकट मगध चर्चा म ओल्देनबुग का हवाला देते हुए ठीक कहा गया है कि मागधा के प्रति घणा का भाव इसलिए बढा कि व ब्राह्मण धर्म न मानते थे। वेदिक इ डेक्स म शतपथ ब्राह्मण के आधार पर कहा गया ह कि शुरु गुरू मे कोसल और विदेह दोनो ब्राह्मण धर्मावलबी न थे। इसका यह अथ नही कि व आय भाषाएँ न बोलत थे। न इसका यह अथ है कि यज्ञ-सस्कृति के प्रचारक ता शुद्ध आय थे, उसे न माननेवाले अनाय थे।

मध्यदेश म कोसल शामिल था या नही? उत्तर म हिमालय, दक्षिण म

जाते थे, दास बनाये जाने पर युद्ध के बदी मारे-खाये जाने स बचे। दासा के श्रम के आधार पर ग्रीक सभ्यता का प्रसार हुआ। इससे स्पष्ट है कि एङ्गेल्स के अनुसार गौराङ्ग जनो म भी नरमासभक्षण की प्रथा का चलन था। उनका विचार था कि "यह धारणा अब सवमान्य हो चकी है कि विजित शत्रुआ स निपटने का विश्वव्यापी पुराना तरीका उन्हे खा जाने का था।"

प्राचीन समाजो की एतिहासिक परिस्थितियो म यदि दासप्रथा एक प्रगतिशील रीति थी तो भारत की प्राचीन ऐतिहासिक परिस्थितिया म वणव्यवस्था भी एक प्रगति शील व्यवस्था थी। बहुत-सी पुराण परपराएँ इस व्यवस्था के ससग स, उसकी रक्षा के लिए रची गइ, उनकी रचना के एतिहासिक कारण थे। कि तु नस्ल सिद्धान्त के आधार पर जो नयी पुराण-परपराएँ रची गइ है, उनके लिए कोई तकसगत कारण नही ह। एक नस्ल के गोरे आदमिया न दूसरी नस्ल के काले आदमिया को आकर जीत लिया, इससे भाषाओ का विकास हुआ, इस तरह की धारणाएँ अवज्ञानिक और इतिहास विरोधी है। इनका मुख्य आधार भाषाओ से प्राप्त जानकारी है, ऐसे कल्पित इतिहास का आधार भाषाविज्ञान है, भाषाविज्ञान के नाम पर प्रचलित किवदन्तिया है, य किवदन्तिया विशाल जन-समुदाया को प्रभावित करती है। उनकी पुष्टि भाषाआ के विश्लेषण स नही होती। इसीलिए उनका खडन आवश्यक है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान जितना ही वास्तविक अथ मे विज्ञान बनेगा, उतना ही वह भारतीय जन-जीवन को हर स्तर पर प्रभावित करेगा, उसकी सवाङ्गीण प्रगति म सहायक होगा।

परिशिष्ट-१

बलाघात और वर्णसंयोजन पद्धति

हिन्दी में बहुत से शब्द हैं जिनके मूलरूप में प्रथम वर्ण दीर्घ है किन्तु हिन्दी रूप में वह लघु है जैसे मूलरूप सत्य हिन्दी में सच है और पूजा से जब हम पुजारी शब्द बनाते हैं, तब मूलशब्द के प्रथम वर्ण पू को लघु कर देते हैं। मेरा अनुमान है कि इस प्रक्रिया का सम्बन्ध बलाघात की प्रवृत्ति से है यह प्रवृत्ति मध्यदेशीय है, कौरवी और मागधी भाषा समुदायों की ध्वनि प्रकृति से भिन्न है और वह उतनी ही प्राचीन है जितनी इंडो-यूरोपियन भाषा-परिवार की निर्माण प्रक्रिया। सिन्धी भाषा के प्रसंग में इस प्रक्रिया का उल्लेख है, यहाँ उसके बारे में कुछ और बातें कही जाती हैं जिनसे आधुनिक आर्य भाषाओं की ध्वनिप्रकृति और उनकी शब्द निर्माण पद्धति को समझने में सहायता मिलेगी।

उक्ति व्यक्ति प्रकरण की भूमिका में डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है कि बलाघात की आवश्यकता से दीर्घ आ को लघु कर दिया जाता है, इसके कारण बहुत स्पष्ट हैं, नष्ट से नाठ पर कष्ट से कठ हस्त से हाथ पर वस्तु से बथु भद्र से बंगला भाल के विपरीत भल, इसके कारण समझ में नहीं आते।

जैसे दीर्घ आ लघु हो जाता है बलाघात की आवश्यकता से—मूल रूप आभीर, तद्भव अहीर, मूल क्रिया बूझ उससे अन्य रूप बुझाव—वैसे ही भद्र से भल और कष्ट से कठ रूप बने बलाघात की आवश्यकता से। आभीर में दो गुरु वर्ण एक साथ हैं, उनके बाद एक लघु वर्ण है, बूझ से बूझाव क्रियारूप बने तो फिर दो गुरु वर्ण एक साथ होंगे लघु वर्ण उनके बाद आयेगा। वर्णों की गण व्यवस्था के विचार से यह संकेत है कि हिन्दी को तगण (ऽऽ।) पद्धति की शब्दरचना पसंद नहीं है।

कष्ट और कठ, वस्तु और बथु, सत्य और सच में केवल दो वर्ण हैं। मूल रूपों में प्रथम वर्ण दीर्घ है, तद्भवरूपों में वह वर्ण लघु हो गया है। कष्ट, वस्तु सत्य के उच्चारण में पहले वर्ण पर काफी जोर देना पड़ता है, यह स्पष्ट है, कठ, बथु सच कहने में पहले वर्ण पर जोर नहीं देना पड़ता। यहाँ वर्णसंयोजन की दो पद्धतियाँ दिखाई देती हैं एक पद्धति पहले वर्ण पर जोर देती है, दूसरी इस तरह का जोर उस वर्ण से हटा देती है। पहली पद्धति मेरे विचार से मागधी-कौरवी भाषा समुदाय से संबद्ध है, दूसरी मध्यदेशीय भाषा समुदाय से।

नष्ट से नाठ, हस्त स हाथ जैसे रूप बने, नठ, हथ रूप नही बने, इसकी चर्चा आगे करेंगे। पहले कठ, बधु, भल, सच वाली पद्धति पर विचार करें।

जैसा कि सिन्धी के प्रसग म कहा गया है, प्रथम दीर्घ वर्ण को ह्रस्व करने की प्रवृत्ति सिन्धी म भी है। दष्ट से डिठो, पूर्ण से पुनो, गुह्य स गुझो, दीर्घ से ड्रिघो आदि म प्रथम वर्ण की दीर्घता दूर कर दी गई है, कठ, बधु, भल स अन्तर यह है कि सिन्धी रूप प्रथम वर्ण की दीर्घता दूर करने के साथ साथ दूसरे वर्ण की लघुता भी दूर कर देते हैं, एक वर्ण को लघु बनाकर मानो क्षतिपूर्ति के लिए सिन्धी दूसरे वर्ण को दीर्घ कर देती है किन्तु अवधी दूसरे लघु वर्ण को लघु ही रहने देती है, दीर्घता की क्षति की पूर्ति नही करती। इसका कारण यह है कि दो वर्णों वाले शब्दो मे सिन्धी दूसरे वर्ण पर बलाघात पसद करती है। ऐसा सवत्र नही होता किन्तु उसम यह प्रवृत्ति विद्यमान है। अवधी ऐसे शब्दो म दूसरे वर्ण पर जोर नही देती, इसलिए लघु वर्ण अपरिवर्तित रहता है। सिन्धी के उक्त रूप, ब्रजभाषा रूपो के समान, ओकारान्त है जो स्वर स्पष्ट सुना जाता है, अवधी के समान उकारान्त नही है जहा स्वर लघु होता है। किन्तु नित्य से हिन्दी नित के समान सिन्धी म नितु रूप है, वह अवधी की ध्वनि प्रकृति के अनुकूल है। इसी प्रकार आश्चर्य का सिन्धी रूपान्तर अचज है। यह रूप उकारान्त है—अवधी के समान, अन्तर यह है कि दूसरा वर्ण चर् दीर्घ है पहले वर्ण की दीर्घता हटा दी गई, दूसरे की कायम रही, किन्तु अवधी रूप अचरजु म दूसरा वर्ण भी लघु है।

जैसे सत्य स सच, नित्य से नित, वैसे ही कल्य से कल। सच और नित को अशुद्ध मानकर कुछ लोग सत्य और नित्य लिखना ही पसद करते है किन्तु कल की जगह कल्य का चलन नही हुआ। नित नित्य सच सत्य जैसे जोडे मिलने पर शैली के अनुसार किसी एक रूप का व्यवहार किया जा सकता है किन्तु नित और सच को अशुद्ध न मानना चाहिए। इसी तरह दु ख के पहले वर्ण को लघु करके ब्रजभाषा और अवधी म दुख रूप का चलन हुआ। यह रूप मानक हिन्दी म स्वीकार हुआ मेरे दुख की दवा करे कोई। जो विद्वान् दुख को सुधार कर दु ख, दुखी को सुधारकर दु खी कर देते है, वे अपनी भाषा की ध्वनिप्रकृति नही पहचानते। हिन्दी की थमना क्रिया का आधार स्तम्भ है, प्रथम वर्ण लघु किया गया, थम्मना या थम्भना रूप नही चला। स्कम्भ से खभा, स्तम्भ स थभ रूप सज्ञा वग मे स्वीकृत हुए। हिन्दी की लखना क्रिया का आधार लक्ष है, लक्खना रूप नही चला। लक्ष्मण का एक लोकप्रिय रूपान्तर लखन है। रखना, रखवाला, रख रखाव मे रक्ष, का तद्भवरूप रख स्वीकृत है, रक्ख नहीं। राखा, राखो म दीर्घ प्रथम वर्ण वाला रूप प्रयुक्त होता है। इसी तरह उठना, उखाडना, उडना, उधारना, उचाट, उतान, उजेला आदि म मूल रूपो क उत उड उख उच उज आदि दीर्घ प्रथम वर्णों को ह्रस्व किया गया है। तीन वर्णों वाले रूप छोड दें, तो भी थम, उठ, उड, रख लख, नित सच, दुख आदि दो वर्णों वाले रूप यह सिद्ध करने के लिए काफी हैं कि पहले वर्ण को लघु करने की प्रवृत्ति हिन्दी क्षेत्र म काफी व्यापक है। क्षतिपूर्ति के लिए न तो प्रथम वर्ण के स्वर को दीर्घ किया जाता है न दूसरे वर्ण के स्वर को।

संस्कृत मे पथ पथ, रभ् रम्भ जैसे जोडे बहुत है जिन्हे देखकर लगता है कि इनमे नासिक्य ध्वनि अकारण जोड दी गई है। द्रविड भाषाओ मे भी ऐसे वैकल्पिक रूप बहुत हैं, एक जगह नासिक्य ध्वनि है, दूसरी जगह नही है। हो सकता है कि कुछ रूपो मे अतिरिक्त नासिक्य ध्वनि जोडी गई हो किन्तु कुछ रूप ऐसे है जिन्हे देखकर लगता है कि प्रथम वर्ण को ह्रस्व करने के लिए नासिक्य ध्वनि का लोप किया गया है। क्रिया है रम (प्रसन्न होना), इससे रूप बने हैं रति और रत। यदि इनका आधार रम क्रिया है तो रन्ति और रन्त जैसे शुद्ध रूपो का चलन होना चाहिए था। किन्तु प्रथम वर्ण को ह्रस्व करने के लिए न् का लोप कर दिया गया, रति और रत रूपो का चलन हुआ। क्रिया है नम्, उससे रूप बना नत, क्रिया है गम्, उससे रूप बना गत, क्रिया है मन, उससे रूप बना मत, क्रिया है हन्, उससे रूप बना हत।

इसी प्रकार यम् (वश मे रखना) से यत, तन (फैलाना) से तत, क्षन (मारना, कष्ट देना) से क्षत रूप बने। यदि वैयाकरणो ने नत, गत, हत आदि का सबध नम्, गम् हन धातुओ से ठीक जोडा है तो मानना होगा कि कृदन्त रूपो मे नासिक्य ध्वनि का लोप किया गया है। कारण वही है प्रथम वर्ण से बलाघात हटाने की प्रवृत्ति।

संस्कृत पर अपने ग्रथ मे बरो कहते है कि श्रोतुम मे बलाघात पहले वर्ण पर है, श्रुत मे दूसरे वर्ण पर। श्रोतुम् के पहले वर्ण का श्रो स्वर दीर्घ है, श्रुत के श्रु का उ स्वर ह्रस्व है। बलाघात की आवश्यकता से स्वर को ह्रस्व करने की प्रक्रिया स्पष्ट देखी जा सकती है। नत और गत मे भी बलाघात दूसरे वर्ण पर है, अत नन्त गन्त रूपो के प्रथम वर्ण को ह्रस्व करने के लिए नासिक्य व्यजन का लोप किया गया है, यह तथ्य सहज ही बोधगम्य है।

जैसे नन्त से नत, वैसे ही नष्ट से पुरानी अवधी का नठ रूप बना। कष्ट का रूपान्तर कठ पुरानी अवधी मे तो है ही, सभवत उसका व्यवहार संस्कृत के वैभवकाल मे भी होता था।

संस्कृत मे दो शब्द है कठिन और कठोर। इनकी व्युत्पत्ति के लिए वैयाकरणो ने कठ् क्रिया की कल्पना की है जिसका अर्थ है कष्ट मे रहना। उनकी कल्पना सार्थक है। कठ क्रिया का व्यवहार होता रहा हो चाहे नही, उसका सम्बन्ध कष्ट से बिलकुल ठीक जोडा गया है। कठिन और कठोर का आधार कठ है जो कष्ट के प्रथम वर्ण को ह्रस्व करने पर प्राप्त हुआ है।

संस्कृत शब्द भर का अर्थ है युद्ध। स्पष्ट ही इसका आधार भर क्रिया है जो लडने के अर्थ मे प्रयुक्त होती रही होगी। इसका कृदन्त रूप होगा भत। इस भत का रूपान्तर है संस्कृत भट जिसका अर्थ है योद्धा। यदि कहा जाय कि भट का सम्बन्ध लडने का अर्थ देनेवाली भर क्रिया से नही है भाडे पर किसी की सेवा प्राप्त करने वाली भर् क्रिया से है तो भी वर्णसयोजन की प्रक्रिया मे कोई अन्तर नही पडता। जैसे कष्ट के ष् ने ट् को महाप्राणता देकर ठ् बनाया और कठ रूप सुलभ हुआ, वैसे ही भत के र् ने त् को मूर्धन्यता प्रदान की और भट रूप प्राप्त हुआ। भट के साथ भटट भी है किन्तु भट

और कठ उस प्रवत्ति का परिणाम है जो गन और मन को गत और मत बनाती है।

भट के समान एक शब्द है **नट**। इसका सब ध नत से है। नत क्रिया व्याकरण म नत लिखी जाती है, वास्तव म नत् और नृत दोना रूपा का चलन था। नत्यति आदि का आधार नत है, इसके साथ नर्तिष्यति, नर्तित्वा जैसे रूप न त् की ओर सकेत करते ह। वण सकोचन से नत का नत हुआ, कोई कहे, वण विस्तार से नत का नत हुआ, कोइ फक नही पडता। **नट** का पूव रूप नत है यह मुख्य बात है।ा प्रथम वण ह्रस्व हुआ, र् ने लोप होते होते त को मूध य किया। चलन के सामान्य अथ म **नट** अथवा **नड** क्रिया का व्यापक व्यवहार द्रविड भाषाओ मे होता है यथा तमिल नड (चलना), कन्नड नडॅ (उप) तुलु नडवुनि (उप)। तमिल म नड से **नडत्तु** (चलाना), **नडत्तइ** (चलन), **नडक्कइ**(उप), नडप्पु(आवाजाही) आदि अनेक रूप बनते है, इनमे एक आकषक रूप है **नडमाड्** (जाना, इधर उधर चलना)। *कामकाज की तरह यह समानार्थी शब्दा का जोडा* है। नत् के समानान्तर मत् क्रिया थी, जस नत म नट, वैसे ही **मत** से **मट** रूप बने। हिन्दी **मटकना** मे नाचने का भाव दशानेवाली यही **मट** क्रिया है। तमिल म **नड** के समान उसका चलना अथ ग्रहण किया गया है, **मड** के विपरीत **माड्** का पहला वण दीघ है। किन्तु अयत्र **मड** रूप भी प्राप्त है। तमिल **मडक्कु** का अथ है हाथ या पैर मोडना, **मडङ्ग्** का अथ है अगा को टेढा मढा करना। हिन्दी **मटकने** से इन रूपो का सबध स्पष्ट है।

सस्कृत की एक क्रिया है **तद** जिसका अथ है मारना, कष्ट देना। अय क्रिया है **तड** जिसका अथ है मारना दड देना। जैसे **नत** से **नट** रूप बना, वसे ही **तद्** से **तड** रूप बना। एक अय **तड** क्रिया है जिसका अथ है चमकना। **तडाका** (भव्यता), **तडित** (बिजली) का सबध इस **तड** से है। सस्कृत **तरल** (कान्तिमान), **तार** (उप), **तारा** (नखत) मे **तर्** क्रिया देखी जा सकती है। उसम दन्त रूप **तद** बना, उसके आधार पर प्रथम वण को ह्रस्व करत हुए **तड्** क्रिया बनी। तमिल म जब **तड** का **द ळ** रूप मे ग्रहण किया गया, तब **तळपु** (चमक) शब्द बना, जब **ळ** रूप म ग्रहण किया गया तब **तळल्** (चमकना) शब्द बना, जब **ण** रूप मे ग्रहण किया गया तब **तणल** (आग, अगार) शब्द बना। इन सभी रूपा मे प्रथम वण लघु है और दूसरे वण का व्यजन मूधन्य है। प्रथम वण को ह्रस्व रखने की प्रवत्ति अखिल भारतीय परिवेश म दूर दूर तक पहुँची, इसका प्रमाण ये रूप है। मूल क्रिया **तर्** है, इसका प्रमाण कोलमि **तरि** (जलना), **तप्** (जलाना), नइकि **तर** (आग लगना) है।

सस्कृत **कतन** (काटने की क्रिया), **कतरि** (कची चाकू) म **कत** क्रिया है। हिन्दी **कटना, काटना** का आधार यही **कत्** है, इस **कत** का रूपान्तर अग्रेजी **कट** (काटना) है। तुलनीय है तमिल और क नड की **कडि** (काटना) क्रिया। इसका आधार **कत्** है, यह उन द्रविड शब्दो से सिद्ध है जिनम **कत्** क्रिया मूधन्यीकरण के बिना विद्यमान है तमिल और कन्नड कत्ति का अथ है चाकू। यहा **र** का लोप हुआ किन्तु प्रथम वण ह्रस्व नही हुआ, **र** की क्षतिपूर्ति अतिरिक्त **त्** न की। कुइ रूप **कत** (काटना) म अतिरिक्त

त् नही है, न मूध न्यीकरण, न क्षतिपूर्ति। सीध प्रथम वण को ह्रस्व किया गया है।

यह प्रवत्ति ऐसे अनेक शब्दा म है जो अखिलभारतीय भाषाक्षेत्र के बाहर पहुँचे है। सस्कृत भूति का ग्रीक प्रतिरूप फुसिस (गुण, जन्मजात सस्कार) प्रथम वण को ह्रस्व किये है (जहा क्रियामूल फूस है, वहा उसका अथ जोर से सास लेना है)। या तो ग्रीक भाषा न मूल रूप के दीघ स्वर को ह्रस्व कर दिया है या भूति के साथ यहा भुति रूप का भी चलन था। सस्कृत देव का ग्रीक प्रतिरूप थॅओस् है। यहा भी सस्कृत रूप की वण-गुरुता के बदले वण लघुता है। देव का आधार दिव् क्रिया ही मानी गई है, ग्रीक रूप का प्रथम वण ह्रस्व ही रहता है सस्कृत देव का प्रथम वण दीघ हो जाता है। शास्त्रकार कहेग, दिव के इ स्वर का गुणरूप देव का ए है, इसके विपरीत यह भी कहा जा सकता है कि देव क्रिया के ए को ह्रस्व करके दिव् रूप बनाया गया। सस्कृत मे दिवस, दिव्य के साथ देव, देवी दोना तरह के रूप प्राप्त है। ग्रीक म ह्रस्व स्वर वाले रूप हैं।

सस्कृत बोधते और बुध्यते दोना क्रिया रूपा म प्रथम वण दीघ है किन्तु बुध (बुद्धिमान्) म पहला वण ह्रस्व है। रोचते और रुचि रोदति और रुदन, चर्तति और चिति, कोषति और कुच द्योतते और द्युति मोदते और मुदा, भेदति और भिदा, योजते और युग, वेदति और विदु शोचति और शुच, शोभते और शुभ, इस तरह क जोडे इस बात की ओर सकेत करते है कि सस्कृत मे दो तरह की प्रवृत्तिया का चलन था, एक के अनुसार प्रथम वण दीघ होना चाहिए दूसरी के अनुसार ह्रस्व। सस्कृत म भिन्न प्रवृत्तियो का समन्वय करने की जो क्षमता है, उसी के अनुरूप शब्दा म दोना तरह की वणसयोजना को स्थान मिला। इस क्षमता से भाषा म जो स्थिति उत्पन्न हुई उसकी व्याख्या के लिए गुण सबधी नियम बनाया गया, नियम बनाकर क्षमता उत्पन्न नही की गई।

भद्र से भल, भला, भाल तीन तरह के रूप बनत है। भद्र म दो व्यजना क योग के कारण प्रथम वण पर जोर देना पडता था, उसे यहा दूर कर दिया गया है। पुरानी अवधी के अलावा आधुनिक अवधी म भी भल भा (अच्छा हुआ) जैस प्रयोग म भल का चलन बना हुआ है। भला का व्यापक व्यवहार हिन्दी क्षेत्र म होता है। भल और भला जैस रूपो का अन्तर काफी पुराना है। बकन ग्रीक और लटिन भाषाओ के अपने तुलनात्मक व्याकरण म लिखा है कि बोलचाल की लटिन म यह स्पष्ट प्रवृत्ति थी कि दो वर्णों वाले शब्दो म पहला वण ह्रस्व हो और दूसरा दीघ हा तो उस भी ह्रस्व कर दिया जाता था। इस प्रकार बॅने (भला), मले (बुरा), मिही (मुझे) तिबी (तुझे) आदि को बॅनॅ, मलॅ, मिहि, तिबि कर दिया गया था। मानो यदा, तदा का जद तद रूप म बोला जाने लगा हो।

जद, तद के बारे म कह सकत हैं कि दूसर वण के दीर्घ स्वर का यदा-तदा म भा को, ह्रस्व किया गया है किन्तु भल का पूव रूप भला नही है। भद्र स भल्ल, फिर भल या भला। भल को भी भला का पूवरूप मानना आवश्यक नहा है। भल्ल स दोना

का स्वतन्त्र विकास संभव है। जहा प्रथम वर्ण से बलाघात हटाकर दूसरे वर्ण पर डाला जायगा, वहा भला जैसा रूप बनेगा। मिट्टी म पूर्ण से पुनो रूप वैसे ही बनता है जसे भद्र स भला। यह प्रवृत्ति यथेष्ट प्राचीन है। बक ने ग्रीक लैटिन भाषाओं के अपने तुलनात्मक व्याकरण मे लिखा है कि यूनान की अत्तिक बोली म दूसरे दीघ स्वर को ह्रस्व करने की क्रिया नियमित रूप से घटित होती थी। नेग्रास (मंदिर), लेग्रास (जनता, सेना) बदल कर नॅग्रोस, लॅग्रोस बन। जहा दूसरा वर्ण दीघ न किया जायगा, वहा भद्र से भल रूप बनेगा।

शब्दो मे प्रथम वर्ण की दीघता दो प्रकार की हो सकती है। पहला प्रकार वह जहा स्वर लघु है किन्तु उसके बाद व्यजन आता है, इसलिए वर्ण दीघ हो जाता है। जैसे दुग्ध, यहा प्रथम वर्ण दुग् का उ स्वर लघु है किन्तु उसके बाद ग व्यजन है, इसलिए दुग वर्ण दीघ है। यह पहला प्रकार है। दूसरा प्रकार जैसे दूध, यहा पहले वर्ण का स्वर दीघ है, उसके बाद दो व्यजन नही है। हिन्दी तथा अन्य आय भाषाएँ इस बात के प्रति उदासीन नही है कि दोनो प्रकारो म किसे चुना जाय। जनता मे चलन दूसरे प्रकार का हुआ, पहले प्रकार का नही। बोलचाल का शब्द दूध है, दुग्ध नही। इसी प्रकार कर्ण कान, कम काम, सप्त सात, अष्ट आठ, नत्य-नाच, घम घाम, घट्ट घाट, भिल्ल भील, फुल फूल, सप साप आदि जोड़ो म दूसरी प्रकार की वर्ण सयोजना वाला रूप लोकप्रिय हुआ। जब दोनो तरह के रूपो मे पहला वर्ण दीघ है, तब दूसरी तरह के रूप का चलन अधिक क्यो हुआ?

मेरी समझ मे इसका कारण यह है कि दूध की अपेक्षा दुग्ध जसे रूप म पहले वर्ण पर ज्यादा जोर देना पडता है, दूध मे पहले वर्ण पर उस तरह जोर नही देना होता। सस्कृत मे एक रूप मुग्ध है, दूसरा मूढ है, दोनो रूप वैदिक काल मे प्रचलित थे। गुह स गूढ, रिह (चाटना) म रीढ, रुह से रूढ (चढा हुआ), सह से साढ (विजित), ऐसे रूप सिद्ध करते है कि वैदिक काल म दुग्ध को दूध करने वाली प्रवृत्ति विद्यमान थी। दूध और मूढ म इतना ही अन्तर है कि मूढ मे ध् का मूर्धन्यीकरण हुआ है, दूध म मूल दन्त्य ध्वनि सुरक्षित है।

सस्कृत क्रिया विद (जानना, मूल अथ देखना) का एक कृदन्त रूप वित्त (ज्ञात) है। लटिन म विद का प्रतिरूप विदॅओ है, क्रियामूल विद् से यहाँ भी कृदन्त रूप वित्त या विद्द बनेगा किन्तु लटिन ने द को स म बदला, वि के स्वर को दीघ किया, रूप बनाया वीसुस (दष्टि)। इस कृदन्त के आधार पर वीसो (ध्यानपूवक देखना) क्रिया बनाइ। वित्त के स्थान पर वीस रूप वसे ही है जसे दुग्ध के स्थान पर दूध है। लटिन क्रिया सॅरो का अथ है बोना, इससे सज्ञा रूप सेमॅन् (बीज) बना। सॅर क्रियामूल मे मॅन् प्रत्यय जोडने पर सॅर्मॅन् रूप बनेगा, जसे कम स हिन्दी काम बना, वैसे ही सरमन् से लैटिन सेमॅन् बना। (सॅरो म से धातु मानना ठीक नही है, सॅर् से से का विकास सभव है, से से सॅर का नही)। सस्कृत की रुच् (चमकना) का लटिन प्रतिरूप लुक् है। रुच् से जसे एक रूप रुक्म (प्रकाशमान) बनता है वसे ही लटिन लुक से एक रूप

लुवन बना था। लुवन के क का लोप होने पर लून (चंद्र) रूप प्राप्त हुआ। लुक का एक कृदन्त रूप लुक्क भी प्रचलित रहा होगा। लैटिन में इसके आधार पर मूल क्रिया लूकश्रो मानी गई (यद्यपि रुच का लटिन प्रतिरूप लुक् ही होगा।) लटिन क्रेदो (विश्वास करना) का आधार श्रद् की जगह श्रद्ध मानना चाहिए। एक व्यजन का लोप हुआ, प्रथम वर्ण का लघु स्वर दीर्घ हुआ। संस्कृत श्रद्धा में विश्वास करनेवाला भाव निहित है। संस्कृत उत्स (झरना) का रूसी प्रतिरूप उस्तँ (मुख) है। उस्तँ का लटिन प्रतिरूप श्रोस् (मुख) है। उत्स वह जहाँ से कोई चीज निकलकर बहे। यदि उत्स और उस्त का संबन्ध विश्वसनीय न लगे तो उस्तँ और श्रोस के संबन्ध पर विश्वास करें। लटिन रूप ने एक व्यंजन का लोप कर दिया, प्रथम वर्ण के लघु स्वर को दीर्घ किया। संस्कृत सप्त या सप्तन अंग्रेजी में सेवॅन् है, अष्ट एट है। यहाँ भी वही प्रक्रिया दिखाई देती है।

जैसे अष्ट से अंग्रेजी एट बना, वैसे ही नष्ट से पुरानी अवधी का नाठ, हस्त से मानक हिन्दी का हाथ बना। वैसे ही भद्र से बँगला का भाल प्राप्त हुआ।

प्रथम वर्ण की दीर्घता के विचार में जैसे दुग्ध और दूध में अंतर है वैसे ही दुग्ध और दूग्ध में अन्तर है। यदि पोषण और शोषण की पोष और शोष क्रियाओं से पोष्ट और शोष्क रूप बनाये जायें तो दूग्ध के समान यहाँ भी दीर्घ स्वर के बाद एक व्यंजन आयेगा। दुग्ध में प्रथम वर्ण पर जितना जोर देना पड़ता है, उससे बहुत अधिक जोर दूग्ध के दू पर देना होगा। बागरू को छोड़कर हिन्दी क्षेत्र की जनपदीय भाषाएँ ऐसे रूप स्वीकार नहीं करतीं। बागरू में छोट्टा, राज्जा, देक्खणा, भूक्खा जैसे रूप सामान्य हैं, बँगला में इनके समकक्ष थाप्पड (थप्पड), आल्ला (अल्ला), आङ्गूर (अंगूर), जाहान्नम् (जहन्नुम), ठाट्टा (ठट्ठा) भाल्लुक (भल्लूक) जैसे रूप हैं। मध्यदेश की भाषाएँ—हिन्दी की जनपदीय उपभाषाएँ—ऐसी वर्णयोजना से बचती हैं। संस्कृत में राष्ट्र, प्राप्त, पाण्डु, वाह्य, भाद्र, ब्राह्मण प्राङ्गण कार्तिक जैसे रूप सामान्य हैं। ये रूप कौरवी-मागधी ध्वनि-प्रकृति के अनुकूल हैं। तमिल में माट्टम (निर्माण), आट्टम् (खेल), वाट्टम (ढलान), काट्टु (जंगल), काप्पु (रक्षण) पोक्कन (यात्री), तावकु (टकराना) जैसे रूप सुलभ हैं। इस प्रकार की वर्ण-संयोजना संस्कृत और तमिल दोनों में है, मध्य देश के दोनों ओर, बँगला और बागरू में, वह विद्यमान है। किन्तु संस्कृत में पोषण और शोषण के साथ पोष्ट और शोष्क रूप नहीं हैं, इनके विपरीत पुष्ट और शुष्क रूप हैं। फ़ारसी में खुश्क और लैटिन में सिक्कुस (सूखा, शुष्क के विकल्प शिष्क से व्युत्पन्न) सिद्ध करते हैं कि जिन रूपों में ह्रस्व स्वर के बाद व्यंजन स्वीकारा गया था, वे प्राचीन हैं, और वे भारत के बाहर भी पहुँचे थे। बँगला अल्ला को आल्ला, थप्पड को थाप्पड रूप में ग्रहण करती है बलाघात की आवश्यकता से। वही आवश्यकता पोष्ट की जगह पुष्ट, शोष्क की जगह शुष्क स्वीकार कराती है। बलाघात की आवश्यकता दोनों तरह के रूपों में है, दीर्घ स्वर के बाद व्यंजन की स्थिति एक तरह की ध्वनि प्रकृति का परिणाम है ह्रस्व स्वर के बाद व्यंजन की स्थिति दूसरी तरह की ध्वनि प्रकृति का परिणाम है। ध्वनि प्रकृति के ये दोनों प्रकार प्राचीन हैं।

ग्रीक और लटिन भाषाओ के व्याकरण म बक कहते हैं कि ग्रीक भाषा म ग्नो तॅस (जात, नात) जैसे कृद त के प्रथम वण का स्वर दीघ था, ग्रीक भाषा के प्रागतिहासिक विकासकाल म यह स्वर ह्रस्व हो गया और ग्नातॅस रूप का चलन हुआ। इसी प्रकार लैटिन के अमा स् (स्नेहशील), विदे स (द्रष्टा, नानी) रूप बदल कर अमन्त, विदॅ त बने। मूल क्रिया अमा, विदे है कि तु दीघ स्वर के बाद त, स जैसे व्यजन योग स बचने के लिए दीघ स्वर को ह्रस्व किया गया। साथ ही इससे भिन्न प्रवत्ति लैटिन मे प्रबल है। लॅगो (चुनना), रॅगो (सीधे चलना) क्रियाओ म प्रथम वण का स्वर ह्रस्व है कि तु इनके भूतकालिक कृदन्त लेक्तुस, रेक्तुस रूप होते है। ह्रस्व स्वर को दीघ किया गया, उसके बाद दो व्यजन है, इसमे दीघ किये हुए स्वर के उच्चारण म कोई कठिनाई न हुई। इसी प्रकार फोम (आकृति), ओर्दो (व्यवस्था) ओर्नो (सुसज्जित करना) मे प्रथम वण के स्वर को दीघ किया गया है। बागरू इसी प्रकार जल्लाद को जाल्लाद, खातिर को खात्तर कर देती है।

दुग्ध जसे शब्दो क उच्चारण मे पहले वण के उच्चारण मे जो विशेष जोर देना पडता है, उसे कम करने का एक ढँग यह भी है कि व्यजन का लोप करन के बदले दूसरे वण के स्वर को दीघ कर दिया जाय। दुग्ध स दुद्ध, फिर दुद्धा रूप बनाया जा सकता है जैसे अवधी गीत म—गाय मरकही दुद्धा मीठा। अनेक हिन्दी जनपदो मे बुद्धा एक सुपरिचित नाम है, इसका पूवरूप बुद्ध है। पत्र से पत्ता, छत्र से छत्ता पष्ठ से पुटठा, पक्व स पक्का वत्स स बच्चा, अण्ड से अडा, दण्ड से डडा, वृद्ध से बुडढा, सत्य से सच्चा आदि इसी पद्धति के अनुरूप ह। जब लोग गुप्त को गुप्ता शुक्ल को शुक्ला कहते है तब कुछ विद्वान इसे अग्रजी का प्रभाव मानते है। बच्चा सच्चा आदि रूपो को देखें तो ऐसा 'अशुद्ध' उच्चारण विशुद्ध हि दी ध्वनिप्रकृति के अनुरूप सिद्ध होगा। प्रथम वण पर जोर कम करने के अनेक ढग है, इसलिए स्वभावत एक मूल रूप से अनेक प्रकार के तदभव रूपो का विकास होता है और सन्दभ के अनुसार सूक्ष्म भेद करते हुए इनके प्रयोग म शैली को प्रभावशाली बनाया जाता है। जा दिन तेरे तन तरुवर के सब पात झरि जहैं, तुम डाल डाल, हम पात पात, ऐसे सन्दर्भों मे पत्ते मे काम न चलेगा। कही एक रूप जनपदीय उपभाषाओ मे है दूसरा मानक हिन्दी म, जसे बूढ अवधी म, बुडढा और बूढा मानक हिन्दी म। कही एक रूप म एक अथ का प्रसग है तो अय रूप मे दूसरे अथ का। छत्ता और छाता डडा और डाड, बच्चा और बछडा या बछवा, रूप भिन्नता के साथ अथभेद उत्पन्न हो गया है। प्रथम वण के उच्चारण म जोर कम करने की आवश्यकता स भाषा के लिए अनेक हितकर परिणाम निकले ह।

हिन्दी म एसे बहुत-से शब्द है जिनम वणयोजना मूलत तगण पद्धति (ऽऽ।) की थी, उसे बदल कर जगण पद्धति (।ऽ।) का बनाया गया है। आभीर के अहीर रूपान्तर का उल्लेख पहले हो चुका है। सोना स सुनार, लोहा से लुहार, खटटा से खटास, दूध से दुधार, प्रक्षाल स पखार सौभाग्य स सुहाग, मूतना से मूतास के बदले मुतास, दो प्राव की जगह दाप्राव—ऐसे रूप हिन्दी क्षेत्र म व्यापक रूप म प्रयुक्त होते हैं।

इनमें प्रथम वर्ण की दीर्घता को ह्रस्व करके तगण के स्थान पर जगण व्यवस्था कायम की गई है। इसके विपरीत बंगला में अमीर, हलाल, लगाम, जहाज, पठान जैसे जगण व्यवस्था वाले शब्दों को आमीर हालाल, लागाम, जाहाज, पाठान बनाकर तगण-व्यवस्था के अनुरूप बोलने की प्रवृत्ति है। (ये रूप डा० चाटुर्ज्या के बँगला भाषा के उदभव और विकास वाले ग्रंथ में हैं।) प्रथम वर्ण को दीर्घ करने का कारण वहाँ बलाघात की आवश्यकता है। तमिल में हकीम के लिए अक्कीम, कचहरी के लिए कच्चेरि, हंगामी के लिए अङ्गामि तगण व्यवस्था के अनुकूल ढले हुए रूप हैं। संस्कृत में पाषाण, ताम्बूल, चाण्डाल जैसे पचासों शब्द हैं। देखना यह है कि प्रथम वर्ण को ह्रस्व करके संस्कृत में जगण को तगण बनाने की प्रवृत्ति भी कहीं है या नहीं।

बोधति की बोध क्रिया में परोक्षभूत का बोबोध रूप बनना चाहिए किन्तु उसकी जगह संस्कृत ने प्रथम वर्ण को ह्रस्व करके बुबोध रूप स्वीकार किया। पोषति और पोषण के पो को ह्रस्व करते हुए पुपोष, शोषित और शोषण के शो को ह्रस्व करते हुए शुशोष, मोह और मोहित के मो को ह्रस्व करते हुए मुमोह रूप संभवतः दो दीर्घ वर्णों के योग से बचने के लिए बनाये गये हैं। कहा जा सकता है कि मूल क्रिया में स्वर ह्रस्व ही था, पोषति आदि में उसे दीर्घ किया गया है। इससे उक्त स्थापना में कोई अन्तर नहीं पड़ता, या यह कहिए कि पुपोष के प्रथम वर्ण में मूल ह्रस्व वर्ण बना रहा, दूसरे वर्ण में उसे दीर्घ किया गया अर्थात् नगण (।।।) के बदले जगण (।ऽ।) की स्थापना हुई। किन्तु भू क्रिया में जब बभूव रूप बनता है तब यह नहीं कहा जा सकता कि मूल क्रिया अल्पप्राण है, प्रथम वर्ण में अल्पप्राणता बनी रही दूसरे में उसका स्थान महाप्राणता ने ले लिया। संस्कृत में दो महाप्राण ध्वनियों को सामान्यतः एक साथ नहीं रखा जाता, पहली को अल्पप्राण कर दिया जायगा। इसी तरह यह माना जा सकता है कि पोपोष जैसे रूप में दो दीर्घ स्वरों के योग से बचने के लिए पो को पु किया गया है।

संस्कृत की धा (धरना) क्रिया से जैसे दधामि रूप बना, धा की आवृत्ति हुई किन्तु व्यंजन को अल्पप्राण और स्वर को ह्रस्व करते हुए ठीक वैसे ही दधामि के ग्रीक प्रतिरूप तिथेमि में प्रथम वर्ण को ह्रस्व दूसरे को दीर्घ रखा गया है। (तिथेमि के लिए थे धातु के बदले संस्कृत धा के समान थे को आधार मानना चाहिए।) इसी प्रकार दा क्रिया के आवृत्तिमूलक संस्कृत ददामि का ग्रीक प्रतिरूप दिदोमि है।

जब हम भल्ल से भला रूप बनाते हैं, तब प्रथम वर्ण की दीर्घता दूसरे लघु वर्ण पर आरोपित करते हैं, किन्तु जब वल्कल से बकला (अवधी बाकला) कज्जल से कजरा बनाते हैं, तब दूसरे लघु वर्ण को लाँघकर तीसरे लघु वर्ण पर उसे आरोपित करते हैं। बोलचाल की हिन्दी में, विशेषतः मध्यदेशीय और पूर्वी जनपदीय भाषाओं में, बलाघात का ऐसा स्थानान्तरण साधारण बात है। इस प्रवृत्ति के अनुकूल अन्तर से अँतरा, कङ्कण से ककना, नगर से नगरा, गर्दभ से गदहा, प्रांगण से अँगना, अंगुलि से अँगुरी अँगुली, उज्ज्वल से उजला, कच्छप से कछुवा, छत्र से छत्तर फिर छतरी, कर्पट से कपड़ा, छप्पर से छपरा, ब्राह्मण से बाँभन फिर बँभना, विकिरण से बिखरा, बन्धन से बधना, बादल से

बदरा, ढक्कन से ढकना, चादर से **चदरा** रूप बने है। कहीं-कहीं सगण रूप मानक हिंदी मे है, भगण रूप किसी जनपदीय उपभाषा मे। मानक हिंदी का **पतला** अवधी म **पातर** है। मानक हिंदी का **दुबला** अवधी म **दूबर** है। **दूबर**, **पातर** जैसे रूप अवधी के अलावा अन्य अनेक जनपदीय उपभाषाओ म भी हैं।

संस्कृत में मूल **गुरु** शब्द से भाववाचक सज्ञा का एक रूप होगा **गौरव**, दूसरा **गरिमा**। पहले रूप म प्रथम वर्ण के स्वर म वृद्धि हुई है, वह दीर्घ है, दूसरे रूप मे वह लघु बना रहता है और शब्द के अन्त म ऐसा प्रत्यय जोडा गया कि वर्ण सयोजन सगण (।।ऽ) पद्धति का हो। इसी प्रकार लघु से **लाघव** और **लघिमा**, **पशु** स **पाशव** और **पशुता**, **मृदु** से **मार्दव** और **मृदुता** आदि दो तरह के रूप बनते है। **गरिमा**, **लघिमा** आदि रूप हिन्दी की ध्वनिप्रकृति के अनुकूल हैं।

हिन्दी म कुछ शब्द ऐसे है जिनम वर्णसयोजन रगण (ऽ।ऽ) व्यवस्था के अनुरूप बनता था, उसे बदल कर सगण व्यवस्था के अनुकूल बनाया गया। **मत्स्य** से **मच्छ**, फिर **मच्छली**, किन्तु इसे *बदलकर* **मछली** *किया गया*। **मागना** से **मँगनी** और **मँगता**, **छालना** (छानना) से **छलनी** या **चलनी**, **फूकना** से **फुकनी** रूप इस तरह से बने हैं। अवधी मे **गाजर** का बहुवचन **गजर** होगा, **गाजर** नही। **पातरि अँगुरी** एकवचन रूप है, **पतरी अँगुरी** बहुवचन रूप। **बाभनि** एकवचन रूप है, **बँभनी** बहुवचन रूप। **मागना** से **मँगता** इसी रगण के स्थान पर सगण के लिए आग्रह से बनता है। अनेक पूरबी बोलियो मे **बेटा** से **बटवा**, **बेटी** स **बिटिया** **लोटा** मे **लटवा** जैसे रूप भी इसी प्रवृत्ति का परिणाम हैं।

हिंदी म कोई तीन वर्णो का शब्द बनता हो और वे तीनो दीर्घ हो तो बहुधा पहले वर्ण को ह्रस्व कर दिया जाता है। मगण (ऽऽऽ) वर्णसयोजन के बदले हिंदी यगण (।ऽऽ) व्यवस्था पसन्द करती है। **पूजा** म **पूजारी** शब्द बने तो तीनो वर्ण दीर्घ होगे, हिंदी ने प्रथम वर्ण को ह्रस्व करके **पुजारी** रूप बनाया। इससे तुलनीय है बोलचाल की बँगला का **पूजुरि** रूप जहा दूसरे तीसरे वर्णो की गुरुता सिमटकर पहले वर्ण पर केन्द्रित हो गई है। बँगला म मगण व्यवस्था वाले काफी शब्द हैं **काण्डारी** (खेवनहार), **आसाडा** (खामोशी), **चालाङ्गा** (छप्पर), **बाङ्गालो** **काठामो** (काठ का ढाचा), बँगला जो शब्द अन्य भाषाओ स लेती है, उनमे दूसरे तीसरे वर्ण दीर्घ हुए और पहला न हुआ तो वह उस भी दीर्घ कर देती है **बारान्डा** (बरामदा, बरडा), **तामासा** (तमाशा), **तागादा** (तकाजा तगादा) **पाहाडे** (पहाडी), **पाहारा** (पहरा) **जानानो** (जनाना, बताना), **हाजारी** (हजारी) इत्यादि। मेरी समझ मे ये रूप मूल मागधी प्रवृत्ति की ओर सकेत करते है। मध्यदेशीय प्रवृत्ति इससे भिन्न है। **घूमना** से **घुमन्तू** नही **घूमन्तू**, **ठट्ठा** स **ठठोली** नही **ठिठोली**, **लावण्य** या **लोन** से **लोनाई** नही **लुनाई**, **खेलना** से **खेलाडी** और **खेलौना** नही **खिलाडी** और **खिलौना**। इसी प्रकार **घाम** से **घमाना**, **काम** से **कमाना** **कमेरा** **गन्ध** से **गँधाना**, **बूढ** (या **बूढा**) से **बुढ़ाना** रूप बनते है। **गोस्वामी** का लोकप्रचलित रूप **गोसाई** या **गुसाई** है, **दीपावली** से **दीवाली** फिर **दियाली**, **एक** स **एकेला**, फिर **अकेला**, **कामाक्षी** स **कामाख्या** फिर **कमख्या** जसे रूप

वर। दुचिता, दुनाली, दोनल्ला, दुरटटा, दुपल्ली, दुबारा, दुधारा, दुरगा, दुलत्ती, दुसूती, दुहत्था जैसे रूपों के प्रथम वर्ण को ह्रस्व किया गया है। इनमें हिन्दी भाषा की लय पहचानी जा सकती है। इनमें हिन्दी पर मध्यदेशीय भाषाई प्रभाव की कल्पना की जा सकती है। बागरू में तीन दीर्घ वर्णों वाले शब्दों का वैसा व्यापक चलन नहीं है जैसा बँगला में, फिर भी उसे खेताळा (खेतवाला), पाळङ्गा (पैर लगूँ), आज्याङ्गा (आ जाऊँगा) जैसी वर्ण संयोजना से परहेज नहीं है।

कौरवी और मध्यदेशीय वर्ण संयोजन पद्धतियों का भेद प्रेरणार्थक क्रिया रूपों की रचना में साफ दिखाई देता है। संस्कृत और हिन्दी की प्रेरणार्थक क्रियापद रचना के भेद के बारे में वाजपेयी जी ने **पठ्** धातु का उदाहरण देते हुए लिखा है "संस्कृत में प्रथम ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है—'पठति'—का 'पाठयति' और हिन्दी में अन्त्य स्वर दीर्घ होता है—'पढ़ता है' से 'पढ़ाता है।'" (हि॰ की शब्दानुशासन, पृ॰ ४६४)। इस भेद का कारण दो वर्ण संयोजन पद्धतियों का भेद है। हिन्दी में पढ़ जैसी क्रिया का प्रथम वर्ण लघु है, तब सीधे पढ़ा रूप बना लिया जायगा किन्तु यदि पहला वर्ण दीर्घ है तो उसे ह्रस्व कर लिया जायगा। वाजपेयी जी ने बाँधता बँधवाता, सोता-सुलाता, जीता-जिलाता आदि उदाहरण दिये हैं। हिन्दी में किसी व्यंजन के आगम के बिना भी प्रेरणार्थक रूप बनाया जाता है जैसे लड़ता से लड़ाता चलता से चलाता, करता से कराता आदि। इनमें व का आगम करके एक और रूप लड़वाता, चलवाता, करवाता भी बनता है। लड़ाता में लड़ता की अपेक्षा कर्तृभाव शिथिल है किन्तु निष्क्रिय नहीं है, लड़वाता में वह भाव और भी शिथिल है, मुख्य भूमिका उनकी है जिन्हें लड़ने की प्रेरणा दी जा रही है। जहाँ क्रिया का प्रथम वर्ण दीर्घ है वहाँ उसे ह्रस्व करके हिन्दी में कर्ता को क्रिया के प्रति तटस्थ कर दिया जाता है। आदमी रोटी सेंकता है, रोटी सिंक रही है, आदमी पेड़ काट रहा है पेड़ कट रहा है, आदमी कुत्ता पालता है कुत्ता पलता है। रोकना और रुकना टालना और टलना, मोड़ना और मुड़ना आदि में वैसा ही भेद है जैसा संस्कृत के भोग और भुग में है। कहीं-कहीं ऐसा भेद मानक हिन्दी की अपेक्षा उसकी जनपदीय उपभाषाओं में अधिक सुरक्षित है। मानक हिन्दी में जलना का साथ जलाना है, जारना नहीं है किन्तु अवधी में जरत के साथ जारत, बरत के साथ बारत रूप हैं। वाजपेयी जी ने काटना, बाँधना, देखना आदि के समकक्ष कटना, बँधना, दिखना आदि को अकर्मक प्रयोग कहा है कटाना कटवाना, बँधाना बँधवाना, दिखाना-दिखलाना को प्रेरणा प्रयोग कहा है। मूल क्रियारूप काटना, बाँधना देखना को माना है।

काटना से जब कटाना रूप बनायेंगे तब हिन्दी की ध्वनिप्रकृति के अनुरूप मूल क्रिया का प्रथम वर्ण ह्रस्व होगा। यदि कट और काट के पूर्व रूप कत पर ध्यान दें तो विदित होगा कि इसमें कट और काट दोनों रूप व्यंजन लोप से बने होंगे, कट में व्यंजन लोप के बाद क्षतिपूर्ति नहीं हुई, काट में क्षतिपूर्ति हुई और प्रथम वर्ण का स्वर दीर्घ हुआ। जैसे सत्य से सच और साँच (सोच को साँच कथा), कल्य से कल और अवधी काल्हि भेद से

मल और बँगला भाल रूप बने, वसे ही **कत** से **कट** और **काट**, **बध** से **बँध** और **बाध**, इस त्रिया के आधार पर बने **दक्खसे**, **दिक्खते** जसे रूपो के **दक्ष** से **दिख** और **दीख** दो तरह क रूप व्युत्पन्न हात है।

जैसे **सो** क्रिया मे **ल्** जोडकर **सुला** रूप बना, वसे ही सस्कृत की **पा** क्रिया मे **ल** जोडकर **पालयति** रूप बना। अन्तर यह है कि सस्कृत रूप म **ल** के आगम से प्रथम वण ह्रस्व नही हुआ, हिन्दी मे वह ह्रस्व हो गया। सस्कृत म **बोधयति**, **वधयति** आदि प्रेरणाथक रूपो के लिए बरो ने लिखा है कि **बुध** **वध्** आदि धातुओ के ह्रस्व को गुण द्वारा दीघ किया गया है। यदि **बोधति** **वधते** रूपो पर ध्यान दे तो विदित होगा कि जहा प्रेरणा भाव नही है वहा भी धातु का प्रथम वण दीघ किया गया है। यदि यह माना जाय कि **बुध** और **बोध** **वध** और **बध्** दो तरह के क्रिया रूपो का चलन था तो स्पष्ट *होगा कि प्रेरणाथक स दिखने वाले रूप सवत्र प्रेरणाथक है नही।* **पालयति** *का* *अथ है* रक्षा करता है, न कि रक्षा करवाता है। इसी प्रकार **मादयति** का अथ है नशा करता है न कि नशा करवाता है।

यदि **कट** और **काट** दोनो धातुओ को स्वतत्र माना जाय तो इससे यह सिद्ध नही होता कि मूल धातु के दीघ स्वर को ह्रस्व किया ही नही जाता। **सोता-सुलाता**, **जीता-जिलाता**, **खेलता खिलाता** म स्वर को ह्रस्व करने की रीति दिखाई देती है, उसकी पुष्टि अन्य प्रकार की शब्द रचना से भी होती है। **साठ** से **सठिग्राना**, **लात** से **लतिग्राना** **ग्राग** से **ग्रगियाना**, **झूठ** से **झुठलाना**, **खाता** से **खतिग्राना**, **छाती** से **छतियाना**, **जूता** से **जुतियाना** **गारी** (गाली) से **गरियाना**, **पत्थर** से **पथराना**, आदि रूपो म प्रथम वण ह्रस्व किया गया है। जहा मूल शब्द मे गुरु-लघु वर्णों की योजना थी वहा तो **साठ** स **सठिया** जसा मगणपद्धति वाला रूप आसानी मे बन गया, जहा मूलशब्द मे दोनो वण गुरु थे, वहा दोनो को लघु करक पुन उसी सगण व्यवस्था के अनुरूप **छाती** से **छतिया** धातु रची गइ। जहा एक गुरु और दो लघु वण थे, वहाँ पहल को ह्रस्व किया, दूसरे को यथावत रहन दिया तीसरे म प्रत्यय जोडकर फिर वैसा ही—**पत्थर** से **पथरा**—रूप बनाया। यह **कज्जल** म **कजरा** बनान वाली पद्धति ही है।

शब्द रचना मे सगण व्यवस्था का सवत्र ध्यान रखा जाय यह आवश्यक नही है। महत्वपूण बात है प्रथम वण के दीघ स्वर का ह्रस्व होना। जब किसी नाम शब्द से हिन्दी म दूसरा नाम शब्द बनाते हैं, तब इसी प्रकार प्रथम वण को ह्रस्व करत हैं। **घाट**, **बाट**, **घास** स **घटवार**, **बटमार**, **घसिग्रारा** शब्द इसी तरह बनाते है। **लाला** से **ललाइन**, **पाडे** से **पँडाइन** **ठाकुर** से **ठकुराइन** सी प्रकार सिद्ध ह। **पाच** **हाथ** **काठ** से **पँचमेल**, **हथकडा** **कठपुतला** जस समस्त पद रचे जात है। **ग्राधा** **दाढी**, **घोडा** म नय शब्द जोडत समय दानो वर्णा को ह्रस्व करके **ग्रधपका**, **दढियार** **घुडदौड**, **घुडसाल** **घुडचढी** **घुड सवार** जैस पद बनाय जात हैं।

शब्द रचना की सगण व्यवस्था कुछ क्रियारूपो म जनपदीय उपभाषाओ की अपेक्षा मानक हिन्दी म अधिक प्रतिफलित है। अवधी म बाढत है पाकत है लागत है

जागत है रूप है तो मानक हि दी म इनके समकक्ष बढ़ता है, पकता है, लगता है, जगता है रूप हैं। सगण व्यवस्था न हो, तो भी मानक हि दी म अनेक रूप ऐस है कि प्रथम वण ह्रस्व है किन्तु अवधी प्रतिरूप म वही वण दीघ है यथा अवधी जारत है (या बारत है) के समकक्ष मानक हिन्दी म जलाता है रूप है। अनेक रूपा म बागरू प्रथम वण को दीघ रखती है कि तु मानक हि दी लघु वण वाला रूप अपनाती है यथा बागरू म क्रिया रूप होगा चाल स, मानक हि दी म चलता है। अवधी और व्रजभापा के ढाड के समकक्ष मानक हि दी मे खडा रूप है। एक ही मूल श द से दो तरह की वण सयोजन पद्धतिया के अनुकूल दो तरह के रूप बने, कही मानक हि दी ने, कही जनपदीय भापाओ न इन रूपा का यथावश्यक प्रयोग किया।

वण सयोजन की अनक पद्धतियाँ है। इनम एक वह है जो प्रथम वण के उच्चारण म जोर पडता हो तो उसे हलका करती है। यह पद्धति अत्यन्त प्राचीन है, वह कौरवी-मागधी पद्धति से भि न है वह मूलत मध्यदेशीय है और हि दी शब्दा का रूप सँवारन म उसकी महत्वपूण भूमिका रही है। वण सयोजन पद्धतिया का सबध जनपदीय भापाओ की लय स है। यह लय किसी जनपद म रहन वाली जनता के सौ दय-बोध की अभिव्यक्ति है। शब्दा की रचना केवल अथबोध से नियमित नही होती, उसका नियमन सौ दय बोध से भी होता है। जातीय भापा का निर्माण अनेक जनपदीय तत्वा के मेल से होता है, इसलिए स्वभावत मानक हि दी म अनक वण सयोजन पद्धतिया का सम वय हुआ है। इस सम वय का अध्ययन करने स इस स्थापना की पुष्टि होती है कि मानक हि दी का विकास अनेक जनपदीय भापाओ के परस्पर सपक का परिणाम है। वण सयोजन पद्धतिया प्राचीन आयगण भापाओ के समय स चली आ रही है। यही कारण है कि उनम कुछ यूरप की भापाओ म भी दिखाई दती है। वण सयोजन-पद्धति भापा का आ तरिक सूक्ष्म तत्व है। उसके विवेचन से यूरप और भारत की भापाओ का सब ध पहचानन म भी सहायता मिलती है।

परिशिष्ट-२

अतिरिक्त महाप्राणता की समस्या

संस्कृत के कुछ शब्दो मे अल्पप्राण ध्वनि है, उनके पालि प्राकृत अथवा आधुनिक आर्यभाषा प्रतिरूपो मे महाप्राण ध्वनि है जैसे संस्कृत **परशु** का पालि प्रतिरूप **फरसु** है, अर्ध मागधी प्राकृत मे यही रूप है हिन्दी **फरसा** मे भी संस्कृत के अल्पप्राण प् के स्थान पर महाप्राण **फ** है। ऐसी स्थिति में हम यह मान लेते है कि संस्कृत रूप की अल्पप्राण ध्वनि मूल शब्द की ध्वनि है, अन्य प्रतिरूपो में अतिरिक्त महाप्राणता बाद मे जोडी गई है। कुल मिलाकर यह धारणा सही है, कुछ प्राकृतो के अलावा इडो यूरोपियन परिवार के ईरानी, केल्त आदि भाषा समुदायो में भी यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि संस्कृत के अल्पप्राण ध्वनियो वाले रूप मूल नही हैं, मूल रूपो मे महाप्राण ध्वनि थी और वह पालि प्राकृत आदि के प्रतिरूपो मे सुरक्षित है संस्कृत रूपो में उसे अल्पप्राण किया गया है। कभी-कभी अल्पप्राण और महाप्राण ध्वनियो वाले दोनो रूप संस्कृत में ही मिल जाते है जैसे **घर्म** और **ग्रीष्म**। जलने चमकने का अर्थ देने वाली **घर्** क्रिया से **घर्म** शब्द बना, महाप्राणता का लोप होने पर **घर्** के रूपान्तर **गर** से फारसी **गर्म** बना और वर्ण सकोच से **गर्** के रूपान्तर **ग्र** से रूसी **ग्रेत** (गरमाना), संस्कृत **ग्रीष्म** रूप बने। यदि संस्कृत मे **घर्म** रूप सुलभ न होता तो **ग्रीष्म** के साथ **ग्रेत** और **गर्म** का समीकरण स्थापित करके विद्वान् कहते कि हिन्दी **घाम** के प्रथम वर्ण मे अतिरिक्त महाप्राणता जोडी गई है, मूल क्रिया **गर** है, र् के ससर्ग से ग् को महाप्राण कर दिया गया है। इसलिए यदि संस्कृत रूप मे अल्पप्राण ध्वनि हो और अन्य आर्य भाषाओ के प्रतिरूपो में महाप्राण ध्वनि हो, तो इसे स्वत सिद्ध सत्य न मान लेना चाहिए कि मूल रूप मे अल्पप्राण ध्वनि ही थी, उसके प्रतिरूपो मे अतिरिक्त महाप्राणता जोडी गई है। संस्कृत रूप की अल्पप्राण ध्वनि चाहे अघोष हो चाहे सघोष, यदि उसके प्रतिरूपो मे महाप्राण ध्वनि है, तो इन प्रतिरूपो पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि प्रतिरूपो मे अतिरिक्त महाप्राणता नही जोडी गई यदि विवेचन से सिद्ध यह होता है कि महाप्राणता मूल रूप मे ही थी, संस्कृत रूप मे उसे अल्पप्राण किया गया है, तो यह तथ्य आधुनिक आर्य भाषाओ का, और स्वय संस्कृत का, विकास समझने मे सहायक होगा, संस्कृत से

आधुनिक आर्य भाषाओं के सबंध समझने में सहायक होगा।

पहाड़ की चोटी, बैल की गरदन के पास उठे हुए कूबड़ के लिए संस्कृत में ककुद रूप है, पालि में इसका प्रतिरूप ककुध है। पालि रूप में अतिरिक्त महाप्राणता नहीं जोड़ी गई, ककुध मूल रूप है, संस्कृत रूपान्तर में महाप्राणता का लोप हुआ है। इस तथ्य का बोध हमें इस बात से होता है कि संस्कृत में ककुद का समानार्थी रूप ककुभ है जहां अन्तिम वर्ण में महाप्राणता विद्यमान है। पिशेल ने ककुध के प्रसंग में ककुभ का स्मरण करते हुए उसे ककुध का समानान्तर रूप बिलकुल ठीक कहा है। उन्होंने बताया है कि प्राकृत रूप कउह का आधार ककुध है कुछ प्राकृतों में ककुध रूप मिलता भी है। प्राकृतों का मानक रूप हुआ कउह, बोली रूप हुआ ककुध। पर बोली रूप ही पुराना है, वह मानक रूप कउह का पूर्वरूप है। कउह का आधार ककुद नहीं, ककुध है।

कुध् और कुभ दो समानार्थी क्रिया रूप थे, एक ध केन्द्र का दूसरा भ केन्द्र का। प्रथम वर्ण के व्यंजन की आवृत्ति से ककुध और ककुभ रूप बने। ककुभ के अन्तिम वर्ण में महाप्राणता बची रह गई, ककुद में उसका लोप हो गया।

प्राकृतों में संस्कृत दीप्यते का एक प्रतिरूप दिप्पइ है, दूसरा धिप्पइ। धिप्पइ के प्रथम वर्ण में अतिरिक्त महाप्राणता है या दीप्यते में मूल रूप की महाप्राणता का लोप हुआ है? इस प्रश्न का उत्तर देने में कुछ ग्रीक रूपों से सहायता मिलती है। संस्कृत देव का लैटिन प्रतिरूप तो देंउस् है किन्तु ग्रीक प्रतिरूप थेंग्रास है। क्या यह मानें कि संस्कृत लैटिन रूपों का द् पहले अघोष हुआ, फिर उसमें अतिरिक्त महाप्राणता जोड़ी गई, इस तरह ग्रीकरूप थेंग्रास् सुलभ हुआ? अथवा यह मानें कि मूल रूप धेव था, देव और थेंग्रॉस् दोनों उसके विकास हैं? ग्रीक भाषा सामान्यतः सघोष महाप्राण ध्वनियों वाले भारतीय शब्दों को ग्रहण करते समय उनकी महाप्राणता बनाये रहती है, अघोषता का लोप करती है। जैसे संस्कृत क्रिया है धाव, इसका ग्रीक प्रतिरूप है थग्रो (दौड़ना)। यह परिवर्तन वैसा ही है जैसा चूलिका पैशाची में संस्कृत वसुधा का रूपान्तर वसुथा है। ग्रीक भाषा से सघोष महाप्राण ध्वनियों के रूपान्तरण की सामान्य प्रवृत्ति को ध्यान में रखें तो प्रतीत होगा कि थेंग्रॉस् का पूर्वरूप धेंग्रॉस् था। प्राकृत रूप धिप्पइ से इस प्रतीति की पुष्टि होती है। धिप्, धिव जैसे क्रियारूपों के आधार पर दीप्यते, देव, देंउस, थग्रॉस्, दिप्पइ, धिप्पइ रूपों का निर्माण हुआ। धिप्पइ रूप अतिरिक्त महाप्राणता के संयोग का परिणाम नहीं है।

पिशेल ने संस्कृत कपाल का अर्धमागधी प्रतिरूप कभल्ल दिया है। कपाल का ग्रीक प्रतिरूप कफले है। कॅफले में फ की महाप्राणता उसके पूर्वरूप भ की सूचना देती है। अतः प्राकृत कभल्ल में मूल रूप का भ सुरक्षित है, कपाल के प को उपाय करके, फिर अतिरिक्त महाप्राणता जोड़कर उसे नहीं रचा गया।

सुपरिचित शब्द भरत का एक प्राकृत प्रतिरूप भरह है। इस पर लगेगा कि किसी प्राकृत में मध्यवर्ती त ध्वनि ह् में परिवर्तित हुई है। किन्तु पिशेल का कहना है कि भरह का पूर्वरूप भरथ है जो भरत का रूपान्तर है। इसका अर्थ यह हुआ

कि त् ध्वनि सीधे ह् में नहीं बदल सकती, उसे थ् की मंजिल पार करनी होगी। पिशेल ने बताया है कि **भरध** रूप भी प्राप्त है, इससे पता चलता है कि **भरह** का आधार **भरथ** था। **भरथ** रूप पालनकर्ता के अर्थ में संस्कृत में भी प्राप्त है।

यदि **भरत** को मूल रूप माना जाय तो कहना होगा कि पहले अतिरिक्त महाप्राणता के योग से **भरथ** रूप बना, फिर अतिरिक्त सघोषता के योग से **भरध** रूप प्राप्त हुआ। यहाँ **भरध** के समकक्ष **मगध** को याद करें। कोई नहीं कहता कि **मगध** का मूल रूप **मगत** था, त में अतिरिक्त महाप्राणता, पुनः अतिरिक्त सघोषता के योग से **मगध** रूप बना। **मगध** और **भरत** मिलते जुलते रूप हैं, यह उनके निर्माण की अर्थ प्रक्रिया से समझ में आयगा। दोनों गणवाचक शब्द हैं, दोनों के आधारभूत रूप—**मग** और **भर**—युवा, पुत्र और योद्धा का अर्थ देते हैं। **मग** का पुत्र वाला अर्थ द्रविड़ और केल्त भाषाओं में अब भी बना है, संस्कृत **भर** का अर्थ युद्ध है, वह **भर** के योद्धा वाले भाव की ओर संकेत करता है। सिंधी **वरो** पुत्र के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यूरुप की भाषाओं में सिंधी **वरो** का प्रतिरूप गाथिक **बार्न्** (बच्चा) है। इस प्रकार गणवाचक शब्दों की *निर्माण प्रक्रिया में* **मग** *और* **भर** *की संगति बैठती है।* **मग** *में स्थान वाचक प्रत्यय* **ध** जोड़ कर **मगध** रूप बनाया गया, ठीक इसी प्रकार **भर** में **ध** जोड़ कर **भरध** रूप बनाया गया। **भरध** के अंतिम वर्ण की महाप्राणता और सघोषता दोनों के लोप से **भरत** रूप बना, न कि भरत के **त** में अतिरिक्त महाप्राणता और सघोषता के योग से **भरध** रूप बना। **भरत** मूलतः, **मगध** के समान, जनपद सूचक शब्द था, **भरत** और **मगध** दोनों शब्द आगे चल कर जनपदवासियों के लिए प्रयुक्त होने लगे, ठीक वैसे ही जैसे कशगण का जनपद **कश्मीर** संस्कृत में वहाँ के निवासियों के लिए प्रयुक्त होने लगा।

भरत से **भारत** शब्द बना। इसका पूर्वरूप **भारध** था, यह मागधी प्राकृत के **भालध** रूप से सिद्ध है। अतः पुरानी अवधी के **करहि**, **जाहि** आदि क्रिया रूपों के आधार **करधि**, **जाधि** जैसे रूप हैं, संस्कृत **करोति**, **याति** के आधार होंगे **करोधि**, **याधि**। अवधी **करहि** का पूर्वरूप **करोति** नहीं है।

संस्कृत क्रिया **हन** का आज्ञार्थी एकवचन रूप **जहि** है। **हन** का पूर्वरूप **घन** है जो **घात** जैसे शब्दों में प्राप्त है। **घ** का तालव्यीकरण होगा तो **झ्** ध्वनि प्राप्त होगी, **ज** नहीं। **जहि** का पूर्वरूप होगा **झहि**, **झ्** की महाप्राणता का लोप होने पर **जहि** रूप बनेगा। मैकडनल ने वैदिक भाषा के अपने व्याकरण **वेदिक ग्रामर** में ध्वनितंत्र का विवेचन करते हुए बताया है कि प्रत्यय में महाप्राण ध्वनि हो तो शब्दमूल की महाप्राण ध्वनि बनी रहती है, अल्पप्राण नहीं होती, यथा **विभु** शब्दमूल में **भिस्** प्रत्यय जोड़ा गया तो **विभुभिस** रूप बना। फिर कहते हैं कि इसके दो अपवाद हैं: **भू** क्रिया से आज्ञार्थी रूप **बोधि** बनता है, न कि **भोधि** या **भूधि**, और **हन** क्रिया से **झहि** के बदले आज्ञार्थी रूप **जहि** बनता है।

यदि प्राकृतों में **झहि** रूप मिलता और संस्कृत में **जहि**, तो भाषाविद् यही कहते कि **ज्** में अतिरिक्त महाप्राणता के योग से प्राकृत रूप **झहि** बना है। किन्तु **हन**

या पूर्वरूप घन असंदिग्ध है, घ् का तालव्य रूपांतर झ होगा, ज् नहीं, यह तथ्य भी असंदिग्ध है। अतः जहि का पूर्वरूप झहि था, इसमें संदेह नहीं रह जाता।

प्राकृत शब्दकोष पाइअसद्दमहण्णवो में एक 'देश्य' शब्द है झत्थ जिसका अर्थ है नष्ट। स्पष्ट ही इसका आधार वही घन् क्रिया है, देश्य रूप ने घ् के रूपान्तर झ् में सघोषता और महाप्राणता की रक्षा की।

उसी कोष में अन्य रूप है झवणा जिसका अर्थ है नाश। झवणा और झत्थ परस्पर संबद्ध हैं किन्तु झवणा देश्य नहीं है, उसे क्षपणा का प्राकृत रूपांतर माना गया है। क्षपणा की क्षप क्रिया स्वयं घप् का रूपान्तर है। घ का मूर्धन्य रूपांतर है क्ष, तालव्य रूपान्तर है झ।

संस्कृत जन का एक अवधी प्रतिरूप है झन। यह छत्तीसगढ़ी-बघेली क्षेत्रों में बोला जाता है। इन क्षेत्रों में ज् ध्वनि से आरंभ होने वाले शब्दों की संख्या लगभग वही है जो हिन्दी के अन्य क्षेत्रों में। इसलिए यह समझना कठिन है कि अकारण जन के ज को ही महाप्राण क्यों कर दिया गया। जन समूहवाचक शब्द है, वैसे ही गण भी समूहवाचक है। ये दोनों शब्द परस्पर असंबद्ध नहीं जान पड़ते। संस्कृत में एक अन्य शब्द घन भी समूहवाचक है, इसका एक अर्थ साधारण जन भी है। घन के घ का तालव्यीकरण हुआ, तब अवधी का झन रूप बना, झन के झ् की महाप्राणता का लोप हुआ, तब जन रूप बना, घन के घ की सघोषता का लोप हुआ तो गन—ग के मूर्धन्य उच्चारण के कारण गण—रूप बना। अर्थ प्रक्रिया और ध्वनितंत्र, दोनों ही की दृष्टि से घन, झन, जन, गण शब्द परस्पर संबद्ध प्रमाणित होते हैं। जन के ज में अतिरिक्त महाप्राणता जोड़ने से झन रूप का निर्माण नहीं हुआ।

घन के समान एक समूहवाचक संस्कृत शब्द घटा है। सघनता का भाव दिखाने के लिए संस्कृत जटिल का प्राकृत प्रतिरूप झडिल है। जैसे झन और जन का पूर्वरूप घन है, वैसे ही झडिल और जटिल का पूर्वरूप घटिल होगा। संस्कृत चूडा, हिन्दी जूड़ा, गुजराती झुडो, सिन्धी झूडो का एक ही अर्थ है। यहाँ भी यह नहीं कहा जा सकता कि च या ज् में महाप्राणता के योग से झ वाले रूप बने हैं।

संस्कृत तृप्यते का प्राकृत प्रतिरूप थिप्पइ है। यहाँ माना जा सकता है कि ऋ के संसर्ग से त् ध्वनि थ् में बदल गई है। सिन्धी में तृप्त होने का अर्थ देनेवाली ढ्रापणु क्रिया है। यहाँ र् बना हुआ है, और उसके साथ की ढ ध्वनि महाप्राण ही नहीं, सघोष भी है। इसमें तुलनीय है प्राकृत रूप धणि (तृप्ति) जिसका पूर्वरूप पाइअसद्दमहण्णवो के अनुसार ध्राणि है। ध्राणि (ध्रापणि, ध्रावणि, ध्राणि) और ढ्रापणि का एक ही आधार धृप् जैसी क्रिया जान पड़ती है। पानी, पीने की क्रिया और तृप्ति, तीनों में गहरा संबंध है। संस्कृत तीर्थ में शब्द मूल तोर् जलवाचक है। तया और तृप्ति द्वारा संबद्ध हैं। संस्कृत क्रिया धे का अर्थ दूध पिलाना, पोषण करना है इसीलिए दूध देने वाली गाय धेनु है। हिन्दी धाय वह स्त्री है जो दूसरे के बच्चे को दूध पिलाती है। एक धाय रूप प्राकृत में है जिसका अर्थ है तृप्त, कोष के अनुसार उसका पूर्वरूप घ्रात है। यानि

प्रतिरूप धान मा अर्थ भी लुप्त है। पालिकोश के सपादकों राइस डेविड्स और विलियम स्टीड के अनुसार मूल क्रिया धयति थी, इसके रूपान्तर धाति (पीता है) का प्रेरणार्थक रूप धापयति बना। धय और धर, धय और धॅर् दोनो मूलरूप हो सकते हैं, दोनों में किसी के भी आधार पर सस्कृत की धे क्रिया बन सकती है। धॅर के रूपान्तर तॅर् से तृप् क्रिया बनेगी। प्राकृत थिप्पइ और सिन्धी ढ्रापणु का आधार धॅर्, धर् क्रियामूल हैं, तप् के त मे अतिरिक्त महाप्राणता नहा जोडी गई।

सस्कृत हृदय का सिन्धी प्रतिरूप हिर्धो कृदन्त जान पडता है। सर, सॅर, सॉर, एस तीन रूपो मे एक ही क्रिया का व्यवहार होता था, इसका प्रमाण ग्रीक कर्दिश, रूसी सॅर्द्त्से और लैटिन कार्दिस हैं। ये सब हृदय के प्रतिरूप है। सस्कृत श्रद्धा के श्रद (सत्य, आस्था) का आधार सर है, हृदय के हृद् का आधार सॅर् है। गतिसूचक सर क्रिया मे घ प्रत्यय लगने पर सध रूप बनेगा, तालव्यीकरण और वर्णसकोचन से श्रध, फिर महाप्राणता के लोप से श्रद रूप बनेगा। स के ह् मे बदलने पर सॅर् क्रिया से सिन्धी का हिर्धो रूप निर्मित होगा।

प्राकृत घत्थ का पूर्वरूप, कोश के अनुसार, ग्रस्त है, ग्रहण करने का अर्थ देने वाली ग्रह क्रिया से अन्य रूप घे तथा घत्त बनते हैं। मान्यता यह है कि र् के ससर्ग से ग् मे महाप्राणता जुड गई है किन्तु प्राकृत घिसु (ग्रीष्म) के लिये यह कहना कठिन होगा कि ग्रीष्म के ग मे महाप्राणता के योग से यह रूप बना। घम या घर ग्रीष्म के ग्रे (अर्थात गर्) का पूर्वरूप है। सस्कृत मे एक घ क्रिया का अर्थ है गीला करना और दूसरी घ का अर्थ है जलना, चमकना। घ का वैकल्पिक रूप घृण भी है, घण का अर्थ हुआ ऊष्मा। प्राकृत घिसु का सबन्ध इस घृण् से है, ग्रीष्म की ग्री क्रिया उक्त घ का रूपान्तर है (ग्रीष्म का सबन्ध ग्रस से नही है)। जैसे घ् की महाप्राणता का लोप होने पर ग्रीष्म का ग् प्राप्त हुआ, वैसे ही घध ग्रध् के घ् की महाप्राणता का लोप होने पर गृध, ग्रह जैसे रूप प्राप्त होगे। दो महाप्राण ध्वनियो के एक साथ होने पर पहली को अल्पप्राण करने की प्रवृत्ति सस्कृत मे व्यापक है। प्राकृत घे, मराठी उडिया घेनि, मराठी घेणें और प्राकृत घत्त, घत्थ मे प्राचीन क्रिया की मूल महाप्राण ध्वनि बनी हुई है।

प्राकृत घघ (घर) देश्य कहा गया है, कोशकारो को इसका सस्कृत पूर्वरूप मिला नही। जलने चमकने का अर्थ देने वाली घृण् क्रिया का एक सस्कृत प्रतिरूप घण् है। इस घण से घघ की व्याख्या हो जाती है। घघ वह स्थान है जहा अग्नि रखी जाती है। घ स्थानवाचक प्रत्यय है और घन् का अर्थ होगा अग्नि। घम की घर क्रिया का एक प्रतिरूप घन् होगा। प्राचीन आर्यभाषाओ मे स, र, न (अथवा म) ध्वनियां एक दूसरे का स्थान ले लेती हैं। नासिक्य और अन्तस्थ, दोनो प्रकार की ध्वनियो मे स्पर्श तत्व क्षीण है, इसी कारण एक के स्थान पर दूसरी का प्रयोग सभव होता है। वैदिक भाषा मे ऊधस ऊधन ऊधर (स्तन), तीनो रूपो का चलन था। घर् के प्रतिरूप घन् से घघ रूप बनेगा। अर्थ प्रक्रिया वही है जो हिन्दी घर, सस्कृत हर्म्य और अग्रेजी हथ की है। हर्म्य और हथ का हर मूल क्रिया घर का रूपान्तर है। ये तीनो शब्द निवास स्थान के

लिए इस कारण प्रयुक्त होने लगे कि इनका मूल उद्देश्य अग्नि स्थान की सूचना देना था और मनुष्य वहीं रहते थे (अर्थात् प्राचीन आर्य भाषाएँ बोलने वाले जन वहीं रहते थे) जहाँ वे अपनी पवित्र अग्नि स्थापित करते थे।

संस्कृत गृह का पूर्वरूप होगा गृध। अग्निवाचक घ के रूपान्तर ग् में स्थानवाचक ध प्रत्यय लगने से गृध रूप बना, ध् के स्पर्शतत्व का लोप होने पर गृह प्राप्त हुआ। हिन्दी घर और संस्कृत गृह दोनों का मूल अर्थ है अग्निस्थान। जैसे ग्रीष्म के घर् का विकास घर्म के घर् से हुआ, वैसे ही गृह के ग का विकास घध के घ् से हुआ। हिन्दी घर संस्कृत गृह का तद्भव रूप नहीं है। गृह का पूर्वरूप गृध ही था, इसका संकेत वैदिक गृभ (घर) से मिलता है जहाँ ध का समकक्ष प्रत्यय भ प्रयुक्त हुआ है।

हिन्दी धी के प्राकृत प्रतिरूपों धीआ और धूआ (पुत्री) का आधार संस्कृत दुहितृ बताया गया है। सम्भवतः ह के समीप होने से द ने उसकी महाप्राणता आत्मसात की किन्तु ग्रीक प्रतिरूप थुगतेर् की आदि स्थानीय ध्वनि महाप्राण है। इससे संकेत यह मिलता है कि संस्कृत-ग्रीक दुह्, थुग् शब्दमूलों का आधार धुघ था। दुहिता का सम्बन्ध दूध दुहने या दूध पीने से हो चाहे न हो, संस्कृत में दुह् क्रिया के दुघान और अधोक रूपों से उसके आधार धुघ का बोध अवश्य होता है। धुघ और उसके प्रतिरूप धिघ से प्राकृत धूआ, धीआ, हिन्दी धी, बँगला झी का विकास हुआ।

अब तक जितने उदाहरण दिये गये हैं उनमें अल्पप्राण ध्वनि संस्कृत रूप में है, महाप्राण ध्वनि इतर रूपों में। इससे भिन्न कोटि के शब्द वे हैं जहाँ संस्कृत रूप में महाप्राण ध्वनि तो है किन्तु अघोष है, इतर रूपों में वह महाप्राण है सघोष भी है। अनेक प्राकृतों में मध्यवर्ती स्पर्श ध्वनि को सघोष करने की प्रवृत्ति है, इसलिए बहुत से रूपों में मूल ध्वनि अघोष महाप्राण ही थी, प्राकृतों में उसे सघोष किया गया है, इसमें सन्देह नहीं। फिर भी सर्वत्र ऐसा हुआ है, इसमें सन्देह है। संस्कृत यथा, तथा के मागधी रूप यधा, तधा हैं। संस्कृत अथ का एक वैदिक प्रतिरूप अध भी है। या तो थ् को सघोष किया गया, तब अध रूप बना, या ध को अघोष किया गया तब अथ रूप बना। बहुधा का संस्कृत रूपान्तर बहुथा भी स्वीकृत है। सर्वदा और सर्वथा परस्पर सम्बद्ध रूप हैं। संस्कृत में थ, द, ध तीनों ध्वनियाँ जब समानार्थी रूप मिलें तो इसमें सन्देह न होना चाहिए कि ध् ही मूल रूप की ध्वनि है। ध या धा स्थानकाल वाचक प्रत्यय है, थ या, द या उसी के रूपान्तर हैं। अतः प्राकृत यधा-तधा मूलरूप का स्मरण है। उनमें अतिरिक्त सघोषता का योगदान हुआ हो, यह आवश्यक नहीं है।

संस्कृत में अतिरिक्त महाप्राणता जोड़ने की प्रवृत्ति लगभग नहीं है, यह प्रवृत्ति अनेक प्राकृतों, सिन्धी जैसी कुछ आधुनिक आर्यभाषाओं और इण्डोयूरोपियन परिवार के ईरानी-केल्त भाषा-समुदायों में है। भाषान्तर में संस्कृत महाप्राण ध्वनियों की रक्षा करती है किन्तु उन्हें अल्पप्राण करने की प्रवृत्ति भी उसमें है। कभी-कभी मूल महाप्राण ध्वनियाँ पालि, प्राकृत और आधुनिक आर्य भाषाओं में मिल जाती हैं। जब तब एक ही शब्द के अल्पप्राण-महाप्राण भेद संस्कृत में ही मिलते हैं। भिन्न भिन्न गण

समाजो मे शब्दा के जसे रूप बन, वैसे मानक भाषाओ मे आ गय। रूपा की भिन्नता और विविधता का कारण अनक आय भाषा केन्द्रा का अस्तित्व है, इन केन्द्रा के घनिष्ठ सपक के परिणामस्वरूप अन्तजनपदीय भाषा सस्कृत म इन विविध रूपा का समाहार हुआ। इस समाहार प्रक्रिया म सभी रूप नही सिमट आय, कुछ छूट भी गय, और वे सस्कृत से भिन्न नयी पुरानी आय भाषाओ म मिलत हैं। एसा एक रूप भन है जो सस्कृत म नही है, पालि और प्राकृता म नही है, किसी अपभ्रश म नही है, आधुनिक आयभाषाओ म वह अवधी म प्राप्त ह। उडिया और पूर्वी बँगला म वह अवधी स पहुँचा है। इसके सहारे घन भन जन गण का समीकरण स्थापित होता है। सस्कृत म कठ्य ध्वनि का तालव्यीकरण हुआ, सघोप महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण बनी, ग् क ससग से गण म नासिक्य ध्वनि मूध य बनी आदि-आदि तथ्य सस्कृत के विकास क अनक पक्ष उजागर करत ह और इनके सहार हम प्राचीन आय भाषा केन्द्रा स आधुनिक आय भाषाओ का पचीदा सबन्ध कुछ कुछ समभ सकत हैं।

सस्कृत का विवेचन आधुनिक आय भाषाओ के विश्लपण क लिए अनिवाय है, इन आय भाषाओ का विश्लेपण भी सस्कृत के विवेचन म सहायक हो सकता है।

सशक्त प्रगतिशील ग्रालोचक डॉ॰ रामविलास शर्मा ने इस पुस्तक म ग्राधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक भारतन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन ग्रौर साहित्य सम्बन्धी जीवन्त तथ्या को ऐसे रूप म प्रस्तुत किया है कि ग्राज की ग्रनेक समस्याग्रो का भी समाधान मिल सके। इस पुस्तक म यह प्रतिपादित किया गया है कि भारतन्दु हिन्दी की जातीय परम्परा के सस्थापक हैं ग्रौर मुख्यत उनकी बतायी हुई दिशा म चलकर ही हमारा साहित्य उन्नति कर सकेगा।

पुरानी पत्र पत्रिकाग्रा एव दुलभ पुस्तको म दबे पडे ग्रनेक महत्त्वपूण तथ्या को पहली बार प्रकाश म लाकर डा॰ शर्मा ने भारतन्दु का सवथा मौलिक चित्र पुनर्निमित किया है जो बहुतो के लिए चौकानेवाला प्रतीत हो सकता है।

दो ग्रध्यायो म भारतन्दु के नाटको पर विस्तार से विचार करने के साथ उनकी कविता उपन्यास ग्रालोचना निबन्धकला एव पत्रकारिता का भी ग्रालोचनात्मक परिचय दिया गया है। इस सस्करण के लिए विशेष रूप से लिखित युगनिर्माता भारतन्दु शीषक एक नये ग्रध्याय ने पुस्तक को ग्रौर भी सग्रहणीय बना दिया है।

भारतन्दु साहित्य सम्बन्धी सभी पक्षा की प्रामाणिक जानकारी के लिए यह ग्रकेली पुस्तक पर्याप्त है।